संतमत का सरभंग-सम्प्रदाय

डॉ० धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी शास्त्री
एम्० ए० (द्वय), पी-एच्० डी०, ए० आइ० ई० (लन्दन)
प्रिन्सिपल, एल्० एस्० कॉलेज, मुजफ्फरपुर
[भूतपूर्व एडिशनल डी० पी० आइ०, बिहार]

बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्
पटना

संशोधित मूल्य
रु 16.50

प्रकाशक
बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्
सम्मेलन भवन :: पटना-३

शकाब्द १८८०, विक्रमाब्द २०१६, खृष्टाब्द १९५९

संशोधित मूल्य 25.00 (पचीस रुपये)

मुद्रक
सपन प्रिंटिंग प्रेस
पटना

वक्तव्य

सन्तमत के सम्प्रदाय और पन्थ अनेक प्रकार के हैं। उनमें से नाथपन्थी, कबीर-पन्थी, दादूपन्थी आदि सन्तों के सम्प्रदाय पर हिन्दी में कई अच्छी पुस्तकें निकल चुकी हैं। किन्तु जहाँ तक हमें पता है, सरभंग-सम्प्रदाय पर हिन्दी में यही पहली पुस्तक है। इस प्रकार इसके द्वारा हिन्दी के सन्त-साहित्य में एक नये अध्याय का आरम्भ होता है।

यद्यपि विद्वान् लेखक ने इस विषय में आगे भी शोध करने की आवश्यकता बतलाई है, तथापि इस विषय के शोध-क्षेत्र को उर्वर बना देने का श्रेय उन्हीं को मिलेगा। उन्होंने वैदिक साहित्य से इसका सूत्र ढूँढ़ निकाला है और ऐसे संकेत भी दिये हैं, जिनका सहारा लेकर भविष्य के अनुसन्धायक सफलता के मार्ग पर अग्रसर हो सकेंगे।

सरभंग-सम्प्रदाय [illegible] रपन्थिय [illegible] मत कहा गया है। पुष्पदन्ताचार्य के शिव-महिम्नस्तोत्र से अघोर-पन्थ की श्रेष्ठता प्र[illegible]ात है। कहते हैं कि इसकी सिद्धि का मार्ग बड़ा बीहड़ है। इस पन्थ के परम सिद्ध [illegible] 'कीनाराम' के विषय में कहा जाता है कि वे सदेह विदेह थे। उनकी जीवनी का[illegible] प्रसिद्ध हिन्दी दैनिक 'आज' (२६ नवम्बर, १९५३ ई०) में छपी थी, जिसके अनुसार कीनाराम का शरीरपात १०४ वर्ष की आयु में सन् १८४४ ई० में हुआ था। उनकी तेजस्विता की कहानियाँ आज भी बिहार के पश्चिमी और उत्तरप्रदेश के पूर्वी जिलों में सुनी जाती हैं। वर्त्तमान काल के एक विद्वान् औघड़पन्थी महात्मा के कथनानुसार अघोर-सम्प्रदाय की साधना-विधि अत्यन्त कराल-कठोर है [illegible] अतः इसमें सन्देह नहीं कि दुस्साध्य साधना से प्राप्त सिद्धि भी बड़े ऊँचे स्तर की होती होगी।

सरभंग-सम्प्रदाय के एक पहुँचे हुए सन्त बाबा गुलाबदास के उत्तराधिकारी उस दिन परिषद्-कार्यालय में पधारे थे। काशी के सेनपुरा मुहल्ले में उनका पुराना मठ है, वहाँ से वे 'आवाज-ए-खल्क' नामक साप्ताहिक पत्र हिन्दी-अँगरेजी में निकालते हैं। उनसे सरभंगी सन्तों की कुछ चमत्कारपूर्ण चर्चा सुनकर ऐसा अनुभव हुआ कि आध्यात्मिक जगत् में इस सम्प्रदाय की उपलब्धियाँ भी बड़े महत्त्व की हैं। प्रस्तुत पुस्तक से इस बात की सचाई प्रकट हो जायगी।

पुस्तक-लेखक डॉक्टर धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी शास्त्री संस्कृत, अँगरेजी और हिन्दी के लब्धप्रतिष्ठ विद्वान् हैं। वे बिहार-राज्य के सारन-जिले के निवासी हैं। पहले वे पटना विश्वविद्यालय में हिन्दी-विभाग के अध्यक्ष थे। विदेश-यात्रा से लौटने पर वे बिहार-सरकार के शिक्षा विभाग में उच्च पदाधिकारी हुए। कुछ साल भागलपुर के टीचर्स ट्रेनिंग कॉलेज के प्राचार्य रहकर बिहार-राज्य के संयुक्त लोकशिक्षा-निर्देशक हुए और अब मुजफ्फरपुर के लंगट-

सिंह कॉलेज के प्राचार्य हैं। वे हिन्दी के यशस्वी निबन्धकार और आलोचक हैं। उनकी कई समीक्षात्मक साहित्यिक पुस्तकें हिन्दी-संसार में समादृत हो चुकी हैं। परिषद् से भी उनका एक ग्रन्थ पहले ही प्रकाशित हुआ है—'सन्तकवि दरिया : एक अनुशीलन'। उसमें उन्होंने बिहार के कबीर कहे जानेवाले दरियादास की रचनाओं का आलोचनात्मक अध्ययन उपस्थित किया है। सन्त-साहित्य के लुप्तप्राय रत्नों का उद्धार और मूल्यांकन करके उन्होंने हिन्दी-साहित्य की चिरस्मरणीय सेवा की है।

जब शास्त्रीजी परिषद् के प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थशोध-विभाग के अध्यक्ष थे, तभी उन्होंने इस विषय की पुरानी पोथियों और इस सम्प्रदाय के मठों तथा सन्तों की खोज कराई थी। चूँकि वे परिषद् के सदस्य भी हैं, इसलिए इस विषय में उनकी शोध-प्रवृत्ति और गहरी पैठ देखकर परिषद् ने उनसे अनुरोध किया कि उसकी भाषणमाला के अन्तर्गत वे इस विषय पर भाषण करें। तदनुसार उन्होंने सन् १९५७ ई० में १८ जनवरी (मंगलवार) को अपना भाषण प्रस्तुत किया। वही इस पुस्तक में प्रकाशित है। आशा है कि यह गवेषणापूर्ण पुस्तक हिन्दी के सन्त-साहित्य पर अन्वेषण करनेवालों को नई दिशा सुझावेगी।

वैशाख-पूर्णिमा, शकाब्द १८८०
विक्रमाब्द २०१६

शिवपूजनसहाय
(संचालक)

संतमत का सरभंग सम्प्रदाय
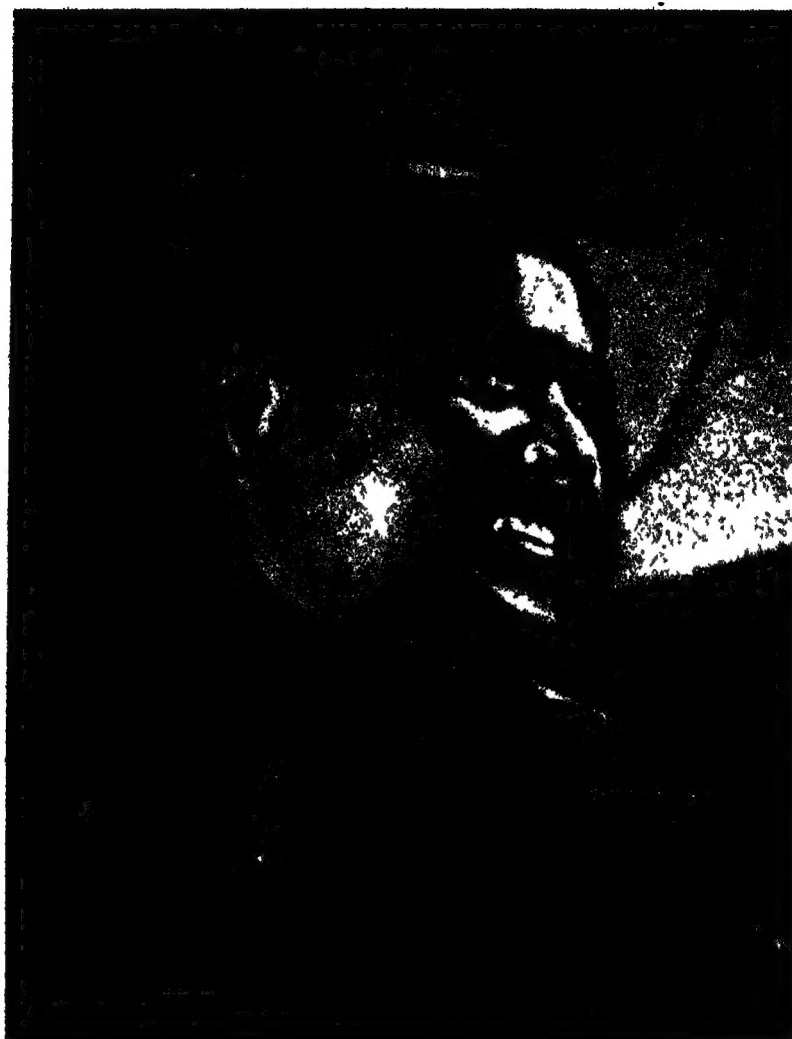
लेखक : डॉ० धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी शास्त्री

प्रारम्भिकी

'सरभंग'-संतों के संबंध में मुझे जो सर्वप्रथम जिज्ञासा हुई, उसकी प्रेरणा चंपारन के बँगरी ग्राम-निवासी श्रीगणेश चौबे से मिली। जब मैं बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् के हस्तलिखित-ग्रन्थ-अनुशीलन-विभाग का निर्देशन कर रहा था, तब चौबेजी के सहयोग से चंपारन के सरभंग संतों की 'बानियों' के अनेक हस्तलिखित संकलन प्राप्त हुए। कुछ मुद्रित पोथियाँ भी उपलब्ध हुईं। आश्चर्य है कि जिस संप्रदाय का बिहार-राज्य में व्यापक रूप से प्रचार है, और 'अघोर-संप्रदाय' के रूप में जो समस्त भारत में फैला हुआ है एवं जिसका प्रचुर साहित्य विद्यमान है, उसके संबंध में जानकारी का अभाव भी उतना ही व्यापक और विपुल है। पिछले सात वर्षों में मुझे तीन-चार बार चम्पारन के कुछ स्थानों के परिभ्रमण का अवसर प्राप्त हुआ और जब-जब ऐसा सुयोग मिला, मैंने अपने अनुसन्धेय विषय के संबंध में परिचय प्राप्त करने की चेष्टा की। बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् के तत्वावधान में हस्तलिखित ग्रन्थों के स्थायी अनुसंधायक श्रीरामनारायण शास्त्री ने जिस निष्ठा तथा तल्लीनता के साथ सहयोग दिया और मूल सामग्री एकत्र करने की चेष्टा की, वह प्रशंसनीय है। श्रीनारायण शास्त्री ने भी कुछ दिनों तक सरभंग-सम्प्रदाय-संबंधी साहित्य तथा सूचनाओं का संकलन किया। श्रीराजेन्द्रप्रसाद तिवारी ने अनेक अस्पष्ट तथा दुर्लिखित पोथियों की स्पष्ट पांडुलिपि की। श्रीशीतलप्रसाद, श्रीनागेश्वरप्रसादसिंह, प्रो० श्रीगोपीकृष्णप्रसाद, श्रीश्यामसुन्दरसहाय तथा श्रीसुशीलकुमार सिन्हा ने भाषणमाला को अंतिम रूप देने और स्वच्छ पांडुलिपि तैयार करने में सहायता दी। धौरी (सारन) मठ के बाबा सुखदेवदास, बारा-गोविन्द (चंपारन) मठ के बाबा बैजूदास 'देव', बरजी (मुजफ्फरपुर) के श्रीराजेन्द्रदेव, श्रीतारकेश्वरप्रसाद तथा श्रीविजयेन्द्रकिशोर शर्मा (मोतिहारी), श्रीठाकुर धूरनसिंह चौहान (खगड़िया) आदि ने सामग्री तथा सूचना-संकलन में सहयोग दिया।

असम (आसाम) की यात्रा में जिन विद्वानों और साधकों से सहानुभूति, सौहार्द एवं सत्परामर्श की प्राप्ति हुई, उनमें उल्लेखनीय हैं—श्रीजीवेश शर्मा, श्रीविपिनचन्द्र गोस्वामी, श्रीरमणीकान्त शर्मा, श्रीत्रिपुरानाथ स्मृतितीर्थ, श्रीजितेन चौधरी, श्रीनिर्मलकुमार महन्त आदि। पटना-विश्वविद्यालय में हिन्दी-विभाग के प्राध्यापक तथा मेरे भूतपूर्व अन्तेवासी श्रीरामबुझावन-सिंह ने सामग्री-संकलन, विचार-विनिमय तथा श्रुतिलिपि-लेखन में बहुमूल्य सहयोग प्रदान किया। मैं इन सभी सज्जनों का तथा अन्य मित्रों का, जिनकी चर्चा नहीं कर सका, ऋणी हूँ। बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् ने सरभंग-सम्प्रदाय के संबंध में भाषणमाला प्रस्तुत करने के लिए निमंत्रित कर मेरी साहित्य-साधना को उत्प्रेरित किया है, अतः मैं परिषद् का अत्यन्त

आभारी हूँ। परिषद् के सभी अधिकारियों तथा कर्मचारियों की आत्मीयता मैं अर्जित कर सका—यह मेरे लिए गौरव का विषय है। शायद प्रत्येक का नामोल्लेख अनावश्यक है।

बिहार में अनेकानेक संत-मत तथा संप्रदाय फूले-फले हैं; किन्तु अभी तक हमें उनमें से बहुतों की जानकारी सुलभ नहीं है। उनका साहित्य जहाँ-तहाँ मठों में, या भक्तों के पास अरक्षित रूप में पड़ा हुआ है। यदि हम बिहार के अज्ञात अथवा अल्पज्ञात धार्मिक साहित्य के अन्वेषण तथा गवेषण के लिए अनुसंधायकों का एक मंडल तैयार करें, और वह वैज्ञानिक ढंग से तथा व्यवस्थित निर्देशन के अधीन कार्य करे, तो शायद हम ऐसे अनगिनत मोती विस्मृति-समुद्र के गहरे गर्त्त से निकाल सकेंगे, जो हिन्दी-साहित्य के गलहार में पिरोये जाकर उसमें चार चाँद लगा सकेंगे।

प्रस्तुत भाषणमाला को पाँच खंडों में विभक्त किया गया है—पीठिका के रूप में पृष्ठभूमि और प्रेरणा; सिद्धान्त; साधना; आचार-व्यवहार तथा परिचय। इसके लिए जिस मूल सामग्री का उपयोग किया गया है, उसका एक बड़ा अंश हस्तलिखित रूप में है। जो सामग्री मुद्रित रूप में उपलब्ध है, उसका भी प्रचार भक्तों के सीमित क्षेत्र में ही है। अतः, आवश्यकता है कि 'सरभंग' अथवा 'औघड़'-मत-संबंधी समस्त मुद्रित तथा हस्तलिखित साहित्य को एकत्र किया जाय और उसे सुसंपादित कर प्रकाशित किया जाय। मैंने इस भाषणमाला के द्वारा अनुशीलन की एक नई दिशा की ओर संकेत-मात्र किया है। मैं आशा करता हूँ कि अन्य साहित्यानुरागी, मनीषी एवं तत्वान्वेषी बन्धु इस दिशा में आगे बढ़ेंगे और इस हल्की-सी दीप-शिखा से अनेकानेक ऐसे दीपों की माला प्रज्ज्वलित करेंगे, जिनकी आलोक-किरणों से अभी साहित्य, साधना एवं चिन्तन का जगत् वंचित है।

पटना,
१६-१-१९५९ ई०

धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी शास्त्री

विषयानुक्रमणी

चौथा अध्याय

परिचय

परिशिष्टाध्याय

पूरक सामग्री

पीठिकाध्याय

पृष्ठभूमि और प्रेरणा

पृष्ठभूमि और प्रेरणा

संतमत की जिस शाखा अथवा सम्प्रदाय का विवेचन इस ग्रन्थ में किया गया है, उसे सामान्यतः 'अघोर' अथवा 'औघड़' कहते हैं, किन्तु सारन और चम्पारन में, मुख्यतः चम्पारन में, इसे 'सरभंग' कहा जाता है। जन-सामान्य में 'औघड़' शब्द भी प्रचलित है। 'सरभंग'-मत एक धार्मिक सम्प्रदाय है और अतः इसमें तीन पक्षों का होना अनिवार्य है—सिद्धान्त-पक्ष, साधना-पक्ष और व्यवहार-पक्ष। दर्शन (Philosophy) और धर्म (Religion or Faith) में मुख्य अन्तर यही है कि दर्शन में प्रधानतः सिद्धान्त-पक्ष का प्रतिपादन होता है, और यदि आचार-व्यवहार के नियमो का प्रतिपादन होता भी है, तो सिद्धान्तों की व्याख्या, स्पष्टीकरण अथवा अनुषंग के रूप में। इसके विपरीत धर्म अथवा सम्प्रदाय किसी सिद्धान्त को लेकर चलता अवश्य है, किन्तु साथ-ही-साथ वह अनेकानेक धार्मिक कृत्यों का विधान करता है और जीवन के लिए भक्ति, साधना एवं आचार-विचार के नियमों का निर्धारण भी करता है। 'सरभंग'-मत के सिद्धान्तों, साधनाओं, विधि-व्यवहारो एवं आचार-सम्बन्धी नियमों की चर्चा उस मत के संतों की 'बानियो' के आधार पर कुछ विस्तार के साथ मुख्य ग्रन्थ में की गई है। यहाँ अध्ययन की पूर्व-पीठिका के रूप में हम उनका विवेचन-मात्र करना चाहेंगे।

संक्षेप में, इस मत के सिद्धान्त-पक्ष की निम्नलिखित मान्यताएँ हैं—

१. परमात्म-तत्त्व और आत्मतत्त्व (शिवतत्त्व और शक्तितत्त्व) मूलतः अभिन्न एवं अद्वैत हैं।

२. त्रिगुणात्मक प्रकृति से विकसित भौतिक जगत् भी परमात्म-तत्त्व अथवा ब्रह्म-तत्त्व से भिन्न नहीं है।

३. ईश्वर, जीव और प्रकृति के त्रिधा भेद का आभास माया अथवा अविद्या के कारण होता है।

४. परमात्मा त्रिगुणातीत अथवा निर्गुण है।

५. पञ्चभूतो से निर्मित सृष्टि त्रिगुण-विशिष्ट अथवा सगुण है।

६. अद्वैत में द्वैत के अध्यास का निराकरण ही ज्ञान है, और ज्ञान ही मोक्ष है।

साधना-पक्ष

१. मोक्ष की प्राप्ति का साधन योग है।

२. हठयोग और ध्यानयोग में ध्यानयोग अधिक श्रेयस्कर है।

३. ध्यानयोग के द्वारा पिण्ड में ब्रह्माण्ड का, आत्मा में परमात्मा का, शिव में शक्ति का मिलन ही नहीं, तादात्म्य सम्पन्न होता है।

४. योग के साथ-साथ भक्ति अनिवार्य है, और भक्ति में नाम तथा जप आवश्यक हैं।

५. साधना-पथ के दो पक्ष हैं—दक्षिण एवं वाम। वाम पक्ष में पंच मकार सिद्धि के सहायक हैं। अतः 'शक्ति' के प्रतीक 'माईराम' भी साधिका के रूप में साधक की सहचरी रह सकती हैं। शक्ति के प्रतीक के रूप में कुमारी की पूजा भी साधना का एक अंग है।

६. निर्जन स्थान, मुख्यतः श्मशान, साधना के लिए विशेषतः अनुकूल होता है। शव-साधन साधना का एक प्रमुख अंग है।

७. साधना-पथ के पथिक के लिए गुरु का निर्देशन अनिवार्य है।

व्यवहार-पक्ष

१. मन तथा इन्द्रियों की वासनाओं पर विजय प्राप्त करना अत्यन्त आवश्यक है।

२. सत्य, अहिंसा, धैर्य, सम-दृष्टि, दीनता आदि गुण भक्तों अथवा संतों की विशेषताएँ हैं। फलतः, संत को लोक-कल्याण की दृष्टि से जड़ी-बूटी, औषध तथा मंत्रोपचार आदि का ज्ञान होना चाहिए।

३. जात-पाँत, तीर्थ-व्रत आदि वाह्याचार एवं पाषण्ड हैं।

४. सत्संग, संतों तथा भक्तों का परम कर्त्तव्य है।

५. संतों की समाधि पूजा की वस्तु है।

६. समदर्शी होने के नाते संत को छुआछूत और भक्ष्याभक्ष्य आदि के भेद-भाव तथा नियन्त्रण से परे होना चाहिए।

अब हम यह विचार करें कि उपर्युक्त तीनों पक्षों की जिन प्रमुख विशेषताओं का उल्लेख किया गया, उनकी पृष्ठ-भूमि क्या है। भारत का सबसे प्राचीन साहित्य वैदिक साहित्य है। वेद चार हैं—ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद। इनमें जो सूक्त अथवा मंत्र संकलित हैं, वे 'श्रुति' कहलाते हैं; क्योंकि ये अत्यन्त प्राचीन काल से श्रवण-परम्परा की एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी के ऋषियों को मिले। उन्हें ही संगृहीत तथा सम्पादित कर कालान्तर में ऋग्वेदादि संहिताओं (सम्+धा+क्त) का निर्माण अथवा संकलन हुआ। वेदों में अग्नि, इन्द्र, वरुण, रुद्र आदि देवों की स्तुतियाँ गाई गई हैं और उनसे अनेकानेक प्रार्थनाएँ की गई हैं। इसी को ध्यान में रखते हुए वैदिक साहित्य के पाश्चात्य विद्वानों ने यह लिखा है कि वेदों में बहुदेववाद (Polytheism) है। किन्तु उन्होंने यह भी स्वीकार किया है कि उनमें अनेकानेक ऐसे मंत्र हैं, जो स्पष्ट रूप से 'एकदेववाद' को प्रतिपादित करते हैं। ऋग्वेद के दशम मण्डल का निम्नांकित मंत्र देखिए—

सुपर्णं विप्राः कवयो वचोभिरेकं सन्तं बहुधा कल्पयन्ति।
छन्दांसि च दधतो अध्वरेषु ग्रहात्सोमस्य मिमते द्वादश ॥१०।१०।११४॥

अर्थात्, एक ही सुपर्ण देव को विप्र कवि-जन अपनी वाणियों से अनेकधा कल्पित करते हैं। इस मंत्र के देवता हैं 'विश्वेदेवाः'। 'विश्वदेवाः'—अर्थात् ,समस्त देवों को एक इकाई मानना भी यह सूचित करता है कि ऋग्वेदीय ईश्वर-भावना बहुदेवत्व के स्तर को त्यागकर

एकदेवत्व के उच्चतर धरातल पर पहुँच चुकी थी। 'भूतस्य जातः पतिरेकः', 'यो देवेष्वधि देव एकः'[1] आदि मंत्रांश एक सर्वोपरि देव, अर्थात् एक परमात्मा को इंगित करते हैं। परवर्ती संतमत का 'एकेश्वरवाद' बीज रूप में वेदों के इन मंत्रांशों में विद्यमान है।

संतों का 'एकेश्वरवाद' अद्वैतवाद को आधार मानकर चलता है। चाहे शांकर अद्वैत हो, चाहे शैव अद्वैत हो; चाहे सगुणवादी वैष्णवों का अद्वैत हो, चाहे निर्गुणवादी संतों का अद्वैत हो; सब के मूल में मुख्यतः उपनिषदें हैं। निदर्शन-निमित्त कुछ उद्धरण पर्याप्त होंगे—

ब्रह्म वा इदमग्र आसीत्तदात्मानमेवावेदहं ब्रह्मास्मीति।
तस्मात्तत्सर्वमभवत् ॥[2]

अथवा—

सदेव सोम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम्।[3]

अथवा—

आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीत्।[4]

अथवा—

अयमात्मा ब्रह्म सर्वानुभूः।[5]

अथवा—

'स य एषोऽणिमैतदात्म्यमिदँ सर्वंतत्सत्यँ स
आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो।[6]

अथवा—

सर्वं खल्विदं ब्रह्म तज्जलानिति शान्त उपासीत।[7]

अथवा—

नेह नानास्ति किञ्चन।[8]

उपर्युक्त उद्धरणों से, जो 'ब्रह्म' अथवा 'आत्मा' नामक अद्वैत तत्त्व का प्रतिपादन करते हैं, स्पष्ट है कि जिन पश्चाद्वर्ती धार्मिक शाखाओं अथवा सम्प्रदायों ने अद्वैतवाद के सिद्धान्त को दार्शनिक आधार-शिला बनाया, उन्होंने मूल प्रेरणाएँ उपनिषदों से लीं। अद्वैत ही नहीं, संतमत की प्रायः सभी मान्यताएँ उपनिषद्-युग में मूर्त्त रूप धारण कर चुकी थीं। संतों ने ब्रह्म को निर्गुण माना है और इसीलिए हम जब कभी निर्गुण भक्ति की चर्चा करते हैं, उसके द्वारा संतमत की ओर संकेत करते हैं। यद्यपि सगुण राम अथवा कृष्ण के उपासक सूर, तुलसी आदि भी संत थे, किन्तु धीरे-धीरे 'संत' शब्द निर्गुणवादी साधकों तथा महात्माओं के अर्थ में ही रूढ़ होता चला आया है। ब्रह्म निर्गुण है, ऐसा कहने का यह तात्पर्य होता है कि वह सत्त्व, रजस् और तमस् इन तीन गुणों से विशिष्ट जो प्रकृति है, उससे विकसित अहंकार, मन, बुद्धि, इन्द्रिय आदि विकृतियों से परे है। संतों ने वैष्णव भक्ति से प्रभावित होकर निर्गुण-भावना के क्षेत्र में 'राम' का व्यापक रूप से अंगीकरण किया है, किन्तु उन्होंने 'राम' को सगुण न मानकर निर्गुण माना। उन्होंने अवतारवाद में भी अनास्था प्रकट की है; क्योंकि अवतार ग्रहण करने का अर्थ है निर्गुण का सगुण

रूप धारण करना। उपनिषदों ने निर्गुण-भावना को व्यक्त करने के लिए एक तो ब्रह्म को 'निर्गुण', 'निष्कल', 'निरंजन' आदि नकारात्मक संज्ञाएँ दी हैं; यथा—

'विरजं ब्रह्म निष्कलम्;'[९]

अथवा—

निष्कलं निष्क्रियं शान्तं निरवद्यं निरञ्जनम्।[१०]

अथवा—

साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च।[११]

दूसरे, 'नेति-नेति' (यह नहीं, यह भी नहीं, की शैली के व्यवहार द्वारा ब्रह्म की सूक्ष्मता तथा अनिर्वचनीयता को व्यक्त किया है। नकारात्मक कल्पनाओं की एक सुन्दर माला निम्नलिखित पंक्तियों में गुम्फित है—

स होवाचैतद्वै तदक्षरं गार्गि ब्राह्मणा
अभिवदन्त्यस्थूलमनण्वह्रस्वमदीर्घम-
लोहितमस्नेहमच्छायमतमोऽवाय्वनाका-
शमसङ्गमरसमगन्धमचक्षुष्कमश्रोत्र-
मवागमनोऽतेजस्कमप्राणममुखममात्रमनन्तर
मबाह्यन्न तदश्नाति किञ्चन न तदश्नाति कश्चन।[१२]

संतों ने निर्गुण-भावना के आधार पर स्थूल शरीराकृति प्रतिमा अथवा मूर्ति का भी खण्डन किया है। उपनिषद् भी कहती है—

न तस्य प्रतिमा अस्ति यस्य नाम महद्यशः।[१३]

श्वेताश्वतरोपनिषद् के पञ्चमाध्याय में 'गुणों' का विश्लेषण किया गया है; और जिस प्रकार भगवद्गीता में मानव-व्यक्तित्व पर रजोगुण, तमोगुण तथा सत्वगुण के भिन्न-भिन्न प्रभाव प्रतिपादित किये गये हैं, उसी प्रकार श्वेताश्वतर में भी मनुष्य के पुण्य-पाप, पुनर्जन्म आदि के साथ सत्वादि गुणों का सम्बन्ध स्थापित किया गया है। यथा—

गुणान्वयो यः फलकर्मकर्त्ता कृतस्य तस्यैव न चोपभोक्ता।
स विश्वरूपस्त्रिगुणस्त्रिवर्त्मा प्राणाधिपः सञ्चरति स्वकर्मभिः॥[१४]

अथवा—

स्थूलानि सूक्ष्माणि बहूनि चैव रूपाणि देही स्वगुणैर्वृणोति।
क्रियागुणैरात्मगुणैश्च तेषां संयोगहेतुरपरोऽपि दृष्टः॥[१५]

सांख्य और योग-दर्शनों में प्रकृति तथा उसकी विकृतियों के विकास-क्रम का विश्लेषण किया गया है। ये दर्शन सूत्ररूप में उपनिषदुत्तर-काल में प्रणिबद्ध हुए, किन्तु मूल रूप में ये उपनिषत्-काल में ही विद्यमान थे, इसमें कोई सन्देह नहीं। उदाहरणतः, श्वेताश्वतरोपनिषद् में इन दोनों दर्शनों का स्पष्ट उल्लेख है—

तत्कारणं सांख्ययोगाधिगम्यं ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः।[१६]

निर्गुण-ब्रह्म के प्रतिपादन में संतों ने 'ब्रह्म' और 'आत्मा' शब्द का उतना अधिक प्रयोग नहीं किया है, जितना 'पुरुष' और 'सत्पुरुष' का। पुनश्च, जीवात्मा के लिए उन्होंने

'हंस' शब्द का बाहुल्य से व्यवहार किया है। उपनिषदों के निम्नांकित उद्धरण यह सिद्ध करते हैं कि इन शब्दों की प्रेरणा भी उनको उपनिषदों से मिली—

तेजोमयोऽमृतमयः पुरुषोऽयमेव स योऽयमात्मेद-
ममृतमिदं ब्रह्मेदं सर्वम्।[१७]

अथवा—

असंगो ह्ययं पुरुषः।[१८]

अथवा—

हिरण्मयः पुरुष एकहंसः।[१९]

अथवा—

एको हंसो भुवनस्यास्य मध्ये स एवाग्निः सलिले सन्निविष्टः।
तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय॥[२०]

ब्रह्म-निरूपण के प्रसंग में संतो ने 'काल' और 'निरंजन' इन शब्दों का प्रयोग किया है। ये एक प्रकार के 'अवर-ब्रह्म' कल्पित किये गये हैं, जो द्वैत-विशिष्ट जगत् के अधिष्ठाता तथा नियन्ता हैं। उपनिषद् का निम्नांकित श्लोक देखिए—

स्वभावमेके कवयो वदन्ति कालं तथाऽन्ये परिमुह्यमानाः।
देवस्यैष महिमा तु लोके येनेदं भ्राम्यते ब्रह्मचक्रम्॥[२१]

श्वेताश्वतरोपनिषद् के षष्ठाध्याय में 'निर्गुण', 'काल' और 'निरञ्जन' का विशेष रूप से विश्लेषण किया गया है। इससे यह अनुमान किया जा सकता है कि उपनिषदों का प्रभाव संत-साहित्य पर कितना अधिक पड़ा है।

संतमत ने जहाँ उपनिषदों के अद्वैत-सिद्धान्त का ग्रहण किया है, वहाँ साथ ही-साथ उसने उनके उस अविद्या-तत्त्व या माया-तत्त्व को भी स्वीकृत किया है, जिसके कारण अद्वैत द्वैत के रूप में, और एकत्व बहुत्व के रूप में प्रतीत होता है। उपनिषदों के अनुसार सृष्टि के पूर्व एकमात्र तत्त्व 'सत्' था। 'सदेव सोम्येदमग्रमासीदे-कमेवाद्वितीयम्।'[२२] उस 'सत्' ने कल्पना की, कि 'मैं बहुत हो जाऊँ' और फिर पंच-भूतादि की सृष्टि हुई—

तदैक्षत बहु स्याम् प्रजायेयेति।[२३]

'सत्' अथवा 'ब्रह्म' में इस प्रकार के बहुत्व की आकांक्षा ही अविद्या अथवा माया है।

यथा—

इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते।[२४]

अर्थात्, इन्द्र अपनी माया से बहुरूप विदित होते हैं। महेश्वर को 'मायी' कहा गया है और यह बतलाया गया है कि उसी मायी ने इस विश्व की सृष्टि की है और स्वयं वह उसमें 'माया' के द्वारा आबद्ध हो गया है—

छन्दांसि यज्ञाः क्रतवो व्रतानि भूतं भव्यं यच्च वेदा वदन्ति।
अस्मान् मायी सृजते विश्वमेतत्तस्मिंश्चान्यो मायया संनिरुद्धः॥

मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम् ।
तस्यावयवभूतैस्तु व्याप्तं सर्वमिदं जगत् ॥[२५]

उपनिषदों में 'अविद्या' शब्द का भी बाहुल्य से प्रयोग हुआ है, बल्कि जितना अधिक इस शब्द का प्रयोग हुआ है, उतना 'माया' का नहीं।

द्वे अक्षरे ब्रह्म परे त्वनन्ते विद्याऽविद्ये निहिते यत्र गूढे ।
क्षरं त्वविद्या ह्यमृतं तु विद्या विद्याऽविद्ये ईशते यस्तु सोऽन्यः ॥[२६]

यहाँ विद्या को अमृत और अविद्या को क्षर अथवा नश्वर कहा गया है। मुण्डकोपनिषद् में लिखा है कि जो अविद्या में ग्रस्त हो जाते हैं, वे अहम्मन्य होकर उसी प्रकार संसार में व्यर्थ चक्कर काटते हैं, जिस प्रकार अन्धों के नेतृत्व में अन्धे। वे मूर्ख और अज्ञ होते हुए भी अपने को ज्ञानी और कृतार्थ समझते हैं—

अविद्यायामन्तरे वर्त्तमानाः स्वयं धीराः पण्डितम्मन्यमानाः ।
जंघन्यमानाः परियन्ति मूढा अन्धेनैव नीयमाना यथान्धाः ॥[२७]

अथवा—

अन्धन्तमः प्रविशन्ति येऽविद्यामुपासते ।[२८]

किन्हीं उपनिषदों में 'माया' शब्द का छल-कपट के साधारण अर्थ में भी प्रयोग हुआ है। यथा—

तेषामसौ विरजो ब्रह्मलोको न येषु जिह्ममनृतं न मायाः ।[२९]

जहाँ तक साधना-पक्ष का संबंध है, स्वरसंधान तथा ध्यानयोग—इन दो का संतों ने व्यापक रूप से विधान किया है। उपनिषदों में इनका भी स्पष्ट रूप से उल्लेख है। यथा—

प्राणान् प्रपीड्येह स युक्तचेष्टः क्षीणे प्राणे नासिकयोच्छ्वसीत ।
दुष्टाश्वयुक्तमिव वाहमेनं विद्वान्मनो धारयेताप्रमत्तः ॥[३०]

तथा—

ते ध्यानयोगानुगता अपश्यन्देवात्मशक्तिं स्वगुणैर्निगूढाम् ।
यः कारणानि निखिलानि तानि कालात्मयुक्तान्यधितिष्ठत्येकः ॥[३१]

योगावस्था की जो चरम परिणति, अर्थात् समाधि है, उसका विवरण देते हुए तैत्तिरीयोपनिषद् में लिखा है कि उस अवस्था में वाणी निवृत्त हो जाती है, मन भी निवृत्त हो जाता है, साधक निर्भीक हो जाता है और वह ब्रह्म के आनन्द का आस्वादन करता है—

यतो वाचो निवर्त्तन्ते । अप्राप्य मनसा सह ॥
आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान् । न बिभेति कुतश्चनेति ॥[३२]

यह भी बताया गया है कि समाधि अथवा मोक्ष प्राप्त होने पर जन्म-मरण का क्षरण हो जाता है और उसकी पुनरावृत्ति नहीं होती—

तेषु ब्रह्मलोकेषु पराः परावतो वसन्ति तेषां न पुनरावृत्तिः ।[३३]

संतों की ध्यानयोग, समाधि तथा मोक्ष की कल्पनाएँ इन्हीं उपनिषद्गत मान्यताओं से मिलती-जुलती हैं। उन्होंने नाम-भजन तथा जप को भी बहुत महत्त्व दिया है। बृहदा-

रण्यकोपनिषद् में यज्ञ के प्रस्तोता के लिए 'असतो मा सद्गमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय' का जप करने का विधान[34] है।

कर्म, पुनर्जन्म, पुण्य-पाप, न्याय, कृतकर्मनाश आदि संतों के सिद्धान्त अति विस्तृत रूप में उपनिषदों में विद्यमान हैं। भिन्न-भिन्न लोक, पितृयान, देवयान, स्वर्ग-नरक—ये सभी यत्र-तत्र वर्णित हुए हैं। यथा—

आरभ्य कर्माणि गुणान्वितानि भावांश्च सर्वान् विनियोजयेद्यः।
तेषामभावे कृतकर्मनाशः कर्मक्षये याति स तत्वतोऽन्यः ॥[35]

तथा—

स वा एष एतस्मिन् बुद्धान्ते, रत्वा चरित्वा दृष्ट्वैव पुण्यं च।
पापं च पुनः प्रतिन्यायं प्रतियोन्याद्रवति स्वप्नान्तायैव ॥[36]

पुनश्च—

यथाकारी यथाचारी तथा भवति। साधुकारी साधुर्भवति ॥
पापकारी पापो भवति। पुण्यः पुण्येन कर्मणा भवति पापः पापेन ॥[37]

संतों की साधना के क्षेत्र में दो ऐसे तत्त्व हैं, जिनको वे बहुत महत्त्व देते हैं। वे हैं गुह्य-तत्त्व और गुरु-तत्त्व। उनका मन्तव्य है कि सभी व्यक्ति ब्रह्मज्ञान के अधिकारी नहीं हो सकते और योग आदि का अभ्यास बिना गुरु के निर्देशन के संभव नहीं है। यही कारण है कि अनेकानेक संतमतों का साहित्य अभी अप्रकाशित पड़ा हुआ है। संतों की 'बानियाँ' या तो भक्तों के कंठ में हैं या हस्तलिखित ग्रन्थों में। गुह्यतत्त्व की भावना उपनिषदों में भी है। जब नचिकेता यम के यहाँ ब्रह्म-ज्ञान के लिए गया, तब उसे तीन रात भूखा-प्यासा रहना पड़ा। जब वह इस प्रथम परीक्षा में सफल हुआ, तब उसे ब्रह्म ज्ञान मिला। इस ज्ञान को 'गुह्य' ब्रह्म सनातनम्'[38] कहा गया है, अर्थात् यह केवल अधिकारी और पात्र को ही सुलभ है। सत्य अथवा ब्रह्म ज्ञान सोने के ढक्कन से गोपित अथवा आच्छादित है—

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्।[39]

श्वेताश्वतर के अनेक श्लोक ब्रह्मज्ञान की गुह्यता और गुरु का देवोपम महत्त्व प्रतिपादित करते हैं। गुरु के बिना बाहरी ज्ञान भले ही हो जाय, किन्तु गूढार्थ का प्रकाश सम्भव नहीं। गूढार्थ-ज्ञान उसे भी सम्भव नहीं है, जो अपात्र हो अथवा जिसके साथ आत्मीयता न हो—

वेदान्ते परमं गुह्यं पुरा कल्पे प्रचोदितम्।
नाप्रशान्ताय दातव्यं नापुत्रायाशिष्याय वा पुनः ॥
यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ।
तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः ॥[40]

आचार-व्यवहार-पक्ष में संतों ने श्रद्धा, तप, ब्रह्मचर्य, सत्य, दम, दान, दया आदि गुणों की आवश्यकता जीवन में बताई है। इनमें से प्रत्येक के सम्बन्ध में उपनिषदों से उद्धरण देने की आवश्यकता नहीं है; क्योंकि ये कुछ ऐसे नियम हैं, जो सर्वसम्मत हैं और

केवल संत-मत के लिए ही नहीं, बल्कि समग्र मानवता के उन्नयन के लिए अनिवार्य हैं। केवल कुछ उदाहरण पर्याप्त होंगे—

अथोत्तरेण तपसा ब्रह्मचर्येण श्रद्धया विद्ययात्मान-
मन्विष्यादित्येनमभिजयन्ते।[४१]

तथा—

सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा सम्यग्ज्ञानेन ब्रह्मचर्येण नित्यम्।[४२]

तथा—

सत्यमेव जयते नानृतम्। सत्येन पन्था विततो देवयानः।[४३]

तथा—

तदेतत् त्रयं शिक्षेद्दमं दानं दयामिति।[४४]

उपर्युक्त संक्षिप्त विवरण से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि जिस सरभंग-संतमत का विवरण तथा विश्लेषण हम प्रस्तुत ग्रन्थ में कर रहे हैं, उसके प्रायः सभी प्रमुख अंगों का बीज रूप में प्रतिपादन उपनिषदों में विद्यमान है।

अब हम यह विचार करेंगे कि किन मुख्य दृष्टियों से सरभंग मत का सम्बन्ध वेदों से जोड़ा जा सकता है। सरभंग-मत का निकटतम सम्बन्ध शैवमत की शाक्त तथा तांत्रिक शाखाओं से है और शैवमत का परम्परा-सम्बन्ध ऋग्वेद तथा अथर्ववेद के 'रुद्र' से है। ऋग्वेद के रुद्र और अथर्ववेद के रुद्र में मुख्य अन्तर यह है कि यद्यपि उभयत्र वे कल्याणकारी तथा संहारकारी, सौम्य तथा उग्र—दोनों रूपों में प्रकट होते हैं, ऋग्वेद के रुद्र प्रधानतः सौम्य और अथर्ववेद के रुद्र प्रधानतः उग्र रूप में चित्रित हुए हैं। जिस प्रकार पश्चाद्वर्त्ती पुराणों के शिव के साथ उनके 'गण' लगे हुए हैं, उसी प्रकार ऋग्वेद और अथर्ववेद में मरुद्गण उनके सहचर हैं। वे न केवल विद्युत्, झंझावात आदि प्रकृति की विनाशकारी शक्तियों के प्रतीक हैं, अपितु उर्वरत्व, पशु-रक्षा और रोग निवृत्ति आदि के भी अधिष्ठाता हैं। ऋग्वेद तथा अथर्ववेद के निम्नांकित दो उद्धरण उपर्युक्त अन्तर के प्रतिपादन की दृष्टि से दिये जा रहे हैं—

शं नः करत्यर्वते सुगं मेषाय मेष्ये।
नृभ्यो नारिभ्यो गवे ॥—ऋग्वेद

—इसमें घोड़े, मेड़, मेड़ी, पुरुषों, स्त्रियों के कल्याण की प्रार्थना की गई है।

भवाशर्वावस्यतां पापकृते कृत्याकृते।
दुष्कृते विद्युतं देवहेतिम् ॥—अथर्ववेद १०।१।२३

—अर्थात् रुद्र (भव और शर्व) कृत्या (अभिचार) अथवा जादू-टोने का प्रयोग करनेवाले पापी तथा दुष्कर्मी पर देवायुध, बिजली का प्रहार करें।

अथर्ववेद में रुद्र का विकास ऋग्वेद की अपेक्षा अधिक प्रस्फुटित हुआ है और उन्हें महत्त्व भी अधिक प्रदान किया गया है। इस वेद में रुद्र के अतिरिक्त 'नील-शिखण्ड' 'भव', 'शर्व', 'महादेव', 'भूत-पति', 'पशु-पति' आदि संज्ञाएँ दी गई हैं। तात्पर्य यह कि

पश्चाद्वर्ती पुराण-साहित्य, शैव-साहित्य तथा तंत्र-साहित्य में जिन नामों से शिव अथवा रुद्र को आराधित एवं पूजित किया गया है, उनमें से बहुत-से नाम अथर्ववेद के समय से ही चले आ रहे हैं।

संतमत के कुछ अनुयायी श्मशान की क्रिया के द्वारा भूत-पिशाचों और डाकिनियों-शाकिनियों को वश में करने और फलतः आश्चर्यजनक सिद्धि प्राप्त करने के निमित्त घोर साधना करते हैं और वे काल-भैरव तथा काली का आवाहन करते हैं। जो संत सरभंग अथवा अघोर (औघड़) हैं, उनको सिद्ध समझा जाता है और उनसे यह आशा की जाती है कि वे अपनी सिद्धि के बल बड़ी-बड़ी व्याधियों का निवारण करेंगे। अथर्ववेद में रुद्र एक महान् भिषक्[४५] अर्थात् चिकित्सक के रूप में चित्रित किये गये हैं, भूत-पिशाच आदि के निवारणार्थ उनका आह्वान[४६] किया जाता है। कुत्ते को उनका सहचर[४७] माना गया है। आशय यह कि शिव की पूजा की जिन भावनाओं को आगम तथा-तंत्र-ग्रंथों ने विकसित किया और जिन्हें बहुत अंशों में 'अघोर' मत ने अपनाया, वे मूल रूप में वेदों में विद्यमान[४८] हैं।

श्वेताश्वतरोपनिषद् में चलकर रुद्र एक प्रमुख देवता के रूप में प्रतिष्ठापित हो चुके हैं।

एको हि रुद्रो न द्वितीयोवतस्थुर्य इमाँल्लोकानीशत ईशनीभिः।[४९]

इसमें शिव, पशुपति आदि नामों के अतिरिक्त 'गिरिश', 'गिरित्र' आदि नाम और जोड़ दिये गये हैं—

यामिषुं गिरिशन्त हस्ते बिभर्ष्यस्तवे।
शिवां गिरित्र तां कुरु मा हिंसीः पुरुषं जगत्[५०]॥

एक अन्य मंत्र में रुद्र के संबंध में कहा गया है कि—

या ते रुद्र शिवा तनूरघोरा पापकाशिनी।[५१]

अर्थात्, शिव का शरीर 'अघोर' है। सरभंग अथवा अघोर-मत के संत कभी-कभी इस उपनिषद्-मंत्र का हवाला देते हैं और 'अघोर'-मत का इस मंत्र के 'अघोर' शब्द से संबंध जोड़ते हैं। आचार-व्यवहार के प्रसङ्ग में हम मुख्य ग्रन्थ में यह देखेंगे कि इस मत में भक्ष्याभक्ष्य का प्रश्न कोई महत्त्व नहीं रखता और मद्य, मांस आदि गर्हित नहीं माने जाते। जिन्हें तंत्र-साहित्य से परिचय है, वे जानते हैं कि तंत्र अनेक प्रकार के हैं। उनमें वाम-मार्गी और दक्षिण-मार्गी तंत्र भी हैं। वाम-मार्ग को 'कौल मार्ग' भी कहा जाता है; क्योंकि 'कुल' नाम है कुण्डलिनी का और कुण्डलिनी को जाग्रत् करना तंत्र-विहित योग की मुख्य साधना है। अपने व्यापक रूप में तंत्र वैष्णव भी हैं तथा शैव-शाक्त भी। श्वेताश्वतरोपनिषद् में एक स्थान पर लिखा है कि—

रुद्र यत्ते दक्षिणं मुखं तेन मां पाहि नित्यम्।[५२]

सम्भवतः, उपनिषत्-काल में ही 'वामं मुखम्' (वाम-मार्ग) की कुछ प्रारम्भिक-कल्पना अंकुरित हो चुकी थी।

इस प्रसंग में एक प्रश्न है कि शाक्त-तंत्र-मत में जो 'शक्ति' की पूजा है, उसकी मूल प्रेरणा कहाँ मानी जाय? कुछ अनुसन्धायकों का मत है कि स्त्री-देवता-रूप में

'काली' अथवा 'शक्ति' की कल्पना आर्येतर प्रभाव की द्योतक है। सिन्धु-घाटी और पश्चिमी एशिया की प्राचीन सभ्यता तथा भारत की आर्येतर आदिम जातियों की सभ्यता में 'देवी' की उपासना महत्त्वपूर्ण स्थान रखती थी और शाक्त-मत में जो शक्ति की उपासना है, वह उसी से प्रभावित है; क्योंकि प्राचीन युग में इन सभ्यताओं के आर्य सभ्यता के साथ घनिष्ठ आदान-प्रदान के प्रमाण उपलब्ध हैं। इस प्रकार की मान्यता कुछ और अधिक गवेषणा तथा अध्ययन का विषय होनी चाहिए। संप्रति हमारा विचार है कि वेदों और उपनिषदों से ही पश्चाद्वर्त्ती 'शक्ति' की उपासना की परम्परा चलती आई है। वेदों में भी अनेक देवियों की कल्पना की गई है। यथा—पृथिवी, रोदसी, वाक्, सरस्वती, उषस् आदि। ऐसा प्रतीत होता है कि रुद्र के साथ उनकी संगिनी के रूप में किसी देवी की कल्पना ऋग्वेद तथा अथर्ववेद में नहीं थी, किन्तु यह देखते हुए कि 'इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते'[५३] (अर्थात् इन्द्र अपनी 'माया' से बहुरूप होते हैं) आदि वैदिक मंत्रों में 'माया' के उस दार्शनिक स्वरूप की स्पष्ट कल्पना है, जिसमें वह द्वैत में अद्वैत अथवा एकत्व में बहुत्व के प्रतिपादन का आधार-बिन्दु मानी गई है; और यह देखते हुए कि उपनिषदों में ध्यानयोग के द्वारा आत्म-शक्ति के साक्षात् दर्शन[५४] की कल्पना की गई है; और फिर यह देखते हुए कि रुद्र का वर्णन करते हुए उपनिषद् में 'त्वं स्त्री त्वं पुमानसि'[५५] कहा गया है; हम ऐसा अनुमान कर सकते हैं कि 'माया', 'अविद्या', और 'शक्ति' इन तीनों की समष्टि को देवत्व प्रदान कर उसे ही काली, दुर्गा, शक्ति आदि संज्ञाएँ देते हुए पश्चाद्वर्त्ती शैवमत, विशेषतः शाक्तमत तथा तंत्रमत, ने उसे आराध्य के रूप में अपनाया।

अघोर या सरभंग-मत के सिद्धान्त, साधना एवं व्यवहार-पक्ष से ऋजु या अनृजु रूप से संबंधित निम्नलिखित बिन्दुओं के आश्रित जो भावनाएँ अथर्ववेद के मंत्रों में मिलती हैं, उनका संक्षिप्त निरूपण अप्रासंगिक न होगा—(क) वेदत्रयी और अथर्ववेद; (ख) शक्ति अथवा देवी, (ग) योग तथा निर्जन-साधना, (घ) मंत्र, (च) कृत्य एवं कर्म, (छ) भेषज तथा मणिबंधादि उपचार, (ज) राक्षस, भूत, प्रेत आदि, (झ) मारण मोहनादि अभिचार, (ट) पंच मकार, (ठ) अथर्ववेद और उपनिषद्, (ड) अथर्ववेद और तंत्र।

(क) वेदत्रयी और अथर्ववेद—'वेदत्रयी', 'त्रयी विद्या' आदि प्रयोगों के आधार पर कभी-कभी लोगों की यह धारणा होती है कि अथर्ववेद का प्रणयन अथवा संकलन ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद के बहुत बाद हुआ, अथवा अथर्ववेद को अन्य वेदों के समान प्रतिष्ठा नहीं मिली। इस प्रश्न को सायणाचार्य ने भी अथर्ववेद-भाष्य की भूमिका में छेड़ा है और उसका समाधान किया है। उनके मत में 'यज्ञः चतुष्पात्' के अनुसार स्व-स्वविहित यज्ञकर्म का विधान है। इस विधान में होता ऋक् के द्वारा, अध्वर्यु यजुष् के द्वारा और उद्गाता साम के द्वारा अपना कर्म करता है; किन्तु ब्रह्मा अपना कर्म कैसे करता है, अथर्ववेद के द्वारा ही तो।[५६] रामगोपालशास्त्री ने अथर्ववेद की 'बृहत्सर्वानुक्रमणिका' की भूमिका में एक दूसरा समाधान प्रस्तुत किया है। वह यह कि 'त्रयी' का तात्पर्य तीन संहिताओं से नहीं है, अपितु वेदमंत्रों की त्रिविध रचना से। जो मंत्र पद्यात्मक हैं, वे 'ऋच' कहलाते हैं; जो गद्यात्मक हैं, वे 'यजुष्' और जो गानात्मक हैं,

वे 'सामन्'। जैमिनि ने भी लिखा है—'तेषामृग् यत्रार्थवशेन पादव्यवस्था। गीतिषु सामाख्या। शेषे यजुः शब्दः।'[५८] ब्राह्मण-ग्रन्थों में जहाँ वेदत्रयी का उल्लेख है, वहाँ यत्र-तत्र वेद-चतुष्टय की भी चर्चा है।[५९] इससे यह सिद्ध होता है कि अथर्ववेद अन्य वेदों के समान ही प्राचीन है। कुछ विद्वानों का यह अभिमत है कि यह अन्यों से प्राचीनतर है, और ऐसा संभव भी है। अनेक स्थानों पर केवल 'वेदत्रयी' के उल्लेख से हम यह अनुमान कर सकते हैं कि अथर्ववेद की भावना तथा परम्परा अन्य वेदों से कुछ भिन्न एवं विशिष्ट थी। हमारी समझ में अथर्ववेद जनता का वेद था और इस कारण जन-समाज में प्रचलित आस्थाओं, विश्वासों, रीतियों एवं रूढियों ने इसमें महत्त्वपूर्ण स्थान पाया।

(ख) शक्ति अथवा देवी—दक्षिण या वाम, समग्र तंत्राचार, में देवी या काली की पूजा का विधान है। देवी की उपासना से तांत्रिक साधक को सिद्धि मिलती है। औघड़ तथा सरभंग-सम्प्रदाय के साधक भी मातृ-शक्ति की पूजा और उसका आवाहन करते हैं। अथर्ववेद के पंचम काण्ड में एक मंत्र आया है, जिसमें 'माता' की स्थापना की चर्चा है। सायण-भाष्य के अनुकूल भाषानुवाद करते हुए ऋषिकुमार पं० रामचन्द्र शर्मा ने उक्त मंत्र की निम्नलिखित व्याख्या की है—"जिसको श्रेष्ठ और साधारण प्राणियों ने धारण किया है और जिस घर में अन्न से रक्षा पाई है, उसमें चलती-फिरती कालिका माता शक्ति को स्थापित करो, तदनन्तर इसमें अनेक विचित्र पदार्थों को लाओ।"[६०] जिस सूत्र का यह मंत्र है, उसके संबंध में कौशिक सूत्र का प्रमाण है कि उससे सब फलों को चाहनेवाला इन्द्र और अग्निदेव का भजन अथवा उपस्थापन करे।[६१] इसके अतिरिक्त अन्यत्र त्विषि देवी (तेजोरूपा देवी) के संबंध में एक मंत्र में लिखा है कि "सहनशील मृगेन्द्र में, व्याघ्र में और सर्प में जो आक्रमण-रूप त्विषि (तेज) है, अग्निदेव में जो दाहरूप त्विषि है, ब्राह्मण में जो शाप-रूप त्विषि है, और सूर्य में जो ताप-रूप त्विषि है, और जिस सौभाग्यमयी त्विषि देवी ने इन्द्र को उत्पन्न किया है; वह त्विषिरूपा देवी हमारे अभिलषित तेज से एकमत होती हुई हमको प्राप्त हो॥ जो गजेन्द्र में बल की अधिकता-रूप तेज है, गेण्डे में जो हिंसक-रूप तेज है, सुवर्ण में आह्लाद देना-रूप वर्ण की जो श्रेष्ठता और जलों में, गौओं में तथा पुरुषों में जो अपनी-अपनी विशिष्टता-रूप त्विषि है, और जिस सौभाग्यमयी त्विषि देवी ने इन्द्र को उत्पन्न किया है, वह त्विषिरूपा देवी हमारे अभिलषित तेज से एकमत होती हुई हमको प्राप्त हो॥ गमन के साधन रथ में, अक्षों में और उसके सेचन-समर्थ बैल में, वेगपूर्वक चलनेवाले वायु में, वर्षा करनेवाले मेघ में और उसके अधिष्ठाता देव वरुण देव के बल में जो त्विषि है, और जिस सौभाग्यमयी त्विषि देवी ने इन्द्र को............प्राप्त हो। राजा के अभिषिक्त पुत्र राजन्य में, बजाई जाती हुई दुन्दुभि में जो त्विषि है, घोड़े के शीघ्र गमन में, पुरुष के उच्चस्वर से उच्चारण किये जानेवाले शब्द में जो त्विषि है, और जिस सौभाग्यमयी त्विषि देवी ने......प्राप्त हो।"[६२]

इस वर्णन के आधार पर यदि हम त्विषि देवी को पश्चाद्वर्त्तिनी दुर्गा या काली का पूर्वरूप मानें, तो ऐसी कल्पना असंगत न होगी। इन मंत्रों के अतिरिक्त ऐसे अनेक

मंत्र हैं, जिनमें 'देवी', 'तिस्रो देवीः' आदि का उल्लेख है, जिनसे यह अनुमान किया जा सकता है कि इन्द्रादि देवों के साथ-साथ देवी या देवियों की भी स्तुति वेदों में मिलती है और उनकी भी प्रधानता स्वीकृत की गई थी। इडा, सरस्वती और भारती इनकी बार-बार 'तीन देवियों' के रूप में चर्चा है।[६३] संभवतः इनसे साधना-पथ के तीन स्वरों अथवा नाडियों—इडा, पिंगला, सुषुम्णा—का संबंध हो। संक्षेप में, शक्ति के रूप में देवी की पूजा का आभास अथर्ववेद में ही मिलता है।

(ग) योग तथा निर्जन-साधना—अथर्ववेद से संबद्ध गोपथब्राह्मण में एक उपाख्यान आया है, जिसका उल्लेख सायणाचार्य ने अपने भाष्य में किया है। प्राचीन काल में स्वयंभू ब्रह्मा ने सृष्टि के निमित्त तपस्या आरंभ की। जब वे तप कर रहे थे, उस समय उनके रोम-कूपों से पसीना बहने लगा। उस पसीने के जल में अपना प्रतिबिम्ब देखकर उनका वीर्य स्खलित हो गया। जल में उस वीर्य के पड़ने पर जलसहित वीर्य दो भागों में बँट गया। एक भाग का वीर्य भृज्ज्यमान होने पर भृगु नाम के महर्षि के रूप में परिणत हो गया। वे भृगु अपने उत्पन्न करनेवाले ब्रह्मा के अन्तर्धान होने पर उनका दर्शन पाने के लिए व्याकुल हुए। उनसे आकाशवाणी ने कहा कि 'अथार्वाक् एवं एतास्वेवाप्सु अन्विच्छ' अर्थात्, तू जिसको देखना चाहता है, उसको भले प्रकार इस जल के मध्य में देखने की चेष्टा कर। आकाशवाणी के इस प्रकार कहने से उनका एक नाम 'अथर्वा' हुआ। तदनन्तर बाकी बचे हुए रेत और जल से आवृत, तप्त, वरुण-शब्द-वाच्य ब्रह्मा के सब अंगों से रस बहने लगा। अंगों के रस से उत्पन्न होने के कारण अंगिरा (अंगिरस्) नाम महर्षि हुए। तदनन्तर सृष्टि के निमित्त ब्रह्मा ने अथर्वा और अंगिरा ऋषि से तपस्या करने के लिए कहा। तब मंत्रसमूहों के द्रष्टा बीस अथर्वा और अंगिरा प्रकट हुए। उन तप करते हुए ऋषियों के पास से स्वयंभू ब्रह्मा ने जिन मंत्रों को देखा (आविर्भूत किया), वे ही 'अथर्वाङ्गिरा' नामक वेद हुए। गोपथब्राह्मण कहता है कि सब का सारभूत होने से यह अथर्ववेद ही श्रेष्ठ वेद है। 'तपस्या द्वारा उत्पन्न यह श्रेष्ठ अथर्ववेद ब्राह्मणों के हृदय में प्रकाशित हुआ था।'[६४]

उपर्युक्त उद्धरण से यह प्रतीत होता है कि समग्र अथर्ववेद के मूल में जो धारणा थी, वह तपस्या की थी। पीछे चलकर ब्राह्मण-युग में योग की क्रियाओं का जो अतीव विस्तार हुआ, उसका आधार भी तप था। औघड़ अथवा सरभंग-सम्प्रदाय में भी तप तथा योग की महत्ता बताई गई है। इस सम्प्रदाय में एक प्रमुख साधन है श्मशान-साधना अथवा शव-साधना। सायणाचार्य ने अपनी भूमिका में कौशिक-सूत्र का प्रमाण देते हुए यह बतलाया है कि विविध प्रकार के काम्य कर्मों का अनुष्ठान ग्राम के बाहर—पूर्व वा उत्तर की ओर वन में अथवा महानदी वा तालाब आदि के उत्तरी किनारे पर—करना चाहिए। आभिचारिक कर्मों को ग्राम के दक्षिण और कृष्णपक्ष तथा कृत्तिका नक्षत्र में करना चाहिए।[६५] इस प्रकार के विधानों में जो निर्जनता और एकान्तता इष्ट है, उसके लिए श्मशान बहुत ही उपयुक्त स्थल है। इसके अतिरिक्त, श्मशान-साधना में निर्भयता की चरम मात्रा सिद्ध होती है।

इस प्रसंग में हम ठाकुर भूरनसिंह चौहान (जो स्वयं साधक हैं) के 'अघोर-पथ और श्मशान' संबंधी विचारों को उन्हीं के शब्दों में उद्धृत करेंगे—

अघोर-पथ भारतीय दर्शन का ही एक प्रकार है। प्रायः संसार के सभी धर्मों का उद्देश्य मुक्ति पाना ही होता है। मुक्ति का अर्थ है बन्धन से छुटकारा पाना और छुटकारा नाम आते ही बन्धन का नाम आ जाता है। आखिर बन्धन है, तभी तो छुटकारा का प्रश्न आता है। अस्तु, मुक्ति पाने के लिए बन्धन की खोज आवश्यक है। बन्धन है मन के ऊपर चढ़े हुए काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मात्सर्य के षट् विकार का। आत्मा जहाँ नदी की शांत धारा है, मन उस धारा में उठती हुई तरंगें है। यही तरंगें मन की नाड़ियाँ कही गई हैं और ये तरंगें षट् विकार के वायु-प्रवेग से ही उठा करती हैं। जिस तरह तरंगित जल में कोई आदमी अपना मुख नहीं देख सकता है, उसी तरह तरंगित मन के कारण आत्मदर्शन नहीं होता है और बिना आत्म-दर्शन के मुक्ति पाना असंभव है, अतएव मुक्ति के पाने के लिए मनोविकार की शांति परम अनिवार्य है।

प्रत्येक साधना-पथ में मनोविकार की शांति आवश्यक मानी गई है, पर मनोविकार की शांति का कार्य बड़ा ही दूभर होता है। साधक साधना-पर-साधना करता जाता है, पर इसकी शांति मुश्किल से बहुत थोड़े, अर्थात् विरले को ही होती है और अधिकांश साधक साधना करते हुए बिना सिद्धि के ही इस संसार से प्रस्थान कर जाते हैं। अघोर-पथ में इन्हीं मनोविकारों की शांति के हेतु श्मशान की आवश्यकता होती है। यह मार्ग कठिन तो है, पर इसके द्वारा प्राप्ति बहुत ही सुलभ है।

श्मशान जाने के लिए श्रद्धा और विश्वास की बहुत बड़ी आवश्यकता होती है और वह श्रद्धा तथा विश्वास मार्ग-प्रदर्शक गुरु के प्रति लाना पड़ता है, तथा अपने प्राण को हथेली पर रखकर श्मशान जाना पड़ता है, तभी वह श्मशान जाता है और वहाँ से वह सफलता को अवश्य प्राप्त करता है। कारण यह है कि श्मशान में जाते ही उसके षट् विकार आपसे आप तबतक के लिए उसके मन से दूर हो जाते हैं, जबतक वह श्मशान में प्रस्तुत रहता है, पर वहाँ पर दो भीषण मनोविकार 'भय' और 'घृणा' की उत्पत्ति उसके मन में हो जाती है। अब यदि गुरु के आदेशानुसार वह चिता या लाश पर बैठ जाता है, तो घृणा दूर हो जाती है। रह जाता है भय। जैसे, ट्रेन में सफर करते हुए जिसके पास टिकट रहता है अथवा दूसरे देश जानेवाले के पास यदि पास-पोर्ट रहता है, तो वह सदा निर्भीक होकर सफर करता रहता है, और उसे किसी बात का भय नहीं रहता है, उसी प्रकार जिसे गुरु और गुरु के द्वारा बताये हुए मार्ग पर विश्वास है, उसका भी भय आपसे आप काफूर हो जाता है; तब विकार-रहित हो उसका मन शान्त हो जाता है। ऐसा कुछ दिन करते-करते जब उसका मन एकदम शान्त हो जाता है, तब वही आत्मा मुक्त हो जाती है और साधक को आत्मदर्शन हो जाता है।

श्मशान में ही मुक्त को मुक्त मिलते हैं, वे मुक्त जो एक दिन साधक थे और वे इन्हीं प्रक्रियाओं के द्वारा पूर्ण मुक्त हो मरणोपरान्त जगदम्बा की तेज-शक्ति में जाकर

लीन हो गये। जैसे, सूर्योदय होने पर उनका तेज उनसे फूटकर पृथ्वी पर आता है और अस्त होने के बाद उन्हीं में समाकर लीन हो जाता है, उसी प्रकार वे मुक्त जगदम्बा की कृपा से पृथ्वी पर आकर कार्य करते रहते हैं और फिर उन्हीं में लीन होते रहते हैं। उन्हीं मुक्त तेजों का नाम 'मशान' है और वे ही मशान विकार-रहित साधक को आकर श्मशान में मिलते हैं।

यदि किसी को किसी नये स्थान पर जाना है, जहाँ वह अपने से कभी नहीं गया है और न उस स्थान के विषय में उसे किसी तरह की कुछ जानकारी ही है, तो ऐसी अवस्था में यदि वह अपने से उस स्थान पर जाने के लिए चलता है, तो पूछताछ करते हुए भटकता-बौड़ाता हुआ चलता है; शायद पहुँचता है या नहीं भी पहुँचता है। पर यदि उस स्थान में पहले से गया हुआ और उस विषय में पूर्ण परिचित व्यक्ति उसको साथ ले लेता है, तो वह बड़ी आसानी के साथ उसे मंजिले-मकसूद तक अवश्य ही पहुँचा देता है। यही काम मशान करता है। मशान को मुक्ति का स्थान ज्ञात है, वह उस साधक को मार्ग बतलाता रहता है और वह उसे निश्चित स्थान तक पहुँचाकर जबतक अपने समान ही बना नहीं लेता, तबतक वह उस साधक का साथ नहीं छोड़ता है; बशर्त्ते कि साधक मशान के बतलाये निर्देश पर चलता रहे। अघोर-पथ में श्मशान की यही आवश्यकता होती है।

अनुमानतः, कौशिक-सूत्र की जिन पंक्तियों का उल्लेख प्रस्तुत प्रसंग में किया गया है, उनका संबंध तांत्रिकों तथा औघड़ों की श्मशान-साधना से जोड़ा जा सकता है। अथर्ववेद में इस प्रकार की अनेक भावनाएँ हैं, जिनका क्रमिक विकास योग की प्रक्रियाओं के रूप में हुआ। एक मंत्र में सैकड़ों धमनियों और सहस्रों शिराओं का वर्णन है।[६६] दूसरे में सात प्राणों और आठ प्रधान नाडियों की चर्चा है। अनेक प्रसंगों में प्राण तथा अपान का एक साथ उल्लेख है।[६७] इन मंत्रों के आधार पर ऐसा कहा जा सकता है कि पश्चाद्वर्त्ती आसन, प्राणायाम आदि सहित अष्टांग योग का पूर्व रूप अथर्ववेद में विद्यमान है।[६८]

(घ) मंत्र—तांत्रिकों और औघड़ों के अनुसार मंत्र में बहुत बड़ी शक्ति है। अथर्ववेद के मंत्रों में भी इस प्रकार की शक्ति की कल्पना की गई है। यह विशेष ध्यान देने की बात है कि इस वेद में मंत्र के अर्थ में 'ब्रह्म' शब्द का व्यापक रूप से प्रयोग हुआ है। स्वयं अथर्ववेद को भी ब्रह्मवेद कहा गया है, केवल इसीलिए नहीं कि इस वेद के द्वारा यज्ञ में ब्रह्मा अपना कार्य सम्पादन करता है, किन्तु इसलिए भी कि अनेकानेक कृतियों और कर्मों की सिद्धि के लिए विशिष्ट मंत्रों का विधान है। ब्रह्म अथवा मंत्र के प्रभाव को इंगित करने के लिए एक-दो उदाहरण पर्याप्त होंगे—

"हे मरुत् नामवाले उनचास गणदेवताओ! जो हमारा शत्रु हमें बहुत दबा हुआ समझता है, और जो शत्रु हमारे किये हुए मंत्रसाध्य अनुष्ठान की निन्दा करता है, इन दोनों प्रकार के शत्रुओं के लिए तापक तेज और आयुध बाधक हों तथा सूर्यदेव मेरे मंत्रात्मक कर्म से द्वेष करनेवाले शत्रु को चारों ओर से सन्ताप दें।"[६९]

"जो जातिवाला शत्रु है और जो अन्य जातिवाला शत्रु है और जो व्यर्थ ही द्वेष करके हम निरपराधों को निग्रह-स्वरूप वाणी से शाप देता है, इन सब शत्रुओं की इन्द्र आदि सब देवता हिंसा करें; मुझ मंत्रप्रयोक्ता का मंत्र कवच-रूप हो। तात्पर्य यह कि शत्रु के वाक्, शस्त्र आदि जिस प्रकार हमारा स्पर्श न कर सके, उस प्रकार यह मंत्र हमें ढँके।"[३०]

ब्रह्म शब्द पश्चाद्वर्त्ती उपनिषदों तथा दर्शनों में मानव और विश्व के मूल तत्त्व के रूप में विकसित हुआ। सरभंग-सम्प्रदाय में भी ब्रह्म को अद्वैत-तत्त्व स्वीकृत किया गया है। इस विषय की आलोचना मुख्य ग्रन्थ में की गई है। यहाँ हम अथर्ववेद के मंत्रों में से एक ऐसा मंत्र प्रस्तुत करना चाहेंगे, जिसमें ब्रह्म की उत्तरवर्त्तिनी कल्पना की झाँकी मिलती है, जिससे आत्मा और जगत् को ब्रह्म से अभिन्न माना गया है—

"हे जानने की इच्छावाले मनुष्यो! तुम इस आगे कही हुई वस्तु को जानो कि मंत्रद्रष्टा ऋषि महत्त्वगुणयुक्त व्यापक ब्रह्म को कहेंगे। वह ब्रह्म पृथ्वी पर नहीं रहता, वह द्युलोक में भी नहीं रहता, उससे विरोहणशील औषधियाँ जीवित रहती हैं।"

निर्गुण संतमत के जिज्ञासुओं को यह मालूम है कि इस मत में शब्द-ब्रह्म को कितना महत्त्व मिला है। अथर्ववेद आदि में मंत्र-ब्रह्म की जो भावना है, शब्द-ब्रह्म को उसीका विकसित रूप माना जा सकता है।

मंत्र में शक्ति है, इसे कोई भी अस्वीकार नहीं करेगा। स्थूल रूप से हम शरीर और आत्मा, शरीर और मन में भेद समझते हैं। किन्तु सूक्ष्म दृष्टि से इन दोनों में कोई अन्तर नहीं है। बल्कि दोनों एक हैं, और दोनों में निरन्तर क्रिया-प्रतिक्रिया का क्रम चलता रहता है। अतः, किसी प्रकार के क्लेश या संकट के निवारण के लिए मन की स्वस्थता, इच्छाशक्ति की प्रबलता, दृढ़ आशावादिता और सुन्दरतर भविष्य में आस्था आवश्यक है। इन्हीं गुणों के आधान के लिए मंत्रों के प्रयोग और जप किये जाते हैं। इस दृष्टि से यह सभी स्वीकार करेंगे कि मंत्रों का मनोवैज्ञानिक आधार भी है।

(च) कृत्य एवं कर्म सायणाचार्य ने अथर्वसंहिता के भाष्य की भूमिका में लिखा है कि कौशिक-सूत्र में अथर्ववेद-प्रतिपादित कर्मों का विस्तृत वर्णन है और उसमें यह भी बताया गया है कि अथर्ववेद-संहिता के मंत्रों के विनियोग की क्या विधि है। सायण ने उक्त कौशिक-सूत्र के आधार पर इन कर्मों की एक सूची प्रस्तुत की है। इस सूची के देखने से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि तंत्र-शास्त्र पर अथर्ववेद की देन कितनी अधिक और गम्भीर है। इस सूची में दिये गये कुछ मुख्य कर्म ये हैं—दर्शपौर्णमासयाग; मेधाजनन; ग्रामनगरदुर्गराष्ट्रादिलाभ; पुत्रपशुधनधान्यप्रजास्त्रीकरितुरगरथान्दोलिकादि - सर्व - सम्पत्-साधन; ऐकमत्य अथवा सांमनस्य-सम्पादन; शत्रुहस्तित्रासन; संग्रामजयसाधन; इषुनिवारण; खड्गादिशस्त्रनिवारण; परसेनामोहनोद्वेजनस्तंभनोच्चाटनादि; जयपराजय - परीक्षार्थकम्; सपत्नक्षय; पापक्षय; गोसंवृद्धि; पौष्टिकः; लक्ष्मीकरण; पुत्रादिकामस्त्रीकर्म; सुखप्रसवकर्म; गर्भदृंहण; प्रसवन; अभीष्टसिद्ध्यसिद्धिविज्ञान; अतिवृष्टिनिवारण; सभाजय-विवादजयकलह-शमन; नदी-प्रवाहकरण; द्यूतजयकर्म; अश्वशान्ति; वाणिज्यलाभकर्म; गृहप्रवेशकर्म;

ग्रहशान्तिविधि; दुःस्वप्ननिवारण, दुःशकुनशान्ति; आभिचारिक-परकृताभिचार-निवारण; पांसुरुधिरादिवर्षणयक्षराक्षसादिदर्शनभूकम्पधूमकेतुचन्द्रार्कोपप्लवादिबहुविधोत्पातशान्तयः। इन कर्मों का जिस प्रकार विस्तृत विधान कौशिक आदि सूत्रों में है, उसी प्रकार तंत्र-ग्रंथों में भी है। इन कर्मों के प्राय तीन भेद माने जाते हैं—नित्य, नैमित्तिक और काम्य। जातकर्म आदि नित्य हैं। अतिवृष्टि दुर्दिनादिनिवारणादि नैमित्तिक हैं तथा मेधाजननादि काम्य हैं। नित्य और नैमित्तिक कर्मों का अनुष्ठान आवश्यक है; किन्तु काम्य कर्मों का अनुष्ठान इच्छाधीन है।

जिस प्रकार तंत्रों में इन कर्मों के विस्तृत विधान हैं, वैसे ही संतमत के 'स्वरोदय' तथा अन्य ग्रन्थों में इनमें से कुछ के विस्तृत प्रतिपादन रहते हैं। इसके अतिरिक्त, जन-साधारण की यह धारणा होती है कि विशिष्ट औघड़ों तथा सरभंगों को इस प्रकार की सिद्धि प्राप्त होती है, जिससे वे अपने साधकों तथा प्रेमियों के संकटों का निवारण कर सकें। जिस प्रकार तंत्रों में इन संकटों के निवारणार्थ मंत्रों और यंत्रों का विधान है, उसी प्रकार औघड़ तथा सरभंग साधुओं से भी ऐसे मंत्र तथा ताबीज आदि यंत्र प्राप्त होते हैं, जिनसे साधक या उपासक अपने इष्टलाभ और अनिष्टनिवृत्ति की कामना करते हैं। सायण-भाष्य तथा कौशिक-सूत्र के आधार पर कुछ कर्मों की विस्तृत विधि का उल्लेख निदर्शनार्थ किया जा रहा है।

मेधाजनन कर्म—गूलर, पलाश, बेर की समिधा लाना; धान, जौ और तिलों को बोना; दूध, भात, पुरोडाश और रसों (दही, घी, शहद और जल) का भक्षण; उपाध्याय को भिक्षा देना; सोते हुए उपाध्याय के कान में कहना; उपाध्याय के पास बैठते समय जप करना; घृत सहित भुने हुए जौ का होम; तिल सहित भुने हुए जौ का होम; होम करके बचे हुए को खाना; उपाध्याय को दण्ड, अजिन (मृगचर्म) और धाना (भुने हुए जौ) देने के लिए धानाओं का अनुमंत्रण; तोता, सारिका और भारद्वाज का जिह्वाबन्धन और उसका प्राशन।

ग्राम-सम्पत्—गूलर, पलाश और बेर को काटना; उनका आधान; सभा का उपस्तरण; तृण का आधान; अभिमंत्रित अन्न और आसव का दान।

सर्वसम्पत्कर्म—मेधाजनन के लिए विहित कर्म; दिन में तीन बार अग्नि को प्रज्वलित करना; उसका उपस्थान; सम्पाताभिमंत्रित दही, घी, शहद और जल-मिले रुधिर का बाईं हथेली से प्राशन करना।

वर्चस्य-कर्म (तेज को चाहना)—तेज को चाहनेवाला पुरुष तेज को चाहनेवाली कुमारी के दक्षिण उरु का अभिमंत्रण, कृतवयाहोम और अग्नि का उपस्थान करे।

संग्राम-विजय—संग्राम में विजय चाहनेवाला राजा शत्रु के हाथियों को भयभीत करने के निमित्त सम्पातोपेत रथचक्र (जिस रथ के उद्देश्य से अग्नि में आहुति दी जा चुकी है) को शत्रुओं के हाथियों की ओर भेजे; सम्पाताभिहुत हाथी, घोड़े आदि यानों को शत्रु के हाथियों की ओर भेजे; पटह, भेरी आदि बाजों को अभिमंत्रित करके बजावे; दृति (चर्म-पात्र) में धूलिकणों को भरकर अभिमंत्रित करे और उन्हें किसी पुरुष के द्वारा भेजे; चर्मपुट-मंत्र से अभिमंत्रित धूलिकणों और बालुका को फेंके।

घृत का होम, सत्तू का होम, धनुषरूप इंधनवाली अग्नि में धनुषरूपी समिधा का आधान; बाणरूपी इंधन में बाणरूपी समिधाओं का आधान; सम्पातित तथा अभिमंत्रित धनुष का प्रदान। इन कर्मों के अनुष्ठान से शत्रु देखते ही भाग जाते हैं। बाण-निवारण चाहनेवाला सम्पातित और अभिमंत्रित दुर्ग्या, धनुष-कोटि और प्रत्यंचा के पाश का बन्धन करे तथा दूर्वादितृण-बन्धन भी करे।

अर्थोत्थापन विघ्नशमन—धन को उठाते समय होनेवाले विघ्नों की शांति चाहनेवाला पुरुष मरुत् देवताओं के लिए अथवा मंत्र से प्रतीत होनेवाले देवताओं के लिए खीर, भात और घृत से होम करे; काश, दिविधुवक और वेतस नामवाली औषधियों को एक पात्र में रख, उनका सम्पातन और अभिमंत्रण करके जल में मुख नीचा किये ले जाये, फिर उन्हीं आज्यादिकों को जल में डाले; अभिमंत्रित कुत्ते के सिर को और मेढ़ के सिर को जल में फेंके; मनुष्य के केश और पुराने जूतों को बाँस के ऊपर भाग में बाँधे; भूसी-सहित कच्चे पात्र का, अभिमंत्रित जल से प्रोक्षण कर, तीन लड़वाले छींके पर रख जल में फेंके।

(छ) भेषज तथा मणिबन्धादि उपचार—हम इस बात की ओर संकेत कर चुके हैं कि सरभंग अथवा औघड़ साधुओं को सिद्ध समझा जाता है, और जनता का सामान्यतः यह विश्वास होता है कि वे अपनी सिद्धि के प्रभाव से रोगों का निवारण कर सकते हैं। स्पष्ट है कि यह परम्परा अथर्ववेद के युग से अनवच्छिन्न चली आ रही है। इस वेद में अनेकानेक रोगों तथा उनकी औषधियों (भेषजों) एवं उपचारों की ओर संकेत है। गोपथ-ब्राह्मण, कौशिक-सूत्रादि में इन संकेतों को विशद तथा विस्तृत रूप दिया गया है। सायणाचार्य ने अपने भाष्य में यथाप्रसंग इनकी चर्चा की है। इनमें से कुछ का उल्लेख परिचयार्थ किया जा रहा है। सायणाचार्य के अनुसार व्याधियाँ दो प्रकार की होती हैं—(१) आहार के कारण उत्पन्न, और (२) पूर्व जन्म के पापों के कारण उत्पन्न। इनमें जो व्याधियाँ आहार के कारण उत्पन्न होती हैं, उनकी शान्ति वैद्यकशास्त्रोक्त चिकित्सा से होती है; किन्तु, जो व्याधियाँ पूर्व-जन्म-पाप-जन्य होती हैं, वे अथर्ववेद के होम, बन्धन पायन, दान, जप आदि भैषज्य-कर्मों से निवृत्त होती हैं।[७२] तात्पर्य यह कि अथर्ववेद और उससे संबद्ध धार्मिक साहित्य में 'औषधि और भेषज' इन दोनों को एक दूसरे से पृथक् माना गया है। वस्तुतः जिन भेषजों का विधान अथर्ववेदादि में है, उनमें भी औषधियों तथा वनस्पतियों का पर्याप्त मात्रा में समावेश है; किन्तु भेषजों में उनके अतिरिक्त अनेकानेक यज्ञ, उपचार आदि भी सम्मिलित हैं। आधारभूत धारणा यह थी कि भयंकर व्याधियाँ तथा आपदाएँ पूर्व जन्म के दुष्कृत्यों तथा दैव-प्रकोप के परिणाम हैं; अतः इनके उपशमन के लिए निरी वनस्पतियाँ तथा औषधियाँ यथेष्ट नहीं हैं। ऐसे यज्ञादि उपचार भी आवश्यक हैं, जिनसे देवगण प्रसन्न हों। इस प्रकार के उपचारों को ही अपने परिवर्त्तित रूप में पीछे चलकर तंत्र की संज्ञा दी गई। इस प्रसंग में हमारा मन्तव्य यह है कि अथर्ववेदादि ग्रन्थों के अध्ययन तथा अध्यापन के क्रम के नष्ट अथवा लुप्तप्राय होने से हमारे राष्ट्र का बहुत बड़ा अहित हुआ है। इस विशाल साहित्य में शतसहस्र

औषधियों, वनस्पतियों तथा उपचारों का उल्लेख है। माना कि इनमें अनेकों ऐसे होंगे, जिनकी वर्त्तमान वैज्ञानिक युग में उपयोगिता नहीं है। किन्तु इसमें भी संदेह नहीं कि इनमें ऐसी औषधियों, वनस्पतियों तथा उपचारों की कमी नहीं है, जो इस युग में भी प्रयुक्त किये जा सकते हैं और जिनका प्रयोग भारतीय वातावरण के अनुकूल तथा अल्प-व्ययसाध्य होगा। हमारा दृढ़ विश्वास है कि अथर्ववेद और तत्सम्बद्ध साहित्य-राशि के अनुशीलन-अनुसन्धान की व्यवस्थित योजना होनी चाहिए। जो थोड़े-से उद्धरण इस क्रम में दिये जा रहे हैं, वे इस उद्देश्य से कि तंत्र-शास्त्रों में तथा सरभंग-संतों में प्रचलित जो 'जड़ी-बूटी', 'भभूत', 'टोना-टोटका' आदि की परम्परा है, उसके अति प्राचीन रूप का निदर्शन हो सके।

"प्रत्येक अंगों में दीप्ति से व्याप्त, अर्थात् प्राणात्मा रूप से व्याप्त होकर वर्त्तमान हे सूर्य! हम तुम्हें स्तुति, नमस्कार आदि से पूजकर चरु, घृत, समिधा आदि हवि से सेवा करते हैं और गमनशील सूर्य के अनुचरों को और उनके समीप में वर्त्तमान परिचर-रूप देवताओं की भी हम हवि के द्वारा सेवा करते हैं। हवि देने का प्रयोजन यह है कि ग्रहण करनेवाले ज्वर आदि रोग ने इस पुरुष के शरीर की सब सन्धियों को जकड़ लिया है, उस रोग की निवृत्ति के लिए हम अपनी हवि से पूजा करते हैं।"

अंगे अंगे शोचिषा शिश्रियाणं नमस्यन्तस्त्वा हविषा विधेम।
अङ्कान्त्समङ्कान् हविषा विधेम यो अग्रभीत् पर्वास्याग्रभीता ॥१.१२.२

अथर्ववेद के प्रथम काण्ड के प्रथम अनुवाक के द्वितीय सूक्त के सम्बन्ध में कौशिक-सूत्र के आधार पर सायण ने लिखा है कि ज्वर, अतिसार (पेचिश), अतिमूत्र और नाडि-व्रण में रोगों की शान्ति चाहनेवाले पुरुष को उक्त सूत्र से मूँज के सिरे से बनी हुई रस्सी से बाँधे, उसे खेत की मिट्टी या वल्मीक मिट्टी (बँबई मिट्टी) पिलावे, घृत का लेपन करे; चर्मखल्वा के मुख से अपान, लिङ्ग, और नाडिव्रण के मुख पर धमन करे (फूँके)।

उपर्युक्त सूक्त के तृतीय मंत्र का अर्थ संक्षेप में यह है कि इस मंत्र के प्रभाव से वात, पित्त, और श्लेष्म (कफ)-जनित सभी रोग तथा शिरोरोग रोगी को छोड़कर वन के वृक्षों में और निर्जन पर्वतों में चले जायँ।[३३]

प्रथम काण्ड के चतुर्थ अनुवाक के पंचम सूक्त के संबंध में कौशिक सूत्र के आधार पर सायण ने निम्नलिखित टिप्पणी दी है—प्रथम सूक्त के द्वारा हृद्रोग और कामिला (कमलवाय) रोग की शान्ति के लिए लाल वृषभ के रोम-मिला जल पिलावे, तथा इसी सूक्त से रक्त-गोचर्मच्छिद्रमणि[३४] गोक्षीर में सम्पातन और अभिमंत्रण करके उस मणि को बाँधे और उसी क्षीर को पिलावे; तथा रोहिण-हरिद्रौदन को खिलाकर उस उच्छिष्टानुच्छिष्ट से पैर तक लेपकर खाट में बिठाकर उसके नीचे शुक, काष्ठशुक और गोपीतनक नामक तीन पक्षियों की सव्य जंघा में हरितसूत्र बाँधना आदि सूत्रोक्त काम करे। उक्त सूक्त के प्रथम तथा चतुर्थ मंत्र[३५] में, संक्षेप में, हृद्रोग (हृद्दोत) और कामिला

(हरिमा) का उल्लेख है और यह कहा गया है कि यज्ञकर्त्ता इन रोगों को शुकों, काष्ठशुकों और गोपीतनकों में संक्रमित करते हैं।

प्रथम काण्ड, चतुर्थ अध्याय, पंचम अनुवाक के द्वितीय सूत्र में बताया गया है कि इस सूक्त तथा इसके परवर्तीसूक्त से श्वेत कुष्ठ (किलास) को दूर करने के लिए भंगरा (भेंगरिया), हल्दी, इन्द्रायण (इन्द्रवारुणी) और नील के पौधे को पीसकर सूखे गोबर के साथ कोढ़ के स्थान पर जहाँ तक रक्त दीखे, वहाँ तक घिसकर लगा दे। पलित (रोगजनित बालों की सफेदी) को दूर करने के लिए भी श्वेत बालों को काटकर दोनों सूक्तों से पहले के समान लेप करे। इन दोनों रोगों की शांति के लिए इन दोनों सूक्तों से घृत होम और मारुत कर्मों को भी करे। मंत्रों[७६] में भी उपर्युक्त रोगों तथा औषधियों की चर्चा है। पाँचवें अनुवाक के तीसरे सूक्त के प्रथम तथा द्वितीय मंत्र में यह लिखा है कि जिन औषधियों का अभी उल्लेख किया गया है, उनका आसुरी[७७] (असुर-मायारूप स्त्री) ने सर्वप्रथम निर्देश किया था।

पंचम अनुवाक के चतुर्थ सूक्त के प्रारंभ में लिखा है कि प्रतिदिन आनेवाले शीतज्वर, संततज्वर और सामयिकज्वर आदि की शांति के लिए इस सूत्र को जपे; लोहे के कुठार को अग्नि में तपाकर गर्म जल में रखे, और उस जल से व्याधिग्रस्त पुरुष पर अभिषेक करे।

इस प्रसंग को और अधिक आयाम न देकर हम यह मन्तव्य प्रस्तुत करना चाहेंगे कि अति प्राचीन अथर्ववेद-युग में भी इस देश में औषधिशास्त्र अथवा वनस्पतिशास्त्र का अत्यन्त अधिक विकास हो चुका था। इस औषधिशास्त्र के साथ-साथ भेषज-शास्त्र का भी व्यापक रूप से प्रचार था। एक मंत्र में ऋषि कहते हैं कि—

शतं या भेषजानि मे सहस्रं संगतानि च।

—काण्ड ६, अनु० ५, सूक्त २, मंत्र २

अर्थात्, वे शतसहस्र भेषजों को जानते हैं। अथर्ववेद में भिषक्, भेषजम्, सुभिषक्तमः आदि शब्दों का बार-बार प्रयोग हुआ है, जिससे इस बात की पुष्टि होती है कि भेषज अथर्ववेद की विशेषता है।

ऊपर की पंक्तियों में एक स्थल पर गोचर्मच्छिद्रमणि का उल्लेख है। मणि का भैषज्य से घनिष्ठ सम्बन्ध है, इसलिए इस सिलसिले में मणियों की कुछ चर्चा अप्रासंगिक न होगी।

"सर्वसम्पत्कर्म में वासित युग्मकृष्णल (नीलम) मणि का बन्धन करे, और सरूपवत्सा गौ के दूध के भात में पुरुष की आकृति को लिखकर उसका प्राशन करे। त्रयोदशी आदि तीन दिन तक मणि को दही और मधु से भरे पात्र में डालकर चौथे दिन उस मणि को बाँधे और उस दही और मधु का प्राशन भी करे।"[७८]

आजकल प्रायः देखा जाता है कि जादू-टोटका करनेवाले रोगों के उपचार के लिए छड़ी का प्रयोग करते हैं। १.४.१. के प्रारंभ में लिखा है कि इस सूत्र के द्वारा शस्त्र के प्रहार से उत्पन्न घाव के रुधिर-प्रवाह अथवा स्त्री के रज के अतिप्रवाह को रोकने के लिए पाँच गाँठवाले डंडे से व्रणयुक्त स्थान को अभिमंत्रित करे। प्रथम काण्ड के षष्ठ अनुवाक के प्रथम सूत्र में समृद्धि-साधन के निमित्त अभिवर्त्तमणि का विधान है। यह मणि लोहा, शीशा, चाँदी और ताँबा जड़ी हुई सुवर्ण की नाभि के रूप में होती है।

इस मणि की तुलना आजकल प्रचलित अष्टधातु तावीज से की जा सकती है।

अन्यत्र, दीर्घ आयु चाहनेवाले पुरुष के लिए हिरण्यमणि बाँधने का उल्लेख है; सुवर्ण-माला-परिधान का भी निदेश है।[७९] दूसरे स्थल में रक्षा और विघ्नशमन के लिए जंगिड़ नामवाले वृक्ष की मणि को सन की सुतली से पिरोकर बाँधने के लिए कहा गया है। एक तीसरे प्रसंग में यह कहा गया है कि ब्रह्म ग्रह की शांति के लिए अथर्वा ने दश-वृक्षमणि तैयार करने और उसके सम्पातन तथा अभिमंत्रण की विधि बताई है।

बहुत विस्तार न करके संक्षेप में कुछ मणियों और उनके प्रयोजनों का सूत्ररूप में संकेत किया जा रहा है।[८०]

क्षेत्रीय व्याधि की चिकित्सा के लिए—हरिण के सींग की मणि।
स्पर्द्धात्मक विघ्न के नाश के लिए—सोनापाढ़ा की मणि।[८१]
वर्चस्य-कर्म में सिंह, व्याघ्र आदि के रोएँ की मणि।[८२]
अभिमत फल-प्राप्ति के लिए—पलाश वृक्ष की मणि [८३] (पर्णमणि)।
शत्रुसंहार के लिए—अश्वत्थ की मणि।[८४]
तेजःप्राप्ति के लिए—हाथीदाँत की मणि।[८५]

(ज) राक्षस, भूत, प्रेत आदि—तांत्रिकों तथा औघड़ों में व्यापक रूप से भूत, प्रेत, पिशाच, पिशाची, डायन आदि के प्रति आस्था है। उनका मारण, मोहन, वशीकरण, उच्चाटन आदि तंत्र-विहित प्रयोगों तथा सिद्धियों में भी विश्वास है। सामान्य जनता सरभंग या औघड़ साधुओं को प्रायः सिद्ध के रूप में देखती है और उसकी यह धारणा होती है कि इन सिद्धों ने श्मशान-साधना द्वारा किसी 'मशान' की सिद्धि की है। मशान का तात्पर्य किसी ऐसे भूत, प्रेत, डाकिनी, शाकिनी आदि से है, जिसको उन्होंने अपनी साधना के प्रभाव से वश में कर लिया हो। सिद्धि के फलस्वरूप उनमें एक लोकोत्तर शक्ति आ जाती है और इस शक्ति के द्वारा वे लोक-कल्याण तो कर ही सकते हैं, स्वेच्छाचार या अनिष्ट भी कर सकते हैं। अथर्ववेद के अध्ययन से यह असंदिग्ध रूप से पता चलता है कि प्रेतलोक में, अर्थात् राक्षस, पिशाच, भूत, प्रेत, डायन आदि में अति प्राचीन युग से विश्वास की परम्परा चलती आ रही है। वस्तुतः संसार में कोई भी ऐसा भूभाग नहीं है, जहाँ इस प्रकार के अथवा इससे मिलते-जुलते विश्वास जन-सामान्य में न्यूनाधिक मात्रा में फैले हुए न हों। इस प्रकार के विश्वासों को सभ्य समाज में अन्धविश्वास (Superstition) की संज्ञा दी जाती है। सच पूछा जाय, तो अन्धविश्वास (Superstition), धर्म (Religion), दर्शन (Philosophy) तथा विज्ञान (Science) के परस्पर अन्तर को सूचित करने के लिए कोई दृढ़ सीमान्त-रेखा नहीं खींची जा सकती। सामान्य रूप से यह कहा जा सकता है कि इन चारों में कोई तात्त्विक भेद नहीं है। इनके परस्पर भेद का मूल कारण है ज्ञात और अज्ञात का अनुपात। जिसे हम अन्धविश्वास कहते हैं, उसमें अज्ञात का अनुपात ज्ञात से बहुत अधिक रहता है। भूत, प्रेत की कल्पना और ईश्वर की कल्पना का लक्ष्य एक ही है, अर्थात्, अज्ञात की व्याख्या। मानव प्रकृत्या सीमित ज्ञानवाला है, किन्तु साथ ही साथ, वह प्रकृत्या प्रतिक्षण ज्ञान की इस सीमा को

लाँघकर असीम की ओर दौड़ता है। यद्यपि उसकी यह दौड़ अनवरत जारी है, उसे सफलता कभी नहीं मिली और न मिल सकेगी। क्योंकि, असीम अथवा पूर्णता (Perfection) का वह लक्ष्य उससे सदा दूर, अधिक दूर—भागता रहेगा। अन्धविश्वास, धर्म, दर्शन और विज्ञान—इसी दौड़ अथवा यात्रा-क्रम में चार मील स्तम्भ अथवा लक्ष्य बिन्दु हैं। इसी विश्व में कुछ मानव-समुदाय, जिसे हम अन्धविश्वास समझकर तिरस्कृत करते हैं, उसे विज्ञान के स्तर पर प्रतिष्ठित करते हैं। बल्कि यों कहा जाय कि तथाकथित सभ्य मानव-समाज में भी ऐसे अनेकानेक व्यक्ति मिलेंगे, जो भूत-प्रेतादि को, जिन्हें हम अन्धविश्वास कहकर टाल देते हैं, वैज्ञानिक सत्ता मानते हैं। इसके अतिरिक्त, अन्धविश्वास और धर्म का भी ठीक-ठीक विश्लेषण करना कठिन है। कोई भी धर्म ऐसा नहीं है, जिसमें थोड़ी-बहुत अन्ध-विश्वास की मात्रा नहीं है। हिन्दुओं की अमैथुनी सृष्टि, मुसलमानों का इल्हाम, ईसाइयों की कुमारी मेरी,—ये धर्म की आधारशिलाएँ हैं; किन्तु क्या बुद्धिवाद की कसौटी पर इन्हें अन्धविश्वास की कोटि में नहीं रखा जा सकता? फिर धर्म और दर्शन में तात्त्विक अन्तर क्या है, यह कहना असंभव है। प्रत्येक धर्म में कुछ दर्शन है और प्रत्येक दर्शन में कुछ धर्म है। ज्ञान, भक्ति और कर्म; मस्तिष्क, हृदय और इन्द्रियाँ—ये त्रितय हमें बाध्य करते हैं कि हम निरे तर्कसंगत सिद्धान्तों के अतिरिक्त कुछ अतर्कसंगत भावनाओं और व्यावहारिक क्रियाकलापों को मान्यता प्रदान करें। हम जिसे विज्ञान के धरातल पर प्रतिष्ठित करते हैं, उसमें भी अज्ञात की मात्रा बहुत अधिक है। अर्थात्, दूसरे शब्दों में, प्रत्येक विज्ञान में अज्ञान है। हमने सूर्यादि ग्रह-नक्षत्रों के संबंध में बहुत कुछ ज्ञान प्राप्त कर लिया है, और यह ज्ञान हमारा विज्ञान है। परन्तु विज्ञान की सभी मान्यताएँ तथ्यों के केवल ज्ञात अंश के आधार पर आश्रित हैं। ज्योंही हमारे ज्ञात अंश की परिधि का विस्तार हुआ कि विज्ञान की वर्त्तमान मान्यताएँ सन्दिग्ध हो गईं। सारांश यह कि किसी भी धारणा या भावना को हमें अन्धविश्वास कहकर टाल देना नहीं चाहिए; बल्कि, उसका सहानुभूतिपूर्वक अध्ययन करना चाहिए और इस अध्ययन में यह ध्यान रखना चाहिए कि उस धारणा या भावना की ऐतिहासिक तथा सामाजिक पृष्ठभूमि क्या थी, वह किस युग में प्रचलित थी, और जिस युग में प्रचलित थी, उस युग के मानव-समाज की मनोवृत्ति क्या थी।

अब हम अथर्ववेद और उसके संबद्ध साहित्य में राक्षस, पिशाच आदि तथा मारण, मोहन आदि से संबंधित विचार-सरणि का निर्देश करेंगे। पिछले पृष्ठों में हमने भेषजों की चर्चा की है। भेषजों का प्रयोग न केवल रोगों के निवारण के निमित्त होता था, अपितु राक्षस-भूत-पिशाचादि-जन्य उन्मादादि विकारों की शान्ति के निमित्त भी। राक्षसादि के अनेक नाम अथर्ववेद में मिलते हैं; यथा, राक्षस, रक्षस्, क्रव्याद, यातुधान, यातुमान, किमीदिन्, अत्रिन्, पिशाच, पिशाची, यातुधानी, माया, दुरप्सरस्, कृत्या, जूर्णि, मगुन्दी, उपब्दा अर्जुनी, भरूची, अरायी, पिशाचजम्भनी, अघविषा आदि। निदर्शनार्थ कुछ उद्धरण अथर्ववेद से दिये जा रहे हैं।

"देवकृत उपघात से उन्माद को प्राप्त हुए तथा ब्रह्म, राक्षस आदि के ग्रहण से उन्मत्त

हुए तुझ परवश के पास आकर मैं, विद्वान, औषधि करता हूँ कि जिससे तू चित्तभ्रम से रहित हो जाय।[८६] × × × हे उन्मादग्रस्त पुरुष! तू जिस प्रकार उन्मादरहित रहे, जिस प्रकार रहने के लिए उन्मादकारिणी अप्सराओं ने तुझको उन्मादरहित करके दे दिया है। इन्द्रदेव ने भी लौटा दिया है। भगदेवता ने भी लौटा दिया है। और क्या, सकल देवताओं ने तुझको लौटा दिया है।[८७] × × × हे अग्ने! आप विमोचन के उपायों को जाननेवाले हैं। अतः ग्राह्या (ग्रहणशीला पिशाची) के पाशबन्धों को खोलिए। सब देवता इसे खोलने के लिए अनुज्ञा देवें।"[८८]

"सबके भक्षक और इस समय क्या हो रहा है, इस प्रकार अपनी प्रवृत्ति के लिए समय का अन्वेषण करनेवाले और हमारे योग्य क्या है, इस प्रकार अपने योग्य पदार्थ को खोजते हुए विचरनेवाले जो प्रसिद्ध राक्षस (किमीदिनः) हैं, हे अग्ने! वे आपके पीड़ा देने पर विनष्ट हो जावें। और, चलते हुए भाग में विघ्न डालनेवाले राक्षसों के विनाश के अनन्तर, हे अग्ने! आप और परमैश्वर्ययुक्त इन्द्रदेव भी हमारे घृत आदि हवि की ओर लक्ष्य करके आइए, उसको स्वीकार करिए।[८९]

निम्नलिखित मंत्र में राक्षसी अथवा पिशाची के कई नाम अथवा विशेषण आए हैं—"सन्तान को निकालनेवाली और शाल के वृक्ष से भी ऊँचे शरीरवाली धर्षण करनेवाली और भय की उत्पादिका निःसाला नाम की राक्षसी को, अभिभव करनेवाले धिषण नामवाले पापग्रह को, एकमात्र कठोर वाक्य का ही उच्चारण करनेवाली एक वाद्या नाम की राक्षसी को और भक्षण करने के स्वभाववाली राक्षसी को हम नष्ट करते हैं। और चण्ड नामक पापग्रह की सन्तान सदा दुःख देनेवाली पिशाचियों को भी हम नष्ट करते हैं।"[९०]

अथर्ववेद के अध्ययन से यह प्रतीत होता है कि जितने प्रकार के क्लेश, संकट, आधि-व्याधि, रोग मनुष्यों को सताते थे, उनके मूल में ये ही राक्षस, पिशाची, कृत्या आदि प्रेतलोक के जीव माने जाते थे, उनके द्वारा किये गये उपद्रवों की शांति के लिए अनेकानेक देवताओं की स्तुति की जाती थी, उनकी प्रसन्नता के लिए यज्ञ किये जाते थे, और इन यज्ञों के साथ औषधियों तथा उपचारों का प्रयोग किया जाता था। उनका ऐसा विश्वास था कि उनके घर-द्वार, गोष्ठ, द्यूतशाला, धान की कोठी, गाड़ी आदि सर्वत्र पिशाचियों का वास है, और इसलिए मंत्रादि द्वारा उनका निष्कासन आवश्यक है।[९१] उन्हें इस लोक को छोड़कर पाताल-लोक में जाने का आग्रह किया जाता था।[९२] देवताओं से यह शक्ति माँगी जाती थी कि यजमान स्वयं पिशाचों का नाश कर सके।[९३] प्रेतादि के संबंध में यह भी धारणा थी कि वे साधकों के वश में हो सकते थे। जब वे वश में हो जाते थे, तो वे साधक उनका प्रयोग अपने शत्रुओं अथवा प्रतिस्पर्धियों के विनाश के लिए करते थे। इस स्थिति में, प्रतिसाधक के लिए यह आवश्यक होता था कि वह साधक के द्वारा प्रयुक्त भूत, प्रेत, पिशाच, पिशाचियों को उसीके पास लौटा दे, जिसने अनिष्ट की कामना से इन्हें प्रेरित किया था। निम्नलिखित उद्धरण स्पष्टीकरण की दृष्टि से देखें—

"हे प्राणी के शरीर को जीर्ण करनेवाली जूर्णि नामवाली राक्षसी ! अलक्ष्मी करनेवाली तुम्हारी प्रेरित जो यातनाएँ और राक्षसियाँ हैं, वह लौट जावें, और हनन-साधन तुम्हारे साधन भी लौट जावें, तथा तुम्हारी किमीदिनी तथा दूसरे अनुचर भी लौट जावें। हे दलबल-सहित जूर्णि राक्षसी ! तुम जिस विरोधी के समीप रहो, उसको खा जाओ ! और जिस प्रयोग करनेवाले ने तुमको हमारे पास भेजा है, उसको भी तुम खा जाओ। उसके मांस को खा जाओ।"[२४]

(क) मारण, मोहन आदि अभिचार—तंत्र-शास्त्र के अध्येता यह जानते हैं कि 'षट्कर्म' उनका प्रधान प्रतिपाद्य है। इनके नाम हैं—मारण, मोहन, स्तंभन, विद्वेषण, उच्चाटन और वशीकरण।[२५] इन छह के अतिरिक्त और अनेकानेक विषयों का उल्लेख तथा प्रतिपादन विभिन्न तंत्रों में मिलता है। दत्तात्रेय-तंत्र के प्रारम्भ में इनका संक्षिप्त निदर्शन है। वे ये हैं—आकर्षण, इन्द्रजाल, यक्षिणी-साधन, रसायन-प्रयोग, कालज्ञान, अनाहार-प्रयोग, साहार-प्रयोग, निधिदर्शन, वन्ध्या-पुत्रवती-करण, मृतवत्सासुतजीवन-प्रयोग, जयप्राप्ति-प्रयोग, वाजीकरण-प्रयोग, भूत-ग्रह-निवारण, सिंह, व्याघ्र एवं वृश्चिकादिभय-निवारण।

अब हम अथर्ववेद से कुछ ऐसे मंत्रों की ओर संकेत करेंगे, जिनमें इस प्रकार के अभिचारों के पूर्वरूप मिलेंगे।

'तदनन्तर जिसने अभिचार कर्म किया है, वह व्यक्ति अपने अभिचार कर्म के निष्फल होने से यहाँ मेरे पास आकर स्तुति करे, अर्थात् मेरी शरण में आकर मेरी ही सेवा करे।'[२६]

'हे अग्ने ! आप इस राक्षस की पुत्र, पौत्र आदि प्रजा का संहार करिये, इस उपद्रवकारी राक्षस को मार डालिए और हमारी सन्तान के अनिष्ट को दूर करिये और इष्ट फल दीजिये और डरकर आपकी स्तुति करते हुए शत्रु की श्रेष्ठ दाहिनी आँख को फोड़ डालिए और निकृष्ट बाईं आँख को भी फोड़ डालिए।'[२७]

'हे ओषधे ! मेरी सौत को पराङ्मुखी करके भेज, अर्थात्, पति के पास से दूर भेज; फिर मेरे पति को मेरे लिए असाधारण कर।'[२८]

अथर्ववेद में अनेक ऐसे सूक्त हैं, जिनका समावेश 'कृत्या-प्रतिहरणगण' में है। वर्तमान भावना-क्रम में कृत्या को डायन कहा जा सकता है। कृत्या का डायन के किये हुए अभिचार से भी तात्पर्य होता है। चतुर्थ काण्ड के चतुर्थ अनुवाक के प्रथम सूक्त (जो कृत्याप्रतिहरणगण में है) की व्याख्या करते हुए सायण ने 'स्त्री, शूद्र, कापाल[२९] आदि के किये हुए अभिचार' के दोषों के निवारण की विधि बताई है। तृतीय काण्ड के पंचम अनुवाक के पंचम सूक्त का सम्बन्ध, कौशिक-सूत्र के अनुसार, स्त्री-वशीकरण से है। विधान यह है कि स्त्री-वशीकरण की कामनावाला पुरुष उस सूक्त को जपता हुआ अंगुलि से स्त्री को प्रेरित करे; घृत में भींगे बेर के इक्कीस काँटे को रखे; कूट को मक्खन में मिला लेप करके तीन समय अग्नि से तापे; खाट के नीचे के मुख की

पट्टी को पकड़कर तीन रात सोये; गरम जल को तीन लड़वाले छींकेपर रखकर अँगूठे से मसलता हुआ शयन करे; तथा लिखी हुई प्रतिकृति को सूत्रोक्त इषु से बाँधे।

एक अन्य मंत्र में मंत्रकर्त्ता प्रार्थना करता है कि "जिस स्त्री को स्वाप से—निद्रा से—हम वश में करना चाहते हैं, पहले उसकी माता सो जावे, उसका पिता भी निद्रा के अधीन हो जावे और उसके घर की रक्षा करने के लिए जो कुत्ता उसके द्वार पर रहता है, वह भी सो जावे, गृहाधिपति भी सो जावे, इस स्त्री के जो जातिवाले हैं, वह भी सो जावें, और घर के बाहर चारों ओर रक्षा करने के लिए जो पुरुष नियुक्त है, वह भी सो जावे।"[१००]

पंचम काण्ड के एक सूक्त का उद्देश्य है शासन और शत्रुसेना में परस्पर विद्वेषण। एक अन्य सूक्त में 'उन्मोचन' तथा 'प्रमोचन' शब्दों का प्रयोग किया गया है। और किसी दूसरे पुरुष के द्वारा किये हुए अभिचार से मंत्र-शक्ति के द्वारा मुक्त होने, विशेष रूप से मुक्त होने, की चर्चा है।[१०१]

स्त्री-वशीकरण-संबंधी एक मंत्र इस प्रकार है—"जैसे ताम्बूल आदि की बेल अपने आश्रयवृक्ष को चारों ओर से लपेट लेती है, हे जाये! उसी प्रकार तू मेरा आलिंगन कर। जिस प्रकार तू मेरी अभिलाषावाली बनी रहे, और मेरे पास से न जा सके (उसी प्रकार मैं तुमको इस प्रयोग से वश में करता हूँ)।"[१०२]

इस दूसरे मंत्र को देखें, जिसमें स्पष्टता अपनी पराकाष्ठा पर कही जा सकती है—"जैसे बँधा हुआ पुरुष, असुर की माया से रूपों को दिखाता हुआ अपने पुरुषों के सामने फैल जाता है, उसी प्रकार यह अर्कमणि तेरे शिश्नांग को स्त्री के अंग से भले प्रकार गमन करे, अर्थात्, उपभोगक्षम करे। × × × अंगों से प्रकट हुआ परस्वत् (प्राणी) का प्रजनन (शिश्न) जितने परिमाणवाला होता है, और हाथी तथा गधे का शिश्न जितने परिमाणवाला होता है, और अश्व का शिश्न जितना होता है, तेरा शिश्न भी उतना ही बढ़ जावे।"[१०३] × × × जिस प्रकार से तेरा पुंस्प्रजनन बढ़े, उपचित अवयववाला होकर मिथुनीभवनक्षम हो, उस प्रकार बढ़ और फैल और उस बढ़े हुए शेप से सुरतार्थिनी स्त्री के पास ही जा। × × × जिस रस से वन्ध्य पुरुष को—शुष्क-वीर्य पुरुष को—प्रजनन-शक्ति-सम्पन्न-वीर्यवाला कहते हैं और जिस रस से आतुर पुरुष को पुष्ट किया जाता है, हे मंत्रराशि के पालक ब्रह्मणस्पतिदेव! उस रस से इस वाजीकरण की कामना करनेवाले शिश्न को आप (तानी हुई प्रत्यंचा) धनुष के समान तना हुआ करिए।[१०४]

षष्ठ काण्ड के एक सूक्त के सम्बन्ध में यह विधान है कि उसके कुछ मंत्रों (तृचों) से दुष्ट स्त्री को वश में करने के क्रम में उड़दों को अभिमंत्रित करके स्त्री के विचरण करने के स्थानों पर बिखेर दे; अग्नि में भूनने पर जलते हुए सैंटों को प्रत्येक दिशा में फेंके; मिट्टी कुरेद करके स्त्री की मूर्त्ति बनावे, सूत्रोक्त रीति से धनुष और बाण को बनावे, फिर तृचों से मूर्त्ति को हृदय में बींधे।[१०५]

इसी छठे काण्ड के ग्यारहवें अध्याय के १०३वें सूक्त में कहा गया है कि

"हे कामिनि ! तेरे मन को इस प्रयोग से मैं इस प्रकार उच्चाट करके अपनी ओर को खेंचता हूँ, जिस प्रकार अश्वों का राजा लूँटे में बँधी हुई रस्सी (पिछाड़ी) को लीला से ही उखाड़कर अपनी ओर खेंच लेता है; हे कामिनि ! जिस प्रकार वायु से उखाड़ा हुआ तृण वायु में चकराने लगता है, उसी प्रकार तेरा मन मेरे अधीन होकर मुझमें भ्रमण करता रहे—रमण करता रहे—कभी अन्यत्र न जावे।"

उपर्युक्त कतिपय उद्धरणों के देखने पर इसमें कोई भी सन्देह नहीं रह जाता कि तंत्रों और सिद्धों से होते हुए औघड़ों तथा सरभंगों में जिन चमत्कारों, सिद्धियों और अद्भुत जड़ी-बूटी आदि के प्रयोगों का आधान किया जाता है, वे सभी अपने अंकुर-रूप में अथर्ववेद में पाये जाते हैं।

(ट) पंच मकार—तंत्राचार या कुलाचार में पंच मकार ही पूजा की प्रमुख सामग्रियाँ हैं। ये 'कुलद्रव्य' कहे जाते हैं। 'कुलार्णवतंत्र' में लिखा है कि—

मद्यं मांसं च मीनं च मुद्रा मैथुनमेव च।
मकारपञ्चकं देवि ! देवताप्रीतिकारणम् ॥[१०६]

इन मद्यादि के सम्बन्ध में हम तंत्रों की आलोचना करते समय विचार करेंगे। औघड़ या सरभंग सम्प्रदाय की परम्परा में भी इनको ग्राह्य माना गया है।[१०७] अब हम अथर्ववेद के कुछ ऐसे मंत्रों की ओर संकेत करेंगे, जिनमें पंचमकार के सेवन के पूर्वाभास मिलते हैं।

वैदिक युग में सोमरस एक प्रधान पेय था और वेदों में सैकड़ों मंत्र सोम की प्रशंसा में भरे पड़े हैं। सुरा का भी व्यापक रूप से प्रचार था। कौशिक-सूत्र में अन्न और सुरा, इन दो को ग्राम-सम्पत् का मुख्य अङ्ग माना जाता था।[१०८] इन्द्र को वृत्र, बल आदि शत्रुओं के संहार में सोम के मद से बहुत सहायता मिली थी।[१०९] एक ऋषि प्रार्थना करते हैं कि 'सिच्यमान पात्रों में खेंची जाती हुई सुरा में और अन्न में जिस मधुरता भरे हुए रस की मनुष्य प्रशंसा करते हैं, वह मुझमें हो !'[११०]

अथर्ववेद में मांस की भी बार-बार चर्चा आई है। कौशिक-सूत्र के प्रामाण्य पर तृतीय कांड के द्वितीय अनुवाक के तीसरे सूक्त का वर्णन करते हुए सायण ने लिखा है कि उसकी 'पाँचवीं और छठी ऋचाओं से सांमनस्य कर्म में ग्राम के मध्य में सम्पातित जलपूर्ण कुम्भ को लावे, तीन वर्ष की गौ के पिशित का प्राशन करे, सम्पातित सुरा को पिलावे, और पौ (प्रपा) के सम्पातित जल को पिलावे।' अन्यत्र, विषस्तम्भन-कर्म में शुक्ल सेही (श्वावित्) की शलाका से सेही के मांस का प्राशन कराने का विधान है।[१११] एक और मंत्र में यों वर्णन है—

"जैसे मांस भोक्ता—खानेवाले—पुरुष के प्रेम का पात्र होता है, और जैसे सुरा, पीनेवाले को परमप्रिय होती है और जैसे पाँसे जुए में प्यारे होते हैं, और जैसे वीर्य की वर्षा करना चाहनेवाले का मन स्त्री पर प्रसन्न होता है, उसी प्रकार, हे न मारने योग्य धेनो ! तेरा मन बछड़े पर प्रसन्न होवे।"[११२] इस उद्धरण में मांस, मद्य और मैथुन—इन तीन मकारों का एकत्र समवाय है। यद्यपि गौ के प्रति वेदों में सामान्य रूप से

श्रद्धा की भावना व्यक्त की गई है, तथापि कई प्रसंग ऐसे आये हैं, जिनसे यह अनुमान होता है कि कुछ जन-समुदाय उस समय भी गो-भक्षण आदि करते थे। कौशिक-सूत्र में विधान है कि गो-हरण, मारण, विशसन (काटना), अधिश्रयण, पचन और भक्षण आदि का प्रचार होने पर अभिचार की कामनावाला ब्रह्मचारी शत्रुओं को मन में रखकर पंचम काण्ड के १८वें सूक्त का जप करे। इस सूक्त का द्वितीय मंत्र यों है—"इन्द्रियों से द्रोह करनेवाला आत्म-पराजित पापी राजा ही ब्राह्मण की गौ को खावे और वह राजा आज ही जीवे और कल को जीवित न रहे।"[११३] ऐसा प्रतीत होता है कि ब्राह्मणों में गो-भक्षण की प्रथा नगण्य थी, किन्तु क्षत्रियों में विशेषतः राजा आदि बलशाली व्यक्तियों में, यह प्रथा प्रचलित थी। ब्राह्मणों को इस बात की बार-बार आवश्यकता होती थी कि वे क्षत्रियों को यह चेतावनी दें कि देवताओं ने गौ को अखाद्य माना है, अतः वे भी गौ को, विशेषतः ब्राह्मण की गौ को, अखाद्य मानें।[११४] औघड़-सम्प्रदाय में साधना की दृष्टि से तथाकथित अखाद्य को भी खाद्य माना जाता है। प्रथम दीक्षा में दीक्ष्यमाण शिष्य को, 'अमरी' का सेवन करना पड़ता है। एक संभ्रांत औघड़ साधु ने यह बताया कि विष्ठा, मूत्र और रज तीनों के पक्व सम्मिश्रण को 'अमरी' कहते हैं। अथर्ववेद में भी, कौशिक-सूत्र के अनुसार, ऐसे सूक्त हैं, जिनसे अभिमन्त्रित करके ऋतुमती स्त्री के रक्त को रसमिश्रित करके उसका प्राशन किया जाता था।[११५] ससग्रामलाभकर्म में संवत्सर तक ब्रह्मचर्य रख तदनन्तर मैथुन कर वीर्य को चावलों में मिलाकर संपातन तथा अभिमन्त्रण करके, उसका भक्षण करने का विधान है।[११६]

पंच मकार में मांस के साथ मत्स्य का भी परिगणन है। वस्तुतः मांस और मत्स्य एक ही कोटि के पदार्थ हैं और इस कारण मत्स्य को एक अलग मकार न मानकर मांस का ही उपमकार माना जाता, तो असंगत न होता। कौशिक-सूत्र में यह विधान है कि बालग्रह रोग में और निरन्तर स्त्रीसंग करने से उत्पन्न हुए यक्ष्मा रोग में इमली और मछली-सहित भात अभिमंत्रित करके रोगी को खिलाया जाय। मांसादि के खाने के अतिरिक्त उनके होम करने की भी प्रथा थी। तृतीय काण्ड के दशम सूक्त के आरम्भ में सायण ने यह लिखा है कि इस सूक्त से पुष्ट्यर्थ अष्टकाकर्म में घृत, मांस और स्थालीपाक इन तीनों में से प्रत्येक की तीन-तीन बार आहुति दे। आदि-आदि।

मैथुन के सम्बन्ध में हम शाक्त तथा बौद्ध तांत्रिकों की चर्चा करते समय विशिष्ट विचार करेंगे। तंत्राचार में मैथुनस्थ स्त्री और पुरुष शक्ति तथा शिव के प्रतीक बन जाते हैं। आधारभूत सिद्धान्त यह है कि प्रत्येक पुरुष में स्त्री-तत्त्व है, और प्रत्येक स्त्री में पुंस्-तत्त्व है। शिव में शक्ति है और शक्ति में शिव है। अतः निरा पुरुष मोक्ष का भागी नहीं हो सकता; क्योंकि शिव और शक्ति, पुंस्तत्त्व और स्त्री-तत्त्व का मिलन ही अद्वैत है और यही अद्वैत मानव-जीवन का परम लक्ष्य है। इस सिद्धान्त की ओर हमें अथर्ववेद तथा ब्राह्मण आदि ग्रन्थों में स्पष्ट संकेत मिलते हैं। ऐतरेय ब्राह्मण में यह लिखा है कि स्वयं पति मातृ-गर्भ के रूप में अपनी जाया में प्रवेश करता है और उसी जाया में नवीन रूप धारण करके दसवें महीने में उत्पन्न होता है। जाया कहते ही हैं उसे, जिसमें पति पुनर्जात

हो।[११७] इसी से मिलने-जुलनेवाले भाव को हम अथर्ववेद के निम्नलिखित मंत्र में पाते हैं—"हे स्त्री, जैसे बाण तरकस में स्वभावतः जाता है, उसी प्रकार तेरे प्रजनन-स्थान में पुमान् गर्भ जावे; और वह तेरा गर्भ पुत्ररूप में परिणत होकर दस मास तक का हो, वीर्य-सम्पन्न होकर इस प्रसूतिकाल में उत्पन्न होवे।"[११८]

पंच मकार के प्रसंग में अथर्ववेद के जिन मंत्रों और उनसे संबद्ध विधि-विधानों की ओर संकेत किया गया है, उनके आधार पर तांत्रिकों और औघड़ों का संबंध अथर्ववेद के साथ अनायास जुड़ जाता है।

(ठ) अथर्ववेद और उपनिषद् पृष्ठभूमि के प्रारंभ में हमने संक्षेप में यह प्रतिपादन किया है कि संतमत के दार्शनिक आधार की मूल प्रेरणाएँ उपनिषदों से मिलीं। उसी सिलसिले में विभिन्न उपनिषदों से निदर्शनार्थ उद्धरण भी दिये गये हैं। उन्हें यहाँ दुहराने की आवश्यकता नहीं है। निवृत्तिमार्ग-परक होने के कारण प्रमुख उपनिषदों में उन प्रवृत्तिमूलक विशेषताओं का समावेश नहीं है, जिनका उल्लेख अथर्ववेद के विवेचन के प्रसंग में किया गया है। किन्तु यहाँ उन अपेक्षाकृत अप्रसिद्ध उपनिषदों की ओर संकेत अप्रासंगिक नहीं होगा, जिनका संबंध अथर्ववेद से माना जाता है। वे हैं—अथर्वशिखा, अथर्वशिरः, अद्वयतारक, अध्यात्म, अन्नपूर्णा, अमृतनाद, अमृतबिन्दु, अव्यक्त, कृष्णा, कौल, क्षुरिका, गणपति, कात्यायन, कालाग्निरुद्र, कुण्डिका, त्रिपुरातापनीय, दक्षिणामूर्त्ति देवीद्वय, ध्यानबिन्दु, नादबिन्दु, नारद, नारायण, निर्वाण, नृसिंहतापनीय, पाशुपत, ब्रह्मपैंगल, पैप्पलाद, बह्वृच, बृहज्जाबाल, भस्म, मुक्तिका, रहस्य, रामतापनी, वज्रपंजर, वराह, वासुदेव, सरस्वती-रहस्य, सीता, सुदर्शन, हयग्रीव इत्यादि।[११९] इन उपनिषदों में यत्र-तत्र रुद्र, भव, शर्व, काली, देवी आदि की स्तुतियाँ हैं। इसके अतिरिक्त उस प्रकार के बीजमंत्र आदि भी हैं, जिनका अति विस्तार हम तंत्र-ग्रंथों में पाते हैं।[१२०]

(ड) अथर्ववेद और तंत्र—'तनु विस्तारे' इस धातु से औणादिक ष्ट्रन् प्रत्यय करने से तंत्र शब्द की सिद्धि होती है। कुछ विद्वानों के मत में साधकों का त्राण करने के कारण यह शास्त्र तंत्रशास्त्र कहा जाता है—त्रायत इति तंत्रम्। कालिकागम में लिखा है कि—

तनोति विपुलान् अर्थान् तत्त्वमन्त्र-समन्वितान्।
त्राणं च कुरुते यस्मात् तन्त्रमित्यभिधीयते॥

तंत्रशास्त्र को 'आगम' भी कहते हैं। यह आगम-मार्ग वेदमार्ग (निगम-मार्ग) से भिन्न माना जाता है और तांत्रिकों की यह धारणा है कि कलियुग में विना तंत्र-प्रतिपादित मार्ग के निस्तार नहीं है।[१२१] अथर्ववेद में तथा कौशिक-सूत्र आदि में तंत्र शब्द का जो प्रयोग हुआ है, उससे विस्तार-अर्थ में 'तनु' धातु से 'तंत्र' शब्द के साधुत्व की पुष्टि होती है। सामान्य रूप में यह कहा जा सकता है कि वेदोक्त मंत्रों का यज्ञादि में प्रयोग तथा उससे संबद्ध विधियों का जो विस्तार हुआ, उसे तंत्र की संज्ञा दी गई। अथर्ववेद के सायण-भाष्य से इस संबंध में एक उद्धरण दिया जा रहा है। यहाँ पर "पाकयज्ञ शब्द से अथर्ववेद के सब कर्म ग्रहण किये जाते हैं। वे कर्म दो प्रकार के हैं, एक आज्यकर्म और

दूसरे पाककर्म। जिन कर्मों में आज्य, अर्थात् घी प्रधान होता है, वे आज्यतंत्र कहलाते हैं, और जिन कर्मों में चरु, पुरोडाश आदि द्रव्य ही प्रधान होते हैं वे पाकतंत्र कहलाते हैं। आज्यतंत्र में अनुष्ठान का क्रम यह है कि पहले कर्त्ता 'अन्यसश्च' (१६.६५) इस मंत्र का जप करे, कुशाओं को काटे। एवं क्रमशः वेदी, उत्तर वेदी, अग्नि-प्रणयन, अग्नि-प्रतिष्ठापन, व्रत-ग्रहण, कुश की पवित्री बनाना, पवित्री के द्वारा यज्ञ के काष्ठ का प्रोक्षण और काष्ठों को समीप में रखना, कुशप्रोक्षण, ब्रह्मा का स्थापन, कुशाओं का फैलाना और फैलाए हुए कुशों का प्रोक्षण करना, अपना (अर्थात् कर्मकर्त्ता का) आसन, जलपात्र का स्थापन, याज्ञ संस्कार, स्रुव-ग्रहण, ग्रह-ग्रहण, पहले करने योग्य होम और घृत के दो भाग करना। 'सविता प्रसवानाम्' (५. २४ प्रसवकर्म का देवता सविता है), इस कर्म में अभ्यातान के द्वारा आज्यहोम करे।

इस प्रकार के सूत्रकार के वचनानुसार अभ्यातान कर्म होता है। यहाँ तक पूर्वतंत्र, अर्थात् आज्यतंत्र का प्रथम तंत्र है। तदनन्तर उपदेशानुयायी प्रधान होम होता है। फिर उत्तरतंत्र का आरंभ होता है। सकल अभ्यातान पार्वण होम, समृद्धि-होम, सन्तति होम, स्विष्टकृत् होम, सर्वप्रायश्चित्तीय होम, 'पुनर्मैत्विन्द्रियम्' इस मंत्र के द्वारा होम, स्कन्न-होम, स्कन्नास्मृति नामक दो होम, संस्थिति-होम, चतुर्गृहीत-होम, बर्हिर्होम, संस्नाव-होम, विष्णुक्रम, व्रत-विसर्जन, दक्षिणा-दान और ब्रह्मोत्थापन। पाकतंत्र में अभ्यातान नहीं होता, और सब काम आज्यतंत्र के समान होते हैं। इसी बात को गोपथब्राह्मण में कहा है कि—

आज्यभागान्तं प्राक्तन्त्रम् ऊर्ध्वं स्विष्टकृता सह।
हवींषि यज्ञ आवापो यथा तन्त्रस्य तन्तवः ॥"[१२२]

ऊपर के उद्धरण से प्रतीत होता है कि जब यज्ञों का विस्तार होने लगा, तब यज्ञ की लम्बी तथा पेचीदी अनुष्ठान-प्रक्रिया को अनेकानेक तन्तुओं से बने हुए वस्त्र (तंत्र) के समान माना गया और इस प्रक्रिया में भी पूर्वतंत्र, उत्तरतंत्र आदि अनेक खण्ड तथा पाकतंत्र, आज्यतंत्र आदि अनेक भेदोपभेद किये गये। 'अग्निर्यज्ञं त्रिवृतं सप्ततन्तुमिति' आदि वेदवाक्यों में यज्ञ के तन्तुओं के उल्लेख का संबंध 'तंत्र' शब्द से जोड़ा जा सकता है। व्यापक रूप से हम यह कहेंगे कि मंत्र का ही प्रयोग-पक्ष तंत्र है।

रुद्रयामल[१२३] तंत्र में अनेक श्लोक ऐसे हैं, जिनसे यह प्रकट होता है कि तंत्रशास्त्र और अथर्ववेद में घनिष्ठ परम्परा-सम्बन्ध है। भैरवदेव भैरवी से कहते हैं कि अथर्ववेद सब वर्णों का सार है और उसमें शक्त्याचार का प्रतिपादन है। अथर्ववेद से तमोगुण सामवेद की उत्पत्ति हुई। सामवेद से महासत्त्वसमुद्भव यजुर्वेद, रजोगुणमय ऋग्वेद यजुर्वेद में निहित है; अथर्ववेद सब वेदों में मृणाल-सूत्र के समान पिरोया हुआ है। अथर्व में ही सर्वदेव हैं। उसी में जलचर, खेचर और भूचर हैं; उसीमें कामविद्या, महाविद्या और महर्षि निवास करते हैं। अथर्ववेद-चक्र में परमदेवता कुण्डली अवस्थित है। अथर्व-प्रतिपादित देवी की भावना करनेवाला साधक अमर हो जाता है। शक्तिचक्र-क्रम के रूप में अथर्व की मंत्र-सहित भावना करनी चाहिए।[१२४]

इस प्रसंग में रुद्रयामल-तंत्र की उन पंक्तियों की ओर हम संकेत करना चाहेंगे, जिनमें यह कथानक आया है कि वेदादिशास्त्र-प्रतिपादित मार्गों के आधार पर सहस्र वर्ष

की तपश्चर्या करने पर भी जब वसिष्ठ ऋषि को सिद्धि नहीं मिली, तब वे निराश होकर देवी की शरण में आये। देवी ने उनपर कृपा करके उन्हें यह आदेश दिया कि 'तुम अथर्ववेद, बौद्ध देश और महाचीन के मार्ग का आश्रयण करो; वहाँ मेरे महाभावचरण-कमल का दर्शन प्राप्त होगा और मेरे 'कुल' का मर्म जानकर महासिद्ध होओगे'। इस कथानक को औघड़ अथवा सरभंग-सम्प्रदाय के अनुशीलन की दृष्टि से अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण मानना चाहिए; क्योंकि हमारा मन्तव्य है कि इस सम्प्रदाय को मूलप्रेरणा मिली अथर्ववेद तथा उससे संबद्ध ब्राह्मण, सूत्रग्रन्थों और उपनिषदों से;—किन्तु शाक्त तंत्र तथा बौद्ध सहजयान के सिद्धान्तों एवं आचार-विचारों से प्रभावित होती हुई अति परिवर्त्तित रूप में।

पिछले कुछ पृष्ठों में अथर्ववेद का जो परिचयात्मक विवरण दिया गया है, उसका मुख्य लक्ष्य यह है कि अथर्ववेद के साथ तंत्रशास्त्र तथा अघोर या सरभंग-मत के व्यवहार-पक्ष का संबंध एवं सादृश्य स्थापित किया जाय। किन्तु इस विवरण से हमें कभी यह निष्कर्ष नहीं निकालना चाहिए कि अथर्ववेद का दार्शनिक या सैद्धान्तिक पक्ष अपेक्षाकृत कम महत्त्वपूर्ण है। वस्तुतः इस पक्ष की उद्भावना इस कारण नहीं की गई कि अद्वैतवाद के जिस रूप को अघोर अथवा सरभंग-सम्प्रदाय ने अपनाया है, उसका सीधा विकास उपनिषदों के ब्रह्मवाद से हुआ है। ऐसे मंत्रों की अथर्ववेद में कमी नहीं है, जिनमें उच्च दार्शनिक तथा धार्मिक भावनाएँ मिलती हैं। अथर्ववेद के प्रारंभिक मंत्र को ही लीजिए। शाब्दिक अर्थ यह हुआ कि जो ३-७ (त्रिषप्त) देवता समस्त रूपों को धारण करते हुए सर्वत्र भ्रमण करते हैं, उनके दलों को आज मेरे शरीर में वाचस्पति स्थापित करें।[१२५] यहाँ त्रिषप्त एक ऐसा विशेषण है, जिसके भाष्यकारों ने कई अर्थ किये हैं। सायणाचार्य ने तीन संख्यावालों में आकाश, पाताल, पृथ्वी—(तीन लोक; आदित्य, वायु, अग्नि, (लोकों के अधिष्ठाता); सत्त्व, रजस्, तमस् (तीन गुण); ब्रह्मा, विष्णु, महेश (तीन देव) का अनुमानित उल्लेख किया है, और सात संख्यावालों में नाम लिया है—सात ऋषियों, सात ग्रहों, सात मरुद्गण, सात लोकों और सात छन्दों का। तीन-गुणे-सात के अर्थ में 'त्रिषप्त' का अभिप्राय माना गया है सूर्य से अधिष्ठित पूर्व आदि दिशाओं के अतिरिक्त आरोग आदि सात सूर्यों से अधिष्ठित सात दिशाओं की, अथवा बारह महीने, पाँच ऋतुएँ, तीन लोक और आदित्य की अथवा 'पंचमहाभूत, पंचप्राण, पंचज्ञानेन्द्रिय, पंचकर्मेन्द्रिय और अन्तःकरण की कल्पना की गई है। स्पष्ट है कि भाष्यकार इस वेद-मंत्र के मर्म अथवा रहस्य को समझने में असमर्थ रहा है। एक दूसरा मंत्र देखें—"वह हमारा पिता है, वह जन्मदाता है, वही बन्धु है; वही सभी धामों और सभी भुवनों को जानता है। जो एक होते हुए भी सभी देवों के नामों का स्वयं धारण करता है, उसमें सभी भुवन विलीन होते हैं।[१२६] इस मंत्र में पश्चाद्वर्त्ती अद्वैतवाद तथा एकदेववाद दोनों का पूर्वरूप स्पष्टतया अंकित है। हम इस प्रसंग को अनुचित विस्तार नहीं देकर इतना ही कहना चाहेंगे कि अथर्ववेद में ज्ञान और कर्म, सिद्धान्त और व्यवहार—दोनों ही पक्ष विकसित रूप में विद्यमान हैं। अतएव कुछ पाश्चात्य

आलोचकों की यह धारणा कि अथर्ववेद केवल जादू-टोने और अन्धविश्वास का वेद है, न केवल नितान्त भ्रमपूर्ण है, अपितु राष्ट्र की गौरव-भावना के प्रतिकूल भी; क्योंकि ज्यों-ज्यों संस्कृत के मूल ग्रन्थों के अध्ययन-अध्यापन की प्रणाली लुप्त होती जाती है, त्यों-त्यों हम, पाश्चात्य विद्वानों ने इन ग्रन्थों के संबंध में जो संकीर्ण दृष्टिकोण रखा है, उसको प्रमाण मानकर अपनाते जा रहे हैं।

तंत्रशास्त्र—जो आलोचना अभी हमने अथर्ववेद के संबंध में की है, वही बहुत अंशों में तंत्र-ग्रंथों के संबंध में भी लागू है। तंत्र ग्रंथों से, सामान्यतः संतमत की सभी शाखाओं का और विशेषतः अघोर अथवा सरभंग-सम्प्रदाय का सीधा संबंध है। किन्तु आज हम तंत्रशास्त्र को भयानक उपेक्षा की दृष्टि से देखते हैं। आर्थर ऐवेलों (Arthur Avalon) ने शिवचन्द्र विद्यार्णव भट्टाचार्य के 'तंत्र-तत्त्व'[१२७] के आंग्लानुवाद तथा सम्पादन में इस विषय की विस्तृत विवेचना की है। तंत्र-ग्रंथों की उपेक्षा के अनेक कारण हैं। अनेकानेक तंत्र-ग्रंथ आज लुप्त हो गये हैं। अनेक ऐसे हैं, जो दुर्लभ अथवा खण्डित हैं; मूल ग्रन्थ संस्कृत में होने के कारण अँगरेजी के विद्वानों के लिए सुलभ नहीं है। सर जॉनउडरॉफ (Sir John Woodroffe) ने अनेक प्रमुख तंत्र-ग्रंथों का अनुवाद करके तथा तंत्रशास्त्र के व्यापक रूप को प्रस्तुत करके तंत्र-साहित्य को एक अमूल्य देन दी है। आवश्यकता है कि हिन्दी में भी ऐसे प्रामाणिक ग्रन्थों का प्रणयन हो, जिनसे तंत्रशास्त्र तथा उसके असली स्वरूप का परिचय मिले। आजकल इस शास्त्र के प्रति उदासीनता इस कारण भी हो गई है कि सामान्यतः लोगों ने वामाचार को ही एकमात्र तंत्राचार मान लिया है, जो एक बहुत बड़ी भूल है। इसके अतिरिक्त, वामाचार के अनुयायियों में भी अनेक ऐसे हुए हैं, जिन्होंने उसके आधारभूत सिद्धान्तों को नहीं समझा है और अपने को उस उच्च धरातल पर नहीं रख पाये हैं, जिस पर अवस्थित होना सच्चे तांत्रिक के लिए आवश्यक है।

तंत्र-ग्रंथों के अध्ययन से यह पता चलेगा कि वे प्रायः शिव और पार्वती के कथोपकथन के रूप में लिखे गये हैं। इनके मुख्य प्रतिपाद्य विषय हैं तंत्र, मंत्र, साधना और योग। वाराही-तंत्र में आगम अथवा तंत्र के सात लक्षण हैं—सृष्टि, प्रलय, देवतार्चन, साधन, पुरश्चरण, षट्कर्म और ध्यानयोग।[१२८] ये केवल कुछ मुख्य प्रतिपाद्य विषय हैं। किन्तु इनके अतिरिक्त, शत-सहस्र ऐसे बिन्दु हैं, जिनका समावेश तंत्र-ग्रंथों में हुआ है। संतमत में जो हम बराबर षट्चक्रों का उल्लेख पाते हैं, वह मुख्यतः तंत्रशास्त्र की ही देन है। तंत्रग्रंथों की विषय-व्यापकता को देखते हुए उन्हें 'ज्ञान का विश्वकोष' (Encyclopaedia of Knowledge) कहा गया है। आर्थर ऐवेलों ने 'तंत्र-तत्त्व' की भूमिका[१२९] में 'विष्णुक्रान्ता' क्षेत्र के ६४ तंत्रों, 'रथक्रान्ता' क्षेत्र के ६४ तंत्रों और 'अश्वक्रान्ता' के ६४ तंत्रों अर्थात्, कुल मिलाकर १९२ तंत्रों का उल्लेख किया है। इसको देखते हुए हमें आश्चर्य होता है कि तंत्र-साहित्य के संबंध में हमारा ज्ञान कितना अधूरा है। यद्यपि तंत्रशास्त्र में व्यवहार

अथवा आचार-पक्ष प्रबल है, इसके आधार में जो भावनाएँ हैं, उनमें गंभीर दार्शनिकता है– विशेषतः शक्तितत्व, मंत्रतत्त्व तथा योगतत्त्व के प्रतिपादन में। तात्पर्य यह कि तंत्रशास्त्र एक सम्पूर्ण शास्त्र है, जिसमें मस्तिष्क, हृदय तथा कर्मेन्द्रियों; ज्ञान, इच्छा, क्रिया; तीनों के लिए प्रचुर सामग्री मिलती है। ध्यान देने की बात है कि विभिन्न साधनों में तत्त्व-चिन्ता को ही प्रधानता दी गई है। कुलार्णव-तंत्र में यह कहा गया है कि सबसे उत्तम तत्त्व-चिन्ता है; मध्यम है जप-चिन्ता; अधम है शास्त्र-चिन्ता और अधमाधम है लोक चिन्ता। पुनश्च, सहजावस्था उत्तम है; ध्यान, धारणा मध्यम है; जपस्तुति अधम है और अधमाधम है होम-पूजा।[१३०] अन्य प्रसंगों में जप की महिमा सामान्यतः गाई गई है।[१३१] इससे यह स्पष्टतः प्रतीत होता है कि तंत्रशास्त्रों में बाह्याचार का विधान होते हुए भी उसे ध्यान, समाधि, जप आदि से निकृष्ट माना गया है।

तंत्र-साहित्य की आलोचना करते समय हम उसकी कुछ विशेषताओं की ओर इंगित करना चाहेंगे। हिन्दू-शास्त्रों को चार कोटि में विभाजित किया जाता है—श्रुति, स्मृति, पुराण और तंत्र। कुलार्णव-तंत्र के अनुसार इनमें से प्रत्येक एक-एक युग के लिए उपयुक्त है—श्रुति सत्ययुग के लिए, स्मृति त्रेता के लिए, पुराण द्वापर के लिए और तंत्र कलियुग के लिए।[१३२] आशय यह है कि परम्परागत भावना के अनुसार सत्ययुग से लेकर कलियुग तक धर्म का उत्तरोत्तर ह्रास होता आ रहा है। अतः इस युग में वेदविहित निवृत्तिमार्ग सर्वसुलभ नहीं है। फलतः, तंत्रशास्त्र में ऐसी साधना-पद्धति का विधान है कि जिसमें मानव की सहज प्रवृत्तियों का निरोध न होते हुए मोक्ष की प्राप्ति हो सके। इसका यह तात्पर्य नहीं कि निवृत्तिमार्ग निषिद्ध है। प्रत्युत यह, कि प्रवृत्तिमार्ग की अपेक्षा निवृत्तिमार्ग श्रेयस्कर है। किन्तु कलि की जैसी परिस्थिति है, उसमें प्रवृत्तिमार्ग की विशेष उपयुक्तता है। मनु ने भी लिखा है—'प्रवृत्तिरेषा भूतानां निवृत्तिस्तु महाफला'। मानव की सहज प्रवृत्तियों की ओर संकेत करते हुए महानिर्वाण-तंत्र में यह लिखा है कि—"हे देवि, मनुष्यों को भोजन और मैथुन स्वभावतः प्रिय होते हैं और अतः संक्षेप तथा कल्याण की दृष्टि से शैव धर्म में उनका निरूपण है।"[१३३] तंत्रमार्ग सहज एवं स्वाभाविक होने के कारण सुगम भी है। इसमें अन्य शास्त्रों की भाँति अध्ययन-अध्यापन, तर्क-वितर्क आदि की विशेष अपेक्षा नहीं होती। मंत्रों में इतनी शक्ति होती है कि यदि उनका विधिवत् साधन किया जाय, तो वे आशुसिद्धिप्रद होते हैं। इसलिए कभी-कभी तंत्रशास्त्र को 'मंत्रशास्त्र' भी कहते हैं। साधन-प्रधान होने के कारण इसे 'साधन-तंत्र' भी कहते हैं। तंत्र का यह दावा है कि वह साधक को तत्क्षण इष्टफल की उपलब्धि कराता है। इस दृष्टि से इसे 'प्रत्यक्षशास्त्र' भी संबोधित किया गया है।[१३४] तान्त्रिकों का यह विश्वास है कि जब तक वैदिक रीति से साधना-रूपी वृक्ष में फूल उगेंगे, तब तक तांत्रिक पद्धति से उसमें फल लगने लगेंगे। उदाहरणतः, वैदिक पद्धति से वर्षों बीतने पर भी निर्विकल्प समाधि की सिद्धि होगी या नहीं, इसमें संदेह है; किन्तु तांत्रिक विधि से शक्ति के साथ साधक की अद्वैतता आशु सम्पन्न हो सकती है। अतः वैदिक साहित्य (पशु-शास्त्र) में समय न गँवाकर कुलशास्त्र का साधन करना चाहिए। जो ऐसा नहीं करता है,

वह मानो दूध छोड़कर तुच्छ वस्तु का, धान छोड़कर धूलकण का ग्रहण करता है।[१३५]

तन्त्रशास्त्र की यह मान्यता है कि देह ही सभी पुरुषार्थ का साधन है, अतः 'देहधन' की रक्षा करनी चाहिए, जिसमें पुण्यकर्मों के आचरण में सुविधा हो। धन-संपत्ति, शुभ-अशुभ, घर, गाँव आदि की सार्थकता शरीर के ही कारण है।[१३६] शरीर की उपेक्षा और तत्त्वज्ञान की अपेक्षा वैसे ही मूर्खता है, जैसे घर में आग लगे और तब कुआँ खोदने की व्यवस्था की जाय।[१३७] 'देहखण्डन' मात्र से भला क्या सिद्धि होगी! गंगा-तट पर गदहे जन्म-भर विचरण करते रह जाते हैं, क्या उन्हें विरक्ति मिल पाती है! हरिण आदि तो केवल तृण और पत्ते खाकर जंगल में जीवन-यापन करते हैं; क्या वे तापस बन पाते हैं?[१३८]

तंत्रशास्त्र की यह एक क्रांतिकारी विशेषता है कि यह सार्वभौम और सर्वग्राह्य है। वैदिक परम्परा में शूद्रों और स्त्रियों की उपेक्षा की गई है, किन्तु तंत्र-परंपरा में मानव-मानव में किसी प्रकार का भेद-भाव नहीं रहता। भैरवी-चक्र अथवा श्रीचक्र में तो इस अभेद की पराकाष्ठा माननी चाहिए।[१३९] ज्योंही कोई व्यक्ति चाहे किसी वर्ण का हो, किसी जाति का हो, स्त्री हो वा पुरुष, मंत्रदीक्षित हुआ कि वह शिवत्व-संपन्न हो गया। अब उसके साथ किसी प्रकार का भेद-भाव नहीं बरता जायगा। यों कहा जा सकता है कि तंत्रशास्त्र ने तथाकथित नीच जातियों तथा उपेक्षितों को सम्मान दिया है। चांडाली, कर्मचारी, मातंगी, पुक्कसी, श्वपची, खट्टकी, कैवर्त्ती, विश्वयोषित्—इन्हें 'कुलाष्टक'; और कौञ्चिकी, शौंडिकी, शस्त्रजीवी, रंजकी, गायकी, रजकी, शिल्पी, केशरी;—इन्हें 'रत्नकुलाष्टक' कहकर प्रतिष्ठित किया गया है। इनकी देवताबुद्धि से पूजा (संपूज्य देवताबुद्ध्या) करने का आदेश है।[१४०] कुल, कौल, कौलाचार आदि पारिभाषिक शब्दों से यह ध्वनि निकलती है कि तांत्रिक साधकों का अपना विशिष्ट कुल है। सामान्य जन जिसे अकुलीन कहते हैं, वह तंत्राचार में कुलीन माना जाता है। मानवता के नाते सभी कुलीन ही हैं।

कभी-कभी तंत्रशास्त्र को शाक्तों का शास्त्र समझा जाता है। किन्तु यह भ्रम है। 'युग-शास्त्र' होने के नाते यह शैवों, शाक्तों तथा वैष्णवों, सबके लिए सेव्य है। इष्ट-देवता के भेद से पूजा और साधना की विधि में भी कुछ अन्तर होते हैं। उदाहरणतः, विष्णु के लिए तुलसी, शिव के लिए बिल्व, और देवी के लिए 'ओड़हुल' पवित्र माने जाते हैं। उसी प्रकार काली को पशुबलि दी जाती है, किन्तु वैष्णव तंत्र में यह वर्जित है। पंचतत्त्व (पंच मकार) वामाचार में विहित है, किन्तु पश्वाचार में निषिद्ध है। इष्टदेवता-भेद से षोडशोपचार में भी अन्तर होता है और पूजा में न्यास, भूतशुद्धि आदि प्रक्रियाएँ भी पृथक् होती हैं। होम आदि की परम्परा वैदिक युग से ही अप्रतिरुद्ध चली आ रही है। तंत्रशास्त्र की इस व्यापक उपयोगिता के कारण विभिन्न आचारों में विभिन्न पारिभाषिक शब्दों के विभिन्न अर्थ माने जाते हैं। सामान्यतः वेदाचार, वैष्णवाचार, शैवाचार, दक्षिणाचार, वामाचार, सिद्धान्ताचार, कौलाचार—ये सात आचार माने गये हैं। कौलाचार सर्वश्रेष्ठ है।[१४१] एक अतिरिक्त आचार 'समयाचार' के नाम से भी विहित है। कौलाचार, जो वामाचार से मिलता-जुलता है, में भी पूर्व कौल और उत्तर कौल, ये दो उपभेद हैं। पूर्वकौल में साधक श्रीचक्र-स्थित चित्रित योनि की पूजा करते हैं; उत्तरकौल

में प्रत्यक्ष योनि की ही पूजा होती है। 'कौल' शब्द के संबंध में हमें यह जान लेना चाहिए कि यह एक पारिभाषिक शब्द है। स्वच्छंद-तंत्र में लिखा है कि कुल नाम है शक्ति का और अकुल नाम है शिव का; कुल में अकुल का संबंध कौल कहलाता है।[१४२] तंत्राचार की विविधता तथा व्यापकता के कारण पंच मकारों को पारिभाषिक मानकर उनके अनेक सूक्ष्म प्रतीकार्थ किये गये हैं। मद्य का तात्पर्य उस सुधा से है, जो योगावस्था में ब्रह्मरन्ध्रस्थित सहस्रदल कमल से टपकती है। खेचरी-मुद्रा के द्वारा इस प्रकार का अमृतपान संभव है।[१४३] उसी प्रकार योगिनी-तंत्र में लिखा है कि 'मातृयोनिं परित्यज्य मैथुनं सर्व-योनिषु।' इसका प्रतीकार्थ यह हुआ कि शक्तिमंत्र का जप करते समय तर्जनी अंगुली (मातृयोनि) की दो ऊपर की ग्रंथियों को छोड़कर सभी अँगुलियों की सभी ग्रंथियों के सहारे गिनती की जा सकती है। पुण्य-पापरूप पशु की ज्ञानरूपी खड्ग के द्वारा हत्या और मन को ब्रह्म में विलीन करना, यही मांस-भक्षण है।[१४४] इडा और पिंगला में प्रवाहित होनेवाले श्वास और प्रश्वास मत्स्य हैं; इनका प्राणायाम के द्वारा सुषुम्णा में संचार—यही मत्स्य-भक्षण है।[१४५] असत्-संग का मुद्रण, अर्थात् निरोध मुद्रा है।[१४६] सुषुम्णा में प्राणों का सम्मिलन अथवा सहस्रार में स्थित शिव का मूलाधार में स्थित कुण्डलिनी से मिलन मैथुन है।[१४७] इस प्रकार के प्रतीकार्थों का एक अपना इतिहास और उनकी एक अपनी परम्परा है; और जबतक तंत्र-शास्त्र का अनुशीलक इन्हें नहीं जानता, केवल शब्दों के वाच्यार्थों पर चलता है, तबतक उसकी दृष्टि एकांगी होगी ही।

तंत्रशास्त्र शक्ति की उपासना करता है। उसकी वह उपास्य देवी ही ब्रह्म है। वह नित्य सच्चिदानन्दरूप है।

> अहं देवी न चान्योऽस्मि, ब्रह्मैवाहं न दोषभाक्।
> सच्चिदानन्दरूपोऽहं नित्यमुक्तस्वभाववान् ॥

वह जगदम्बा, जगन्माता है।

> या काचिदङ्गना लोके सा मातृकुलसम्भवा। (कुलार्णव, पृ० १०४)

साधकों को यह आदेश होता है कि वे समग्र स्त्रियों की संभावना करें। यहाँ तक कि यदि कोई वनिता सैकड़ों अपराध करे, तो भी, उसे फूल से भी न मारें। स्त्रियों के दोषों की उद्भावना न करें, बल्कि गुणों की ही चर्चा करें।[१४८] यदि कुमारी कन्या या उन्मत्त स्त्री नग्नभाव में हो, तो उसके प्रति सद्भावना दरसावें, उसकी निन्दा न करें। महानिर्वाण-तंत्र में यह कहा गया है कि प्रत्येक रमणी देवी-स्वरूपा है।

> तव स्वरूपा रमणी जगत्याच्छन्नविग्रहा।—१०.७९-८०

भारतीय सामाजिक मनोवृत्ति के इतिहास में नारी के प्रति यह संभावना तंत्रशास्त्र की एक अमूल्य देन है। कुमारी-पूजा तांत्रिक साधना का एक ऐसा अंग है, जिसके द्वारा साधक नारीत्व के प्रति पवित्र भावना को अपने हृदय में दृढ़ करना चाहता है। नग्न एवं वस्त्रालंकारभूषित दोनों वेषों में कुमारियों की पूजा का विधान है। किन्तु मूल लक्ष्य यही है कि शक्ति के सभी रूपों के प्रति श्रद्धा तथा सम्मान का भाव जागरित एवं परिपुष्ट किया जाय। कुमारी-पूजा की विधि का विस्तार योगिनी-तंत्र में देखा जा सकता है।

तंत्रशास्त्र का दार्शनिक आधार भी सर्वजनसुलभ है। आज के युग में हमने अद्वैत को शायद आवश्यकता से अधिक प्रश्रय दे रखा है। केवल ब्रह्ममय जगत् कहने से जगत् की व्याख्या नहीं हो जाती। ब्रह्म तो सत्य है ही, उसकी लीला, अर्थात् जगत् भी सर्वसाधारण के लिए कम सत्य नहीं है। अतः तंत्रशास्त्र के साधना-पथ में संसार और इसकी प्रवृत्तियों को असत्य अथवा निंद्य समझकर उपेक्षित नहीं किया जाता। साधक को अद्वैत के माधुर्य तथा परमानंद के आस्वादन के लिए द्वैत जगत् के भौतिक आनंद का आस्वादन करना चाहिए। उसे पहले प्रवृत्ति और निवृत्ति के बीच का मध्यमार्ग अपनाना होगा, और क्रमशः उसका अतिक्रमण करना होगा। साधक जब स्वयं तुरीयावस्था में पहुँच जाता है, तब उसका द्वैत अद्वैत में परिणत हो जाता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि तंत्रशास्त्र वेदान्त अद्वैत के साथ द्वैत का समन्वय प्रतिपादित कराता है।

तंत्रशास्त्र-सम्बन्धी यह चर्चा सम्भवतः अधूरी होगी यदि पंचमकार और उस पर आधारित साधना की विश्लेषणात्मक विवेचना न की जाय। यदि यह भी मान लिया जाय कि पंचमकार के प्रतीकार्थ की आवश्यकता नहीं है और साधना के लिए इनकी यथातथ्य उपयोगिता है; तो, उस स्थिति में भी, ऐसे व्यक्ति के लिए, जो स्वयं तंत्रमार्ग में दीक्षित नहीं है, बौद्धिक आधार अथवा तर्कसम्मत व्याख्या की अपेक्षा होगी ही। सर्वप्रथम बात यह है कि तंत्र-साधना मानव को एक सम्पूर्ण मानव के रूप में स्वीकार करती है। मानव केवल अध्यात्म का पुतला नहीं है। उसकी नसों में इन्द्रियजन्य लालसाएँ और वासनाएँ जीवित, जाग्रत् एवं स्पन्दनशील हैं। यदि इन तृष्णाओं को हठात् कुण्ठित कर दिया जाय तो, जैसा कि आधुनिक मनोविश्लेषण-शास्त्र कहता है, वे केवल दब जायेंगी, मरेंगी नहीं। जिस प्रकार काम शिव के त्रिनेत्र की ज्वाला से भस्म होकर पहले से कहीं अधिक सूक्ष्म, व्यापक और शक्तिशाली बन गया, और आज भी बना हुआ है, उसी प्रकार हमारी प्रवृत्तियाँ रुद्ध होने पर अन्तर्धारा के रूप में हमें अज्ञात रूप से सताती रहेंगी। तंत्रशास्त्र कहता है कि इन्द्रियों की प्रवृत्तियों का हठात् एवं कृत्रिम निरोध अस्वाभाविक तथा अप्राकृतिक है। योग के साथ भोग का सामंजस्य होना चाहिए।[१४१] ऐन्द्रिय प्रवृत्तियों की तृप्ति होनी चाहिए, ताकि साधना में चित्त रमे। इस तृप्ति के दो लक्ष्य हो सकते हैं, जिन्हें हम 'अवतृप्ति' और 'उत्तृप्ति' की संज्ञा देंगे। देखिए सांकेतिक चित्र—
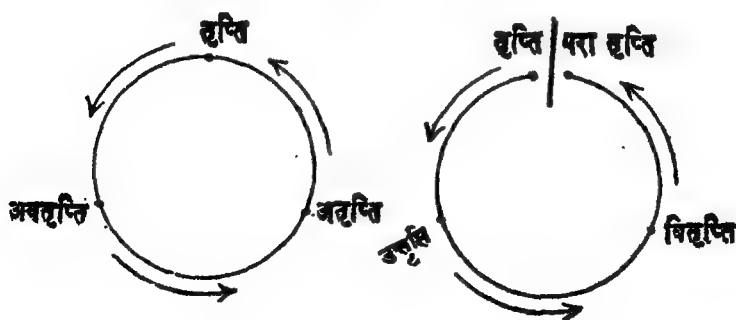
प्रवृत्ति-मार्ग में यदि हमारा यह लक्ष्य हुआ कि हम प्रवृत्ति में अधिकाधिक उलझते जायँ, तब तो यह हीन प्रकार की तृप्ति अर्थात् अवतृप्ति हुई, जिसकी परिणति होगी अतृप्ति के चक्कर में। किन्तु यदि हमारा चरम लक्ष्य निवृत्ति हो, तो उसमें तृप्ति का उन्नयन होगा और इसलिए हम उसे उत्तृप्ति कह सकते हैं। अवतृप्ति के द्वारा हम अधिकाधिक अतृप्ति की दिशा में बढ़ते चले जायेंगे, किन्तु उत्तृप्ति के द्वारा हम तृप्ति का अतिक्रमण कर सकेंगे और तृप्ति की लालसा से विरहित हो सकेंगे। इसे हम वितृप्ति कह सकते हैं। तृष्णाओं के प्रति इस वितृप्ति अथवा क्रमिक विरक्ति का परिणाम यह होगा कि हम अतीन्द्रिय अथवा आध्यात्मिक तृप्ति की कामना करने लगेंगे। इसे हम 'परातृप्ति' कह सकते हैं। यही है वह परमानन्द, जो शिव-शक्ति के तादात्म्य से तुरीयावस्था में साधक को प्राप्त होता है।

वासनाओं के उन्नयन की दृष्टि से ही तंत्राचार में यह विशिष्ट निर्देश है कि मांस, मद्यादि द्रव्यों का पूजा तथा जप में उपयोग एकमात्र देवता को प्रसन्न करने के लिए, तथा ठीक-ठीक शास्त्रोक्त विधि के अनुसार ही होना चाहिए।[१५०] बिना विधान के तृण को भी काटना निषिद्ध है, जीवहिंसा तो दूर रही।[१५१] आत्मतुष्टि के लिए हिंसा नितान्त वर्जित है।[१५२] याग-काल के अतिरिक्त पंचमकार का सेवन दूषण है।[१५३] जो शास्त्रविधि का परित्याग करके मनमाना आचरण करता है, वह सिद्धि नहीं प्राप्त कर सकता और मरने पर नरकलोक का भागी होता है।[१५४] विधिविहित मैथुन में कामुकता नहीं होनी चाहिए।[१५५] यह तंत्रशास्त्र की अति रहस्यमय विशेषता है कि उसने अनासक्त मैथुन की कल्पना की है। इसीलिए जहाँ कुलार्णव-तंत्र में एक ओर पंचमकार का सबल मंडन है, वहाँ साथ ही साथ उसके अवैध सेवन का सबल खंडन भी है। यदि मद्यपान से सिद्धि होती, तो सभी पामर मद्यप सिद्ध बन जायँ। यदि मांसभक्षण तथा स्त्रीसंभोग-मात्र से मुक्ति मिलती, तो सभी मांसाशी जन्तु मुक्त हो जाते।[१५६] सभी तंत्रग्रंथों में साधक के निर्लिप्तभाव और समरसता पर बल दिया गया है। योगी वही है, जिसका जीवन परोपकार के लिए है,[१५७] जो जीवित होते हुए भी वासनामय जगत् के लिए मृतवत् है,[१५८] जीवन्मुक्त है; भोगी होते हुए भी त्यागी है। जिस प्रकार सूर्य सर्वपायी हैं, अनल सर्वभोगी हैं;[१५९] कौल योगी भी उसी प्रकार पेयापेय, भक्ष्याभक्ष्य में अन्तर नहीं देखता। साधना के क्रम में वह महामांस, अर्थात् मानव-मांस का भी भक्षण कर सकता है।[१६०] पंचमकार के कुछ द्रव्यों की, साधना में विशिष्ट उपयोगिता स्वतःसिद्ध है। किसी भी साधनाविधि में सर्वप्रथम आवश्यकता है चित्तवृत्ति की एकाग्रता की,—एक ही धुन हो, एक ही चिन्ता—इष्टदेवता। इस प्रकार की चित्तवृत्ति उद्भूत करने के लिए मदिरा बहुत सहायक होती है। उसके आमोद में इच्छाशक्ति, द्रव में ज्ञानशक्ति और आस्वाद में क्रियाशक्ति जाग्रत् होती है। वह 'चित्तशोधनसाधनी' है।[१६१]

तंत्रशास्त्र में श्मशान को अनेक साधनों का उपयुक्ततम स्थान माना गया है। देवी को शव के कर्णभूषण से युक्त, शव पर आसीन, भैरवों और योगिनियों से परावृत, श्मशान में निवास करनेवाली आदि विशेषणों से वर्णित किया गया है।[१६२] परिशिष्ट में हम शव-साधन की विधि का निदर्शन करेंगे। किन्तु इस प्रसंग में यह चर्चा इसलिए की गई है कि

श्मशान की उपयोगिता की परीक्षा की जाय। इस संबंध में हमने अनेक 'पहुँचे हुए' औघड़ साधुओं से विचार-विमर्श किया है। उन्होंने स्थूलरूप से यह बतलाया, और हम इससे सहमत हैं, कि जितनी निष्ठा से श्मशान में मध्यरात्रि में जप या ध्यान किया जा सकता है, चित्त की जितनी आत्यन्तिक एकाग्रता श्मशान में अनायास संपन्न हो सकती है, मन पर विजय प्राप्त करने की क्षमता जितनी वहाँ अर्जित होगी, उतनी अन्यत्र नहीं। मनुष्य का मन कितना चंचल है, यह सभी अनुभव करते हैं। जागते में तो आकाश-पाताल के कुलाबे जोड़ता ही है, सोये में भी उतनी ही तेजी से विचरण करता है। ऐसे मन को वर्षों की साधारण ध्यान-पूजा से भी वश में नहीं किया जा सकता, किन्तु श्मशान की एक घंटे की घोर साधना से नियंत्रित किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त प्रायः हम सबों का व्यक्तिगत अनुभव है कि हम जब किसी शव की रथी के साथ श्मशान जाते हैं, तब कम-से-कम उतनी देर, जब तक कि हम वहाँ रहते हैं, हममें वितृष्णा तथा वैराग्य की प्रबल भावना का उद्रेक होता है। अतः यदि कोई साधक बराबर, या प्रायः, श्मशान में रहता हो, तो उसके हृदय में वैराग्य की भावना का अनायास तथा सबल विकास होना सहज है। हमने चम्पारन की यात्रा में बहुत-से ऐसे सरभंग साधुओं को देखा, जिनके मठ या तो श्मशान में हैं या नदी के तीर पर एकान्त में।

साधना के सोपान में आठ बहुत बड़े बाधक हैं, वे ही पाश के समान हमें जकड़े हुए हैं—घृणा, लज्जा, भय, शोक, जुगुप्सा, कुल, शील तथा जाति।[१६३] इन पर विजयी होना साधक के लिए आवश्यक है। पंचमकार, श्मशान-साधना आदि विधान ऐसे हैं, जिनके द्वारा इस दिशा में कम समय में अधिक सिद्धि प्राप्त हो सकती है। आज भारत में जाति का आधार लेकर समाज तथा राष्ट्र का कितना अनिष्ट किया जा रहा है, यह सभी अनुभव करते हैं। तंत्रशास्त्र ने जाति-प्रथा के विरुद्ध आवाज उठाकर क्रांति का संदेश-वहन किया है। किन्तु जाति-प्रथा की परम्परा इतनी सनातन तथा सबल रही कि इसके विरुद्ध जितनी भी क्रान्तियाँ हुईं, वे या तो उगने नहीं पाईं या उगीं भी, तो अल्प-कालीन रहीं। मर्यादावाद के नाम पर सभी क्रान्तिकारी विचारों और सिद्धान्तों को लोकबाह्य घोषित किया गया। बौद्ध, जैन, अनेकानेक निर्गुण-सम्प्रदाय—सब इस मर्यादावाद के आघात-प्रतिघात में कुचल दिये गये। यदि अंशतः जीवित रहे, तो इस कारण कि उन्होंने भी मर्यादावाद का अनुकरण या विडम्बना की। किन्तु हमें इन सभी सम्प्रदायों को यह श्रेय देना होगा कि उन्होंने रूढ़िगत मान्यताओं के विरुद्ध आन्दोलन किया। तंत्रशास्त्र को भी यह श्रेय है, बल्कि अधिक मात्रा में; क्योंकि इसने हिन्दुत्व के अंचल में हिन्दुत्व के विरुद्ध विप्लव किया।

तंत्रशास्त्र का प्रभाव केवल भारतवर्ष तक सीमित न था। इसने तिब्बत, चीन[१६४] आदि में भी प्रवेश किया और वहाँ बौद्ध तांत्रिकों की एक अलग परम्परा चल पड़ी। इस परम्परा में अनेकानेक बौद्ध सिद्ध हुए, जिनके संबंध में हममें से सभी कुछ-न-कुछ जानकारी रखते हैं। सरह, शबर, लुई, दारिक, घण्टा, जलन्धर, डोम्बिपा, कण्हपा, तैलोपा, विरूपा आदि बौद्ध सिद्धों की 'बानियाँ' न केवल धार्मिक दृष्टि से, अपितु भाषा

के विकास की दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण मानी गई हैं। जलन्धर, जिन्हें आदिनाथ भी कहा जाता है, की शिष्य-परम्परा में मत्स्येन्द्र और गोरखनाथ, तथा दक्षिण में ज्ञानेश्वर हुए। इससे यह अनुमान किया जा सकता है कि बौद्ध सिद्धों ने उत्तरवर्ती सन्त विचार-धारा को कितना अधिक प्रभावित किया। सरह आदि सिद्धों ने वसुबन्धु, दिङ्नाग और धर्मकीर्त्ति आदि के महायान बौद्धधर्म को मंत्रयान, वज्रयान या सहजयान के नाम से एक नये साँचे में ढाला। इन्होंने पुरानी परम्पराओं और धारणाओं का पुनर्मूल्यांकन किया और साथ ही साथ तंत्रशास्त्र के सिद्धान्तों को बौद्ध-शून्यवाद आदि के साथ समन्वित करके जनसमाज के सम्मुख उपस्थित किया। मंत्रयान शून्यवाद के सूक्ष्म विवेचन को लेकर आरम्भ हुआ था। जब सामान्यजन बुद्धधर्म के सूक्ष्म दार्शनिक विचारों को नहीं समझने लगे, तब भिक्षुकों ने कुछ अर्थरहित शब्दों को जनता के सामने रखा और यह बतलाया कि इनके बार-बार उच्चारण करने से निर्वाण (शून्य) की प्राप्ति हो सकती है। इन निरर्थक शब्द-समुदायों को 'धारणि' नाम दिया गया और धारणि के छोटे रूप को मंत्र की संज्ञा दी गई। मंत्रयान वह हुआ, जिसमें मंत्र के मार्ग से मोक्ष-प्राप्ति का विधान हो। नागार्जुन के समकालीन ऊसंग ने मंत्र के साथ तंत्र का भी प्रयोग चलाया; अर्थात्, तंत्रों में जो पंचमकार आदि विधियाँ प्रतिपादित की गई हैं, उनका मंत्र के साथ ग्रंथिबंधन किया। अतः इस प्रकार के मंत्रयान को तंत्रयान भी कहा जाता है। नागार्जुन ने शून्य को वज्र नाम दिया; क्योंकि वह (निर्वाण) वज्र की तरह अभेद्य है। इसी कारण मंत्रयान का एक नाम वज्र नाम भी हुआ। सहजयान नाम इसलिए पड़ा कि जिस प्रकार निर्वाणरूपी लक्ष्य को वज्रवत् अभेद्य माना गया, उसी प्रकार उसे सहज, अर्थात् सत्य या नैसर्गिक समझा गया। सहजयान में वज्रयान से इस रूप में अन्तर था कि सत्य की प्राप्ति के लिए तत्त्व की दीक्षा तथा योग का अभ्यास आवश्यक समझा जाता था। साधकों का यह विश्वास था कि स्वाभाविक प्रवृत्तियाँ स्वतः मनुष्य को उसके लक्ष्य तक ले जायँगी। आचार्य अवधूतिपा ने 'कुदृष्टि-निर्घात-क्रम' में दो प्रकार के साधक बताये हैं—शैक्ष तथा अशैक्ष। शैक्ष अविकसित मनवाले होते हैं। अतः इन्हें आचार के नियम पालन करने पड़ते हैं। अशैक्ष विकसित होते हैं और उन्हें आचारगत स्वतंत्रता रहती है। वे केवल 'सहज स्वभाव' धारण करने पर अधिक बल देते हैं। इस संदर्भ में सहज का अर्थ है प्रज्ञोपायात्मक, अर्थात् सहज वह अद्वय तत्त्व है, जो प्रज्ञा और उपाय के सहगमन से उद्भूत हो।[११५]

अघोर या सरभंग संत-सम्प्रदाय की तंत्रशास्त्र के साथ जो संबंधशृंखला है, उसमें बौद्ध सिद्धों ने मध्यम कड़ी का स्थान लिया। इसीलिए हम देखते हैं कि सरभंग संतों के साहित्य में शून्य, शून्यलोक, सहज, खसम, चाँद, सूर्य, समरस आदि पारिभाषिक शब्दों तथा उनपर आश्रित भावनाओं का पर्याप्त समावेश है। हिन्दुओं तथा मुसलमानों के बाह्याचारों और पाखण्डों के तीव्र खण्डन की जो परम्परा हम संत-मत के विभिन्न सम्प्रदायों में पाते हैं, उसकी सीधी प्रेरणा उन्हें इन सिद्धों से मिली। गुरु के प्रति अनन्य आस्था और वेदशास्त्रों के पुस्तकीय ज्ञान के प्रति अनास्था तंत्रशास्त्रों, बौद्ध सिद्धों

और विभिन्न संतमतों में समान रूप से विद्यमान है। तंत्र-ग्रंथों में अनेक स्थलों में चीनक्रम या महाचीनक्रम आदि का उल्लेख है। महाचीनक्रम का इस तांत्रिक पद्धति से तात्पर्य है जो तिब्बत, चीन आदि देशों में बौद्धधर्म के अंचल में विकसित हुई और जिसने सरह आदि सहजयानी सिद्धों को प्रभावित किया। इन सिद्धों ने भी तांत्रिकों की नाईं अपनी चर्या में पंचमकार को प्रश्रय दिया। मैथुन आदि के संबंध में अनायास यह प्रश्न उठ सकता है कि वासना से वासना को वश में कैसे किया जा सकता है? इस संबंध में बौद्ध सिद्धों का यह तर्क है कि जिस विष से प्रायः प्राणी मरते हैं, उसी विष के प्रयोग से विषतत्त्वज्ञ विष का निराकरण करता है।[१६६] इसी कारण जहाँ सहजयानी सिद्धों ने 'युगनद्ध' के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है, वहाँ साथ ही साथ साधकों को यह चेतावनी दी है कि विषय में रमण करते हुए भी विषय से निर्लिप्त रहना चाहिए।[१६७]

'सहज' शब्द का प्रयोग तंत्रों में भी हुआ है। किन्तु हम सरहपा को सहजवाद का प्रथम आचार्य मान सकते हैं; क्योंकि उन्होंने ही सहजयान को सम्प्रदाय के धरातल पर प्रतिष्ठित किया। उन्होंने यह बताया कि जीवन की सहजात अथवा प्रकृतिगत प्रवृत्तियों के नियंत्रण के बिना ही ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति हो सकती है। कबीर आदि संतों ने जिस सहज समाधि की बार-बार चर्चा की है, उसे उन्होंने सिद्धों से ही लिया था।[१६८] सिद्धों ने अपने भावों को प्रकट करने के लिए कहीं-कहीं बड़ी ही चुभती तथा साभिप्राय भाषा का प्रयोग किया है। हठयोग आदि अप्राकृतिक अभ्यासों और शारीरिक आयासों को उन्होंने बड़े ही व्यंग्यात्मक ढंग से 'काष्ठ'-योग की संज्ञा दी है।[१६९] इसके विपरीत सहजयान को 'ऋजु'-मार्ग कहा गया है। उनके अनुसार वेदशास्त्रों द्वारा प्रतिपादित विधि टेढ़ी (वंक) है। इसे छोड़कर सिद्धों की ऋजु-पद्धति को अपनाना चाहिए।[१७०] इस ऋजु-मार्ग में भी स्वर-साधना आवश्यक है। इडा और पिंगला[१७१]—दोनों का नियंत्रण करके उन्हें सुषुम्णा-मार्ग में प्रवाहित करना चाहिए, जिससे कि स्वर की गति 'समरस' हो। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि स्वर-साधना और समरसता पर अघोर या सरभंग संतों ने भी, अथवा यों कहिए कि सभी निर्गुणवादी संतों ने, बल दिया है। स्वर-साधना के द्वारा चित्त में विश्रान्ति[१७२] की एक ऐसी अवस्था आती है, जो निर्विकल्प समाधि के समान होती है। इसी कारण इसे 'शून्य',[१७३] निरंजन' आदि की संज्ञा दी गई है। इसे ही 'परम महासुख' भी कहा गया है। परम महासुख वह दशा है, जिसका न आदि है, न अन्त, न मध्य; न वह भय है, न निर्वाण; न वह पर है, न अपर; न बिन्दु, न चित्त; न ग्राह्य, न त्याज्य; वह अक्षरों और वर्णों की सामर्थ्य से परे है।[१७४] जिस 'खसम' शब्द का पश्चाद्वर्त्ती संत-साहित्य में प्रायः 'पति' के सामान्य अर्थ में प्रयोग हुआ है, उसका सिद्धों ने आध्यात्मिक अर्थ में प्रयोग किया है।[१७५] अघोर-मत में सामाजिक परम्पराओं के प्रति वैसा ही तीव्र विरोध मिलता है, जैसा कि तंत्रशास्त्रों में। यह विरोध सिद्धयान की भी उल्लेखनीय विशेषता है। भक्ष्य, अभक्ष्य, गम्य-अगम्य, के भेदभावों को सिद्धों ने ढोंग माना है। इन सिद्धों के डोम्बिपा, शबरपा, कुक्कुरिपा, सर्वभक्ष अवधूती आदि नाम इस बात के सूचक हैं कि शूद्र, स्त्री,

आदि तथाकथित नीच जातियों के प्रति हीन भावना, और वर्णाश्रम तथा मर्यादावाद के नाम पर कृत्रिम नियंत्रण के प्रति सिद्धों ने प्रतिक्रियात्मक आन्दोलन खड़ा किया। तीर्थव्रत आदि के नाम पर विधि-निषेधों का जो बहुत बड़ा वात्याचक्र निर्मित कर दिया गया है, उसका इन सिद्धों ने जोरदार प्रतिरोध किया।[१७६] गुरु के प्रति सद्भावना तंत्र-साहित्य, सिद्ध साहित्य और संत साहित्य में समान रूप से विद्यमान है।[१७७]

'युगनद्ध' के संबंध में कुछ विचार करना इसलिए आवश्यक है कि बौद्ध सहजयान के इस पक्ष को लेकर जनसामान्य के मस्तिष्क में अनेक प्रकार की भ्रान्तियाँ घर कर गई हैं—वे ही भ्रान्तियाँ जो तांत्रिकों के पंचमकार और कतिपय सरभंग साधुओं के साथ रहनेवाली 'माईराम' के संबंध में हैं। सर्वप्रथम हमें इस बात का ध्यान रखना चाहिए, और हम इसे अपने व्यक्तिगत अनुभव के आधार पर बलपूर्वक कहना चाहेंगे, कि जिस तांत्रिक और अघोर-सम्प्रदाय का नाम सुनते ही हम नाक-भौं सिकोड़ लेते हैं उसमें अनेकानेक अभी भी ऐसे हैं, जो विद्वत्ता, तपश्चर्या, त्याग, परोपकारवृत्ति, संयम, आत्मचिन्तन—सभी दृष्टियों से अत्युच्च धरातल पर अवस्थित हैं। यदि ऐसे लोकोत्तर व्यक्ति साधना के पथ में, मात्र आचारकाल में, किन्हीं ऐसे विधानों को मान्यता देते हैं, जिन्हें सामान्य जनता अमर्यादित मानती है, तो स्पष्ट है, हम विचारशील और अनुशीलन-परायण व्यक्तियों को, जनसाधारण की नाईं गड्डरिका-प्रवाह में नहीं बहना चाहिए। हमें उनके मर्म और रहस्य का तटस्थ बुद्धि से अनुसन्धान करना चाहिए। दूसरी बात यह है कि मर्यादित आचार सर्वदा सापेक्ष हुआ करते हैं,—देश, काल और परिस्थिति के अनुसार उनका मानदण्ड बदलता रहता है। गोमांस-भक्षण को ही लीजिए। यह हिन्दुओं के लिए एक अत्यन्त अमर्यादित आचार है; किन्तु ईसाइयों और मुसलमानों की दृष्टि में इस विषय में मर्यादा का कोई प्रश्न ही नहीं है। मन्दिर, मस्जिद, गिरजा; ईश्वर, अल्ला, गॉड,—विभिन्न धर्मावलम्बियों के लिए इनमें आस्था बिलकुल सापेक्ष है। कैथलिक पादरी के लिए गृहस्थ जीवन उपेक्ष्य है, किन्तु प्रोटेस्टेण्ट के लिए अपेक्ष्य है। शैव के लिए मांसभक्षण ग्राह्य है, वैष्णव के लिए गर्ह्य (गर्हित) है। इस प्रकार हम यह देखेंगे कि आहार-विहार-संबंधी हमारे जितने भी नियम अथवा स्वीकृत आचार हैं, वे सभी केवल सीमित मान्यता के भाजन हैं। तीसरी बात यह है कि कभी-कभी बहुसंख्यक जनसमुदाय ऐसी रीति-नीतियों को भी मान्यता देता है, जिनका कोई बौद्धिक आधार नहीं है; उनकी मान्यता का एकमात्र आधार निर्जीव परम्परा है। हिन्दू-समाज की जात-पाँत की प्रथा को ही लीजिए। किसी युग में भले ही इसकी उपयोगिता रही हो, किन्तु आज यद्यपि इसने भारत के समग्र राष्ट्रीय तथा सामाजिक जीवन में प्रवेश कर रखा है, बीसवीं शताब्दी के इस वैज्ञानिक युग में इसकी, जिस रूप में वह इस समय है, उपयोगिता नगण्य है। बहुत से सरभंग संत और 'माईराम' हिन्दुत्व की रूढ़ जात-पाँत-प्रथा की ही देन हैं।[१७८] एक तो बाल-विवाह की प्रथा, दूसरे, उच्च कुलों में विधवा-विवाह का निषेध। आज भी इसका दुष्परिणाम यह होता है कि बहुसंख्यक स्त्रियाँ वेश्या बन जाती हैं; अनेकानेक धर्मपरिवर्तन करती हैं; और कुछ तो घुट-घुट कर आजीवन तुषाग्नि में जलती रहती हैं। यदि सरभंग-संप्रदाय ने इस

प्रकार की उपेक्षिताओं और अधिक्षिप्ताओं को शरण दी, उन्हें एक नियंत्रित और मर्यादित जीवन-सरणि दी, तो शायद उसने समाज की अमूल्य सेवा की। यदि कोई व्यक्ति आज जात-पाँत का तीव्र विरोध करे, तो यह उसकी महत्ता का परिचय होगा, चाहे भले ही उसके विरोध का गला उसी तरह से रुँध जाय, जिस तरह से संत-परम्परा के अनेकानेक मतवादों के विप्लवी विचार कुंठित हो चुके हैं। इस प्रकार के मतवाद अपनी महत्ता के होते हुए भी भारतीय समाज में न प्रश्रय पा सके हैं और न शायद पायेंगे। ये क्रांति के प्रतीक रहे; किन्तु क्रांति के सफल न हो सकने के कारण ये स्वयं आक्रान्त हो गये। सहानुभूतिपूर्ण दृष्टि से विचार करने पर हमें यह स्वीकार करना पड़ेगा कि संत-मत की अघोर शाखा क्रान्ति और महत्ता का प्रतीक है, किन्तु रूढ़ि और परम्परा के अन्ध बहुमत ने केवल इसके कृष्णपक्ष को उदभावित किया और शुक्लपक्ष को सतह के ऊपर नहीं आने दिया।

विधिविहित मैथुन[१७९] (जिसे 'लता-साधन' भी कहा जाता है) और युगनद्ध के आधारभूत सिद्धान्तों का सुन्दर विवेचन श्री एच्. वी. ग्वेन्थर (H. V. Guenther) ने अपने ग्रंथ 'युगनद्ध' में विस्तार से किया है। संक्षेप में उनका अभिमत यह है कि युगनद्ध के सिद्धान्त मनोवैज्ञानिक तथा प्राकृतिक आधार पर अवस्थित हैं।[१८०] प्रत्येक व्यक्ति पिता और माता, पुरुष और स्त्री के वीर्य और रज से उत्पन्न हुआ है। अतः उसे अनिवार्य रूप से उभयलिंगी प्रकृति मिली है; उसमें पुंस्त्व और स्त्रीत्व दोनों मिलकर 'समरसीभूत' हुए हैं।[१८१] दूसरे शब्दों में, प्रत्येक पुरुष में स्त्रीत्व निहित है और प्रत्येक स्त्री में पुंस्त्व। ये तत्त्व, अर्थात् स्त्रीत्व और पुंस्त्व परस्पर-विरोधी (contrary) भी हैं और परस्पर पूरक (complimentary) भी। पुरुष साधक अपने व्यक्तिगत अन्तर्विरोध का समाधान दो तरह से कर सकता है—अप्राकृतिक ढंग से स्त्री-तत्त्व का निरोध करके, प्राकृतिक ढंग से दोनों का साहचर्य करके। तथाकथित हठयोगी, आजन्म ब्रह्मचारी आदि प्रथम पद्धति का आश्रयण करते हैं। वे प्रत्यक्ष रूप से भले ही अपने प्रकृतिगत द्वैत में एकत्व का आधान कर पाते हैं, किन्तु यदि उनकी अज्ञात तथा अंशज्ञात मनोवृत्तियों का विश्लेषण किया जाय, तो उनमें सर्वदा एक खिंचाव या तनाव (tension) का आभास मिलेगा। युगनद्ध का सिद्धान्त, इसके विपरीत, साहचर्य की पद्धति को अपनाता है और मानव-जीवन में अन्तर्निहित वैषम्य अथवा तनाव को उन्मुक्त (release) करने की चेष्टा करता है। वर्त्तमान मनोविश्लेषण-शास्त्र के अनुसार नैराश्य (frustration), हीन मनोवृत्ति (Inferiority complex), एकांगिता, नारीत्व-जुगुप्सा अथवा नारीत्व-विरोध, तथाकथित 'कामिनी' के रूप में नारीत्व की भर्त्सना आदि मानसिक विकृतियों का मूल कारण प्रकृतिगत स्त्रीत्व तथा पुंस्त्व का हठात् नियंत्रण है।

अबतक विश्व के दर्शनशास्त्र की कुछ ऐसी प्रवृत्ति रही है कि उसने अध्यात्म (Spirituality) को आवश्यकता से अधिक गौरव प्रदान किया है और सहज अन्तर्वृत्ति (Instinct) को पशुत्व कहकर अधिक्षिप्त किया है। दर्शन की दूसरी परम्परा ने अन्तर्वृत्ति को, भूत-तत्त्व (Matter) को, सर्वाधिक महत्त्व दिया है। अध्यात्मवादी की दृष्टि

में अध्यात्म ही एकमात्र तथ्य है। भूतवादी की दृष्टि में ऐन्द्रिय प्रवृत्तियाँ ही सब कुछ हैं। वस्तुतः अध्यात्मवादी और भूतवादी दोनों ही 'बस-यही-वाद' (Nothingbutism) के शिकार हैं। तथ्य है दोनों के समन्वय में। मानव का स्त्रीत्व शक्ति का प्रतीक है, और उसका पुंस्त्व शिव का। युगनद्ध साधना के द्वारा शिव-शक्ति के अद्वैत को चरितार्थ करना साधक का लक्ष्य होता है। हमें स्मरण रहना चाहिए कि 'युगनद्ध' आनन्द के अनेक स्तरों का प्रतीक है, जिन्हें क्रमशः आनन्द, परमानन्द[१८,१] विरमानन्द और सहजानन्द की संज्ञा दी गई है। जो व्यक्ति युगनद्ध को परमानन्द का प्रतीक न मानकर परमानन्द ही मान लेते हैं, वे भूल करते हैं। वे व्यक्ति भी भूल करते हैं, जो नारी को कामवासना की परितृप्ति का माध्यम मानकर चलते हैं, वस्तुतः साधक के लिए उसकी संगिनी-शक्ति अनन्य श्रद्धा और संभावना की पात्री है। ग्वेन्थर ने गेटे (Goethe) के फॉस्ट (Faust) से कुछ पंक्तियों को उद्धृत किया है, जिनमें नारी के प्रति ये विचार व्यक्त किये गये हैं कि उसके माध्यम से पुरुष अपनी उच्चतम तथा सूक्ष्मतम अनुभूतियों में साफल्य-लाभ कर सकता है।[१८२]

अन्त में यह संकेत कर देना आवश्यक है कि बौद्धमत में 'प्रज्ञा' ही 'शक्ति' का स्वरूप है और तांत्रिक उपासना भी 'शक्ति' की उपासना है। बौद्धधर्म में तांत्रिक बौद्धों की एक अलग शाखा है, जिसका साहित्य शैव-शाक्त तंत्र-साहित्य से बहुत अंशों में मिलता-जुलता है और जिसके युगनद्ध सिद्धान्त की समीक्षा अभी की गई। तांत्रिक बौद्धों में षडंग योग[१८३] का भी विधान है। कहने का आशय यह है कि बौद्धधर्म पर आगमों और तंत्रों का प्रभाव पड़ा और फिर इस बौद्धधर्म ने भी संत-मत को प्रभावित किया। हमने बौद्ध वज्रयानी-परम्परा के सिद्धाचार्यों की विचारधारा का कुछ विश्लेषण किया है। उससे यह पता चलता है कि सिद्ध-मत के सिद्धान्त और साधना तथा सरभंग-मत के सिद्धान्त और साधना में बहुत कुछ साम्य है। सिद्धों के अनुसार संसार माया-निर्मित मोह-जाल है, शून्य अथवा सहज में निर्वाण की प्राप्ति होती है; बुद्धों और तारा आदि देवियों के परस्पर 'युगनद्ध' होने से 'महासुख' की प्राप्ति होती है; साधना के लिए चित्त-शुद्धि षडंग योग तथा गुरु का निर्देश आवश्यक है; साधनाओं के द्वारा अनेकानेक सिद्धियों की उपलब्धि संभव है। यदि हम प्रस्तुत मुख्य ग्रन्थ का अनुशीलन करेंगे, तो स्पष्टतः प्रतीत होगा कि सिद्ध-मत की प्रायः ये सभी विशेषताएँ[१८४] सरभंग-मत में भी हैं।

जहाँ तक कबीर आदि निर्गुण संतों का प्रश्न है, यह निर्विवाद है कि उनसे 'सरभंग' अथवा अघोर संत-मत विशेष रूप से प्रभावित हुआ।[१८५] वस्तुतः हम इस मत को निर्गुण संत मत के व्यापक एवं बहुरंगी उपवन में एक ऐसा विटप मानेंगे, जो तांत्रिक शैव-मत तथा गोरख-पंथ के आलबाल में पनपा, फूला और फला।[१८६]

टिप्पणियाँ

१. ऋग्वेद । १० । १० । १२१
२. बृहदारण्यकोपनिषद् । ४ । १०
३. छान्दोग्योपनिषद् । ६ । २ । १
४. ऐतरेयोपनिषद् । २ । १ । १
५. बृहदारण्यकोपनिषद् । २ । ५ । १९
६. छान्दोग्योपनिषद् । ६ । ८ । ७
७. छान्दोग्योपनिषद् । १४ । १
८. बृहदारण्यकोपनिषद् । ४ । १९
९. मुण्डकोपनिषद् । २ । ९
१०. श्वेताश्वतरोपनिषद् । ६ । १९
११. श्वेताश्वतरोपनिषद् । ६ । ११
१२. बृहदारण्यकोपनिषद् । १० । ८ । ८
१३. श्वेताश्वतरोपनिषद् । ४ । १९
१४. श्वेताश्वतरोपनिषद् । ५ । ७
१५. श्वेताश्वतरोपनिषद् । ५ । १२
१६. श्वेताश्वतरोपनिषद् । ६ । १३
१७. बृहदारण्यकोपनिषद् । ५ । १४
१८. बृहदारण्यकोपनिषद् । ३ । १६
१९. बृहदारण्यकोपनिषद् । ३ । ११
२०. श्वेताश्वतरोपनिषद् । ६ । १५
२१. श्वेताश्वतरोपनिषद् । ६ । १
२२. छान्दोग्योपनिषद् । ६ । २ । १
२३. छान्दोग्योपनिषद् । ६ । २ । ३
२४. बृहदारण्यकोपनिषद् । २ । ५ । १९
२५. श्वेताश्वतरोपनिषद् । ४ । ९ एवं १०
२६. श्वेताश्वतरोपनिषद् । ५ । ६
२७. मुण्डकोपनिषद् । २ । ८ तथा ९
२८. बृहदारण्यकोपनिषद् । ४ । ४ । १०
२९. प्रश्नोपनिषद् । १ । १५
३०. श्वेताश्वतरोपनिषद् । २ । ९
३१. श्वेताश्वतरोपनिषद् । १ । ३
३२. तैत्तिरीयोपनिषद् । २ । ९
३३. बृहदारण्यकोपनिषद् । ६ । २ । १५
३४. बृहदारण्यकोपनिषद् । १ । ३ । २८
३५. श्वेताश्वतरोपनिषद् । ६ । ४
३६. बृहदारण्यकोपनिषद् । ४ । ३ । १७
३७. बृहदारण्यकोपनिषद् । ४ । ४ । ५
३८. कठोपनिषद् । २ । ५ । ६

३९. बृहदारण्यकोपनिषद् । ५ । १५ । १
४०. श्वेताश्वतरोपनिषद् । ६ । २२ तथा २३
४१. प्रश्नोपनिषद् । १ । १०
४२. मुण्डकोपनिषद् । ३ । १ । ५
४३. मुण्डकोपनिषद् । ३ । १ । ६
४४. बृहदारण्यकोपनिषद् ५ । ८ । ३
४५. अथर्ववेद । ६ । ५७ । १ तथा ६ । ९० । १
४६. अथर्ववेद । ६ । ३२ । २
४७. अथर्ववेद । ११ । २ । ३०
४८. इस प्रसंग के विश्लेषणात्मक अध्ययन के लिए देखिए—डॉ० यदुवंशी का 'शैव-मत' अध्याय १ तथा भण्डारकर का 'Vaisnavism Saivism and Minor Religious Systems' भाग २, अध्याय १ और २ ।
४९. श्वेताश्वतरोपनिषद् । ३ । १
५०. श्वेताश्वतरोपनिषद् । ३ । ६
५१. श्वेताश्वतरोपनिषद् । ३ । ५
५२. श्वेताश्वतरोपनिषद् । ४ । २१
५३. ऋग्वेद । ६ । ४७ । १८
५४. ते ध्यानयोगाऽनुगता अपश्यन् ।
देवात्मशक्तिं स्वगुणैर्निगूढाम् ॥ श्वेताश्वतरोपनिषद् । १ । ३
५५. श्वेताश्वतरोपनिषद् । ४ । ३
५६. तुलना कीजिए—

तस्माद्यज्ञात् सर्वहुतऋचः सामानि जज्ञिरे छन्दांसि जज्ञिरे
तस्माद्यजुस्तस्मादजायत । —यजु० ३१.७ । ऋ० १०.९०.९
यमृषयस्त्रैविदा विदुः ऋचः सामानि यजूंषि । —तै० ब्रा० १.२.२६
वेदैरशून्यस्त्रिभिरेति सूर्यः । —तै० ब्रा० ३.१२.९.१
अग्नेर्ऋचो वायोर्यजूंषि सामान्यादित्यात् । —श. ब्रा० ६. १७
यदृचैव हौत्रं क्रियते यजुषाध्वर्यवं साम्नोद्‌गीथं व्यारब्धा
त्रयी विद्या भवति । —ऐ० ब्रा०, ५. ३३

अग्निवायुरविभ्यस्तु त्रयं ब्रह्म सनातनम् ।
दुदोह यज्ञसिद्ध्यर्थमृग्यजुः सामलक्षणम् ॥

—मनु० १.२३

५७. एवं त्रय्यां तत्र तत्र प्रतिपादितं यद् ब्रह्मत्वम् तदथर्ववेदसिद्धमेव ।
ऋग्विदमेव होतारं वृणीष्व यजुर्विदमध्वर्युम्, सामविदमुद्‌गातारम् ।
अथर्वाङ्गिरोविदं ब्रह्माणं तथा ह्यस्य यज्ञः चतुष्पात् प्रतितिष्ठति ।

—गो० ब्रा०, पू० २.२४

५८. मीमांसा-दर्शन २.१.३५—३७ ।
देखिए अथर्ववेदीया बृहत्सर्वानुक्रमणिका, संपा० श्रीरामगोपाल शास्त्री; भू० पृ० १८
५९. चत्वारो वा इमे वेदा ऋग्वेदो: यजुर्वेद: सामवेद ब्रह्मवेद:

—गो० ब्रा० २.१६

ऋग्भ्यः स्वाहा, यजुर्भ्यः स्वाहा, सामभ्यः स्वाहा, अङ्गिरोभ्यः स्वाहा।
—तै० सं० ७.५.११.२

स य एवं विद्वानथर्वाङ्गिरसोऽहरहः स्वाध्यायमधीते। —श० ब्रा० ११.५.६.७

अस्य महतो भूतस्य निश्वसितमेतदृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरसः।
—तै० ब्रा० ३.१२.८.२

पञ्चवेदान् निरमिमीत सर्पवेदं पिशाचवेदम्, असुरवेदम्, इतिहासवेदम्, पुराणवेदम्।
—गो० ब्रा० १.१०

६०. नि तद् दधिषेऽवरे परे च यस्मिन्नाविथावसा दुरोणे।
आ स्थापयत मातरं जिगत्नुमत इन्वत कर्वराणि भूरि॥ —५.१.२.६

६१. सर्वफलकामोऽनेन सूक्तेन इन्द्राग्नी यजते उपतिष्ठते वा। —सायण

६२. सिंहे व्याघ्र उत या पृदाकौ त्विषिरग्नौ ब्राह्मणे सूर्ये या।
इन्द्रं या देवी सुभगा जजान सा न ऐतु वर्चसा संविदाना॥
या हस्तिनि द्वीपिनि या हिरण्ये त्विषिरप्सु गोषु या पुरुषेषु।
इन्द्रं या······ ······संविदाना॥
रथे अक्षेष्वृषभस्य वाजे वाते पर्जन्ये वरुणस्य शुष्मे।
इन्द्रं या······ ······संविदाना॥
राजन्ये दुन्दुभावायतायामश्वस्य वाजे पुरुषस्य मायौ।
इन्द्रं या······ ······संविदाना॥

६३. तिस्रो देवीर्महि नः शर्म यच्छत प्रजायै नस्तन्वे यच्च पुष्टम्। —५.१.३.७
आ नो यज्ञं भारती तूयमेत्विडा मनुष्वदिह चेतयन्ती।
तिस्रो देवीर्बर्हिरेदं स्योनं सरस्वतीः स्वपसः सदन्ताम्॥ —५.३.१२.८
तिस्रो देवीर्बर्हिरेदं सदन्तामिडा सरस्वती मही भारती गृणाना। —५ ६.२७.९

६४. श्रेष्ठो हि वेदस्तपसोऽधिजातो ब्रह्मज्ञानां हृदये संबभूव। —गो ब्रा० १.९
इसके अतिरिक्त, देखिए – सायणाचार्य द्वारा अथर्ववेद-भाष्य की भूमिका।

६५. पुरस्तादुत्तरोऽरण्ये कर्मणां प्रयोग उत्तरत उदकान्ते (कौ० सू० १.७)
आभिचारिकाणां तु ग्रामाद् दक्षिणदिशि कृष्णपक्षे कृत्तिकानक्षत्रे प्रयोग इति विशेषः।
तथा च कौशिकं सूत्रम्। 'आभिचारिकेषु दक्षिणतः संभारम् आहृत्य आङ्गिरसम्" इत्यादि।
(कौ० सू० ६.१)

६६. शतस्य धमनीनां सहस्रस्य शिराणाम्। अस्थुरिन्मध्यमा इमाः साकमन्ता अरंसत।
—१.४.१.३

६७. सप्त प्राणानष्टौ मन्यस्तांस्ते वृश्चामि ब्रह्मणा।
अया यमस्य सादनमग्निदूतो अरङ्कृतः॥ —१.४.१२.७

६८. प्राणापानौ मृत्योर्मा पातं स्वाहा। —२.४.१६.१
इहैव स्तं प्राणापानौ माप गातमितो युवम्।
शरीरस्याङ्गानि जरसे वहतं पुनः। —३.३.११.६

६९. अतीव यो मरुतो मन्यते नो ब्रह्म वा यो निन्दिषत् क्रियमाणम्।
तपूंषि तस्मै वृजनानि सन्तु ब्रह्मद्विषं द्यौरभिसन्तपाति। —२.३.१२.६

७०. यः सपत्नो योऽसपत्नो यश्च द्विषञ्छपाति नः।
देवास्तं सर्वे धूर्वन्तु ब्रह्म वर्म ममान्तरम्। —१.४.३.४

७१. सभी विधियों के सम्पादन में अनेकानेक वेदमंत्रों की आवश्यकता होती है; क्योंकि जिन पदार्थों का होम किया जाता है, उनका अभिसंस्कार (मंत्र द्वारा पवित्रीकरण) आवश्यक है।

७२. जन्मान्तरकृतं पापं व्याधिरूपेण जायते।
तच्छान्तिरौषधैर्दानैर्जपहोमार्चनादिभिः॥

७३. मुञ्चशीर्षक्त्या उत कास एनं परुष्परुराविवेशा यो अस्य।
यो अभ्रजा वातजा यश्च शुष्मो वनस्पतीन्त्सचतां पर्वतांश्च॥ —१.२.६.३।

७४. अथर्ववेद में तथा संबद्ध ब्राह्मणों और सूत्रों में अनेकानेक मणियों का विधान है। आजकल की भाषा में मणि को तावीज कह सकते हैं।

७५. अनु सूर्यमुदयतां हृद्द्योतो हरिमा च ते। गोरोहितस्य वर्णेन तेन परिदध्मसि॥ १॥
शुकेषु ते हरिमाणं रोपणाकासु दध्मसि। अथो हारिद्रवेषु ते हरिमाणं निदध्मसि॥ ४॥

७६. नक्तं जातस्योषधे रामे कृष्णे असिक्नि च।
इदं रजनि रजय किलासं पलितं च यत्॥
किलासं च पलितं च निरितो नाशया पृषत्।
आ त्वा स्वो विशतां वर्णः परा शुक्लानि पातय॥

७७. असुर शब्द का अर्थ आजकल राक्षस अथवा दैत्य माना जाता है। किन्तु कुछ विद्वानों की सम्मति में असुर उसी प्रकार की एक प्रभावशाली जाति का नाम था, जैसी कि आर्य जाति। संभवतः आर्य-सभ्यता के पूर्व भारत में इन्हीं बलशाली असुरों की सभ्यता थी। यह कल्पना की जा सकती है कि अथर्ववेद का संबंध अंशतः इस असुर जाति से भी था।

७८. दे० १.२.३ के आरंभ में सायण-भाष्य।

७९. काण्ड १; अनु० ६; सूक्त ७

८०. काण्ड ३; अनु० २; सूक्त २

८१. काण्ड ३; अनु० २; सूक्त ४

८२. काण्ड ३; अनु० ४; सूक्त १

८३. काण्ड ३; अनु० १; सूक्त ५; मंत्र १

८४. काण्ड ३; अनु० २; सूक्त ६; मंत्र ३

८५. काण्ड—३; अनु०—५; सूक्त—२

८६. मंत्रों का हिन्दी-अनुवाद प्रायः ऋषिकुमार पं० रामचन्द्र शर्मा द्वारा अनूदित अथर्व-संहिता से मुख्यांश में लिया गया है।
देवैनसादुन्मदितमुन्मत्तं रक्षसस्परि।
कृणोमि विद्वान् भेषजं यदानुन्मदितोऽससि। —६.११.१११.३

८७. पुनस्त्वा दुरप्सरसः पुनरिन्द्रः पुनर्भगः।
पुनस्त्वा दुर्विश्वे देवा यथानुन्मदितोऽससि। —६.११.१११.४

८८. मा ज्येष्ठं वधीदयमग्न एषां मूलबर्हणात् परिपाह्येनम्।
स ग्राह्याः पाशान् विचृत प्रजानन् तुभ्यं देवा अनु जानन्तु विश्वे।—६.११.११२.१

८९. विलपन्तु यातुधाना अत्त्रिणो ये किमीदिनः।
अथेदमग्ने नो हविरिन्द्रश्च प्रति हर्यतम्॥ —१.१.७.३

९०. निःसालां धृष्णुं धिषणमेकवाद्यां जिघत्स्वम्।
सर्वाश्चण्डस्य नप्त्यो नाशयामः सदान्वाः॥ —१.२.१४.१

९१. कां० २; अनु० ३; सूक्त १४; मंत्र २

९२. कां० २; अनु० ३; सूक्त १४; मंत्र ३

९३. कां० २; अनु० ३; सूक्त १८; मंत्र ४

९४. जूर्णि पुनर्वो यन्तु यातवः पुनर्हेतिः किमीदिनीः।
यस्यस्थ तमत्र यो वः प्राहैत् तमत्र स्वा मांसान्यत्त ॥ —२. ४. २४. ५

९५. शान्तिवश्यस्तम्भनानि विद्वेषोच्चाटने तथा।
मारणं परमेशानि ! षट्कर्मेदं प्रकीर्त्तितम् ॥
—योगिनी-तंत्र (जीवानंद विद्यासागर द्वारा संपादित, द्वितीय संस्करण), पृ० १७

९६. कां० १; अनु० २; सूक्त २; मंत्र १

९७. कां० १; अनु० २; सूक्त २; मंत्र ३

९८. कां० ३; अनु० ४; सूक्त ३; मंत्र २

९९. औघड़ को कापाल या कापालिक भी कहते हैं; क्योंकि वे मृत मनुष्य का कपाल लिये रहते हैं।

१००. स्वप्तु माता स्वप्तु पिता स्वप्तु श्वा स्वप्तु विश्पतिः।
स्वपन्त्वस्यै ज्ञातयः स्वप्त्वयमभितो जनः ॥ —४. १. ५. ६

१०१. कां० ५; अनु० ६; सूक्त ३०; मंत्र २

१०२. कां० ६; अनु० १; सूक्त ८; मंत्र १

१०३. कां० ६; अनु० ८; सूक्त ७२; मंत्र २-३

१०४. कां० ६; अनु० १०; सूक्त १०१; मंत्र १-२

१०५. कां० ६; अनु० १३; सूक्त १२९

१०६. जीवानंद विद्यासागर-सम्पादित, पृ० ८८ (दशम उल्लास)

१०७. कुछ शाखाएँ ऐसी भी हैं, जो वैष्णवाचार से प्रभावित हैं और संयममय जीवन के पक्ष में हैं।

१०८. देखिए अथर्ववेद के प्रथमकांड के प्रथम सूक्त का सायण-भाष्य। 'ग्रामीणेभ्योऽन्नं सुरां सुरापेभ्यः।'

१०९. इन्द्रस्तुराषाण्मित्रो वृत्रं यो जघान यतीर्न।
बिभेद बलं भृगुर्न ससहे शत्रून् मदे सोमस्य ॥
—अथर्व० २. १. ५. ३

११०. सुरायां सिच्यमानायां कीलाले मधु तन्मयि।
—अथर्व० ६. ७. ६९. १

१११. कां० ५, अ० ३, सू० १३ का प्रारंभ।

११२. यथा पुंसो वृषण्यत स्त्रियां निहन्यते मनः।
एवा ते अघ्न्ये मनोऽधि वत्से निहन्यताम् ॥ —अथर्व० ६. ७. ७०. १

११३. अक्षद्रुग्धो राजन्यः पाप आत्मपराजितः।
स ब्राह्मणस्य गामद्यादद्य जीवानि मा श्वः ॥ —५. ४. १८. २

११४. नैतां ते देवा अददुस्तुभ्यं नृपते अत्तवे।
मा ब्राह्मणस्य राजन्य गां जिघत्सो अनाद्याम् ॥ —५. ४. १८. १

११५. देखिए अथर्ववेद का सायण-भाष्य, पंचम कांड का प्रारंभ।

११६. वही।

११७. पतिर्जायां प्रविशति गर्भो भूत्वा स मातरम्।
तस्यां पुनर्नवो भूत्वा दशमे मासि जायते ॥
तज्जाया भवति यदस्यां जायते पुनः। —ऐ० ब्रा० ७. १३

११८. आते योनिं गर्भ एतु पुमान् बाण इवेषुधिम् ।
आ वीरोऽत्र जायतां पुत्रस्ते दशमास्यः ॥ —३. ५. २३. ३

११९. Principles of Tantra—by Arthur Avalon Introduction, p. 77.

१२०. नारायणोपनिषद् का निम्नलिखित उद्धरण देखें—
अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो घोरा घोरतरेभ्यः ।
सर्वेभ्यः सर्वशर्वेभ्यो नमस्ते अस्तु रुद्ररूपेभ्यः ॥
—इस प्रकार के श्लोकों में अघोर-सम्प्रदाय के अंकुर निहित हैं ।

१२१. विना ह्यागममार्गेण कलौ नास्ति गतिः प्रिये । — महानिर्वाण तंत्र

१२२. ऋषिकुमार पं० रामचन्द्र शर्मा-कृत अथर्ववेद-संहिता के सायण भाष्य के अनुवाद से उद्धृत ।

१२३. जीवानन्द विद्यासागर द्वारा सम्पादित तथा १८९२ ई० में सरस्वती प्रेस में मुद्रित संस्करण ।

१२४. अथवाथ महादेवि ! अथर्ववेदलक्षणम् ।
सर्ववर्णस्य सारंहि शक्त्याचारसमन्वितम् ॥
अथर्ववेदादुत्पन्नः सामवेदस्तमोगुणः ।
सामवेदाद् यजुर्वेदो महासत्त्वसमुद्भवः ॥
रजोगुणमयो ब्रह्मा ऋग्वेदो यजुषि स्थितः ।
मृणालसूत्रसदृशी अथर्ववेदरूपिणी ॥
अथर्वे सर्वदेवाश्च जलखेचरभूचराः ।
निवसन्ति कामविद्या महाविद्या महर्षयः ॥ – रुद्रयामल पृ० १३९-१४०
× × ×
अथर्ववेदतन्त्रस्था कुण्डली परदेवता । रुद्रयामल, पृ० १४०.
× × ×
अथर्वान्निर्गतं सर्वं ऋग्वेदादि चराचरम् ।
अथर्वगामिनीं देवीं भावयेदमरो महान् ।
अथर्वं भावयेन्मन्त्री शक्तिचक्रक्रमेण तु ॥ —रुद्रयामल, पृ० १४७

१२५. ये त्रिषप्ताः परियन्ति विश्वारूपाणि बिभ्रतः ।
वाचस्पतिर्बला तेषां तन्वो अद्य दधातु मे ॥ —१. १. १. १

१२६. स नः पिता जनिता स उत बन्धुर्धामानि वेद भुवनानि विश्वा ।
यो देवानां नामध एक एव तं संप्रश्नं भुवना यन्ति सर्वा ॥—२.१.१.३.

१२७. Principles of Tantra : Published by Ganesh & Co. (Madras), Ltd.

१२८. सृष्टिश्च प्रलयश्चैव देवतानां यथार्चनम् ।
साधनञ्चैव सर्वेषां पुरश्चरणमेव च ॥
षट्कर्मसाधनं चैव ध्यानयोगश्चतुर्विधः ।
सप्तभिर्लक्षणैर्युक्तमागमं तद्विदुर्बुधाः ॥

१२९. वहीं, पृ० ८८—९०

१३०. उत्तमा तत्त्वचिन्ता स्याज्जपचिन्ता तु मध्यमा ।
शास्त्रचिन्ताधमाचैव लोकचिन्ताधमाधमा ॥
उत्तमा सहजावस्था मध्यमा ध्यानधारणा ।
जपस्तुतिः स्यादधमा होमपूजाधमाधमा ॥
—नवम उल्लास, पृ० ८०, जीवानन्द विद्यासागर-संस्करण

१३१. वैदिकास्तांत्रिका ये ये धर्माः सन्ति महेश्वरि ।
सर्वे ते अपयजस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥

—योगिनीतन्त्र, पृ० ७५

साधनं च जपं चैव ध्यानं चैव वरानने ।
नाल्पेन तपसा देवि ! केनापि कुत्र लभ्यते ॥

—वही, पृ० ७५

वाचिकस्तु जपो बाह्यो
मानसोऽभ्यन्तरो मतः ।
उपांशुर्मिश्र एव स्यात्
त्रिविधोयं जपः स्मृतः ॥

—वही, पृ० ७५

१३२. कृते श्रुत्युक्ताचारस्त्रेतायां स्मृतिसम्भवः ।
द्वापरे तु पुराणोक्तं कलौ आगमकेवलम् ॥

१३३. नृणां स्वभावजं देवि ! प्रियं भोजनमैथुनम् ।
संक्षेपाय हितार्थाय शैवधर्मे निरूपितम् ॥

—उल्लास ६, सं० २८३

१३४. दर्शनेषु च सर्वेषु चिराभ्यासेन मानवः । मोक्षं लभन्ते कौले तु सद्य एव न संशयः ।

—कुलार्णव, पृ० १२

चिरायासाल्पफलदं पशुशास्त्रं पठन्ति ये । सुखेन सर्वफलदं कौलं कोऽत्र त्यजत्यहो ।

—वही, पृ० १६

उपलब्धिबलात्तस्य हताः सर्वे कुतार्किकाः ।

— वही, पृ० १७

१३५. कुलशास्त्रं परित्यज्य पशुशास्त्राणि योऽभ्यसेत् ।
स मूढः पायसं त्यक्त्वा भिक्षामटति पार्वति ॥
संत्यज्य कुलशास्त्राणि पशुशास्त्राणि यो जपेत् ।
स धान्यराशिमुत्सृज्य पांशुराशिं जिघृक्षति ॥

—वही, पृ० १४

१३६. विना देहेन कस्यापि पुरुषार्थो न विद्यते ।
तस्माद्देहधनं रक्ष्यं पुण्यकर्माणि साधयेत् ॥

—वही, पृ० २

पुनर्ग्रामाः पुनः क्षेत्रं पुनर्वित्तं पुनर्गृहम् ।
पुनः शुभाशुभं कर्म शरीरं न पुनः पुनः ॥

— वही, पृ० ३

१३७. यावत्तिष्ठति देहोऽयं तावत्तत्त्वं समभ्यसेत् ।
सन्दीप्ते भवने को वा कूपं खनति दुर्मतिः ।

—वही, पृ० ३

१३८. देहदण्डनमात्रेण का सिद्धिरविवेकिनाम् ॥
चरन्ति गर्दभाद्याश्च विविक्तास्ते भवन्ति किम् ।
आजन्ममरणान्तं च गङ्गातटिनीस्थिताः ॥

श्वपर्णोदकाहाराः सततं वनवासिनः ।
हरिणादिमृगा देवि तापसास्ते भवन्ति किम् ॥

—कुलार्णव, पृ० ७

१३९. प्रवृत्ते भैरवीचक्रे सर्वे वर्णा द्विजातयः ।
निवृत्ते भैरवीचक्रे सर्वे वर्णाः पृथक्-पृथक् ॥

—वहीं, पृ० ७६

स्त्री वाथ पुरुषः षण्ढश्चाण्डालो वा द्विजोत्तमः ।
चक्रेऽस्मिन् नैव भेदोऽस्ति सर्वे देवसमास्मृताः ॥
क्षीरेण सहितं तोयं क्षीरमेव यथा भवेत् ।
तथा श्रीचक्रमध्ये तु जातिभेदो न विद्यते ॥
जातिभेदो न चक्रेऽस्मिन् सर्वे शिवसमाः स्मृताः ।

—वहीं, पृ० ७६

गतं शूद्रस्य शूद्रत्वं ब्राह्मणानाञ्च विप्रता ।
मंत्रग्रहणमात्रे तु सर्वे शिवसमाः किल ।

—योगिनीतंत्र, पृ० ६, जीवानन्द
विद्यासागर द्वारा सम्पादित

श्वपचोपि कुलज्ञानी ब्राह्मणादतिरिच्यते ।

—कुलार्णवतंत्र, पृ० १६

१४०. —कुलार्णव, पृ० ६४

१४१. सर्वेभ्यश्चोत्तमा वेदा
वेदेभ्यो वैष्णवं परम् ।
वैष्णवादुत्तमं शैवं
शैवाद्दक्षिणमुत्तमम् ॥
दक्षिणादुत्तमं वामं
वामात् सिद्धान्तमुत्तमम् ।
सिद्धान्तादुत्तमं कौलं
कौलात् परतरं न हि ॥

— वहीं, पृ० ११

१४२. कुलं शक्तिरिति प्रोक्तं अकुलं शिवमुच्यते ।
कुले कुलस्य सम्बन्धः कौल इत्यभिधीयते ॥

१४३. व्योमपङ्कजनिःस्यन्द-सुधापानरतो नरः ।
मधुपायी समः प्रोक्तस् त्वितरे मद्यपायिनः ॥
जिह्वया गलसंयोगात् पिबेत् तदमृतं तदा ।
योगिभिः पीयते तत्तु न मद्यं गौडपैष्टिकम् ॥

१४४. पुण्यापुण्यपशुं हत्वा ज्ञानखड्गेन योगवित् ।
परे लयं नयेच्चित्तं मांसाशी स निगद्यते ॥

—कुलार्णवतंत्र

१४५. गङ्गायमुनयोर्मध्ये द्वौ मत्स्यौ चरतः सदा ।
तौ मत्स्यौ भक्षयेद्यस्तु स भवेन्मत्स्यसाधकः ॥

१४६. सत्सङ्गेन भवेन्मुक्तिः असत्सङ्गेषु बन्धनम् ।
असत्संगमुद्रणं तु तन्मुद्रा परिकीर्तिता ॥

१४७. इडापिङ्गलयोः प्राणान् सुषुम्णायां प्रवर्त्तयेत् ।
सुषुम्णा शक्तिरुद्दिष्टा जीवोऽयं तु परः शिवः ॥
तयोस्तु सङ्गमे देवैः सुरतं नाम कीर्तितम् ।

१४८. शतापराधैर्वनितां पुष्पेणापि न ताडयेत् ।
दोषान्न गणयेत् स्त्रीणां गुणानेव प्रकाशयेत् ॥

—कुलार्णवतन्त्र, उल्लास ११, पृ० १०४

न पश्येद् वनितां नग्नामुन्मत्तां प्रकटस्तनीम् ।

—वहीं, पृ० १०३

कन्या कुमारिका नग्ना उन्मत्ता वापि योषितः ।
न निन्देन्न च संक्षुभ्येन्न हसेन्नावमानयेत् ।

—वहीं, पृ० १०३

१४९. योगी चेन्नैव भोगी स्याद् भोगी चेन्नैव योगवित् ।
भोगयोगात्मकं कौलं तस्मात् सर्वाधिकं प्रिये ॥

—कुलार्णव, पृ० १२

भोगो योगायते साक्षात् पातकं सुकृतायते ।
मोक्षायते च संसारः कुलधर्मः कुलेश्वरि ॥

—वहीं, पृ० १२

१५०. देवान् पितॄन् समभ्यर्च्य देवि ! शास्त्रोक्तवर्त्मना ।
गुरुं स्मरन् पिबन्मद्यं खादन् मांसं न दोषभाक् ॥

—वहीं, पृ० ४९

१५१. तृणं चाप्यविधानेन छेदयेन्न कदाचन ।
विधिना गां द्विजं वापि हत्वा पापैर्न लिप्यते ॥

—वहीं, पृ० २१

१५२. आत्मार्थं प्राणिनां हिंसा कदाचिन्नोदिता प्रिये ।

—वहीं, पृ० ४५

१५३. मत्स्यमांससुरादीनां मादकानां निषेवणम् ।
यागकालं विनान्यत्र दूषणं कथितं प्रिये ॥

—वहीं, पृ० ५०

१५४. यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्त्तते कामचारतः ।
स सिद्धिमिह नाप्नोति परत्र नरके गतिम् ॥

—वहीं, पृ० ५०

१५५. कामुको न स्त्रियं गच्छेदनिच्छन्तीमदीक्षिताम् ।

—वहीं, पृ० ८

१५६. कुलार्णव, पृ० २०

१५७. योगी लोकोपकाराय भोगान् भुंक्ते न कांक्षया ।

—वहीं, पृ० ८३

१५८. य आस्ते मृतवत् शश्वज्जीवन्मुक्तः स उच्यते ।

—वहीं, पृ० ७८

१५९. सर्वपायी यथा सूर्यः सर्वभोगी यथानलः।
योगी भुक्त्वाऽखिलान् भोगान् तथा पापैर्न लिप्यते॥

—वहीं, पृ० ८३

१६०. अनाचारः सदाचारस्त्वकार्यं कार्यमेव च।
असत्यमपि सत्यं स्यात् कौलिकानां कुलेश्वरि॥

—वहीं, पृ० ८१

अपेयमपि पेयं स्यादभक्ष्यं भक्ष्यमेव च।
अगम्यमपि गम्यं स्यात् कौलिकानां कुलेश्वरि॥

—वहीं, पृ० ८१

निरस्तभेदवस्तु स्यान्मेध्यामेध्यादिवस्तुषु।
जीवन्मुक्तो देहभावो देहान्ते क्षेममाप्नुयात्॥

—योगिनीतन्त्र, पृ० ३५

लोके निकृष्टमुत्कृष्टं लोकोत्कृष्टं निकृष्टकम्।
कुलमार्गं समुद्दिष्टं भैरवेण महात्मना॥

—कुलार्णव, पृ० ८१

१६१. इच्छाशक्तिः सुरामोदे ज्ञानशक्तिश्च तद्द्रवे।
तत्स्वादे च क्रियाशक्तिस्तदुल्लासे परा स्थितः।
मदिरा ब्रह्मणा प्रोक्ता चित्तशोधनसाधनी॥

—वहीं, पृ० ४५

१६२. शवद्वय-कर्णभूषणां नानामणिविभूषिताम्।
मृतहस्त-सहस्रैस्तु कृतकाञ्चीहसन्मुखाम्॥
शिवप्रेतसमारूढां महाकालोपरि स्थिताम्।
वामपादं शवहृदि दक्षिणे लोकलाञ्छितम्॥
क्षुधापूर्णं शीर्षहर्षयोगिनीभिर्विराजितम्।
घोररूपं महानादैश्चयक्षतापैश्च भैरवैः॥
गृहीत - शव - कंकाल - जय - शब्द - परायणैः।
नृत्यद्भिर्वादनपरैरनिशं च दिगम्बरैः॥
श्मशानालयमध्यस्थां ब्रह्माद्युपनिषेविताम्॥

—योगिनीतंत्र, पृ० १-२

१६३. घृणा लज्जा भयं शोको जुगुप्सा चेति पंचमम्।
कुलं शीलं तथा जातिरष्टौ पाशाः प्रकीर्तिताः॥

– कुलार्णवतंत्र, पृ० १२३

१६४. महाचीनक्रमेणैव तारा शीघ्रफलप्रदा।
महाचीनक्रमेणैव छिन्नमस्ताविधिर्मतः॥

१६५. देखिए—हिन्दी साहित्य-कोष (मंत्रयान, वज्रयान)।

१६६. येनैव विषखण्डेन म्रियन्ते सर्वजन्तवः।
तेनैव विषतत्त्वज्ञो विषेण स्फुरयेद्विषम्॥

—बौद्धगान ओ दोहा, पृ० ७५ (दोहा-कोश, पृ० १३)

१६७. विसअ रमन्ते ण विसअहि लिप्पइ।
उअल हरन्ते ण पाणीच्छुप्पइ॥

घमइ बोह मूल सगरो।
विसय ण बाज्भइ विसम्र रमन्तो ॥
—दोहा-कोश (राहुल सांकृत्यायन), सं० ७१

१६८. अब मैं पाइबो रे पाइबो ब्रह्म गियान।
सहज समाधें सुख में रहिबो कोटि कलप विश्राम ॥
—कबीर-ग्रंथावली, पृ० ८६

१६९. पवरा घरिश्र अप्पाण म भिन्दह। कट्ठजोइ णासग्ग म बंदह ॥
—दोहा-कोश, सं० ९३

१७०. उजु रे उजु छाडि मा लेहु बंक।
—बौद्धगान ओ दोहा, पृ० ४८

१७१. जत्तइ चित्तहु विफुरइ, तत्तइ णाहु सरूश्र।
अएण तरंग कि अएण जलु, भव सम ख-सम सरूश्र ॥
दोहा-कोश, सं० ७६

१७२. जत्तइ पइसइ जलेहिं जलु, तत्तइ समरस होइ।
—वहीं, सं० ७८

१७३. सुएण निरंजण परमपउ, सुइणो माश्र सहाव।
भावहु चित्त सहावता, णउ णासिज्जइ जाव ॥
—वहीं, सं० १३८

सुएण तरुअर उफुल्लिअउ, करुणा विविह विचित्त।
अण्णाभोश्र परन्त फल, एहु सोक्ख पर चित्त ॥
—बागची, १०८

१७४. आइ ण अंत ण मज्झ तहिं, णउ भउ णउ णिव्वाण।
एहु सो परम महासुह, णउ पर णउ अप्पाण ॥
—दोहा-कोश (राहुल सांकृत्यायन), सं० ५१

अक्खर वएण विवज्जिअ, णउ सो विन्दु ण चित्त।
एहु सो परम महासुह, णउ फेडिय णउ खित्त ॥
—वहीं, सं० १४१

१७५. सब्ब थाल जे खसम करीहसि, खसम सहावे चीश्र ट्ठवीहसि।
—वहीं, सं० १५५

१७६. एथु से सरसइ सोवणाह, एथु से गंगासाश्ररु।
वाराणसि पश्राग एथु, सो चान्द दिवाश्ररु ॥
—वहीं, सं० ९६

खेत्त पिट्ठ उअपिट्ठ एथु, मइ भमिश्र समिट्ठश्र।
देहा सरिस तित्थ, मइ सुणउ ण दिट्ठश्र ॥
—वहीं, सं० ९७

१७७. गुरु वश्रण अमिश्र रस, धवहि ण पिविअउ जेहि।
बहु सातात्थ-मरुत्थलेहि, तिसिश्र मरिब्बो तेहि ॥
—वहीं, सं ४४

१७८. दे० अध्याय ४—परिचय।

१७९. इसके कुछ संक्षिप्त रूप तंत्रों से उद्धृत किये गये हैं। मैंने कुछ उच्चकोटि के तांत्रिकों से विचार-विमर्श के सिलसिले में यह अनुभव किया कि वे इसके लिए अपनी विवाहिता पत्नी को

ही माध्यम मानते हैं और अतः स्वीकृत मर्यादा का पालन करते हैं। तथ्य तो यह है कि वे अपनी पत्नी को भी मातृरूपा या शक्तिरूपा मानकर उसको संभावना करते हैं। यह सचमुच एक असिधार-साधना है। मैंने अनेक पढ़े-लिखे और प्रतिष्ठित व्यक्तियों को इन मर्यादित तांत्रिकों की असीम श्रद्धा-भक्ति करते देखा। कुछ के प्रति मेरा भी मस्तक श्रद्धा से अवनत हो गया।

१८०. Yuganaddha : The Tantric View of Life (Chowkhamba Sanskrit Series, Banaras).
Bi-sexuality, or to emphasize its functional and dynamic aspect, ambierosicism, is both a psychological and a constitutional factor. —पृ० २

१८१. वहीं, पृ० ७

१८२. वहीं, पृ० ८०

१८३. Highest mistress of the world !
Let me in the azure
Tent of Heaven, in light unfurled
Hear thy Mystery measure !
Justify sweet thoughts that move
Breast of man to meet thee !
And with holy bliss of love
Bear him up to greet thee !
With unconquered courage we
Do thy bidding highest;
But at once shall gentle be,
When thou pacifiest.
Virgin, pure in brightest sheen,
Mother sweet, supernal,
Upto us Elected Queen,
Peer of Gods Eternal !

—Goethe, Faust, Pt. II.

१८४. तांत्रिक बौद्धों के संबंध में देखिए—आचार्य नरेन्द्रदेव-रचित 'बौद्धधर्म-दर्शन' की महामहोपाध्याय गोपीनाथ कविराज-लिखित भूमिका।

१८५. सिद्ध-मत के सिद्धान्त-पक्ष एवं साधना-पद्धति के विवरण के लिए देखिए—धर्मवीर भारती के 'सिद्ध साहित्य' का तृतीय अध्याय।

१८६. Encyclopaedia of Religion & Ethics में 'अघोरी, अघोरपंथी, औगड़, औघड़' शीर्षक से Crooke ने जो विस्तृत परिचयात्मक टिप्पणी दी है, उसका सारांश परिशिष्ट (क) में दिया गया है। Crooke के सामने इस अघोर-सम्प्रदाय का कोई साहित्य नहीं था, ऐसा प्रतीत होता है। किन्तु उसने जो सूचनाएं दी हैं, वे महत्त्वपूर्ण हैं। हमने जो अध्ययन-अनुशीलन किया, उसके आधार पर स्थूल रूप में हम यह कह सकते हैं कि अघोर-सम्प्रदाय और सरभंग-सम्प्रदाय में कोई तात्त्विक अन्तर नहीं है। कामाख्या

में बाबा रघुनाथ औघड़ पीर के दर्शन हुए, उनके गुरु का नाम था आनन्दगिरि औघड़ पीर, जो बाबा किनाराम को परमगुरु मानते थे। उन्होंने अपने को सरभंग-सम्प्रदायानुगामी बताया। उन्होंने कहा कि सरभंग की बड़ी गद्दी पंजाब में है। उनके अनुसार औघड़-मत गुरु गोरखनाथ और दत्तात्रेय महाराज के बीच की कड़ी है। 'गुरु गोरख एक ही माया। बीच में औघड़ आन समाया।'

'अघोर' व्यापक नाम है, और 'सरभंग' उसकी उस परम्परा का बोधक है, जो मुख्यतः उत्तर बिहार, विशेषतः चम्पारन, में अपनाई गई। आदिस्रोत किनाराम की विचारधारा है, जिसका केन्द्र काशी है। अघोरों या औघड़ों में शवादि-साधना की जितनी प्रधानता है, उतनी सरभंगों में नहीं। ऐसा प्रतीत होता है कि वैष्णवाचार ने सरभंग-मत को जितना प्रभावित किया है, उतना औघड़-मत को नहीं। ऐसे अनेकानेक सरभंग साधु मिलेंगे, जो मांसादि भक्षण भी नहीं करते। कितने मठ जो पहले सरभंगों के थे, अब शुद्ध वैष्णव मठ हो गये हैं।

भक्त 'राधारमण' ने अपनी गुरुपरम्परा के दो महान् सन्तों, भिनकराम तथा योगेश्वराचार्य को लक्ष्य में रखकर "ज्ञानी सरभंगी और परमहंसों का रहस्य" शीर्षक में कुछ कविताएँ दी हैं जिनमें उन्होंने आदर्श सरभंग सन्त की कल्पना की है। वे यहाँ उद्धृत की जा रही हैं:—

उतो सरभंगी हो आत्मविभोरी रहैं,
इतो वाणी युक्त तत्पद में स्थित हैं।
उतो कहैं बाहि धर, एक निज राम यह,
इतो कहैं याहि बाहि निज रूप रचित हैं।
उतो धरि सम्प्रदाय व्यवहार करत बहि,
इतो सर्वत्याग करि सर्व को धरत हैं।
'राधारमण' उतो स्वरभंगी साधु रहैं,
इतो आचार्य पद धरि सिद्ध्यन्त हैं॥

दोहा—
स्वर के रथ पर जो चढ़ि, रमे सकल सो राम।
सरभंगी ताको जानिये, स्वर को करै विराम॥
मन बुद्धि तन्मन्त्रा सहित, पुर्याष्टका संवेद।
सोई काल, स्वर है सोई, सोई जीव का भेद॥
राम अंश ते उपजहिं, काल को करत संहार।
पुनि राम में लीन हो, कबिरा करत बहार॥
सब जग छापा मारि कै, सबै बनावै राम।
कैसे छापा मारहि, जो सरभंगी राम॥
कबीर सरभंगी भेद सब, भरम भुलैया जान।
'राधारमण' संशय नहीं, आपे आप पहिचान॥

सोरठा—
सुनिये कछुक मन लाय, सरभंगी का लक्षण।
जाते दरिद्र नशाय, कर्ण भूषण यह बचन है॥

छंद—
स्वरभंगी साधु नित भजन करत फिरै,
भेदाभेद नाहिं मानै नहिं घृणात हैं।
देहगेह सुधि भूलै वाणी की न गम्य रहै,
आत्मा का फुरन को देखि हर्षात है।
जात वो वरण कछु चिन्ह न धरत वह,
छने-छने अतुल ही बात को करत है।

उठत संकल्प औ विकल्प सब देखि सुनि,
सिद्ध सब कला में प्रवीण वह होत है।
गूंगा के समान वह कहीं तो लखाई पड़ै,
कहीं उनमत्त सम अटपट करत है।
अपने को साधु वह कहे समदर्शी उतै,
निज नाम पीछे वह 'राम' को जोड़त है।
निन्दा स्तुति वह करने को जानै नहिं,
रागद्वेष द्वन्द्व न जानै कछु लखत है।
'राधारमण' एते लक्षण से भिन्न जोइ,
नाहक 'सरभंगी' वह निज को कहत है।

दोहा—

बुद्ध शंका नहिं मानिये, स्वरभंगी कस चेत।
स्वर के आदि वासना, नष्टे होत अचेत॥
जब लौं स्वर साधे रहे, देह गगन मंह बास।
सूक्ष्म थूल अनुकर्म सभी, तब लौं होश हवास॥
गुण अविषक शरीर यह, जब लौं फुरन निज माहिं।
शुद्धाशुद्ध की वासना, तब लौं स्वर चलाहिं॥
शुद्ध स्वरूप को वासना, तामैं रहै विमग्न।
निरवासन स्वर की गति, सोई स्वर का मग्न॥

× × ×

गुणातीत निर्वासनिक, हो सब विधि सर्वज्ञ।
सो जाने कस भेव नहिं, काहे रहत सो अज्ञ॥

संतमत का सरभंग-सम्प्रदाय

पहला अध्याय

सिद्धान्त

१. ब्रह्म, ईश्वर, द्वैत, अद्वैत
२. माया, अविद्या
३. शरीर, मन और इन्द्रियाँ
४. सृष्टि, पुनर्जन्म, स्वर्ग-नरक
५. ज्ञान, भक्ति और प्रेम

१. ब्रह्म, ईश्वर, द्वैत, अद्वैत

'सरभंग' अथवा 'अघोर'[1] मत के सन्तों ने जिस परम तत्त्व अथवा ब्रह्म का प्रतिपादन किया है, वह मूलतः और मुख्यतः अद्वैत तथा निर्गुण है। इस मत की उत्तर प्रदेशीय शाखा के सर्वप्रमुख आचार्य 'किनाराम' ने अद्वैत ब्रह्म को 'निरालम्ब' की संज्ञा देते हुए यह कहा है कि जीवात्मा और परमात्मा सद्गुरु की कृपा से द्वन्द्व-रहित होकर अभिन्न हो जाते हैं[2]—जैसा कि उपनिषदों में वर्णित है। 'अद्वैत' का यह अर्थ हुआ कि आत्मा और परमात्मा, दोनों दो नहीं, तत्त्वतः एक हैं। उसका यह भी अर्थ हुआ कि परमात्मा और त्रिगुणात्मक प्रकृति अथवा उसकी विकृतियों से निर्मित जगत्,—ये दोनों एक हैं। इन दो केन्द्रीभूत सिद्धान्तों को उपनिषदों में 'अहं ब्रह्मास्मि' तथा 'सर्वं खल्विदम् ब्रह्म' इन निष्कर्ष-वाक्यों के द्वारा प्रकट किया गया है। किनाराम ने भी अपने प्रमुख ग्रन्थ 'विवेकसार'[3] में विस्तार के साथ आत्मा, परमात्मा और जगत् के अभेद की व्याख्या की है। वे कहते हैं कि मैं ही जीव हूँ; मैं ही ब्रह्म हूँ, मैं ही अकारण निर्मित जगत् हूँ; मैं ही निरञ्जन हूँ और मैं ही विकराल काल हूँ; मैं ही जन्मता हूँ और मरता हूँ; पर्वत, आकाश भी मैं ही हूँ। ब्रह्मा, विष्णु, महेश भी मैं ही हूँ। सुमन और उसका बास, तिल और उसका तेल मैं ही हूँ। बन्धन तथा मुक्ति, अमृत तथा हालाहल, ज्ञान तथा अज्ञान, ध्यान तथा ज्योति मैं ही हूँ। लूल्हा-लँगड़ा, सुन्दर-असुन्दर, नीच-ऊँच, अन्धा-नेत्रवान्, धातु-अधातु मैं ही हूँ। मेरु, कैलाश, वैकुण्ठ, सतलोक, सतसिन्धु, गोलोक, रविमण्डल, सोमलोक सभी मैं ही हूँ। नारी-पुरुष, मूर्ख-चतुर, दानव-देव, दीन-धनी, सिंह-शृगाल, सभय-निर्भय, चोर-साधु, रंक-राजा, मित्र-स्वामी, पूजक-पूज्य, गोपी-गोपाल, रावण-राम, कृतज्ञ-कृतघ्न, पाप-पुण्य, शुभ-अशुभ, दिन-रात मैं ही हूँ। मैं ही वेद-वाणी हूँ और मुझमें ही सकल कलाएँ निहित हैं। मैं ही योगी हूँ और मैं ही योग हूँ। तरुवर, शाखा, मूल, फल, पत्र—सभी मैं ही हूँ। उजला-लाल, स्थावर-जंगम, अन्तर-बाह्य, खोटा-खरा, खेद-अखेद, अग्नि-हव्य मैं ही हूँ। मत्स्य, वाराह, कच्छप, नरसिंह—ये अवतार भी मैं ही हूँ। आकाश और उसके नक्षत्र, दश-दिशाएँ, कल्प, वर्ष, मास, पक्ष, सत्ययुग, कलियुग मैं ही हूँ। गजराज से लेकर पिपीलिका तक सभी मैं ही हूँ। मैं अनीह, अद्वैत, निस्पृह और निरालम्ब हूँ। मैं न आता हूँ, न जाता हूँ, न मरता हूँ, न जीता हूँ। यही मेरी अद्वैत बुद्धि है, जो भेद में अभेद की भावना की जननी है।

इस मत के अन्य संतों ने भी अद्वैत और अभेद का प्रतिपादन अपने-अपने ढंग से किया है। योगेश्वराचार्य ने 'स्वरूप-प्रकाश' में गाया है कि—मुझमें और जग में भेद

नहीं। ज्ञानी, अज्ञानी, ध्यानी मैं ही हूँ; पुण्य-पाप, सूर्य-चन्द्रमा, पृथ्वी-पर्वत, पवन-पानी, राजा-रंक, जीव-जगत्, माता-पिता, हिन्दू-तुर्क, गुरु-शिष्य मैं ही हूँ। यही 'निराकार की कहानी' है।[४] रामस्वरूप दास ने कहा है कि—

'एका एकी राह पकड़ि लो, दुनिया ना ठहराहीं।'[५]

एक दूसरे संत अपने गद्य-ग्रन्थ 'भ्रमनाशक प्रश्नोत्तरी'[६] में लिखते हैं—"एक ही आत्मा परिपूर्ण स्वयं-प्रकाश, आनन्द स्वभाववाला अपने अज्ञान से 'मैं जीव हूँ', 'मैं संसारी हूँ' इत्यादि सत्यों का वाच्य होता है, तिससे भिन्न और कोई संसारी भावना करने को शक्य नहीं है और तिसीको बैराग आदिक साधना-सम्पन्न को शास्त्र, आचार्य के उपदेश करके, श्रवण आदि साधनों की पटुता करके, 'तत्त्वमसि' आदिक वाक्यों करके, तत्त्व-साक्षात् करके, उत्पन्न हुए पर, अज्ञान और तिसका कार्य सम्पूर्ण लय हो जाता है, पश्चात् अपने आनन्द करके तृप्त हुआ अपनी महिमा में स्थित हुआ मुक्त व्यवहार को भजता है। हे शिष्य! एक जीववाद ही मुख्य वेदांत का सिद्धान्त है। इसी को तुम निश्चय करो और सब अनात्म झगड़ों का त्याग करो। अपने आनन्द चैतन्य स्वरूप में स्थित होवो।" पुनश्च— 'तत्त्वमसि' 'अहं ब्रह्मास्मि' जो वाक्य हैं सो भी मूढ़ पुरुषों करके आत्मा में आरोपण किए जो कर्तृत्वादि तिनका निषेध करके जीव ब्रह्म का अभेद का बोधन करते हैं।[७]"

कर्त्तव्य के साथ-साथ क्रियाओं के अभेद को द्योतित करते हुए किनाराम के विद्वान् शिष्य गुलाबचन्द 'आनन्द' ने यह लिखा है कि—हम आप ही बोलते हैं और आप ही सुनते हैं, आप ही 'पिउ' और आप ही 'पपीहरा' हैं; आप ही देखते हैं और आप ही दीखते हैं; आप ही कलाल हैं और आप ही मद्य हैं; आप ही नशे में मस्त होकर गाने लगते हैं।[८] जीव और शिव में कोई अन्तर नहीं। यह अंतर मन का बखेड़ा है, तात्त्विक नहीं। यहाँ जीव और शिव का मतलब आत्मा-परमात्मा से है। दूसरे शब्दों में, अर्थात् योग के क्षेत्र में, शिव और शक्ति में भेद देखना भी अज्ञान है। भेद केवल नाम का है। सूक्ष्म दृष्टि से देखने से कार्य और कारण में भी कोई अन्तर नहीं है। हमलोगों का जीवन मैं-मैं तू-तू में बीत जाता है; वस्तुतः 'मैं' और 'तू' एक हैं।[९] एक दूसरे स्थल पर सरल शब्दों में 'आनन्द' ने बतलाया है कि एक में एक जोड़कर दो बनाइए और दो में एक जोड़कर तीन बनाइए, इस प्रकार लाखों तक गिनते चले जाइए; हम देखेंगे कि चाहे कितनी भी बड़ी संख्या हो शून्य हटा देने से बस एक-ही-एक रह जाती है। तात्पर्य यह कि यह समस्त प्रपंचमय जगत् वस्तुतः एक ही परम तत्त्व का विस्तार है और वह ब्रह्म तत्त्व अद्वैत है।[१०] चम्पारन के ढेकहा मठ और उसके प्रमुख 'सन्त कर्ताराम' तथा 'धवलराम' के चरित्र-वर्णन के सिलसिले में उपनिषद्-वाक्य 'तत्त्वमसि' का उल्लेख किया गया है और द्वन्द्व अर्थात् द्वैत का निराकरण किया गया है।[११] चम्पारन की सन्त परम्परा के एक अन्य साधु 'पलटू दास' ने कहा है कि ब्रह्म और जीव एक हैं। इनको दो जानना भ्रम है।[१२]

अब प्रश्न यह है कि जब अद्वैत ही सत्य है, तब फिर हमें द्वैत का भान क्यों होता है, यदि तत्त्व एक ही है तो उसमें अनेकत्व भावना क्यों उत्पन्न होती है? किनाराम उत्तर देते

है कि द्वैत और अनेकत्व की भावना के मूल में 'माया' अथवा 'उपाधि' है। उदाहरणतः सोना एक होते हुए भी, उससे बने हुए आभूषणों के कुण्डल, गलहार, वलय आदि अनेक नाम होते हैं। आत्मा भी माया और उपाधि के वश में अपने को अपने-आप से भिन्न और बहुत्व-विशिष्ट देखता है। हमारे माता-पिता, बन्धु-बान्धव, स्त्री-पुत्र सभी उपाधि अथवा भ्रमजन्य हैं।[१३] ब्रह्म, मन-बुद्धि-गिरा-गोतीत, अनंत तथा एकरस है, वह अज, निर्मल, नित्य है। किन्तु सामान्य व्यवहार के निम्नतर स्तर पर वह 'ईश्वर' हो जाता है और सगुण-निर्गुण भेद का पात्र बन जाता है। उसका सम्बन्ध उस समस्त प्रपंच से जुड़ जाता है, जिसमें पाँच तत्त्व, पचीस 'प्रकृतियाँ' (पंचतत्त्व की विकृतियाँ) और दश इन्द्रियाँ हैं। सारांश यह कि तत्त्वतः एक ब्रह्म अनेक प्रतीत होता है।[१४] पलटूदास ने इस जगत् के नानात्व का तिरस्कार करके अपने असली अद्वैत स्वरूप को पहचानने और आत्म-परिचय को समझने का उपदेश दिया है। आलंकारिक-भाषा का प्रयोग करते हुए उन्होंने जीवात्मा को, जो इधर-उधर भटक रहा है, अपने घर-लौट चलने का आदेश दिया है।[१५]

कबीर से लेकर किनाराम तक की परम्परा, जहाँ तक सिद्धान्त पक्ष से सम्बन्ध है, मूलतः एक है। कबीर ने सिद्धान्ततः निर्गुण ब्रह्म को माना है। किंतु, अपनी रचनाओं में उन्होंने राम की भक्ति और राम-नाम जपने का उपदेश दिया है। यह राम 'दशरथ सुत सगुण राम' न होकर निर्गुण राम है। कबीर पर वैष्णव मत का प्रबल प्रभाव पड़ा था, वे वैष्णव-भक्ति के समर्थक रामानन्द के शिष्य थे। अतः राम-नाम मानों उनके रोम-रोम में रम रहा था। किन्तु यदि हम 'रामचरित-मानस' और कबीर के 'बीजक' का तुलनात्मक अध्ययन करते हैं तो सगुण राम और निर्गुण राम का अन्तर स्पष्ट विदित हो जाता है। वैसे तो तुलसी ने भी 'अगुनहि सगुनहि नहिं कछु भेदा' के द्वारा सगुण और निर्गुण की तात्त्विक एकता का प्रतिपादन किया है, और कबीर ने भी, राम ने सगुण-अवतार के रूप में प्रह्लाद, द्रुपद-सुता आदि का जो उद्धार किया, उसकी चर्चा अपने पदों में की है; तथापि कबीर का राम तुलसी के राम से नितान्त भिन्न है, वह मूर्त्ति के रूप में स्थूल प्रतीकों का भाजन कदापि नहीं बन सकता। वस्तुतः भारतीय, विशेषतः उत्तर भारतीय, भक्ति-जगत् में राम के नाम का प्रचार इतना अधिक हो चुका था कि कबीर, दादू आदि सन्तों ने उसे अपनाने की बाध्यता का अनुभव किया। इसके अतिरिक्त राम को अपनाकर उसी के माध्यम से, वे बहुसंख्यक हिन्दुओं के हृदय-प्राङ्गण तक पहुँच सकते थे। इन्हीं परिस्थितियों से प्रेरित होकर कबीर ने राम की भक्ति का प्रचार किया; किन्तु चेष्टा यह रही कि राम-भक्ति के साथ निरर्थक कर्मकाण्ड, मूर्त्तिपूजा आदि जो रूढ़ियाँ और अन्धविश्वास सम्बद्ध हो गये हैं, उनसे उसे असंपृक्त रखें। किनाराम, भिनकराम, भीखनराम आदि युक्त प्रदेश तथा बिहार के 'औघड़' एवं 'सरभंग' संतों ने कबीर की ही नाईं राम को निर्गुण-ब्रह्म के रूप में अपनाने की चेष्टा की। किनाराम ने लिखा है—

राम हमारे बुद्धि बल, राम हमारे प्राण।
राम हमारे सर्वथा किनाराम गुरु ज्ञान।[१६]

'निर्गुण' की व्युत्पत्ति हुई 'गुणान्निर्गतः' अर्थात् सत्त्व, रजस् और तमस्—इन तीन गुणों से परे। भारतीय-दर्शन के अनुसार समस्त सृष्टि-प्रपंच और सांसारिक दुःखों तथा बन्धनों के मूल में ये ही तीन गुण हैं। इन्हीं के प्रभाव से हम शरीर-धारण करते हैं और जन्म-मरण के चक्र अथवा भँवर में नाचते रहते हैं। ब्रह्म या परमात्मा इन गुणों से परे है। किन्तु, कुछ वैष्णव, शैव आदि भक्तों ने त्रिगुणातीत ब्रह्म को सगुण अवतार मानकर उसे उसी प्रकार बन्ध-मोक्ष, जरा-मरण आदि से ग्रसित कल्पित किया है, जिस प्रकार हम साधारण मानव, पशु, पक्षी आदि हैं। अतः सरभंग सन्तों ने ब्रह्म के निर्गुण-रूप को ही अपनाया है और मूर्त्ति आदि प्रतीकों की उपासना को निंद्य बताया है। किनाराम कहते हैं कि सद्गुरु के उपदेश के प्रभाव से साधक उस 'अकल असंभित देश' तक पहुँच सकता है, जहाँ उस निर्गुण ब्रह्म से साक्षात्कार होगा जो निर्मल, निरञ्जन, निर्भय, दुःख-सुख और कर्म-विकार से परे तथा पूर्ण है।[१७]

किनाराम के इस पद में 'निरञ्जन' शब्द ध्यान देने योग्य है। यहाँ यह निर्गुण-ब्रह्म का विशेषण मात्र है। ऐसे पद बहुत संख्या में मिलेंगे, जिनमें निरंजन का यही अर्थ है। किन्तु, कबीर से लेकर सन्त मत के जितने प्रमुख प्रवर्त्तक हुए हैं, उन्होंने एक-दूसरे अर्थ में भी निरंजन की कल्पना की है। इस अर्थ में निरंजन एक प्रकार का 'अवर-ब्रह्म' है। जिस प्रकार शांकर वेदान्त में परमार्थ-दर्शन का ब्रह्म, जो एकमात्र ज्ञान-गम्य है, व्यवहार-दर्शन में चलकर 'ईश्वर' बन जाता है और भक्त की उपासना का भाजन तथा जगत् की जन्म-स्थिति और लय का कारण बनकर द्विरूपता को प्राप्त होता है, उसी प्रकार कबीर आदि सन्तों की कल्पना में निर्गुण-ब्रह्म का ऐसा रूप भी है जो ईश्वर स्थानीय है। इसका नाम 'निरंजन' है। 'निरंजन' की यह अभिधा उपनिषदुत्तर-काल में विकसित हुई होगी; क्योंकि 'निष्कलं, निष्क्रियं शान्तं निरवद्यं निरञ्जनम्',[१८] आदि उपनिषद्-वाक्यों में 'निरंजन' शब्द का प्रयोग निर्गुण, निरुपाधि ब्रह्म के ही लिए हुआ है। पूर्वीय और पश्चिमीय सभी दर्शनों के सम्मुख यह एक शाश्वत समस्या रही है कि त्रिगुणातीत ब्रह्म और त्रिगुण-विशिष्ट जगत् के बीच सामंजस्य कैसे स्थापित हो, और विभिन्न दार्शनिकों ने इसका समाधान अपने-अपने ढंग से किया है। उदाहरणतः पाश्चात्य-दार्शनिक कांट (Kant) के तात्त्विक विचार-जगत् (Critique of Theoretical Reason) का ब्रह्म (Absolute) व्यवहार-जगत् (Critique of Practical Reason) में भक्तों का आराध्य-देव (God) बन गया है। निर्गुण सन्तमत के विचारकों ने भी अद्वैत ब्रह्म और द्वैत जगत् के बीच के व्यवधान को पाटने के लिए और उनमें परस्पर सम्बन्ध स्थापित करने के लिए एक 'निरंजन' देव की कल्पना की है। यह निरंजन 'सत्पुरुष' से भिन्न है और माया के त्रिगुणात्मक-जगत् का अधिष्ठाता है। सन्त दरिया (विहार) ने निरंजन को सत्पुरुष का पुत्र माना है और यह बताया है कि निरंजन और माया के परस्पर उच्छृंखल सम्पर्क से देवताओं और अन्य प्राणियों की सृष्टि हुई। इस जगत् की विषमता, अमीरी और गरीबी, सुख और दुःख के उत्तरदायी निरंजन ही हैं। जब संत कवि दरिया एक धर्म-निष्ठ व्यक्ति को आपत्तियों में कराहते हुए और एक व्यभिचारी को प्रचुर वैभव में इठलाते

हुए, सती-साध्वी को कष्ट और संकट में आकुल और वेश्या को आनन्द, विलास और वैभव से संकुल देखते हैं, तब वे बरबस बोल उठते हैं—"निरंजन ! तुम्हारे न्यायालय में न्याय की आशा दुराशा-मात्र है।"

'निरञ्जन ! धुन्ध तेरी दरबार' ![19]

किनाराम ने लिखा है कि निरंजन का निवास निराकार में ही है।[20] चम्पारन की परम्परा के संतों ने जिस निरंजन का वर्णन किया है, वह त्रिगुणात्मक-जगत् और माया का स्वामी है। उसे उन्होंने 'काल-निरंजन' भी कहा है। वह ब्रह्मा, विष्णु, महेश, राजा, रंक,—सबको अपने जाल में आबद्ध करता है।[21] संत 'नाराएन दास' ने अपने पदों के संग्रह में काल-निरंजन का विस्तार से वर्णन किया है। वे कहते हैं कि तीनों लोक, सातो द्वीप, नवो खण्ड, स्वर्ग और पाताल—सर्वत्र काल-निरंजन की दुहाई फिर रही है; ब्रह्मा, विष्णु और शिव सब उसकी सेवा करते हैं; पशु-पक्षी, जल-स्थल, वन-पर्वत, सभी उसके प्रपंच हैं। मर्त्यलोक के जीव चौरासी लाख योनियों में भटकते हैं और चित्रगुप्त उसका लेखा लिखते रहते हैं।[22] अन्यत्र नारायण दास ने सत्पुरुष, निरंजन और ज्ञानी—इन तीन पात्रों की कल्पना करके यह प्रतिपादित किया है कि सत्पुरुष ने ज्ञानी से कहा कि निरंजन (जिसे काल अथवा धर्मराज भी कहा गया है) तीनों लोक के जीवों पर प्रभुत्व रखता है और उनका 'आहार' करता है। तो तुम उसे जाकर मारो और 'ढाह' दो, जिसमें संसार के प्राणी मुक्त हो सकें।[23] यह आदेश पाकर ज्ञानी, निरंजन का सामना करने चले। उन्होंने उससे कहा कि मुझे सत्पुरुष ने भेजा है।[24] निरंजन ने कहा कि मैंने तीन सौ साठ बाजार लगा रखे हैं, जिनमें संसार के सकल जीव उलझे हुए हैं।[25] मैंने ही तीर्थों और व्रतों का जाल रच रखा है, बद्रीनाथ, केदारनाथ, द्वारका, मथुरा, जगन्नाथपुरी—ये सब मेरे ही कारण हैं।[26] ज्ञानी ने ललकार कर कहा—"ऐ दुष्ट अन्यायी काल ! सुनो; मेरे प्रताप से 'शब्द' की सिद्धि करके 'हंस' अपने घर अमरपुर जायगा ही; अर्थात् जीव, ज्ञान और योगबल से मोक्ष को प्राप्त करेगा ही।[27] किंतु काल ने अपना टन्टा नहीं छोड़ा। उसने सत्पुरुष से अपने अधिकार की मांग की और त्रिगुणात्मक-शरीर, जगत् तथा पाप-पुण्य और उसमें उलझे हुए मन पर अपना स्वामित्व रखने के सम्बन्ध में आग्रह दरसाया।[28] जब ज्ञानी सन्त अपनी आन पर डटा रहा और जीवात्माओं को आवागमन के बन्धन से ज्ञान द्वारा मोक्ष प्राप्त करने के निमित्त प्रेरित करता रहा तब अन्त में काल ने हार मान ली और ज्ञानी को यह अधिकार दिया कि वह 'हंसों' को 'सत्पुरुष' के दरबार में विना रोक-टोक ले जाय।[29] जब काल निरंजन फिर भी अपनी डींग हाँकने लगा कि जितने सुर-नर-मुनि हैं और जो दश अवतार हैं, अथवा जो दुर्गा, देवी, देवता, दैत्य हैं, वे सब उसके मुख में हैं और विना उसकी अनुमति के भवसागर पार नहीं कर सकते हैं;[30] तो ज्ञानी ने उसे फिर से विश्वास दिलाया कि ज्ञान वह शस्त्र है जिससे मनुष्य चौरासी लाख योनियों की धारा से पार निकल सकता है।[31] उसने यह भी बताया कि नाम-भजन मानों सत्पुरुष का प्रेम से दिया हुआ पान का 'बीड़ा' है। जिस 'हंस' के पास यह बीड़ा विद्यमान है, उसे कोई भी नहीं रोक सकता है।[32] काल निरंजन और ज्ञानी के

इस संघर्षमय-संवाद की पूर्णाहुति करते हुए और ज्ञानी का समर्थन करते हुए ब्रह्म अथवा सत्पुरुष ने घोषित किया—"ऐ बटमार काल ! सुनो, जो जीव भक्ति रूपी मेरा बीड़ा पाता है, वह अवश्य मेरे लोक में आता है; उसके आँचल का 'खूँट' (छोर) तुम कभी न पकड़ो।"[33] यद्यपि 'काल' के अर्थ में 'निरंजन' का प्रयोग प्रचुरता से हुआ है तथापि बहुत-से ऐसे प्रसंग हैं जिनमें निरंजन के साथ कोई हीन-भावना सम्बद्ध नहीं है और भक्ति के क्षेत्र में वह भगवान् के पद पर आसीन है।[34]

निर्गुण-भावना के सम्बन्ध में चर्चा करते हुए हम उन पदों की ओर भी संकेत करना चाहते हैं जिनमें तैत्तिरीय उपनिषद् के 'यतो वाचो निवर्तन्ते'[35] के अनुसार निर्गुण ब्रह्म को अनिर्वचनीय मानकर 'नेति नेति' की शैली में उसका नकारात्मक स्वरूप अंकित किया गया है। जब कठोपनिषद् ने ब्रह्म का "अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययं तथाऽरसं नित्यवमगन्धवच्च यत्, अनाद्यनन्तं महतः परं ध्रुवम्"[36] वर्जित किया है तब उन्होंने इसी शैली को अपनाया है। 'आनन्द' ने लिखा है कि 'हमारा साँई' दृष्टि, श्रवण और कथन से परे है; वह अलख, अलेख, अनीह, अनाम, अकथ, अमोह, अमान, अगुण, अगोचर, अमर, अकाय है।[37] किनाराम ने भी कहा है कि सत्पुरुष की रूप-रेखा नहीं है, इसलिए उसका 'विशेष कथन' अथवा निर्वचन सम्भव नहीं है।[38] एक दूसरे सन्त ने ब्रह्म के परिचय को 'अकथ कहानी' कहा है और बताया है कि जिस प्रकार गूंगे को गुड़ खिलाइए तो वह उसके स्वाद का वर्णन नहीं कर सकता, इसी तरह ब्रह्म अनुभव-गम्य मात्र है। वह न एक है न दो, न पुरुष है न स्त्री, न सिर है न पैर, न पीठ न पेट, न छाती न 'घेंट', न जिह्वा न नेत्र न कान, न श्वेत न रक्त न चित्रित, न जीव न शिव, न ह्रस्व न दीर्घ, न कल्प न शीघ्र, न आदि न अन्त, न घर में न वन में, न मन में न तन में, न नीचे न ऊपर, न मूल न शाखा, न शत्रु न मित्र, न संग न पृथक्, न सुप्त न जागरित, न कृपण न दानी।[39] उस अनादि ब्रह्म का 'सुमरन' करना चाहिए जो न दूर है न निकट, न काला न पीला न लाल, न युवा न वृद्ध न बाल, न स्थिर न गतिशील, न आकुल न शान्त, न अद्वैत न द्वैत, न वीर न कायर, न जायमान न नश्यमान और न पापी न पुण्यवान।[40] किनाराम ने निर्गुण ब्रह्म के निर्विशेष तथा अलक्ष्य भाव को व्यक्त करते हुए कहा है—

सन्तों सन्तों लखियों, लखनवाला लक्ख।
रामकिना कैसे लखै, जाको नाम अलक्ख ॥[41]

ज्ञान के क्षेत्र का निर्गुण-ब्रह्म जब भक्ति के क्षेत्र में उतरता है और अनायास भक्त-भगवान् उपासक-उपास्य के इतरेतर-सम्बन्ध में बँध जाता है तब द्वैतवाद एकेश्वरवाद का रूप धारण कर लेता है। इस रूप में निर्गुणवादी सन्तों ने ईश्वर को बहुदेववाद से परे कल्पित किया है। ब्रह्मा, विष्णु, महेश उस एकेश्वर की संज्ञा तबतक नहीं पा सकते जबतक इनका त्रित्व विनष्ट नहीं हो जाता। अद्वैतवाद के साथ-साथ एकेश्वरवाद की भावना भारतवर्ष में वैदिक काल से समानान्तररूप से चली आ रही है। 'एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति' में श्रुतियों ने स्पष्ट रूप से एकदेववाद या एकेश्वरवाद को प्रतिपादित किया है। सन्त कवि भी

जब यह गाते हैं कि ब्रह्मा, शिव, शेष, गणपति, शारदा सभी नित्यप्रति जपते हैं तो भी 'पूर्ण ब्रह्म' का पार नहीं पाते,[४२] तब वे सब देवों में एक देवाधिदेव की कल्पना की अभिव्यंजना करते हैं। प्रकृति और जीव से भिन्न एक ईश्वर की सत्ता मानने से स्वतः हम इस सिद्धान्त पर पहुँचते हैं कि ईश्वर एक है, जीव अनेक हैं। प्रकृति की नानात्वविशिष्ट विकृतियाँ अर्थात् अचित् जगत् के पदार्थ भी अनेक हैं। ईश्वर, जगत् और जीवात्मा दोनों में अन्तर्यामी है। किनाराम ने लिखा है कि प्रभु, जड़ और चेतन सबमें रम रहा है।[४३] जिस तरह से आकाश सर्वत्र निरन्तर रूप से व्यापक है, उसी तरह से ब्रह्म भी व्याप्त है।[४४] पलटूदास लिखते हैं—साहब सब जीवों के अन्तर में 'समाया' हुआ है, वह पृथ्वी, पवन, जल, अग्नि और आकाश इन पंच तत्त्वों में व्याप्त है; निरंजन ईश्वर व्याप्य-व्यापक भाव से विश्व में प्रतिष्ठित है। 'आनंद' के शब्दों में भगवान कहते हैं कि मैं सबसे अलग होते हुए भी सबमें उसी तरह व्याप्त हूँ जिस तरह फूल में सुगन्ध, तलवार में चमक, सुन्दर पदार्थों में सौन्दर्य, सरिता में गति और समुद्र में लहर[४५]। फिर, दूसरे शब्दों में, वे कहते हैं—मैं फूल में हूँ और फूल के रंग, सुगन्ध तथा काँटों में भी हूँ; मैं पृथ्वी, आकाश और अन्तरिक्ष में हूँ; मैं ही सूर्य, चंद्र और तारों में हूँ।[४६] मैं त्रिगुण-रूप ब्रह्मा, विष्णु और शिव में हूँ; अन्य देवी, देवता और अवतारों में भी हूँ।[४७] व्याप्य-व्यापक-सम्बन्ध अद्वैत की पृष्ठभूमि पर प्रसंगवश इतरेतर-व्याप्ति का भी रूप ग्रहण करता है। किनाराम लिखते हैं कि राम में जगत् और जगत् में राम है[४८]; आपमें सब है और सबमें आप हैं।[४९] जब ईश्वर विश्वव्यापक के रूप में चित्रित किया जाता है तब उसे 'जगत्-पालक,' 'जगदीश' आदि अनेकानेक संज्ञाओं से विभूषित किया जाता है[५०]। एक ही ईश्वर सब जीवों में व्याप्त है—इस सिद्धान्त के आधार पर संतों ने समदर्शिता का समर्थन किया है। अलखानन्द लिखते हैं कि ब्रह्म विप्र में, डोम में; शनि में, सोम में; काल में, कीट में; काच में, हरि में; पर्वत में, समुद्र में; घर में, वन में; गाय में, कुत्ते में; कुंजर में, कीट में; भूप में, रंक में; सर्वत्र व्यापक है। तात्पर्य यह कि हम मानवों को ऊँच-नीच, धनी-गरीब, स्पृश्य-अस्पृश्य आदि वैषम्य-वितण्डाओं को दूर करना चाहिए।

द्वैत-अद्वैत तथा सगुण-निर्गुण की इस चर्चा को समाप्त करने के पूर्व यह बता देना आवश्यक प्रतीत होता है कि सन्तों ने निर्गुण ईश्वर के सगुण रूप धारण करने के कारणों और प्रयोजनों का किस प्रकार उल्लेख किया है। निर्गुण के सगुण रूप धारण करने को ही पौराणिक भावना में अवतारवाद कहते हैं। यद्यपि कबीर तथा किनाराम आदि ने अवतारवाद का स्पष्टतः समर्थन नहीं किया है, तथापि उन्होंने यत्र-तत्र अनेकानेक ऐसे पद लिखे हैं, जिनसे अवतार-भावना की परिपुष्टि मिलती है। इस प्रसंग में हमलोगों को यह ध्यान में रखना होगा कि यह कहना और है कि ब्रह्म ने निज इच्छा से त्रिगुणात्मक रूप धारण किया, और यह कहना और है कि ब्रह्म ने भक्तों के संकट-मोचन के लिए, अथवा गीता के शब्दों में, धर्म की ग्लानि और अधर्म के अभ्युत्थान के निवारण के लिए सगुण अवतार-रूप धारण किया। निर्गुणवादी सन्तों के पदों के सामान्य अध्ययन से यह प्रतीत होगा कि यद्यपि उन्होंने अद्वैतवाद और एकेश्वरवाद के सिद्धान्तों के नाते अवतारवाद का खंडन किया है, तथापि भक्तों के कल्याण और उद्धार के सम्बन्ध में रामावतार तथा

कृष्णावतार के जितने रामायण, महाभारत तथा पुराण-सम्मत कथानक प्रचलित हैं, उनमें आस्था दिखाई है। जिस समय किनाराम यह कहते हैं कि "[५१] अज, निर्मल, नित्य, मन-बुद्धि-गिरा-गोतीत असंश्रित ब्रह्म ने निज इच्छा से त्रिगुणात्मक रूप ग्रहण किया और उस कारण एक होते हुए भी अनेक कहाया, तो यह अवतारवाद नहीं; बल्कि अद्वैतवाद होगा। किन्तु, उन्हीं के शिष्य 'आनन्द' के अनुयायी भगवती प्रसाद जब यह लिखते हैं कि भगवान् की यह सहज रीति है कि वे संकट पड़ने पर भक्तों का उद्धार करते हैं; गज, प्रह्लाद, द्रौपदी आदि के उदाहरण विद्यमान हैं; भगवान ने स्वयं बाजी हारी और अपने भक्तों को जिताया;[५२] —तो वह पौराणिक अवतारवाद का अविकल अंगीकरण है। 'आनन्द' के अनेक ऐसे पद हैं, जिनमें उन्होंने अवतारवाद की समर्थन-पूर्वक चर्चा की है।[५३] स्वयं किनाराम ने एक स्वतंत्र पोथी लिखी है, जिसका नाम है 'रामरसाल'। उसमें उन्होंने रामचरित की कुछ घटनाओं का इस रूप में वर्णन किया है, जिससे उनकी रामावतार में आस्था व्यक्त होती है। इतना अवश्य है कि वे बीच-बीच में हमें 'राम ब्रह्म रूप भूप' और 'निर्गुणादिसगुणम्' आदि पदों द्वारा राम के निर्गुणत्व की याद दिलाते चलते हैं।[५४] अनेक ऐसे पद सन्तों के मिलते हैं, जिनमें निर्गुण और सगुण, निराकार और साकार के बीच समन्वय तथा सामंजस्य की भावना प्रगट की गई है।[५५] कहीं-कहीं तो सन्तों ने स्पष्ट रूप से अवतारवाद का प्रतिपादन किया है।[५६] स्वयं किनाराम की निम्नलिखित पंक्तियाँ देखिए—

> भजु मन नारायण नारायण नारायण।
> सरजू तीर अयोध्या नगरी,
> राम लखन औतारायन।[५७]

किन्तु, सामान्य रूप से, योगेश्वराचार्य के शब्दों में, निर्गुणवादी सन्तों की निर्गुण और सगुण दोनों में आस्था होते हुए भी उनकी भावना की चरम परिणति निर्गुण में ही है।

> गाइ निर्गुण सगुण मिलते
> ध्यान निर्गुण में रहा।[५८]

सरभंग अथवा अघोर-मत के संतों की ईश्वर-सम्बन्धी 'बानियों' के अध्ययन और मनन से हमारे मस्तिष्क पर यह प्रभाव पड़ता है कि वे विभिन्न धर्मों और सम्प्रदायों के सम्बन्ध में उदारता का भाव रखते हैं। हमने कबीर आदि सन्तों के विचारों का अनुशीलन करके यह पाया है कि वे सम्प्रदायवाद, जातिवाद अथवा वर्गवाद के प्रतिकूल हैं। उन्होंने बार-बार राम-रहीम और कृष्ण-करीम की एकता पर बल दिया है और हिन्दू तथा मुसलमान दोनों को भाई-भाई-जैसा बर्त्ताव करने का आदेश दिया है। यदि तुलसी, सूर आदि सगुणवादी सन्तों की विचारधारा के साथ कबीर, रैदास, दादू आदि निर्गुणवादी सन्तों की विचारधारा की तुलना की जाय, तो हम यह कह सकते हैं कि मानवता तथा भारतीय सभ्यता और संस्कृति की रक्षा की दृष्टि से दोनों का लक्ष्य समान था। दोनों मानव-मानव में प्रेमभाव की आकांक्षा करते थे और चाहते थे कि धर्म और मत के नाम पर जो तू-तू, मैं-मैं हो रहा है, उसका निराकरण हो। भेद या पद्धति में, समस्या के समाधान की प्रणाली में।

समस्या यह थी कि हिन्दू और मुसलमान में जो संघर्ष है, वह मिट जाय और हिन्दू अपने हिन्दुत्व के, तथा मुसलमान अपने इस्लाम के, मानने एवं अनुसरण करने में स्वतंत्र हों। सूर, तुलसी आदि तथा रामानुज, मध्व, निम्बार्क, चैतन्य आदि कवियों एवं सन्तों ने हिन्दू-संस्कृति-रूपी दुर्ग की अन्तर-रक्षा की चेष्टा की। कबीर, जायसी आदि ने इस दुर्ग पर आक्रमण करनेवालों को यह बतलाने का प्रयत्न किया कि धर्म के नाम पर एक-दूसरे के विरुद्ध आक्रमण निरर्थक है; हिन्दू अपने दुर्ग में रहें, मुस्लिम अपने दुर्ग में रहें। तुलसी आदि ने हिन्दू-सभ्यता और संस्कृति की अन्तःशुद्धि का लक्ष्य रखा और कबीर आदि ने भारतीय सभ्यता और संस्कृति के व्यापक अंचल में हिन्दू और मुसलमान दोनों को समान रूप से फलने और फूलने के लिए प्रोत्साहित किया। एक पक्ष को हम विशुद्धतावादी कह सकते हैं तो दूसरे को समन्वयवादी। सार्वभौम प्रेम दोनों को इष्ट था। किनाराम की शिष्य-परम्परा में मुख्यतः 'आनन्द' के प्रभाव-क्षेत्र के अन्दर बहुत-से ऐसे सन्त अथवा भक्त हो गये हैं, जिन्होंने मत और सम्प्रदाय के नाम पर वैर-विरोध को निंदित ठहराकर परस्पर-प्रेम-भाव बरतने का उपदेश दिया है। हनीफ ने राम, कृष्ण, खुदा, अहद, अहमद, मुस्तफा आदि संज्ञाओं को समान अभिधा-परक बताया है और कहा है कि मस्जिद, मन्दिर और गिरिजा में एक ही भगवान की चर्चा है।[५९]

२. माया, अविद्या

उपनिषदों को 'वेदान्त' कहा गया है; क्योंकि उनका सीधा सम्बन्ध आरण्यकों से होते हुए वेदों से जोड़ा जाता है। शृंखला की प्रारम्भिक कड़ी वेद है और अन्त अथवा अन्तिम छोर उपनिषदें हैं। इसीलिए वे वेद का अन्त अथवा वेदान्त हैं। निर्गुण सन्त-परम्परा का अद्वैतवाद इन्हीं उपनिषदों के 'तत्त्वमसि', 'अहं ब्रह्मास्मि' और 'सर्वंखल्विदं ब्रह्म' आदि निष्कर्ष-सिद्धान्तों पर आधारित है। हमने यह भी देखा है कि कबीर आदि सन्तों ने परमेश्वर के लिए 'ब्रह्म' शब्द का उतना अधिक प्रयोग नहीं किया है, जितना 'राम', 'पुरुष' और 'सत्पुरुष' का। ये प्रयोग भी उपनिषदों में ही मूलीभूत हैं, यथा 'असंगो-ह्ययम् पुरुषः'[६०] अथवा 'वेदाहमेतम् पुरुषं महान्तम्'[६१] अथवा 'महान्प्रभुर्वैपुरुषः'।[६२] सन्तों ने जीवात्मा को 'हंस' और परमात्मा को 'परमहंस' कहकर वर्णित किया है। ये शब्द भी 'हिरण्मयः पुरुष एकहंसः'[६३] आदि उपनिषद्-वाक्यों से अनुप्राणित हैं। सन्तों के पदों में 'माया', 'अविद्या' और 'उपाधि' इन शब्दों का प्रचुर प्रयोग हुआ है। इन पदों की प्रतिष्ठा और दार्शनिक पारिभाषिकता का श्रेय शंकराचार्य को है; किन्तु शंकराचार्य ने मूल प्रेरणा ग्रहण की उपनिषदों से। यही कारण है कि वेदान्त-सूत्रों के भाष्य में शंकर

ने पद-पद पर उपनिषद्-वाक्यों को उद्धृत किया है और उन्हें 'इति श्रुतिः' कहकर वेदवाक्यों के समकक्ष प्रमाणित किया है। उपनिषदों में 'विद्या' और 'अविद्या' शब्द का बार-बार प्रयोग किया गया है। यथा—

"अन्धन्तमः प्रविशन्ति येऽविद्यामुपासते ।
ततो भूय इव ते तमो य उ विद्यायां रताः ॥"[६४]

अथवा

"द्वे अक्षरे ब्रह्म परे त्वनन्ते विद्याऽविद्ये निहिते यत्र गूढे ।
क्षरं त्वविद्या ह्यमृतं तु विद्या विद्याऽविद्ये ईशते यस्तु सोऽन्यः ॥"[६५]

अथवा

"दूरमेते विपरीते विषूची अविद्या या च विद्येति ज्ञाता ।
विद्याभीप्सितं नचिकेतसं मन्ये न त्वा कामा बहवो लोलुपन्तः ॥४॥
अविद्यायामन्तरे वर्तमानाः स्वयं धीराः पण्डितम्मन्यमानाः ।
दन्द्रम्यमाणाः परियन्ति मूढा अन्धेनैव नीयमाना यथान्धाः ॥५॥"[६६]

पुनः

"इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते युक्ताह्यस्य हरयः शता दश ॥"[६७]

अथवा

"छन्दांसि यज्ञाः क्रतवो व्रतानि भूतं भव्यं यच्च वेदा वदन्ति ।
अस्मान्मायी सृजते विश्वमेतत्तस्मिंश्चान्यो मायया संनिरुद्धः ॥९॥
मायांतु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम् ।
तस्यावयवभूतैस्तु व्याप्तं सर्वमिदं जगत् ॥१०॥"[६८]

शंकराचार्य ने ब्रह्मसूत्र-भाष्य में 'अध्यास' की परिभाषा दी है—'स्मृतिरूपः परत्र पूर्वदृष्टावभासः' अथवा 'अन्यत्र अन्यधर्माध्यासः' अथवा 'विवेकाग्रहनिबन्धनो भ्रमः' अथवा 'विपरीतधर्मत्वकल्पना' अथवा 'अन्यस्य अन्यधर्मावभासता'।[६९] सारांश यह कि जिसका जो तात्त्विक धर्म है, उसका आरोप न होकर किसी अन्य के धर्म का उसमें आरोप अथवा भ्रम होना 'अध्यास' है। रज्जु का तात्त्विक धर्म सर्प के तात्त्विक धर्म से भिन्न है, अतः यदि सायंकाल रज्जु को देखकर सर्प की भ्रान्ति होती है तो वह अध्यास है। अध्यास ही का दूसरा नाम अविद्या है। 'तमेतमेवंलक्षणमध्यासं पण्डिता अविद्येति मन्यन्ते'।[७०] इसी का इतर नाम 'माया' है। मायावी परमात्मा ने 'माया' को स्वयं प्रसारित किया है, किन्तु उससे संस्पृष्ट नहीं होता। ईश्वर, जीव और जगत्—ये तीन अवस्थाएँ रज्जु में सर्प के समान आभास-मात्र हैं। 'यथा स्वयं प्रसारितया मायया मायावी त्रिष्वपि कालेषु न संस्पृश्यते अवस्तुत्वात्, एवं

परमात्मापि संसारमायया न संस्पृश्यत इति।'[७१] किनाराम ने इसी शांकर मायावाद की ओर संकेत किया है जब वे कहते हैं कि 'पाँच प्राण' और 'पचीस प्रकृतियाँ' जीव तथा जगदीश—ये माया के संसर्ग से हैं।[७२] उन्होंने पारिभाषिक शब्द 'उपाधि' का भी प्रयोग किया है और कहा है कि शरीर, उसका सौन्दर्य और उसकी जवानी—ये सभी उपाधि-जन्य हैं। इनसे मुक्ति मिलने को समाधि कहते हैं।[७३] 'माया' और 'अविद्या' के पर्याय की ओर संकेत करते हुए वे कहते हैं कि हमारा आत्मा अज्ञान के आवरण में उसी तरह छिप जाता है, जिस तरह अन्धेरे घर में सूर्य की किरणें अदृश्य बनी रहती हैं।[७४] जीव और ब्रह्म अभिन्न हैं; किन्तु उनमें भेद का कारण है—उपाधि अथवा माया। सोने के भिन्न-भिन्न आभूषणों को अलग-अलग मानना अर्थात् अभेद में भेद मानना उपाधि-जन्य है। उसी प्रकार हम स्वयं अपने कुटुम्ब की सृष्टि करके स्वयं उसमें बँध और भूल जाते हैं। यह भी उपाधि ही है।[७५] इसी सिलसिले में हम 'निरंजन' की ओर भी संकेत करेंगे, जिसकी चर्चा पहले हो चुकी है। जिस प्रकार 'निरंजन' को प्रसंगवश 'काल' कहा है, उसी प्रकार उसको 'मन' भी कहा गया है, और मन तथा माया के परस्पर-सम्पर्क तथा संसर्ग को द्योतित करने के लिए अनेकानेक पद गाये गये हैं। संत रामटहल राम ने कहा है कि 'मन माया के सकल पसारा।'[७६] टेकमनराम, जो चम्पारन-शाखा के एक प्रसिद्ध सरभंग सन्त हो गये हैं, प्रतीक-भाषा का प्रयोग करते हुए लिखते हैं, कि मन-रूपी 'रसिया अतिथि' आया है और उसके साथ में 'पाँच तथा पचीस' साथी हैं, जो कि उसके खाते समय पंखा डुलाते हैं।[७७] स्पष्टतः यहाँ 'पाँच' और 'पचीस' से तात्पर्य माया, पंचतत्त्व और उसके प्रपंच से है।

सामान्यतर अर्थ में स्वयं 'माया' को अथवा 'मन' और 'माया' उभय को, इस जगत् की सृष्टि और विस्तार का उत्तरदायी माना गया है। संसार में जितने भी भ्रम हैं, जितने अनर्थ और विपरीत व्यवहार हैं, सभी मायाकृत हैं। जहाँ मन और माया के परस्पर-सम्पर्क का वर्णन है, वहाँ अनुमानतः मन, सृष्टि-निर्माण की प्रक्रिया में पुरुष-शक्ति का प्रतीक है और माया नारी-शक्ति का।[७८] टेकमन राम लिखते हैं कि देवी, देवता, मानव—जिसने माया की 'नौकरी' की, वह जमराज के दरबार में 'बेगार' पकड़ा जायगा।[७९] ब्रह्मा को देखिए, उनके यहाँ ब्रह्माणी हैं, शिव के यहाँ भवानी। 'ठगनी योगिनियों' ने तीनों पुरों को 'सर' कर रखा है।[८०] पार्वती ने शिवजी को और कैकयी ने दशरथ को मोह-पाश में बद्ध किया। सीता ने रावण को ऐसा छला कि उसकी सोने की लंका उजड़ गई; राधा ने कृष्ण को मोहित किया और वृन्दावन में 'धमार' रचाया। ऋषि दुर्वासा भी माया के प्रभाव से वंचित नहीं रहे। माया ने ही सिंहलद्वीप की पद्मिनी के रूप में मत्स्येन्द्रनाथ को मुग्ध किया। आज गंगा के रूप में माया सारी दुनिया को धोखे में डाल रही है।[८१] निरंजन और माया के फेर में जो भी पड़ा, वह कभी आत्म-ज्ञान की ओर अग्रसर नहीं हो सकता।[८२] जीव के दो भेद माने जा सकते हैं—माया-विवश और माया-रहित। प्रथम बद्ध है और दूसरा मुक्त है। माया-विवश होने से विषय और असत्य में लीन होकर जीवात्मा ज्ञान से दूर भागता चला जाता है।[८३] 'आनन्द' ने बताया है कि पाँच तत्त्वों का एक पिंजरा बना है, उसमें जीवात्मा आबद्ध है; उसमें आशा-तृष्णा

का किवाड़ लगा है और माया-मोह का ताला।[८४] जब सन्त को ज्ञान होता है तब उसे पश्चात्ताप होता है कि उसने सारा जीवन माया और मोह में बिता दिया; वह अनुभव करता है कि दुनिया की धन-दौलत किसी काम नहीं आयगी, जगत् का सारा व्यवहार झूठा है; अतः वह कहता है—'चूल्हे में जाय बेटा-बेटी, घर-गृहस्थी, नैहर-ससुरार;'[८५] मैं अवगुण की खान बना रहा, न भजन किया न हरिनाम लिया;[८६] मुझे जानना चाहिए था कि मैं सत्यलोक का निवासी हूँ और मर्त्यलोक में भटक कर आ पड़ा हूँ; अतः पक्ष और मोह के नशे में उन्मत्त होना अनुचित है।[८७] आश्चर्य तो यह है कि बहुत कम ऐसे सन्त मिलते हैं, जो सच्ची राह बता दें। अधिकांश संख्या ऐसों की है, जो स्वयं अन्धे हैं और संसारी जन भी स्वयं अन्धे हैं, जो उनके निर्देशन में पड़कर पथभ्रष्ट हो रहे हैं।[८८]

'आनन्द' ने माधुर्य के आवेश में अपने को परमात्मा की प्रियतमा मानकर माया को अपनी 'सौतिन' कहकर कोसा है, वे कहते हैं कि जब से 'माया' ने उनके प्रियतम को मोह-पाश में बाँधा, तब से वह अभिमानिनी हो गयी; उसने ब्रह्मा, विष्णु और शिव तथा अन्य ऋषि-मुनियों को नागिन बनकर डँसा है। वे भक्तिन हैं और उनका 'पिया' भक्त-वत्सल है; परन्तु माया के व्यवधान के कारण सान्निध्य नहीं स्थापित हो पाता।[८९]

जहाँ भी दृष्टि डालिए, वहीं माया का बाजार लगा है।[९०] अलखानन्द की निम्न-लिखित पंक्तियाँ देखिए :—

> माया के लागे बजार मेरे साधो।
> नेकी-बदी के दोकान छना है,
> खरीदत मनुष हजार, हजार मेरो साधो।[९१]

उस माया-मोह की नगरी में सब कुछ झूठा है; झूठी है काया, झूठी है माया, और झूठा है विस्तृत संसार; माता-पिता, भाई-बन्धु, शेष परिवार, कोट-किला, घरबार-गृहस्थी सब कुछ झूठा है। 'झूठै विधाता को सगरो व्यौहार हो रामा।'[९२] भाई-बन्धु, माता-पिता सभी तबतक अपने हैं जबतक स्वार्थ है। जिस दिन हंस किले से उड़कर निकल जायगा उस दिन कोई उसका साथ न देगा।[९३] कर्म का साथी कोई न होगा।[९४] हम अपने शरीर के सौन्दर्य पर कितना गर्व करते हैं; किन्तु यदि डूबकर देखिए तो कामिनी के जिस कुच से हम प्यार करते हैं वह निरी मांस-ग्रन्थि है और उसका मुख थूक-जैसे अशुद्ध पदार्थ से परिपूरित है।[९५] हमें स्मरण रखना चाहिए कि "दारा दुख की खान।"[९६] किनाराम कहते हैं कि माता-पिता, पति-पत्नी, सखा-संगी ये सभी सम्बन्ध केवल मानने पर हैं, अर्थात् निरे मानसिक भ्रम हैं। पारिभाषिक भाषा में ये उपाधि-जन्य तथा आभास-मात्र हैं।[९७] यह संसार मानो दो घंटे की हाट है, जहाँ शत-सहस्र जन आते-जाते हैं, और खरीद-बिक्री करते हैं; कोई पाप खरीदता है तो कोई पुण्य।[९८] जिस तरह पीपल के पेड़ के पत्ते की फुनगी हवा में डोलती रहती है, वैसी ही डगमग हमारी दुनिया डोलती है; इसमें आस्था कैसी ?[९९] माया के भ्रम में पड़े हुए जीव की तुलना के लिए सन्तों ने अनेकानेक उपमानों का प्रयोग किया है। जिस प्रकार भँवरा वन में फूल की

सुगन्धि के लिए चक्कर काटता है, जिस प्रकार मृग अपनी नाभि में ही अवस्थित कस्तूरी की गन्ध के लिए वन का कोना-कोना छानता है, जैसे बाजीगर का बन्दर उसका मनचाहा नाच नाचता रहता है, जिस प्रकार 'सुगना' 'सेमर' के सुन्दर फूल को फल समझकर उसमें व्यर्थ चोंच मारता है, ठीक उसी तरह माया के वश में पड़ा हुआ मानव तृष्णा और वासना के पीछे वृथा दौड़ता रहता है।[१००]

आश्चर्य है कि सारा संसार माया के भ्रमजाल में पड़ा हुआ है; मानो उसके गले में 'उलट फाँस' लगी हुई है;[१०१] वह अमृत छोड़कर वारुणी पीता है।[१०२] मानव को समझना चाहिए कि सुत, सम्पत्ति, स्त्री, भवन, भोग—ये सभी क्षणिक हैं। वह तो तत्त्वतः पूर्ण चित्-स्वरूप ब्रह्म है; किन्तु मन के धोखे में उसी तरह पड़ा है जिस तरह मृग सूर्य की किरणों के प्रभाव से बालुकाराशि में जलधारा समझकर उससे प्यास मिटाने को दौड़ता है।[१०३] जिस समय संसारी नर माया की मदिरा में मत्त रहता है, उस समय वह अभिमान में इतना भूला और अपनी धन-दौलत के पसारे को देखकर इतना फूला रहता है कि उसे यह खबर नहीं रहती कि उसके सिर पर काल नाच रहा है।[१०४] काल ऐसा धोखेबाज है कि वह अचानक डाका डालता है, और अकेला नहीं, 'पाँच पचीस' चोरों के साथ।[१०५]

जब हमें ज्ञान होता है तब हमें यह याद आती है कि हमने अपने चिन्तामणि-जैसे जन्म को मोह-मद में 'गाफ़िल' होकर मिथ्या-अपवाद और धोखे-धन्धे में गँवा दिया।[१०६] हमने रामनाम की भक्ति को विस्मृत कर अपने को कनक, कामिनी और काल के पाश में आबद्ध कर दिया।[१०७] एक भक्त आत्म-परिताप के आवेग में गाते हैं कि—मैंने माया-मोह में फँसकर भगवत्-भजन नहीं किया, न दान-पुण्य किया और न दुर्जनों का संग छोड़कर सन्तों की संगति की; अब तो जब उम्र बीत चली तो सिर धुन कर पछता रहा हूँ।[१०८] किनाराम की निम्नलिखित पंक्तियाँ देखिए—

धन धाम सगाई लागि गँवाई जन्म बिताई नर धंधे।
ममिता रंग राते मद के माते कौन दाँव तेरा बंधे॥
यहि विधि दिन खोया बहु-विधि गोया आप बिगोया तू अंधे।
किनाराम सम्हारै समय बिचारै सतगुरु लायो मन रंधे॥[१०९]

और आनन्द की ये दो गजलें—

१. दुनिया में लेके आये थे हम लेके क्या चले।
मुट्ठी में बाँध लाये थे जो कुछ गँवा चले॥
२. महलो मकाँ बनाया, यहाँ नाम के लिए।
घर आक़बत को ख़ाक में, लेकिन मिला चले॥[११०]

३. शरीर, मन और इन्द्रियाँ

मायामय संसार की असारता की ही उपपत्ति है—शरीर की क्षणभंगुरता। इस शरीर में पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ और अन्तःकरण है। अन्तःकरण के चार अंग हैं—मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार।[१११] मन में हृदय का वास है जोकि सभी इन्द्रियों को प्रकाशित करता है।[११२] किनाराम ने इस विषय का और विश्लेषण करते हुए बतलाया है कि मन का आधार प्राण है, प्राण का आधार श्वास है, श्वास का आधार शब्द-ब्रह्म और ब्रह्म का आधार सहज-स्वरूप।[११३] ब्रह्म नित्य तथा अनश्वर है; किन्तु शरीर अनित्य एवं नश्वर। शरीर की स्थिरता उतनी ही क्षणिक है जितनी ओस की बूँद। जबतक यह शरीर कायम है, तबतक भाई-भतीजा, बेटा-नाती हिलमिलकर प्रेम करते हैं। जब यमराज का प्यादा आयगा तब सब कोई छाती पीटते रह जायेंगे, प्राण निकल जायगा और शरीर मिट्टी में मिल जायगा।[११४] संसार की असारता और शरीर की नश्वरता को ध्यान में रखते हुए हमें तन, यौवन और सौन्दर्य के अभिमान में मत्त नहीं होना चाहिए, और न 'मोर तोर' के टन्टे-बखेड़े में पड़ना चाहिए।[११५] हमें यह स्मरण होना चाहिए कि हमारा अल्पकालीन जीवन 'दिन-रैन', 'पल-पल', छिन-छिन' घटता चला जा रहा है। जब कभी सुधि आ जाय तभी से चेत जाना चाहिए। यदि ऐसा नहीं हुआ तो हमारा जन्म व्यर्थ में नष्ट हो जायगा। उद्धार का एकमात्र मार्ग है—सत्संग और भगवद्भजन। भक्त को सदा यह सोचना चाहिए कि मृत्यु उसकी चोटी पकड़े हुई है। काल बाज के समान है और हमारा शरीर लावा पक्षी के समान, जो एक झपट में विनष्ट हो जायगा।[११६] हमारी आयु बिजली की चमक के समान अचिर-प्रभ है; अभी आलोकित और अभी अन्धकारमय! जिन-जिन ने अपने शरीर और धन-यौवन पर गर्व किया, वे सब-के-सब धूल में मिल गये। एक सन्त ने एक पद में शरीर की अस्थिरता का सुन्दर चित्र खींचा है। अभी-अभी यह शिशु ठुमुक-ठुमुक चाल चलकर और तुतली बोली बोलकर माता-पिता को स्वर्ग-सा सुख दे रहा था; कभी रूठता था, तो कभी खिलखिलाकर हँसता था; कभी सखा-संगियों के साथ खाता था, तो कभी माँ से स्वयं खाने के लिए दही माँगता था। यदि खेलते समय शरीर में धूल लिपट गई, तो माँ उसे तुरत झाड़कर शरीर को साफ कर देती थी। किन्तु हाय री नियति! वही सोने का सा सुन्दर गौर शरीर क्षण ही बाद मरघट में लोटने लगा और कौए तथा गृध्र उससे मांस नोच-नोच कर खाने लगे।[११७] शरीर एक पँचरंगा पिंजरा (पंच-तत्व-निर्मित) है, जिसकी सार्थकता तभी तक है जबतक उसमें 'सुगना' विद्यमान है। जब यह सुगना दसों दरवाजे (इन्द्रियाँ) बन्द होते हुए भी एक दिन उड़ जायगा, तब पिंजरा निरर्थक हो जायगा। शरीर की परिवर्त्तनशीलता को देखकर भी लोगों को सुधि होनी चाहिए; क्योंकि यह चार अवस्थाओं से होकर गुजरता है—बाल्यकाल, किशोरावस्था, यौवन और वृद्धत्व। जब वृद्धावस्था आती है और तन काँपने तथा त्वचा झूलने लगती है, तब पश्चात्ताप होता है और हमको यह ध्यान आता है कि संसार का मिलन-वियोग बाजार-हाट के मिलने-बिछुड़ने-जैसा है।

और धन, जन, भवन क्षीण होने के लिए ही संचित होते हैं। 'आनन्द' ने एक गजल में लिखा है कि

> दुनिया को एक सराय, समझते रहे सदा।
> एक रात रहके, सुबह को बिस्तर उठा चले॥[118]

एक दूसरी गजल में 'आनन्द' ने लिखा है कि हमलोगों के इस शरीर में एक निरन्तर होली जल रही है; काया की लकड़ी में तृष्णा की आग धधक रही है।[119] इससे बचने का एकमात्र साधन है—भगवद्भक्ति द्वारा आन्तरिक शान्ति की प्राप्ति और कच्ची मिट्टी के खिलौने जैसे शरीर के प्रति अनास्था।[120] अपने बच्चे के सुन्दर कोमल मुखड़े को माता चूमती है और उसको जाड़े की ठंढ और गर्मी की धूप से बचाती है; किन्तु अचानक जब काल उसको कवलित कर लेता है, तो माता रोती-कलपती रह जाती है और उसे चिता पर जला दिया जाता है।[121] यदि इसपर भी विराग-भावना न उत्पन्न हो तो आश्चर्य ही है। सन्त केशोदास ने कल्पना की है कि जब शिशु माता के गर्भ में उलटा लटका रहता है तो मानो भगवान से पश्चात्तापपूर्वक प्रतिज्ञा करता है कि—जब मैं वसुधा में जन्म लूँगा तो भगवान की भक्ति करूँगा; किन्तु जब उसका जन्म होता है तो उस प्रतिज्ञा को भूल जाता है; बचपन को खेल-कूद में और तारुण्य को भोग-विलास में बिता देता है; 'जात-पात' के बन्धन में पड़कर काम-क्रोध आदि इन्द्रिय-जन्य वासनाओं में फँसकर अपना हीरे-का-सा मानव-जीवन व्यर्थ गँवा देता है।[122] यदि उसे शरीर की असारता और इन्द्रियों की वासनाओं की हेयता का ध्यान होता तो ऐसा नहीं करता।

'आनन्द' ने एक सुन्दर कथानक में शरीर की उपमा चदंन के बागीचे से दी है। "एक बार एक राजा जंगल में निकल गया। उसको वहाँ प्यास लगी। एक आदमी भेड़ें चरा रहा था। उसने पानी माँगा। उसने बड़े आदर से ताजा पानी खींचकर पिलाया। राजा उसे अपनी राजधानी में ले गया और एक चन्दन का बाग उसको दिया कि उसकी रखवाली करे। उसका वेतन भी निश्चित कर दिया। रहते-रहते इस आदमी को लालच ने आ घेरा। वेतन में से घरवालों के वास्ते कुछ बचाने के विचार से वह चन्दन की लकड़ी काट-काटकर मामूली लकड़ी के समान बेचने लगा। कुछ दिन बाद राजा बाग देखने गया और उसे उजाड़ पाकर दुःखी हुआ। उससे पूछा तो उसने सारा हाल कहा। राजा ने एक छोटी-सी डाल, जो पड़ी थी, उसे देखकर कहा कि इसको पंसारी की दूकान पर ले जा। वह २०) लेकर आया और राजा के सामने रख दिया। तब राजा ने कहा, 'मूर्ख, देखा हजारों का माल तूने मुफ्त बेच डाला।' वह बहुत पछताने लगा और उस दिन से बागीचे की सेवा में लग गया। सत्संगियो! चन्दन का बाग यह तुम्हारा शरीर है। भगवान ने तुम्हें इसे दिया है कि इससे कमाओ, खाओ, परमार्थ और भजन करो। पर तुमने काम, क्रोध, लोभ आदि के वश में होकर इसे नष्ट कर डाला। अब भी चेतो, यह बहुमूल्य वस्तु है।"[123]

रामस्वरूप दास ने समग्र सृष्टि को 'मन और माया' का प्रपंच माना है और यह कहा कि—'कठिन मोधन मन की माई, मन की गति कहा नहि जाई।' मन की प्रबलता को व्यक्त करने के लिए सन्तों ने बहुतेरे पद गाये हैं। किनाराम कहते हैं कि उनके गुरु ने यह उपदेश दिया कि चंचल मन का प्रभुत्व सभी लोगों में व्याप रहा है।[१२४] मन ही के हाथ में सभी सांसारिक अधिकार संपुटित हैं; इसका नियंत्रण कर लोक-कल्याण करने से ही मोक्ष मिलता है।[१२५] मन प्रबल भी है, बहुरंगी भी है; पतला भी, मोटा भी; चोर भी, साधु भी; मन ही की भावना पर शुभ और अशुभ तथा पाप और पुण्य निर्भर हैं; मन मारो तो 'सिरजनहार' पाओ। सन्तों ने मन की उच्छृङ्खलता और उसके जाल की व्यापकता को देखते हुए उसे कोसा भी है। मन हमारे अन्दर का शैतान है, उसे बाँधे बिना परमात्म-ज्ञान संभव नहीं।[१२६] मन अत्यन्त उच्छृङ्खल है। जिस प्रकार बरसात की बाढ़ में नदी के पानी की धारा बहुत तीव्र रहती है, उसी तरह मन की भी गति अत्यधिक तेज है; रोकने से भी नहीं रुकती।[१२७] हम कितना भी आसन और प्राणायाम करें, जबतक मन नियंत्रित नहीं होता, तबतक वे सब व्यर्थ हैं। अविजित मन के रहते हुए जो साधना-पथ का पथिक होता है, वह योगी नहीं भाँड़ है।[१२८] कर्त्ताराम कहते हैं कि बंधनग्रस्त वह है, जो मन और इन्द्रियों के विषयों में लिप्त है और बन्धनमुक्त वह है, जो इनसे दूर है।[१२९] मन सभी बुराइयों का घर है। काम-रूपी कसाई, क्रोध-रूपी चांडाल, मोह-रूपी चमार, तृष्णा-रूपी तेली, कुमति-रूपी कलवार और द्विविधा-रूपी धोबी,—ये सभी मन के मदा के संगी हैं।[१३०] चाह-रूपी 'चूहरी' जो सब 'नीचन की नीच' है, वह भी इसके साथ चलती है और ब्रह्म में द्वैत भाव लाकर उसे सांसारिक विषयों में लिप्त करती है।[१३१] मन ही के वश में होकर हम लोभ के समुद्र में डूबते-उतराते रहते हैं, दिन-रात विकल होकर हाय-हाय करते रहते हैं, तथा चिन्ता-रूपी समुद्र की तरंगों के आघात से पीड़ित होते रहते हैं।[१३२] आशा, चिन्ता, शंका, जो मन की उपज हैं, 'डाइन' के समान हैं, जो हमारा विनाश कर देंगी।[१३३] जबतक मानव इनपर तथा विषय-वासनाओं पर नहीं विजय पाता तबतक उद्धार नहीं है।[१३४] मदिरा का मद छूट जाता है; किन्तु धन का मद नहीं छूटता; इसी से संसार पागल बना हुआ है।[१३५] मोह-रूपी मद्य पीकर हम अपनी राह से भटक गये हैं।[१३६] वासनाएँ सर्पिणी के समान हैं जो मानवों को पग-पग पर डस रही हैं।[१३७]

ऐसी स्थिति में हमारा कर्तव्य है कि हम शील, सन्तोष, दया, क्षमा और विवेक की सेना लेकर कामादि खल-शत्रु-महाभटों पर आक्रमण कर दें और उनको जीत लें।[१३८] एक सुन्दर उक्ति-विच्छित्ति के साथ 'आनंद' कहते हैं कि काम, क्रोध और लोभ फकीरों की 'गिज़ा' (खाद्य) है; और विषय-वासना में लिप्त मानवों के लिए जहर है। तात्पर्य यह कि जहाँ सांसारिक नर काम, क्रोध आदि में लिप्त रहते हैं, वहाँ सन्त उनपर प्रभुत्व प्राप्त करते हैं, उन्हें खाकर भस्म कर डालते हैं।[१३९] दरिद्र कौन है—जिसे तृष्णा की विपुलता है; धनी कौन है—जो सन्तुष्ट है; अंधा कौन है—जो कामातुर है; मरण किसे कहते हैं—अपराध और लांछन को; शत्रु कौन है—अपनी इन्द्रियाँ। अतः इन्द्रियों और इन्द्रियों के

राजा मन को वश में करना चाहिए।[१४०] इससे अजर-अमर की प्राप्ति होगी। किनाराम ने कहा है—

मन मारै अजरा मरै।[१४१]

४· सृष्टि, पुनर्जन्म, स्वर्ग-नरक

अद्वैत सिद्धांत के अनुसार शुद्ध ज्ञान-क्षेत्र में नाम-रूपात्मक सृष्टि अध्यास तथा अविद्या-जन्य है। किन्तु भक्त-भगवान, आराधक-अराध्य की द्वैत-भावना के क्षेत्र में, अर्थात् जन-सामान्य के व्यवहार-क्षेत्र में नाम-रूपात्मक, जड़-चेतनमय सृष्टि की सत्ता अनिवार्य हो जाती है। अतः एक तत्त्व से किस प्रकार अनेक पदार्थों का विकास हुआ, यह प्रत्येक दार्शनिक तथा धार्मिक विचारक के सामने एक शाश्वत प्रश्न रहा है। इस प्रश्न पर उपनिषदों ने भिन्न-भिन्न स्थलों में भिन्न-भिन्न दृष्टि से विचार किया है। उदाहरणतः कठोपनिषद् में लिखा है कि इन्द्रियों से परे अर्थ, अर्थों से परे मन, मन से परे बुद्धि और बुद्धि से परे आत्मा अथवा महान्, महान् से परे अव्यक्त, अव्यक्त से परे पुरुष है और पुरुष से परे कुछ भी नहीं; क्योंकि 'सा काष्ठा सा परा गतिः'।[१४२] षड्दर्शनों में सांख्यदर्शन ऐसा है, जिसमें परिणामवाद अथवा विकासवाद का संगत-रूप से विश्लेषण किया गया है। संसार का मूलभूत सूक्ष्म कारण प्रकृति माना गया है। सांख्य-दर्शन का दूसरा मुख्य तत्त्व है पुरुष; और प्रकृति तथा पुरुष के संयोग से सृष्टि के प्रपंच की कल्पना की गई है। प्रकृति सत्त्व, रजस् और तमस् इन्हीं तीन गुणों से बनी है, और सृष्टि के पूर्व वह इन तीन गुणों की साम्यावस्था में रहती है। प्रकृति-पुरुष के संयोग से गुणों में 'क्षोभ' अथवा 'चंचलता' उत्पन्न होती है और वहीं से सृष्टि का विकास-क्रम आरम्भ होता है। इस विषय की विशेष व्याख्या न करके एक संक्षिप्त तालिका द्वारा इसे प्रस्तुत किया जा रहा है—
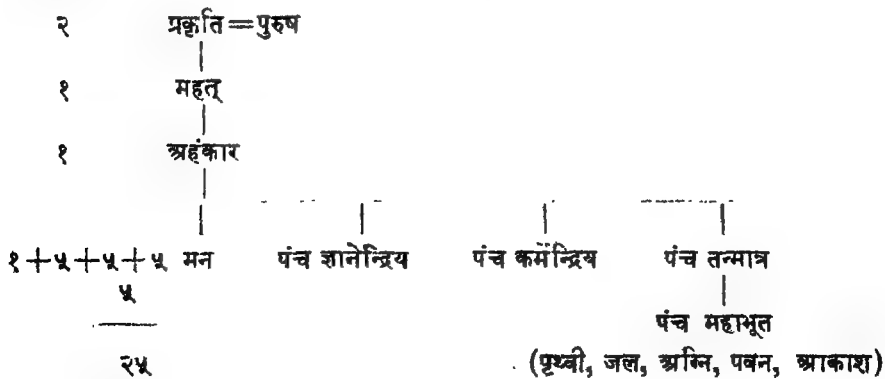
इन्हें ही सामान्यतः 'पचीस तत्त्व' कहा जाता है।

कबीर आदि सन्तों ने मूलतः सांख्य से ही पंचतत्त्वों, दश इन्द्रियों तथा मन, बुद्धि आदि के सिद्धान्त को ग्रहण किया है; किन्तु काल-क्रम से इस मूलभूत सृष्टि-सिद्धांत में बहुत परिवर्त्तन आ गये हैं। भिन्न-भिन्न पुराणों ने इस मूल सिद्धांत को देवी-देवताओं के चरित्रों के साथ मिलाकर विविध रूपों में पल्लवित तथा संवर्द्धित किया है। उदाहरणतः, सृष्टि का निर्माण ब्रह्मा का, उसकी रक्षा विष्णु का और विनाश शिव का उत्तरदायित्व है। इस प्रकार की कल्पना पुराणों तथा धार्मिक ग्रन्थों में बद्धमूल हो गई है। भगवद्गीता के चौदहवें अध्याय में पुरुष-प्रकृति के संयोग से सर्वभूतों की उत्पत्ति का कथन करते हुए प्रकृति से उत्पन्न तीनों गुणों का जीवात्मा के ऊपर जो प्रभाव है, उसका विस्तृत विवरण दिया गया है। उदाहरणतः यह कहा गया है कि सत्त्वगुण की वृद्धि से अंतःकरण और इन्द्रियों में चेतनता और बोध-शक्ति उत्पन्न होती है; रजोगुण की वृद्धि से लोभ, सांसारिकता, कर्मारम्भ, अशान्ति तथा लालसा की उत्पत्ति होती है और तमोगुण की वृद्धि से अन्तःकरण और इन्द्रियों में अन्धकार, कर्त्तव्य में आलस्य, व्यर्थ चेष्टा और मोह उत्पन्न होते हैं।[१४३]

कबीर से लेकर किनाराम तक निर्गुणवादी संतों ने पंच-तत्त्व को आधार मानकर और उपरि निर्दिष्ट सिद्धांतों तथा मन्तव्यों को ध्यान में रखकर सृष्टि के विकास की ऐसी व्याख्या की है, जिसमें कुछ उनकी मौलिकता भी रहे और साथ-ही-साथ निर्गुणवाद को भी बल मिले। किनाराम ने अपने प्रमुख ग्रंथ 'विवेकसार' में पाँच तत्त्वों और तीन गुणों का भेद बताते हुए 'श्रुतिपुराण सब शास्त्र को समान सार' निचोड़ते हुए सृष्टि के विकास की रूप-रेखा दी है। प्रारम्भ में सत्पुरुष रूप-रेखा अथवा नाम-रूप से रहित अलेख्य अवस्था में विद्यमान थे। फिर अपनी ही इच्छा से एक शब्द का विस्फोट हुआ, जिससे तीन पुरुष अथवा ब्रह्मा, विष्णु और महेश तथा एक नारी उत्पन्न हुई; नभ, क्षिति, पावक, पवन और जल की भी रचना हुई और जगत् का विस्तार आरम्भ हुआ। नारी-रूपी आदिशक्ति ने इच्छानुसार, इच्छा, क्रिया तथा शक्ति का रूप धारण कर और पाँच तत्त्वों तथा तीन गुणों का सहारा लेकर ब्रह्मा, विष्णु और महेश की संगति से सृष्टि के निर्माण, पालन और संहार की व्यवस्था की।[१४४]

इस प्रसंग में हम संतमत के उस मुख्य सिद्धांत की चर्चा करेंगे, जिसे पारिभाषिक शब्दावली में 'काया-परिचय' कहा जाता है। इस सिद्धान्त का सारांश यह है कि 'यथा-पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे'। यह विषय संस्कृत के 'स्वरोदय' ग्रन्थों में विस्तार से वर्णित है। मूल सिद्धांत यह है कि जब योगी की वृत्ति अन्तर्मुखी हो जाती है तब उसका सम्बन्ध इस विराट् विश्व और उसके सौन्दर्य से विच्छिन्न हो जाता है। स्वभावतः इस विच्छेद को वह अपनी ही काया में दिव्य दृष्टि द्वारा साक्षात्कृत मनोरम दृश्यावली के सहारे न केवल पूरा करना चाहता है, बल्कि उससे भी अधिक सौन्दर्य का संसार खड़ा करना चाहता है और सतत साधना से उसकी चेष्टा सुलभ भी हो जाती है। आत्मा पराधीन तभी तक है, जबतक वह बहिर्मुखी इन्द्रियों और उसके उपभोगों का दास बना रहता है। जब उसने इन्द्रियों की बहिर्मुखी धारा को उलट कर अन्तर्मुख प्रेरित कर दिया तो उसका सम्बन्ध

अपने-आप से जुड़ गया। जो परतन्त्र था, वह स्वतन्त्र हो गया। पिण्ड, अर्थात् अपनी ही काया में ब्रह्माण्ड की झाँकी इसी स्वतन्त्रता की प्रतीक है। चाहे वह ध्यानयोगी हो या कर्मयोगी, जबतक वह बाह्य जगत् से हटकर अपने या अपने आराध्य देव में विश्व-रूप का दर्शन नहीं करता, तबतक मोह से उसकी निवृत्ति नहीं होती। भगवद्गीता के एकादश अध्याय में इसी विश्वरूप-दर्शन के द्वारा भगवान् कृष्ण ने अर्जुन का मोह-निवारण किया। भगवान् कृष्ण कहते हैं—'यहीं, मेरे इस शरीर में, एक जगह बैठे हुए तुम निखिल जगत् को देखो।'[१४५] किन्तु इस विभूति को अर्जुन अपनी सामान्य आँखों से नहीं देख सकते थे। अतः भगवान् ने उन्हें 'दिव्य चक्षु' या दिव्य दृष्टि प्रदान की।[१४६] साधक योगी अपनी साधना के द्वारा दिव्य दृष्टि-लाभ करते हैं और अपने पिण्ड में ब्रह्माण्ड का दर्शन करके सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र अथवा मुक्त हो जाते हैं।

किनाराम ने पिण्ड-ब्रह्माण्ड की एकता का जिस रूप में प्रतिपादन किया है, उसका सारांश दिया जाता है—गणेश, ब्रह्मा, विष्णु, महेश, सुमेरु गिरि, सप्तर्षि, सूर्य, चन्द्र, सभी लोक, स्वर्ग, नरक, अपवर्ग, गंगा, अड़सठ तीर्थ, दश दिक्पाल, कार्यकाल, समुद्र, चार वेद, पर्वत, 'उनचास कोटि जग', त्रिवेणी, कैलाश, सुर, मुनि, नभ, नक्षत्र, सप्तपाताल, शेषनाग, वरुण, कुबेर, इन्द्र, अष्टसिद्धि, नवनिधि, देश-देशान्तर, मंत्र-यंत्र, अनन्तदेव, विद्या, अविद्या, मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार, ज्ञानेन्द्रियाँ, कर्मेन्द्रियाँ, 'पाँच प्राण' और 'पचीस प्रकृतियाँ', माया-सहित जीव और जगदीश, अवतार, समग्र ब्रह्माण्ड, जो पाँच तत्त्वों और तीन गुणों से बना है—सब कुछ आप पिण्ड में देख सकते हैं। इस पिण्ड अथवा शरीर में दश द्वार हैं और यह मन के अधिकार में है; जिसे ज्ञान, विराग और विवेक है, वह मन की प्रबलता को जीतकर अपने-आपमें अनाहत नाद अथवा शब्द-ब्रह्म की मधुर ध्वनि को पा सकता है।[१४७]

एक दूसरे प्रसंग में किनाराम ने ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि देवों के 'उद्‌भव' का अपने ढंग से विवरण दिया है। इनकी उत्पत्ति निरंजन से बताई गई है। निरंजन से शिव हुए, शिव से काल, काल से शून्य की दिव्य ज्योति। उसी दिव्य ज्योति की प्राप्ति से अविनाशी शिव प्रगट होते हैं, जो निरंजन-जनित शिव अर्थात् जीव को अपने-आपमें विलीन कर अभिन्न बना देते हैं।[१४८] भिन्न-भिन्न सन्तों ने सृष्टि के विभिन्न जीवों तथा पदार्थों के विकास का चित्र प्रस्तुत किया है; किन्तु सर्वत्र हम इस मूल कल्पना का प्रतिपादन पायेंगे कि सृष्टि की अव्यक्तावस्था में एकमात्र सत्पुरुष थे। उनको इच्छा हुई कि एक से बहुत हों। इच्छा के फलस्वरूप ब्रह्मा, विष्णु, महेश इन तीन देवताओं और आदि भवानी या आद्या-शक्ति की सृष्टि हुई। इन्हीं से विराट् विश्व-प्रपंच विकसित हुआ। उपनिषदों में भी कहा है—'तदैक्षत बहु स्याम् प्रजायेय', अर्थात् निर्विकल्प ब्रह्म ने अपने चारों ओर देखा और सविकल्प रूप होकर यह कामना की कि 'मैं एक से अनेक होऊँ।' यही बीज है—उत्तरवर्त्ती समस्त सन्त-साहित्य के सृष्टि-विज्ञान का।

सन्तों ने सृष्टि के मूल पाँच तत्त्वों के आधार पर प्रत्येक तत्त्व से उत्पन्न पाँच-पाँच विकृतियों (जिन्हें संत-साहित्य में स्वभाववाले अर्थ को ध्यान में रखते हुए 'प्रकृतियाँ'

कहा गया है) का निरूपण किया है। एक तालिका द्वारा इसको चित्रित किया जाता है[१४९]—

स्तम्भ १	२	३	४	५	६	७
तत्त्व	उनका निवास-स्थान	उनका वर्ण	उनमें से प्रत्येक की पाँच-पाँच 'प्रकृतियाँ'	तत्त्वों के अनुकूल इन्द्रियाँ	ज्ञानेन्द्रियों के विषय	तत्त्वों के अनुकूल गुण
अग्नि	चित्त	काला	आलस्य, तृष्णा, निद्रा, भूख, तेज	नेत्र	लोभ, मोह	रजस्
पवन	नाभि	हरा	चलन, गान, बल, संकोच, विवाद	नासिका	गंध, सुगंध	तमस्
पृथ्वी	हृदय	पीला	अस्थि, मज्जा, रोम, त्वचा, नाड़ी	मुख	भोजन, आचमन	सत्त्व
नीर	भाल (ललाट)	लाल	रक्त, वीर्य, पित्त, लार, पसीना	जिह्वा और जननेन्द्रिय	मैथुन, स्वाद	—
आकाश	मस्तक	उजला	लोभ, मोह, शंका, डर, लज्जा	कान	शब्द, कुशब्द	—

जो मानव पिण्ड में ब्रह्माण्ड के साक्षात्कार की दिशा में आगे नहीं बढ़ते, वे त्रिगुणात्मक मायामय शरीर और उसकी वासनाओं में पड़कर पापाचरण में निरत होते हैं। परिणाम यह होता है कि नरक के अधिष्ठातृ देवता यमराज के शिकार बनते हैं और 'चौरासी लाख' योनियों में भटकते हैं तथा अनेकानेक यंत्रणाएँ सहते हैं।[१५०] जब यमराज का प्यादा पहुँचता है तो उन्हें यमलोक में ले जाता है और बाँध कर 'मुश्क' चढ़ा देता है, 'मुंगरी' से पीटता है और अपने किये हुए पाप-पुण्य की याद दिलाता है।[१५१] वहाँ उसे विष्ठा, मूत्र, रुधिर में डाल देता है और वहाँ भी मार लगती है।[१५२] इसलिए मनुष्य को कभी निश्चिन्त नहीं बैठना चाहिए; क्योंकि क्या पता कब यमराज, भुलावा देकर बाँध देगा और पलक बचाकर मारना शुरू करेगा।[१५३]

इन वर्णनों से यह स्पष्ट है कि जीवों का भिन्न-भिन्न जन्म-ग्रहण करना उनके पूर्व-जन्म के कर्मों का फल है। जो अधिक पापाचरण में लिप्त रहता है, उसका किया हुआ जो कुछ थोड़ा-सा पुण्य रहता है, वह भी क्षीण हो जाता है। यदि इस जन्म में हम मानव हैं और हमें धन-संपत्ति मिली है, तो समझना चाहिए कि यह पूर्व-जन्म की कमाई है।[१५४] यदि इस जन्म में हमने अच्छी कमाई नहीं की और सद्गुरु की कृपा पाकर अपने आत्मा को नहीं पहचाना तो निश्चय ही हम अपने दुष्कर्म के प्रभाव से जन्म-मरण के चक्कर बन्धन में पड़े भटकते और यम की यंत्रणाएँ सहते रहेंगे।[१५५]

५. ज्ञान, भक्ति और प्रेम

निरे तर्क तथा असंगति-परिहार के आधार पर जो अद्वैत ब्रह्म है, वह भावना के आधार पर द्वैत-विशिष्ट बनकर भक्त तथा भगवान् का द्विधा-रूप धारण कर लेता है। भक्ति-पथ के पथिकों का मत है कि निरे शास्त्रीय ज्ञान से परमात्मा की प्राप्ति सम्भव नहीं, निरे तर्क के माध्यम से हम द्वैधी-भाव से ऊपर उठकर भगवान् के साथ तादात्म्य अथवा अति सान्निध्य नहीं प्राप्त कर सकते। 'कठोपनिषत्' में 'नचिकेता' एक सच्चे जिज्ञासु तथा भक्त के रूप में चित्रित किया गया है। अतः सर्वप्रथम गुण जो उसमें लक्षित हुआ था, वह था 'श्रद्धा'।[१५६] नचिकेता मृत्युदेव के यहाँ जाता है और उनसे अध्यात्म के अनेक प्रश्न करता है। वह यह जानना चाहता है कि मृत्यु का रहस्य क्या है और 'साम्पराय' (इतर लोक) की क्या विशेषता है। इसपर मृत्युदेवता जो सर्वप्रथम बात उसे बतलाते हैं, वह यह है कि 'नैषा तर्केण मतिरापनेया'[१५७], अर्थात् जिस मति अथवा अनुभूति की आकांक्षा नचिकेता करता था, वह तर्क के द्वारा सम्भव नहीं है। निर्गुण-परम्परा के सन्तों ने भी कभी निरे शास्त्रीय ज्ञान में अपनी आस्था नहीं दिखाई है; बल्कि ऐसा कहा जा सकता है कि उन्होंने भक्ति-विरहित शास्त्रीय ज्ञान की निन्दा की है। कबीरदास की निम्नलिखित पंक्तियों पर ध्यान दें—

पोथी पढ़ि-पढ़ि जग मुआ,
पंडित भया न कोय।
ढाई अच्छर प्रेम का,
पढ़े सो पंडित होय॥

अथवा

वेद पुराण पढ़त अस पाँड़े,
खर चंदन जैसे भारा।
राम नाम तत समझा नाहीं,
अन्ति पड़े मुख छारा॥

तात्पर्य यह कि जिस व्यक्ति में प्रेम नहीं, भक्ति नहीं, उसके मस्तिष्क में संचित शास्त्रीय ज्ञान उसी प्रकार निरर्थक है, जिस प्रकार गदहे की पीठ पर लदी हुई चन्दन की लकड़ी।

गोविन्दराम ने लिखा है कि यदि कोई वेद, शास्त्र और भागवत पढ़ता हो, किन्तु उसमें अहिंसादि सदाचार और भक्ति-भावना न हो, तो उसे यमराज के बन्धन में आबद्ध होना पड़ेगा।[१५८] नारायणदास लिखते हैं कि काजी और मौलवी पढ़ते हैं और पढ़ते हैं विद्यालय में लड़के भी, किन्तु योग-साधना के पथिक को पढ़ने-लिखने से क्या प्रयोजन? वह तो अपने आराध्य देव के प्रेम में मतवाला है।[१५९] किनाराम बताते हैं कि चाहे मानव ज्ञानी, पंडित और रूप-गुण-सम्पन्न क्यों न हो, उसके चतुर तथा गुणी सुपुत्र क्यों न हों,

उसके घर-बाहर बुद्धिमान् व्यक्तियों का जमघट क्यों न हो, उसकी अत्यन्त स्नेह करनेवाली नागरी नारी क्यों न हो, ये सब खोटे स्वांग मात्र हैं, यदि वह हरिनाम-जपन से विमुख है।[१६०] ज्ञान और भक्ति का समन्वय हो तो सोने में सुगन्ध हो जाय, ज्ञानी और साथ ही भक्त मनुष्य की तुलना उस कमल से की जा सकती है जो एक तो अत्यंत निर्मल जल में विकसित है और दूसरे मनमोहक रंग से रंजित है।[१६१]

यहाँ यह प्रश्न उठता है कि यदि शास्त्रीय ज्ञान इतनी निकृष्ट वस्तु है तो फिर सन्तों ने बार-बार ज्ञान-रूपी खड्ग के द्वारा लोभ, मोहादि शत्रुओं के विनाश की चर्चा क्यों की है?[१६२] उत्तर यह होगा कि सन्तों ने 'ज्ञान' शब्द का व्यवहार निरे पुस्तकीय पांडित्य के अर्थ में कभी नहीं किया है। हम ऐसा कह सकते हैं कि सन्त बिना ग्रन्थ पढ़े भी ज्ञानी हो सकता है। यदि उससे सुख-दुःख, मान-अपमान, ऊँच-नीच, सम्पत्ति-विपत्ति आदि की द्विविधा दूर हो गई, तो वह ज्ञानी हो गया, भले ही उसने किसी ग्रन्थ का अध्ययन न किया हो। हमने पिछले परिच्छेदों में बताया है कि माया का ही नाम अविद्या तथा अज्ञान है। जिस दिन संत या साधक ने माया के आवरण को अपनी आत्मा से उतारकर फेंक दिया, उसी दिन वह ज्ञानी हो गया। ऐसा सम्भव है कि महान् शास्त्रज्ञ पंडित माया और अविद्या के बन्धनों में पड़ा भटकता रहे और मोक्ष का अधिकारी न बने। इसके विपरीत, अपढ़ व्यक्ति भी यदि तप, साधना तथा सत्संग द्वारा अपने आचार को शुद्ध कर सका और परम तत्त्व अर्थात् परम सत्य की खोज में चल पड़ा, तो वह ज्ञानी कहा जायगा। इस दृष्टि से हम 'शिक्षा' और 'ज्ञान' में अन्तर मान सकते हैं। प्रत्येक शिक्षित व्यक्ति ज्ञानी नहीं है, और प्रत्येक ज्ञानी व्यक्ति शिक्षित भी नहीं है। सन्तों के इस ज्ञान को, जो साक्षरता तथा शिक्षा से उत्कृष्ट तथा परे है, 'अनुभूति' या 'अनुभव' की संज्ञा दी गई है। किन्हीं प्रसंगों में इसे विवेक भी कहा गया है और ज्ञान से श्रेष्ठ बताया गया है। किनाराम के निम्नलिखित पद्य में हम इसी अर्थ में 'अनुभव' का प्रयोग पाते हैं।

> दिल की दुरमति गरि गई,
> भई राम सों नेह।
> रामकिना अनुभौ जग्यो,
> मिट गयो सबै सँदेह ॥[१६३]

एक दूसरे पद्य में टेकमनराम लिखते हैं कि जो भजन करे, वह मेरा बेटा है; जो 'ज्ञान पढ़े', वह मेरा नाती है और जो 'रहनी रहे' वह मेरा गुरु है; क्योंकि मैं रहनी का साथी हूँ।[१६४] इस पद्य का आशय यह है कि ज्ञान से बढ़कर भजन है और भजन से बढ़कर 'रहनी' अर्थात् उचित आचार-विचार। वस्तुतः संतों के 'ज्ञान' में भजन और रहनी दोनों ही समाविष्ट होते हैं। इस प्रसंग में हम पाश्चात्य दार्शनिक बर्गसों (Bergson) की चर्चा कर सकते हैं। उसने बुद्धि (Intelligence) और अनुभूति (Intuition) का सुन्दर विश्लेषण किया है और यह प्रतिपादित किया है कि अनुभूति, बुद्धि अथवा तर्क-ग्राह्य ज्ञान से श्रेष्ठ है। जबतक हम बुद्धि के स्तर पर रहेंगे, तबतक पक्ष-विपक्ष के

हित का अतिक्रमण नहीं कर सकते; क्योंकि तर्क के विकास-क्रम में हम मण्डन (Thesis) और खण्डन (Anti-thesis) के ही माध्यम से सिद्धान्त (Synthesis) पर पहुँचने की चेष्टा करते हैं। अतः हम सदा पूर्व पक्ष और उत्तर पक्ष के चक्र में पड़े रहते हैं। किन्तु अनुभूति में हम उस अवस्था को प्राप्त करते हैं, जिसमें तर्क-वितर्क का अवकाश नहीं है, जिसमें सत्य-तत्त्व विद्युत्-प्रकाश के समान हृदय और मस्तिष्क को आपाततः तथा एक साथ ही आलोकित कर देता है। महात्मा बुद्ध अथवा महात्मा गांधी, जिन्हें हम अलौकिक तथा असाधारण प्रतिभा-सम्पन्न कहते हैं—बुद्धि से भूषित अवश्य थे; किन्तु उससे भी अधिक वे अनुभूति की विभूति से सम्पन्न थे। जिस प्रकार एक निपुण गणितज्ञ बड़े-बड़े गणित के प्रश्नों को बिना प्रक्रियाओं (Processes) के सहारे क्षण-भर में हल कर देता है, मानों हठात् उसे कोई आलोक-पुंज मिल गया हो, उसी प्रकार पहुँचे हुए सन्त तथा उत्कृष्ट, त्यागनिष्ठ कर्मयोगी में एक लोकोत्तर शक्ति आ जाती है, जिसके द्वारा वह बिना पूर्व पक्ष के विवेचन के ही मानों किसी दिव्य अन्तर्ज्योति के बल पर सत्य-तत्त्व को पा लेता है।

उपर्युक्त अलौकिक शक्ति अथवा विभूति एक दो दिन में अर्जित नहीं की जा सकती, यह तो दीर्घकालीन सतत साधना के द्वारा ही मिल सकती है। इस साधना के निमित्त श्रद्धा तथा प्रेम की नितान्त आवश्यकता है। चम्पारन के एक सरभंग सन्त ने भक्ति-मार्ग के दश सोपान वर्णित किये हैं—श्रद्धा, सत्संग, भजन, विषय-विराग, निष्ठा अथवा रुचि, ध्यान, नाम में रसिकता, भावना, प्रेम की पूर्णता तथा भगवान का साक्षात्कार।[१६५] समग्र अघोर-मत अथवा सरभंग-मत के सन्त-साहित्य में प्रेम की महिमा गाई गई है। प्रेम की 'गैल' अथवा राह सबसे न्यारी है। उसमें वही जाता है, जो राम-नाम का धनी है, जिसने काम, क्रोधादि विषयों को मन से निकाल दिया है, जिसे जीवन और मरण का भय नहीं है, जिसने शास्त्रीय ज्ञान की निरर्थकता समझ ली है और अपने आचार, कर्त्तव्य तथा सत्संग को उससे अधिक आवश्यक माना है। प्रेम की 'अटपटी' राह पर सद्गुरु के निर्देशानुसार चलने से मनुष्य को अनुभूति की प्राप्ति होती है और अंधकार-प्रकाश के बीच की रेखा दीख पड़ती है।[१६६] जिस व्यक्ति के हृदय में प्रेम का समावेश नहीं, वह कितना भी जप, तप, योग, विराग करे, वे सब उसी तरह निष्फल जायँगे; जैसे किसी वस्त्र-विहीन या कुरूप युवती के अंगों में सुन्दर आभूषण।[१६७] ईश्वर से प्रेम होने के लिए दृढ़-संकल्प की नितान्त आवश्यकता है। जब भक्ति के मार्ग में साधक आगे बढ़ता है तब उसके चारों ओर दुश्मनों का जत्था चलता है। नारी अपनी चंचलता से उसपर जादू डालती है, साज-शृंगार करके और चुस्त चोली पहनकर राह में धूम मचाती है, ग्यारह, सोलह और पाँच सखियाँ (पंचतत्त्व, इन्द्रियाँ तथा उनकी वासनाएँ) घेरकर खड़ी हो जाती हैं और सतृष्ण नेत्रों से देखने लगती हैं; साधक अकेला जूझता है और खेल खेलता है, तमाम अस्त्र-शस्त्र टूट-फूट जाते हैं और ऐसा प्रतीत होता है, मानों वह पराजित होकर शत्रुओं के बंधन में पड़ जायगा; किन्तु गुरु का उपदेश उसके निरुत्साह हृदय में आशा

का संचार करता है, उसकी इच्छाशक्ति दृढतर हो जाती है और वह ज्ञान तथा विवेक की गदा उठाकर अपने शत्रुओं के चक्रव्यूह को छिन्न-भिन्न कर देता है।[१६८]

ईश्वर-प्रेम को दृढ तथा स्थिर करने के लिए नाम-भजन की अनिवार्य आवश्यकता है, राम-नाम की महिमा अगम है। किनाराम कहते हैं कि हाथी, घोड़ा आदि तथा लाखों और करोड़ों की दौलत क्यों न हो; दौलतमन्द व्यक्ति वैभव तथा सम्पदा में क्यों न नाचता हो, उसके अनेक दास-दासियाँ और सेनाएँ क्यों न हों; किन्तु यदि उसका हृदय कच्चा है और उसे राम-नाम-रूपी धन नहीं है, तो उपर्युक्त समस्त सम्पत्ति व्यर्थ तथा नकली है।[१६९] इसलिए भक्त 'महादेव' कहते हैं—

कमा लो जहाँ तक बने नाम धन तू
जमा होती है यह रकम धीरे-धीरे ॥[१७०]

निरन्तर राम-नाम रटने से चित्तवृत्ति-निरोध में सहायता मिलती है और मन में 'मगन' होने का अभ्यास बढ़ता है।[१७१] राम-नाम और सत्संग—इनको भक्ति-मार्ग के सभी साधनों में श्रेष्ठ बताया गया है।[१७२] किनाराम भक्तों से कहते हैं कि तुम हरिनाम की खेती करो; यह एक ऐसी खेती है, जिसमें न कौड़ी लगे न छदाम, मगर नफा बहुत हो; अपने शरीर को बैल बनाओ, 'सुरति' को हलवाहा और गुरु-ज्ञान को 'अरई' बनाओ; इस प्रकार सुसज्जित होकर 'ऊँच-खाल' सब जमीन जोतो; सच्चे किसान की खेती की यही रीति है।[१७३] भीखमराम कहते हैं कि यह दुनिया काल का 'चबेना' है, वह बूढ़े, जवान सबको खा जाता है। नाम ही एक ऐसा आधार है जो पानी के बुलबुले के सदृश इस क्षणिक संसार में हमारी रक्षा कर सकता है।[१७४] हम इस दुनिया में मानों अथाह सागर में डूब रहे हैं; न नाव दीख पड़ती है, न बेड़ा; न केवट, न 'करुआर'। ऐसी विषम स्थिति में यदि कोई पार लगा सकता है तो हरिगुण-गान।[१७५] जो राम-नाम का भजन नहीं करता है, उसे एक-न-एक दिन यमराज अचानक 'पलखत' देकर पछाड़-पछाड़कर मारेगा। अतः मानव के लिए आवश्यक है कि वह 'चारों पहर चौसठो घड़ी' सावधान बना रहे और नाम का चश्मा पहनकर देखता रहे कि धोखे से ऐसा कार्य न हो जाय जिससे पछताना पड़े।[१७६] निर्गुणवादी सन्तों ने नाम के माहात्म्य-वर्णन के सिलसिले में उन भक्तों के उदाहरणों को उद्धृत किया है, जिनकी चर्चा सूर-तुलसी-जैसे सगुणभक्त सन्तों की रचनाओं में मिलती है। टेकमनराम ने याद दिलाई है कि अनेकानेक खल नाम के प्रभाव से उबर गये; गज ग्राह के संकटों से मुक्त हुआ, प्रह्लाद, विभीषण, जटायु, अजामिल, द्रौपदी—सब-के-सब नाम के सहारे महान् संकट से निस्तार पा सके। कोई भी आर्त्त यदि भगवान् की पुकार करता है, तो वे उसको अपनी शरण में ले लेते हैं।[१७७] भक्त हनीफ ने नारद, कागभुशुंडि, पीपा, ऊधो, वाल्मीकि, गणिका, अजामिल, गिद्ध, सेवरी (शवरी), नानक, कबीर, सूर, तुलसी, रामानुज, रामानन्द, मध्व, दादू, भीखा, रैदास, मीरा, आमन देवी, कालूराम (किनाराम के गुरु), किनाराम, जयनारायण 'आनन्द' आदि का नाम लेते हुए बताया है कि ये नाम की महान् महिमा से तर गये।[१७८] केवल केश बढ़ाने, हलफी रंगाने और 'भेख'

बनाने से कुछ नहीं होगा; जबतक राम की खोज न की जाय।[१७९] भक्तिन भगवती कहती हैं कि मसजिद में जाकर 'सिजदा' करने से और उठ-बैठकर नमाज पढ़ने से कोई लाभ नहीं है; ऐसे सिजदे और नमाज को सलाम करना चाहिए।

'भगवती' चाहते हो गर 'आनन्द'
बैठकर चुपके राम-राम कहो।[१८०]

नाम-भजन से आनन्द मिलता है—वह अवर्णनीय है। हम उसका आस्वादन उसी अव्यक्त तल्लीनता के साथ करते हैं, जिसके साथ गूँगा गुड़ का।[१८१] इस क्षणभंगुर परिवर्त्तनशील जगत् में सुख-सम्पत्ति केवल चार दिनों की है और हित, मित्र, कुटुम्ब कोई भी काम आने का नहीं। अतः हरि का नाम लेना चाहिए, उससे चित्त की स्थिरता प्राप्त होगी।[१८२] एक सन्त ने बताया है कि सामान्य जन भी थोड़ी-सी चेष्टा से राम-नाम के अधिकारी हो सकते हैं, यदि वे 'समहद' और 'अनहद' के बीच के मार्ग का आश्रयण करें। यहाँ 'समहद' का विषय-वासना से और 'अनहद' का ध्यानयोग या लययोग से अभिप्राय है।[१८३] भक्तिन भगवती ने राम-रंग की होली का वर्णन किया है। वे कहती हैं कि राम के रंग में अपने कपड़े रँग लो, सत्संग के जल में उसे 'पखार-निखार' कर सुन्दर बना लो, नाम का 'बुरका' या अबीर उड़ाओ, प्रेम का गुलाल और सुरति का कुंकुम भर के गुरु-चरणों के बीच 'ताक-ताक कर' मारो। यदि 'कबीरा' गाना चाहते हो तो राम-राम, सियाराम पुकारो। लोगों से मिलना-जुलना चाहते हो तो सन्तों से मिलो। अगर इस प्रकार होली खेलोगे तो बहार आ जायगी।[१८४]

प्रेम और राम-नाम-भजन में एकान्त निष्ठा तथा तल्लीनता की अपेक्षा है। तात्पर्य यह है कि सच्चे भगवत्-प्रेमी के हृदय में त्याग की चरम भावना होनी चाहिए। भजन का आनन्द उसी को मिलेगा जो जान-बूझकर 'हीरे की कनी' खाय और मरने की परवाह न करे।[१८५] 'आनन्द' ने एक सुन्दर कथानक के द्वारा यह बतलाया है कि भगवान् से सच्चा प्रेम वही करता है, जो उनसे धन, जन, सम्पत्ति, सुख कुछ नहीं माँगता, माँगता है केवल उन्हीं को। एक राजा ने किसी देश पर चढ़ाई की। जब राज्य जीत लिया तब उसने अपनी रानियों को लिख भेजा कि जिसको जिन चीजों की जरूरत हो, लिखे। उत्तर में रानियों ने लम्बी-लम्बी सूची भेजी; पर सबसे छोटी रानी ने कोरे कागज पर 'एक' का अंक लिखकर भेज दिया। राजा ने सबका लिफाफा देखा और प्रत्येक सूची मंत्री को दी कि वह चीजें इकट्ठा करे। पर छोटी रानी का पत्र देखकर कहा कि यह सबसे मूर्ख दिखाई पड़ती है। मंत्री था बुद्धिमान, उसने कहा—"हुजूर! यह सबसे बुद्धिमान् है; 'एक' के अंक से उसका यह मतलब है कि वह कोई चीज नहीं चाहती, केवल एक आपको चाहती है।" राजा की आँख खुल गई। उसने लौटने पर और रानियों के पास उनकी माँगी हुई चीजों को भेज दिया; पर छोटी रानी के पास स्वयं गया। तात्पर्य यह कि भगवान् से भगवान् को ही माँगो।[१८६]

नामभजन के दो प्रकार हैं—एक सस्वर नामोच्चारण और दूसरा 'अजपा जाप'। रामटहल राम लिखते हैं कि—

अजपा शब्द निराला सन्तो अजपा शब्द निराला।
जो जो अजपा में सुरत लगाई, अजपा अजर अमान।
गुरु के कृपा से पाई, अजपा शब्द निराला सन्तो।[१८७]

किनाराम ने 'अजपा जाप' पर कुछ विस्तार से विचार किया है और इस प्रकार के जप के लिए 'सोहं' मंत्र का विधान किया है। यह मंत्र सहज-स्वरूप-प्रकाश है और इसके मौन जपन से काम, क्रोध का परिहार होता है तथा मोक्ष की प्राप्ति होती है।[१८८] अलखानंद ने 'सोहं' जप की विधि का विश्लेषण करते हुए बतलाया है कि जब साधक इसका अभ्यास करता है तब प्रत्येक अन्दर जानेवाला श्वास 'सो'-'सो' की अन्तर्ध्वनि करता हुआ त्रिकुटी की ओर दौड़ता है और 'हं'-'हं' की ध्वनि करता हुआ बाहर निकलता है। 'सो' शक्ति का प्रतीक है और 'हं' महादेव का तथा 'सोहं' घट में शक्ति-शिव-संयोग का। सोहं का यह जप रात और दिन मिलाकर इक्कीस हजार छह सौ बार होता है। जिस दिन घट से 'सोहं' निकल गया, उस दिन मरण हो गया।[१८९] 'अजपा जाप' के लिए स्थिरता-पूर्वक ध्यान लगाना और आत्म-तत्त्व तथा परमात्म-तत्त्व में अभेद स्थापित करना आवश्यक है।[१९०] कोई-कोई सोहं के बदले 'ॐ' अथवा 'राम' का भी श्वास-निःश्वास के साथ जप करते हैं; राम-राम का जप करते-करते ऐसी अवस्था आती है कि आप भी बेसुध हो जाते हैं और राम भी भूल जाता है।[१९१] यह अवस्था 'सहज-समाधि' की अवस्था है, जो ज्ञान और ध्यान दोनों के परे है और जहाँ मुक्ति का दरबार है।[१९२]

भक्ति और भजन के प्रसंग में सन्तों ने वैष्णव-भक्ति की 'पुष्टि' के सिद्धान्त की ओर बार-बार संकेत किया है। भक्त जब भक्ति के पथ पर अग्रसर होता है तब उसे यह विश्वास होता है कि भगवान् ने उसको अपनी शरण में रख लिया है और जब कभी उसको संकट पड़ेगा, तब वे उससे उसका उद्धार करेंगे। इस विश्वास के अस्त्र से सन्नद्ध हो वह किनारे पर खड़े होकर क्षण-भर के लिए भी नहीं हिचकता और हठात् 'मँझधार' में कूद पड़ता है; क्योंकि वह यह सोचता है कि 'मँझधार' से बचाने का उत्तरदायित्व भगवान् का है न कि भक्त का। भगवान् अपनी लाज आप रखेंगे।[१९३] सूर, तुलसी आदि सगुण भक्तों के समान निर्गुण भक्त भी अपनेको कामी, क्रूर, कुटिल, कलंकी कहकर भगवान् की शरण में अर्पित कर देते हैं और यह आशा करते हैं कि वे उसकी त्रुटियों पर ध्यान न देकर उसे अपना लेंगे।[१९४]

वैष्णव भक्तों ने भक्त और भगवान् के बीच जो सम्बन्ध है, उसे मुख्यतः दास्य भाव और सख्य भाव—दो प्रकार का माना है। जहाँ भक्त अपनेको दुर्गुणों से पूरित मानकर भगवान् की आराधना करता है, वहाँ दास्य भाव की भक्ति हुई। दास्य भाव के सम्बन्ध को पुनः दो दृष्टियों से सम्पन्न माना गया है, फलतः एक को मर्कट-न्याय की और दूसरे को मार्जार-न्याय की भक्ति कहते हैं। जिस प्रकार मार्जारी, अर्थात् बिल्ली अपने नवजात बच्चे की

गर्दन दाँत से पकड़कर उसे जहाँ जाती है, लेते जाती है, बच्चे का इसमें कोई प्रयास नहीं होता है, उसी प्रकार कोई-कोई भक्त अनुमान करता है कि उन्हें किसी प्रकार की सक्रियता की आवश्यकता नहीं है; स्वयं भगवान् अपनी सक्रियता के द्वारा उन्हें उद्धृत करेंगे। कुछ अन्य भक्तों की यह धारणा है कि जिस प्रकार मर्कट अर्थात् वानरी का बच्चा केवल अपनी माता के ही सहारे नहीं रहता; किन्तु स्वयं भी ओर से उसके पेट में चिपका रहता है, उसी तरह जहाँ भगवान् से यह आशा की जाती है कि वे सक्रियतापूर्वक भक्त की सुधि लेंगे, वहाँ भक्त को भी अपने प्राणपण से चेष्टा करनी चाहिए कि वह मर्त्यलोक की निम्नभूमि को छोड़कर भगवान् की ओर बढ़े। एक पाश्चात्य कवि ने कहा है कि—

भक्ति उड़ाती है मानस को,
जब ऊँचे की ओर।
तब भगवान स्वयं आ मिलते,
खिंचे प्रेम की डोर।[१९५]

जिस जीव में भक्ति अथवा प्रेम नहीं है, वह परमात्मा से दूर है। भक्ति और साधना का लक्ष्य यही है कि यह दूरी धीरे-धीरे कम होती जाय, और अन्ततोगत्वा इतनी कम हो जाय कि आत्मा और परमात्मा—जो तत्वतः अभिन्न हैं तथा जो माया और अविद्या के प्रभाव से भिन्न हो गये थे—पुनः अपनी तात्त्विक अभिन्नता को प्राप्त हो जायँ। इसलिए, सन्तों ने जब कभी जीवात्मा का चित्र खींचा है, यह बताया है कि वह अपनी असली श्रेष्ठ नगरी से भूल-भटककर जरा-मरण और दुःख-व्याधिमय निन्दनीय नगरी में जा पड़ा है। यह संसार असार है और सार की खोज मनुष्य के जीवन का मुख्य लक्ष्य है। जीवात्मा को बहुधा 'हंस' कहा गया है। हंसों को या तो मानसरोवर में रहना चाहिए या विस्तृत गगनांगन में विचरना चाहिए; किन्तु इसके विपरीत वे एक गदले जलवाले पोखरे में पड़े संकट काट रहे हैं।[१९६] एक दूसरे अर्थ में भी जीवात्मा बन्धन में फँसा है। उसका बन्धन है शरीर। काम, क्रोध, मद, लोभ, ममता, वात्सल्य, शोक आदि दुर्गुण काया-जन्य हैं। काया के सम्पर्क में आकर आत्मा इन सभी दुर्गुणों में रत हो जाता है और इसलिए अनात्मा बन जाता है। अनात्मा फिर आत्मा का रूप तब धारण करता है जब सत्संग के द्वारा सत्य, विचार, दया, आनन्द, पवित्रता, समता, धैर्य और निर्द्वन्द्वता को अपनाता है।[१९७] सारांश यह कि सांसारिक माया-जाल में बँधा हुआ शरीरस्थ जीव विभ्रान्त एवं वियोगी है।[१९८] जिस असली नगरी से भटककर जीव दुनियावालों की माया-नगरी में आ मिला है, वह उसी में है। अतः उसे अपने में ही अपने विराट् रूप का दर्शन करना चाहिए।

विरही जीवात्मा को दृष्टि में रखकर सन्तों ने अनेकानेक ऐसे पदों की रचना की है, जिनमें माधुर्यमय भक्ति की अभिव्यंजना हुई है। माधुर्यमय भक्ति का उस भक्ति से तात्पर्य है, जिसमें भक्त भगवान् को प्रियतम मानकर तथा अपनेको नारी अथवा प्रियतमा मानकर एक रहस्यमय अद्भुत प्रेमलोक की सृष्टि करता है। भक्त और भगवान् के अनन्य प्रेम को

इंगित करने के लिए उपनिषदों ने भी दाम्पत्य-प्रेम की अनन्यता के साथ उसकी तुलना की है। बृहदारण्यकोपनिषद् में लिखा है कि जिस प्रकार एक पुरुष, जब वह अपनी प्रिय स्त्री के साथ आलिंगन-बद्ध अवस्था में मिलता है तब बाह्य और आन्तर सभी वस्तुओं का ज्ञान खो देता है, उसी तरह सत्पुरुष आत्मा के साथ आलिंगन-बद्ध होकर तन्मयता तथा अभिन्नता को प्राप्त होता है।[१९९] कबीर आदि निर्गुणवादी सन्तों ने माधुर्यमय भक्ति का चित्र जिस भावुकता के साथ खींचा है और जिस मनोरम कल्पना की उद्‌भावना की है, वे किसी भी साहित्य के लिए गौरव का विषय बन सकती हैं। भक्ति के क्षेत्र के इस रहस्यमयी प्रेम-तत्त्व के दो पक्ष हैं—मिलन और विरह। सन्तों की वाणियों में विरह-पक्ष की ही प्रबलता है। उन्होंने ऐसे पद गाये हैं, जिनमें सामान्यतः, भक्त अपनेको एक ऐसी युवती के रूप में कल्पित करता है जो ब्याह नहीं होने के कारण, अथवा ब्याह होने पर भी प्रियतम का बुलावा नहीं आने के कारण, अपनी ससुराल में न होकर पीहर अथवा 'नैहर' में ही दिन काट रही है। ससुराल परमात्म-लोक का प्रतीक है और पीहर मायामय-मर्त्य-लोक का। युवती व्याकुल हो रही है कि उसका 'पिया' के संग ब्याह कब होगा और वह कब ससुराल जायगी।[२००] वह कहती है कि उसे अब पीहर के कुटुम्ब और नातेदार अच्छे नहीं लगते और पिता-माता का घर उजाड़ प्रतीत होता है; सुन्दर आभूषण और सुन्दर वस्त्र मन को नहीं भाते; और 'सोरहो सिंगार' फीका मालूम होता है। अस्तु, वह शुभ तिथि आती है जिस दिन प्रियतम के यहाँ से डोली लेकर कहार पहुँच गये। वह सोचती है—अब मैं आनन्द की नगरी में जा बसूँगी, इसकी मुझे प्रसन्नता है;[२०१] जबसे मुझे रामरूपी प्रियतम का अमृत-रस पीने को मिला तबसे मेरा 'मरा' मन हरा हो गया; हाल बेहाल हो गया, मुझे पागल कहकर कुटुम्ब-परिजनों ने मुझसे नाता तोड़ लिया; मेरी अटपट 'रहनी' देखकर सब धबरा गये; किन्तु आश्चर्य यह है कि कोई भी मेरे मन के हाल का पता नहीं पा सके और यह नहीं समझ सके कि मेरी लगन राम से लग गई है,[२०२] प्रेम-सुधा-रसपान तथा मन में अनुराग के आविर्भाव से मुझमें आत्म-त्याग की चरम भावना उद्‌भूत हुई और मैंने अपना तन, मन, धन सब अर्पण कर दिये; काम, क्रोध, लोभ, ममता और मोह सब त्याग दिये।[२०३] भक्तिन फूलमती अपने प्रियतम का प्रेम अर्जित करने के लिए पहले से ही तैयारियाँ कर रही हैं। वे भक्ति-भाव के सुन्दर गहने नख से 'शिख' तक पहने हुई हैं।[२०४] जिस समय वह पीहर में है, उस समय उसको इस बात की बहुत चिन्ता है कि उससे कोई ऐसी गलती न हो जाय कि उसकी 'चुनरी' में दाग लग जाय। सखी युवती से कहती है कि अपनी मैली चुनरी नैहर में अच्छी तरह धो ले, नहीं तो 'पिया' के सामने लजाना पड़ेगा। यदि चुनरी धुली-धुलाई और स्वच्छ रहेगी तो उसे पिया के रंग में रँगने में आसानी होगी। जब पिया उस चुनरी को अपने रंग में रँगा हुआ देखेंगे तब सन्ध्या के समय उस युवती को गले से लगा लेंगे और उस सायंकालीन मिलन में जो आनन्द होगा, वह अवर्णनीय है।[२०५]

ससुराल में पहुँचने पर भी उसे कम सावधान नहीं रहना चाहिए। जिस दिन से गुरु ने उसे नींद से जगा दिया, उस दिन से फिर नींद नहीं आती और न मन में आलस्य

का अनुभव होता है। रात में वह प्रेम के तेल से भरे हुए दीप को नाम की चिनगारी से जलाकर उसके प्रकाश से उद्भासित रहती है। सुमति के आभूषण पहनकर माँग में सत्व का सिन्दूर सँवारती है। इस प्रकार सज-धजकर जब वह अटारी पर बैठती है, तब वहाँ चोर-डाकू नहीं आते और काल भी उससे डरता है।[206] कभी-कभी जब उसकी ननद साथ में रहती है तब उसको वह चेतावनी देती है कि प्रेम की नगरी में वह अपने पाँव को सँभालकर रखे; क्योंकि वहाँ की 'डगर' बड़ी 'बीहड़' है। वह उसे तनिक 'धोती' उठाकर चलने को कहती है, जिसमें काँटे और कुश में वह उलझ न जाय।[207] पीहर में जो चुनरी मिली थी, उसको वहाँ बेदाग़ रखने की चेष्टा तो थी ही; उससे कहीं अधिक चेष्टा वैसी रखने की उसे ससुराल में करनी है; क्योंकि उस चुनरी को पिया ने अपने हाथ से बनाया है और पातिव्रत्य के रंग में रँगा है; उसमें प्रेम की किनारी लगी हुई है; जिसने उसे यत्न से ओढ़ा, उसके भाग्य जग गये।[208] अध्यात्म-प्रेम की प्रेमिका कहती है—कभी-कभी जब मैं प्रियतम के अभिसार को चलती हूँ तब मेरे बचपन के 'पाँच' और 'पचीस' मित्र मेरा मार्ग रोककर खड़े हो जाते हैं और विघ्न डालते हैं; ऐसी स्थिति में मैं सोच में पड़ जाती हूँ कि पिया के दरबार में कैसे पहुँचूँगी; बस सपने में मेरे सद्गुरु आते हैं और 'सुरति' की डोर हाथ में पकड़ा देते हैं; उस डोर के सहारे मैं पिया की अटारी पर उसी तरह चढ़ जाती हूँ जिस तरह किसी लकुट या वृक्ष की डाल पर 'बँवर-लता'।[209] सचमुच उस सुन्दरी के भाग्य का पूर्णोदय हो गया, जिसने प्रियतम से साक्षात्कार किया।[210] 'माशूक-महल' की छवि देखकर, मनमोहन के प्रेम में फँसकर, उसका मन उसी में अँटक गया है। अब वह साँवलिया के चरण-कमल की सेवा में दिन-रात बिताती है और 'नैहर का खटका' बिलकुल मिट गया।[211] उसे विश्वास है कि जब वह शून्य-भवन में अपने 'खसम' से मिलेगी तब माता-पिता, भाई-बन्धु सब भूल जायँगे और यम का त्रास मिट जायगा।[212] जब उसने माँ-बाप, भाई-बन्धु त्याग दिये हैं और 'सोरहो सिंगार' करके पिया की 'गगन अटरिया' चढ़ आई है तब फिर लाज करने से क्या लाभ? वह पिया के 'हुजूर' में घूँघट खोलकर नाचेगी।[213] वह 'ससुराल' में इतनी अधिक प्रसन्न है और प्रियतम का प्यार उसे इतना अधिक मिला है[214] कि वह प्रतिज्ञा करती है कि अब फिर 'नैहर' नहीं जायगी।[215] कुछ पदों में ऐसी भी कल्पना है कि युवती असमय में विधवा हो गई थी और अब प्रिय-मिलन से पुनः 'सधवा' (एहवाती) हो गई। अब उसकी माँग, जो खाली थी, फिर सिन्दूर से भरकर ललित प्रतीत होने लगी और वह दुलहिन बन गई।[216]

रहस्यमय मिलन-पक्ष से रहस्यमय विरह-पक्ष का चित्रण अपेक्षाकृत अधिक मनोरम होता है। शृंगार से विप्रलंभ में द्रवणशीलता अधिक होती है और उसमें करुण-रस का पुट भी रहता है, जिससे सहृदय पाठकों अथवा श्रोताओं में अनुभूति की तीव्रता जाग्रत् होती है। विप्रलंभ-काव्य में साधारणीकरण की मात्रा अधिक रहती है। जब विप्रलंभ के साथ आध्यात्मिकता तथा भक्ति के रहस्यमय माधुर्य का सम्मिश्रण हो जाता है तब उसमें शान्त रस की अन्तर्धारा भी प्रवाहित होने लगती है। तात्पर्य यह कि आध्यात्मिक विरह के

काव्यगत चित्रण में मानों शृंगार, शांत और करुणा की त्रिवेणी प्रवाहित रहती है और उसमें अद्भुत रस की प्रतिच्छाया उसी प्रकार मनोरम ढंग से पड़ती है जिस प्रकार किसी स्वच्छ जलाशय अथवा मंद-मन्थर-वाहिनी सरिता के अञ्चल में प्रतिफलित प्रभातकालीन प्रभाकर की स्वर्णारुण रश्मियाँ।

भिनकराम कहते हैं कि विरहिन का अंग-अंग विशाल घाव से विद्ध हो गया है। वह विरह की भीषण एवं प्रचण्ड अग्नि में जल रही है; ऐसी विषम परिस्थिति में केवल हरि ही वैद्य हैं, जो चिकित्सा कर सकें। अतः वह उनसे प्रार्थना करती है कि शीघ्राति-शीघ्र उसकी सुधि लें।[२१७] वह विरह में इतनी व्याकुल है कि दिन-रात कभी भी नींद नहीं आती, गगन में टकटकी लगी रहती है और इसी तरह भोर हो जाता है।[२१८] वह दारुण दुःसह दुःख के कारण मानों बिना आग के जल रही है और उसकी आँखों से निरन्तर आँसू गिर रहे हैं; वह कहती है—'हे राम तुमने क्या किया ?[२१९] जब वह अपने पीहर से चली थी तब उसके हृदय में पीहर के प्रति उसी प्रकार मिथ्या-मोह था जिस प्रकार सेमल के फूल के लिए सुग्गे को। जब प्रियतम श्याम 'गौना' (द्विर्गमन) कराकर अपने घर ले आये तब आप मधुबन चले गये।[२२०] जब वह पीहर से चली थी तब राह में यमराज विघ्न डालता था, किन्तु प्रियतम के प्रति उसकी दृढ़ लालसा देख उसने राह छोड़ दी। प्रियतम ने देखा कि वह विरह से व्याकुल हो रही है तो वे 'रूपे की नाव' पर चढ़कर आये और 'सोने की करुआरी' से खेकर उसे पार ले गये।[२२१] एक सुन्दर पद्य में भिनकराम ने विप्रलंभ का ऐसा वर्णन किया है, जिसकी व्यापकता मानव-जगत् को अतिक्रान्त कर मानवेतर जगत् तक फैल गई है। वे कहते हैं कि प्रेम-विरहिणी नयनों में काजल और 'लिलार' में 'सेन्दुर' लगाकर साज-शृंगार किये निर्मोही की आशा में बैठी है। उसके विरह की आग से समग्र वन-प्रांत और पर्वत जल रहे हैं।[२२२]

एक संत ने ऐसी विरहिणी का वर्णन किया है, जो प्रिय के प्रेम-बाण से विद्ध तो हो गई है; लेकिन वह क्वाँरी ही बनी रही। बारह वर्ष की उम्र तक तो वह सखियों के साथ खेलती रही। उसके बाद भी उसको प्रियतम की चिन्ता नहीं हुई और इस प्रकार छत्तीस वर्ष बीत गये। वह अन्त समय में पछताती है और कहती है कि धिक्कार है ऐसे जीवन को जिसमें बिना पति के साथ के ही सदा-सर्वदा सोना पड़ा।[२२३] किन्तु उसे अब-तक प्रीतम के साथ विवाह होने और ससुराल जाने की अतृप्त आकांक्षा सताती रहती है।[२२४] ऐसा भी संभव है कि इस प्रकार की अतृप्त आकांक्षाओं की पूर्ति बहुत देर से हो। ऐसी स्थिति में भी यही प्रयत्न होना चाहिए कि कुल में दाग न लगे। यदि उसमें विरह की सच्ची आग जल रही है तो वह दिन-प्रतिदिन पवित्रतर होती जायगी, वह दूध से दही, दही से मक्खन और मक्खन से घी बन जायगी।[२२५] यदि वह निराश न होगी तो एक-न-एक दिन 'लाली-लाली डोलिया' में 'सबुजी ओहार' डाले उसके 'बलमुआ' बारात लेकर द्वार पर आयेंगे, उसकी बाँह पकड़कर उसे डोली में बिठा लेंगे; वह कितनी ही रोती-कलपती रहेगी, सभी सखियों 'सलेहरियों' को 'दूभर' बनाकर चलते बनेंगे।[२२६] मिलन

की इस शुभ घड़ी के पहले वह बहुत विकल थी, नींद बुलाने पर भी नहीं आती थी, मानो नींद को कहीं पर स्वयं नींद आ गई हो।

दिन को रातों को भी आँखों तलक आती नहीं।
नींद को भी नींद आई है, यह कैसा राज़ है।[२२७]

अब तो उसके सद्गुरु ने बता दिया कि उसके प्रियतम उसी के भीतर विराज रहे हैं।[२२८] उसके इर्द-गिर्द रिमझिम बयार रस लिए डोल रही है। नारंगी के बाग के पौधे भी पवन के व्यजन से आन्दोलित हो रहे हैं। उसने चंदन के सुगंधित खंडों से उस पलंग को सजाया है, जिसपर उसके प्रियतम सोये हुए हैं। वह धीरे-धीरे 'बेनिया' डोला रही है। सास महल में सो गई है और 'ननदी' भी छत पर है। अवसर तो अनुकूल है; क्योंकि अड़ोस-पड़ोस, टोले-मुहल्ले में कोई भी जगा नहीं दीखता है, वह बैठी-बैठी यही सोच रही है कि प्रियतम को कैसे जगावे।[२२९]

ज्ञान, भक्ति और प्रेम के विवरण तथा विवेचन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि हृदय की भावना ही मुख्य वस्तु है। बल्कि यों कहा जा सकता है कि प्रत्येक बाह्य-परिस्थिति उस चित्तवृत्ति की एकाग्रता तथा तल्लीनता में बाधक होती है, जो भगवान की अनन्य भक्ति तथा प्रेम के लिए अनिवार्य है। देवी-देवताओं की मूर्त्ति भी, जिसके लिए हमें कायागढ़ के भीतर के मन्दिर को छोड़कर किसी बाहरी मन्दिर अथवा तीर्थस्थान में जाना पड़ता है, एक बाह्य परिस्थिति है और अतः वह भी साधक की सिद्धि में बाधक है, साधक नहीं। निर्गुण और सगुण मतों में विभाजक-रेखा खींचनेवाली विशेषताओं में मूर्त्ति प्रमुख है। कबीर ने कहा है कि—

पाहन केरा पूतला, करि पूजैं करतार।
इही भरोसै जे रहे, ते बूड़े काली धार॥

कबीर के परवर्त्ती प्रायः सभी निर्गुणवादी सन्तों ने और वर्त्तमान युग के दयानन्द आदि सुधारकों ने मूर्त्ति-पूजा का खण्डन किया है। 'आनन्द' कहते हैं—

चिकनी माटी का लोंदा,
शिव की प्रतिमा बनावै।
विश्वनाथ को चीन्हत नाहीं,
टन टन घण्टा बजावै॥[२३०]

एक दूसरे सन्त लिखते हैं कि लोग अपने ही हाथ मूर्त्ति बनाते हैं या किसी ठठेरे से बनवाते हैं, और फिर उसी के आगे पृथ्वी पर माथा टेकते हैं तथा उसकी स्तुति करते हैं; पान, फूल, नैवेद्य लेकर उसे समर्पित करते हैं; मूर्त्ति तो न कुछ बोलती है और न खाती है; किन्तु लोग आप उठाकर पूजा में चढ़े हुए खाद्य पदार्थ को 'गटक' जाते हैं।[२३१] प्रतिमा-पूजन और माला फेरने से मोक्ष संभव नहीं है। मोक्ष तो तबतक न होगा जबतक क्षर-अक्षर के पार अमरपुर की दिव्य दृष्टि नहीं प्राप्त होती और सत्पुरुष की आराधना नहीं की जाती।[२३२]

जब संत कर्त्ताराम से लोगों ने तीर्थाटन का आग्रह किया तब वे एक मधुर मुस्कान के साथ बोले—यदि मानव के हृदय में सत्य है तो उसके घर में ही तीर्थराज विद्यमान है; इसके विपरीत सत्य का हृदय में धारण न कर, चाहे वह चतुर्दिक् पृथ्वी की परिक्रमा कर आवे, सब कुछ व्यर्थ होगा; यदि गुरुतत्त्व ग्रहण किया और मन शुद्ध हुआ तो यह तन ही तीर्थराज बन गया।[२३३] 'कर्त्ताराम धवलराम चरित्र'-नामक ग्रन्थ में अनेक तीर्थों का वर्णन है। उनके समकालीन एक संत तुलसी जब राजगृह, कपिलासन, ठाकुरद्वार, कामरूप, सेतुबन्ध-रामेश्वर, पंचवटी, पम्पासर, उज्जैन, हरद्वार, बदरिकाश्रम, केदार, पुष्कर, नैमिषारण्य, कुरुक्षेत्र, गिरिनार, मथुरा, चित्रकूट, प्रयाग, काशी, अवध, नेपाल, दामोदर-कुण्ड, मिथिला आदि तीर्थों का पारायण करके ठेकहा पहुँचे, जहाँ कर्त्ताराम का मठ था, तब उन्होंने तुलसी से कहा—'इस तीर्थाटन से कोई विशेष प्रयोजन नहीं; तुम अब सन्तों के चरणों में बैठकर उनकी सेवा करो।'[२३४] किनाराम ने भी तीर्थ-यात्रा, बाह्याचरण, मूर्त्तिपूजा, 'जोग', जप, तप, व्रत, दान, मख आदि को प्रेम-भक्ति की अपेक्षा कम महत्त्व दिया है।[२३५] योगेश्वराचार्य कहते हैं कि कुछ लोग 'नेम, व्रत, पूजा, पाठ, आचार-विचार, तीर्थ-यात्रा, मौन-जलशयन आदि हठयोग में अपना समय व्यतीत करते हैं। मुसलमान लोग कुरान, मस्जिद और मक्का के पीछे भटकते फिरते हैं। सद्गुरु से प्राप्त सच्चे ज्ञान के सामने ये सभी व्यर्थ हैं'।[२३६] इसी प्रकार गुलाबचन्द्र 'आनन्द' कहते हैं कि सभी तीर्थ गुरुचरणों में निवास करते हैं।[२३७] यदि हम अपनी दृष्टि अन्तर्मुखी करें तो हम यह पायेंगे कि जितने भी तीर्थ पुण्यार्जन के लिए बताये गये हैं, वे सब-के-सब हमारे अन्दर में ही हैं, उनकी प्राप्ति के लिए न वनवास की आवश्यकता है, न अग्नि-सेवन की।[२३८] मोक्ष का साधन आत्म-ज्ञान है, काशी और गया जाने तथा गंगा और फल्गु में स्नान करने से अथवा जटा बढ़ाने या माथ मुड़ाने से मोक्ष-प्राप्ति की लालसा रखना मृग-तृष्णा है।[२३९] तीर्थों में भटक कर देवी-देवताओं का पूजन यह सूचित करता है कि हम परमात्मा के असली स्वरूप को भूल गये हैं। सिंह कुएँ में अपनी छाया देखकर कूद पड़ता है और मर जाता है। ऐसा क्यों हुआ? चूँकि उसने निज प्रतिमा को निज रूप समझ लिया। प्रतिमा में परमात्मा की बुद्धि भी मूर्खता है।[२४०] सच्ची अनुभूति के सामने वेद, कुरान, 'शरा', शास्त्र सब नगण्य हैं; स्वर्ग और नरक भी तुच्छ हैं।[२४१]

उपवासादि व्रत भी यदि आत्म-ज्ञान और आन्तरिक शुद्धि में साधक न हों, तो व्यर्थ हैं। उसी प्रकार भिन्न-भिन्न भाँति के वेश भी निरर्थक हैं। कोई 'अथीथ' बने फिरते हैं तो कोई 'संन्यासी' का रूप धारण किये फिरते हैं तथा सभी छुआछूत और व्रत एकादशी के फेर में पड़े रहते हैं। हमें याद रहना चाहिए कि भगवान् न सिर पर बड़ी जटा रखने से खुश होंगे और न उसे मुंडित करने से; न फकीर के वेश से, न दरवेश के; और न तीर्थव्रत से ही।[२४२] व्रत करने से यदि कोई लाभ है तो यह कि उससे कुछ शरीर-शुद्धि हो जाती है। और दिन लोग पशु के समान खूब पेट भर-भर कर खाते हैं तथा यह नहीं अनुभव करते हैं कि 'भूख का दुःख' कैसा होता है। कम-से-कम उपवास के दिन इस दुःख का अनुभव हो जाता है। हाँ, किन्तु उपवास-व्रत की अति नहीं होनी

चाहिए। वैसे तो पुराणों और स्मृतियों को देखिए तो प्रत्येक पक्ष की पन्द्रहों तिथियाँ और सप्ताह के सातों दिन कोई-न-कोई छोटा-मोटा व्रत या पर्व रहता ही है। पर बात यह है कि 'सब व्रत करे तो तन छुटि जाई।'[243]

टिप्पणियाँ

१. प्रचलित बोली में 'औघड़' भी कहते हैं।

२. निरालम्ब को अंग सुनि, गत भइ संशय द्वन्द।
मैं तें अब एकै भई, सतगुरु परमानन्द ॥
शंकाई संसार लखि, और नहीं कछु और।
रामकिना सतगुरु कृपा, निरालम्ब की ठौर ॥

—विवेकसार, पृ० २५

३. अहं ब्रह्ममय जीव महीं कृत जगत अकारन।
महीं निरञ्जन नाम महीं सब काम निवारन ॥
महीं काल विकराल महीं सब कर्म बिचारौं।
महीं रिष्ट अरु पुष्ट महीं जनमौं महिं मारौं ॥
रामकिना मैं धराधर धरे अधार अकास।
ब्रह्मा विष्णु महेश मैं महीं त्रास अनुत्रास ॥
महीं कुसुम मय बास महीं मधुकर ह्वै भूल्यौ।
महीं जु तिल मँह तेल महीं बन्धन मैं खूल्यौ ॥
महीं कहर मैं जहर अमी मैं अमल सुधाकर।
महीं ज्ञान अज्ञान ध्यान मैं ज्योति प्रभाकर ॥
मैं लूलो मैं पांगुरो मैं सुन्दर अतिसय रुचिर।
रामकिना मैं अंग अति सुगम जानि अतिसब सुचिर ॥
महीं नीच अरु ऊँच अन्ध मैं नैन सलोना।
महीं धात अनुधात गात मैं पानी पौना ॥
महीं मेरु कैलास बास सुर सकल जहाँ ते।
रुद्र लोक बैकुंठ सत्य मैं सबै तहाँ ते ॥
सप्त सिन्धु गोलोक मैं रवि मंडल सोम लोक।
रामकिना रमि राम मैं जहँ तहँ शोक अशोक ॥
महीं औभ विकटादि नारि मैं पुरुष उजागर।
महीं सोच अनसोच मूढ़ मैं अति नट नागर ॥
मैं दानव मैं देव हीन मैं परम सुखारी।
महीं सिंह अरु स्यार महीं हर जीवर मारी ॥
मैं आवौं मैं जात हौं मैं रहौं चोर समाय।
रामकिना मैं आतमा आतम सतगुरु पाय ॥

मैं देवल मैं देव महीं पूजा मैं पूजौं।
महीं चोर मैं साहु ध्वजा मैं होवे घूजौं॥
महीं रंक मैं राय सखा मैं साहेब साँच्यो।
मैं गोपी मैं ग्वाल कृस्न वृन्दावन नाँच्यौ।
मैं नारायन राम हौं दस सिर रावण छेदिया।
रामकिना हनुमान मैं राम काज लगि सब किया॥
मैं कृतघ्न कृतपाल पाप मैं पुण्य शुभाशुभ।
महीं रैनि मैं दिवस मध्य तेहि रहत सदा तिथि॥
महीं खीन अति छीन महीं आश्रम को बेरो।
महीं बरन आवरन उभय मैं शिष्य घनेरो॥
महीं वेद बानी सकल अकल कला मोहिं में लहत।
रामकिना मैं गुण अगुण निरालम्ब चाहत चहत॥
मैं जोगी मैं जुक्ति भुक्ति मैं आतम ज्ञाता।
मैं तरुवर मैं मूल साख मैं फल रंग राता॥
महीं पच्छ महीं पत्र हरित मैं जरद श्याम अति।
मैं अरक्त मैं स्वेत अग सग मैं मेरी गति॥
मैं अन्तर अन्तर रहित मैं अभेद सब भेद मैं।
रामकिना खोटो खरो सहितखेद गतखेद मैं॥
महीं अनल मैं आज्य महीं होमौं मैं होमा।
अहं मन्त्र सिद्धान्त महीं व्यापक जन रोमा॥
महीं मच्छ बाराह कच्छ मैं नरसिंह वेषा।
महीं कल्प मैं वर्ष मास मैं पक्ष विशेषा॥
मैं सत त्रेता उभयपर कलयुग चार संभार कर।
रामकिना मैं नामवर सब सुलहत सब घर अघर॥
महीं नखत नभ उदय अनुग्रह ध्रुव उत्रायन।
मैं दक्खिन त्रैकोन कोन षट दिशा परायन॥
मैं खेलौं चौगना खेल में लकुट गेंद छिति।
महीं नाग मैं नाथ सारदा गंग सदा तिथि॥
मैं गज कीट पपीलिका व्रत तीरथ मोहिं महँ रह्यौ।
रामकिना सतगुरु कृपा नखत जात अभिजित लह्यौ॥
मैं अनीह अद्वैत बुद्धि मैं परम विचारा।
निरालम्ब निस्प्रेह अग जग रहित प्रकारा॥
नहिं आवौं नहिं जाउं मरौं जीवौं नहिं कबहूँ।
त्रिगुनादिक मिटि जाहिं अमर मैं गावौं तबहूँ॥
मैं अदेश ओदेश हिये अजपा जप जापिवौं।
रामकिना सतगुरु कृपा राम नाम दृढ़ थापिवौं॥

४. हम सो बिलग जग कौन कहानी॥
हमहीं ध्यानी हमहीं ज्ञानी, हमही जड़ अज्ञानी।
हमहीं पुन्य-पाप में व्यापें, हम रवि शशि असमानी॥१॥
हमहीं धर हैं हमहीं धरती, हमहीं पवन पानी।

हमहीं राजा रंक कहावें, हमहीं जीव कहानी ॥२॥
हमहीं माता हमहीं पिता, हमहिं पुत्र कहानी।
हिन्दू तुरक गुरु हम चेला, जाने विरला ज्ञानी ॥३॥
हमहीं हम, हम कहे सबही में, समझु रे सज्जन ज्ञानी।
कहत योगेश्वर वेद हम माया, साहेब निराकार कहानी ॥४॥

५. रामस्वरूपदास : भजनरत्नमाला—पृ० १६
६. रामस्वरूपदास : भजनरत्नमाला—पृ० ७६
७. रामस्वरूप दासः भजनरत्नमाला—पृ० ४१
८. (क)—आपै बोलइया आपै सुनइया।
आपी तो पिउ आपै आपै पपीहरा ॥
(ख)—आपै हेराय और आपै हेर।
आपी विरह आपै व्यापै पपीहरा ॥
(ग)—आपी अनामी और आपै नामी।
आपी नाम आपै वापै पपीहरा ॥
(घ)—आपै कलाल और आपै मधुवा।
आपै नशा हो गफ़गापै पपीहरा ॥

—आनन्द सुमिरनी, पृ० ६

९. जीव और शिव के झगड़े, एक और अनेक का भ्रम।
मनके सब बखेरे, कुछ इनमें सार नहीं ॥
× × ×
भेद शिव शक्ति में देखा, जिसने, वह ज्ञानी कहाँ।
कार्य-कारण में नहीं है, भेद कुछ भी नाम को ॥
कार्य में कारण, और कारण ही में कारज गुप्त है।
सूक्ष्म दृष्टि से लखो तो, पायगा परिणाम का ॥

—'आनन्द': आनन्द-भण्डार, पृ० ४३, ६२

मैं-मैं, तू-तू, करता दिन बीतत, मैं तू का नहिं ग्यान ॥३॥
मैं ही में मैं, तूही में तू, मैं तू एकै जान ॥४॥

—'आनन्द', आनन्द-भण्डार, पृ० ८१

१०. दो में एक, एक एक दो है, लाखों तक गिनते चलिये।
सिफर के खारिज कर देने पर, एक ही एक बना रहता है ॥

—तत्त्वज्ञाते आनन्द, पृ० ४६

११. द्वंद्व अति गगन सम रूपं। तत्त्वमसी के लक्ष अनूपं ॥
एक सनातन अमल कहावे। अस्थिर साक्षी कहि श्रुति गावे ॥

—कर्त्ताराम-धवलराम-चरित्र, पृ० ३८

१२. बाबा ब्रह्म जीव एक है, दू नहिं जानना।
नहिं गुप्त प्रगट, भरम नहिं मानना ॥

—आत्मनिर्गुण-ककहरा, पृ० ४, पद २३

१३. आपही के ठठिबे को आपही विचार कियो, कोउ एक अमके मदारथ उपाधि मैं।
कंचन के भूषन ज्यों दूसन अनेक नाम, जीव ब्रह्म भेद भयो बाबा के समाधि मैं ॥

दूसरो अकार तासु पावे एक रूम होत, सोइ आन जाई पर्‌यो जीव निरुपाधि मैं।
आपही कुटुम्ब पाय आपही में भूल रह्यो, रामकिना नर नारि परे हैं उपाधि मैं॥
—किनाराम : रामगीता, पृ० ३-४, पद ६

१४. मन बुद्धि गिरा गोतीत असंखित, सिद्धि सदा रस एक भयो।
अज निर्मल नित्य निरास अकास, स्वरूप में कतहूँ नाहि टिक्‌यो॥
निज इच्छित रामकिना सोइ ईस, गुनागुन कारण भेद भयो।
परि पाँच पचीस दस इन्द्रिन में, यहि कारण एक अनेक कह्यो॥
—किनाराम : रामगीता, पृ० ४, पद ६

१५. जाना निरख आप आप स्वरूप आपके परचे करो,
साधो नींद आहार आसन जमाये ही विधि करो।
सतगुरु दिया है ज्ञान ध्यान घट में धरो,
हहो, मोती नाम प्रताप आप धर के चलो।
—मोतीदास : आतम-निर्गुण-ककहरा, पृ० १, पद ५

१६. किनाराम : रामगीता, पृ० १६, पद ४२
तुलना कीजिए— राम ही तातु अरु मातु राम ही, राम ही बंधु अरु मातु पिता राम ही
राम ही देव अरु सबे सन्त राम ही, राम ही पीव अरु राम ही पिआरा।
कहे दास बोधी मरनगती राम ही, राम ही जीव ना ततु सारा॥
—बोधीदास : हस्तलिखित संग्रह, पृ० ४३

१७. निर्मल नाम निरञ्जना निर्मल रूप अपार
जिरयै मैं जहँ नाहि नै दुख सुख कर्म बिकार॥
पूरन खण्डित हैं नहीं अब न तब विभेद
सत्य तहाँ दरसै नहीं जहाँ न बानी वेद॥
निरगुन गुन जहँ नाहिने अकल असंखित देश
रामकिना तहँ पहुँच तू लहि गुरु मुख उपदेस॥
—किनाराम : रामगीता, पृ० ६-७, पद २१

१८. छान्दोग्योपनिषद्—६, १६
१९. देखिए, लेखक का 'सन्त कवि दरिया : एक अनुशीलन', पृ० ७८
२०. जीवन सुनो निरंजन केरा। निराकार महँ संतत डेरा॥
—विवेकसार, पृ० २०

२१. औचक डंका परी मन में कर होशियारी हो॥
काल निरंजन बड़ा खेलवा खेलाड़ी हो, सुर-नर मुनी देवता लोके मारके पछारी हो।
ब्रह्मा के ना छोड़े जिन वेद के विचारी हो, शिव के ना छोड़े जिन बैठल जंगल-झारी हो॥
नाही छोड़े सेत रूप नाही जाटाधारी हो, राजा के न छोड़े जिन प्रजा न भिखारी हो।
२२. काल निरंजन निरगुन राई। तीन लोक जेहि फिरे दोहाई॥
सात दीप प्रिथिवी नव खंडा। सर्ग पाताल एके बरमंडा॥
सहज सुन्न भवो कीन्ह ठेकाना। काल निरंजन सम ही माना॥
ब्रम्हा बिसुन और सिव देवा। सब मिलि करे काल के सेवा॥
चित्रगुप्त धरम बरिआरा। लिखनी लिखे सकल संसारा॥

चौरासी लख बारो खानी। लिखनी लिखे सकल समखानी ॥
पसु पंछी जल-थल बिसतारा। बन पर्वत जह जीव बेचारा ॥
काल निरंजन सब पर छाया। पुरुष नाम को चीन्ह मेटाया ॥
सातु सुन्न ऐसे थकि गयऊ। पुरुष सब एक चित भईं ठयऊ ॥

—नारायनदास : हस्तलिखित संग्रह, पृ० १

२३. तबही पुरुस गेआनी सो कहेऊ।
धर्मराय अति प्रबल भयऊ ॥
एह तो बंस भये बरिआरा।
तीन लोक जिव करे आहारा ॥
ताहि मारि कै देहु दाहाई।
जग जीवन के लेहु छोड़ाई ॥

—नारायनदास : हस्तलिखित संग्रह, पृ० १

२४. बोले ग्यानी शब्द आपारा।
मो कहँ पुरुस दीन्ह टकसारा ॥

* * *

मैं पठावल पुरुस को, करन हंस को काज।
कालहि मारि संघारि हो, दीन्हो सकल मोहि साज ॥

—नारायनदास : हस्तलिखित संग्रह, पृ० २-३

२५. तीन सै साठ मैं पेठिया लगाई। तामें सकल जीव अरुझाई ॥

—नारायनदास : हस्तलिखित संग्रह, पृ० ३

२६. बदरी केदार दोवारिका ठाऊ। जाहा ताहाँ हम तिर्थ लागाऊ ॥
मथुरा नगरी उत्तिम जो जानी। जगरनाथ बैठे जम्बु पेयानी ॥

—नारायनदास : हस्तलिखित संग्रह, पृ० ४

२७. सुन रे काल दुस्ट मन भाई। सब्द साधि हंसा घर जाई ॥

—नारायनदास : हस्तलिखित संग्रह, पृ० ४

२८. कहै निरंजन मोहि देहु अधिकारा। हमरे नाम छुटे जम्बु राजा ॥
पांच पचीस तीन गुन साजा। एह लै सकल सरीर बनाई ॥
ता मों पाप पुन्न के बासा। मन बैठे लो हमरे फासा ॥

—नारायनदास : हस्तलिखित संग्रह, पृ० ४

२९. मानेउ गेआनी बचन तुम्हारा।
हंसा ले जाहु पुरुस दरबारा ॥

—नारायनदास : हस्तलिखित संग्रह, पृ० १०

३०. चौदह काल जगत मुँह मेरी। बाट घाट बैठे सभ घेरी ॥
सुर नर मुनि आवै यहि बाटा। दसो अवतार आवै एहि बाटा ॥
दुलगा दानो जग बड़ सर्दारा। बिना जानै कोई नाहिं पावे पारा ॥
भौ जल नदिया घाट नहिं थाहा। उतरब पार कहै सभ काहा ॥

—नारायनदास : हस्तलिखित संग्रह, पृ० १०

३१. कहे गेआनी सुन काल सुभाऊ। हम सभ हंसन के मरम छोड़ाऊ ॥
नाम गेआन शब्द हथियारा। ताते ना परे चौरासी के धारा ॥

—नारायनदास : हस्तलिखित संग्रह, पृ० १०

३२. सुनु निरंकार निरंजन राई। पुरुष नाम बीरा है भाई॥
जो हंस चित्त ममति समोई। ताके खूट रोके मति कोई॥

—नारायनदास : हस्तलिखित संग्रह, पृ० १२

३३. जो जीव बीरा पाइहे, आवहि लोक हमार।
ताको खूंट गहो मति, सुनहु काल बटवार॥

—नारायनदास : हस्तलिखित संग्रह, पृ० १२

३४. जपै निरंजन नाम मन, निरासीन निरभै रहै।
सूरा ज्यों संग्राम, रामकिना पौ लगि रहै॥

—किनाराम : गीतावली, पृ० १३

३५. तैत्तिरीय उपनिषद्—२, ९

३६. कठोपनिषद्—२, ३, ५

३७. दीद सुनीद के पारा सन्तो।
कहन सुनन से न्यारा सन्तो॥
१—अलख, अलेख, अनीह, अनामो,
अकथ, अमोह, अमाया।
अगुन अगोचर, अमर अकाया,
ऐसा साईं हमारा सन्तो॥

—आनन्द-भण्डार, पृ० ३९

३८. सत्यपुरुष को सत्य कहि, सत्य नाम को लेखि।
रूप रेख नहिं संभवै, कहिये कहा विशेषि॥

—विवेकसार, पृ० ६

३९. क्या कहुँ रे नर अकथ कहानी।
जिमि गूँगा के गुड़ खवाइये, क्या वह स्वाद बखानी॥
एक न दोय न पुरुष न जोय, न शीश न पाद बखानी॥
पीठ न पेट न छाति न घेंट, न नयन जिह्वा नहिं बानी॥
श्वेत न रक्त न चित्र न, जीव न शिव न मानी॥
ह्रस्व न दीर्घ, न कल्पों न शीघ्र, न आदि न अंत कहे हानी॥
घर में बन में, मन में न तन में, नीचे न ऊपर स्थानी॥
भूल न काढ़ ही, सत्रु न यार ही, संग न न्यारहि ठानी॥
सोय न जागहिं, सूझे न मागहिं, सोम ही न दानी॥
अलखानन्द आतम अनुभव के, बिरला हि कोउ कोउ जानी॥

—अलखानन्द निर्पक्ष वेदान्तराग सागर, पृ० ९५

४०. प्रथम अनादि ब्रह्म सुमिरौ, दूर है जो न है हि नियरो।
कारो है हि न पित्त लाल, जुवा है हि न वृद्ध बाल।
भूखो है हिन न खाय अजिरो बोलतु है हिं न मवन धारि।
बैठो है हिन है न गवन कारि, आकुल है हिन है हि स्थिर।
एक है हिन है न भावै इहवाँ है हि न ओत से आवै।
सूरमा है हि न है हि मागिरो, जन्मतु है हि न नासवान।
पापी है हि ना पुन्यवान, अलखानंद ताको विनय अजिरो।

—अलखानंद निर्पक्ष वेदान्तराग सागर, पृ० ३

४१. गीतावली, पृ० १३

४२. जै-जै पूरन ब्रह्म है।
जेहि जपत अखंड शम्भु निसि दिन,
रटत सारद शेष गणपति कोइ न पावत पार ॥१॥
—योगेश्वराचार्य : स्वरूप-प्रकाश, पृ० १४

४३. सो सब महँ प्रभु रमि रह्यौ जड़ चेतन निज ठौर।
—विवेकसार, पृ० १२

४४. ब्रह्मानन्द सुबोधमय आतम अमय अकाम।
द्वन्दरहित आकाशवत अलख निरन्तर नाम॥
—किनाराम : विवेकसार, पृ० ३

४५. १—मैं अलग सबसे हूँ और सब में मिला रहता हूँ।
बनके खुशबू मैं हरएक गुल में बसा रहता हूँ॥
२—संग में बन के शरर, तेग में जौहर बनकर।
आब बनकर दुरे यकता में भरा रहता हूँ॥
३—बनके दरिया में रवानी और समुन्दर में मौज।
मौज में मौज की सूरत मैं सदा रहता हूँ॥
—तख्यलाते आनन्द, पृ० ३७

४६. १—मैं ही गुल में, गुल के रंगो बू में और खारों में हूँ।
दश्त में भी मैं ही हूँ और मैं ही गुलजारों में हूँ॥
२—मैं जमीनों आस्माँ में, मैं ही इनके वस्त में।
मैं ही सूरज चाँद में हूँ, मैं ही कुल तारों में हूँ॥
—तख्य ते आनन्द, पृ० १२

४७. मैं ही त्रैगुन रूप ब्रह्मा विष्णु और शिव में हूँ।
मैं ही देवी देवता में, मैं ही औतारों में हूँ॥
—तख्यलाते आनन्द, पृ० १३

४८. राम में जगत है जगत में राम है मूर्ख हो दोउ में भेद आने।
रामकिना अगम्य असूझ राह बाकी है निपट निकट छोड़ प्रीत ठाने।
—रामगीता, पद १३

४९. आपु माँह सब देखिया, सब मो आपु समाय।
—विवेकसार, पृ० ३१

५०. वेद मूल बरनाधिपति, जगतपाल जगदीश।
राम बरन मुनि तत्त्व प्रिय, रामकिना के ईश॥
—किनाराम : रामगीता, पद ३४

५१. मन बुद्धि गिरा गोतीत असंभित, सिद्धि सदा रस एक भयो।
अज निरमल नित्य निरास अकास, स्वरूप में कतहुँ नाहि टिक्यो॥
निज इच्छित रामकिना सोइ ईस, गुनागुन कारन भेद लयो।
परि पाँच पचीस दस इन्द्रिन में, यहि कारन एक अनेक कह्यो॥
—रामगीता, पद ६

५२. संकट परे भक्तन उबारत, उनको सहज यह रीति ॥
गज, प्रह्लाद, द्रौपदी आदि पर, देख्यौ जो होत अनरीत।
धाय प्रभु ने कष्ट नेवार्‌यो, बाजी हरि दियो जीत ॥
आनन्द चाहता है जो 'भगवती' राम सों कर तू प्रीत।
यह अवसर फिर हाथ न ऐहे, समय जायगो बीत ॥

—आनन्द सुमिरनी, पृ० २७

५३. हम महाविद्या दसों अवतार भी सबही मेरे।
हम हैं निर्गुण धरके सगुण रूप पुजवाने लगे ॥

—तत्त्वलाते आनन्द, पृ० ९

५४. श्री नौमि राम ब्रह्म रूप भूप चारु चिन्मयं। सुअंग श्याम काम कोटि कांति कंजदामयं ॥
निसेस सत लवन्ययं अनन्य प्रभु प्रकाशितं। सदाहि भक्तिश्याम गायनं गुनामयं ॥

—तत्त्वलाते आनन्द, पृ० २

जुग्म नाम निर्गुणादि सर्गुनं सतं अजं ॥ सदाहि जो जपंति नाम शंभु शुद्ध वासयं।
हृदस्य तस्य जानकी सो प्रेम पूर सायकं ॥

रामरसाल, पृ० ३

५५. निराकार उनको कोइ मानै, कोई साकार उर ठानै।
वही सर्कार सब घट में, जपै जिमि जिसको भावे हो ॥

'आनन्द' : आनन्द भण्डार, पृ० १

५६. देखु छिछु कहीं काया निखार, निर्गुण ब्रह्म सरगुण औतार।

—छिछुराम : भजन-रत्नमाला, पृ० ४१

५७. स्वरूप-प्रकाश, पृ० ४

५८. स्वरूप-प्रकाश, पृ० ४

५९. १—जित जित देखों, नजर तुहि आवै।
फैली है हरसू जेया तोर बालम ॥
२—अर्श पर अहद, आस्मां पर अहमद।
नाम फर्श पर मुस्तफा तोर बालम ॥
३—राम कोई कहता, कृष्ण कोई कहता।
नाम कोई रखता, खोदा तोर बालम ॥
४—दैरो हरम में पुकार है तेरी।
गिर्जा में ह चर्चा तोर बालम ॥
५—मसजिद में होती अजान है तेरी।
मन्दिर में घंटा बजा तोर बालम ॥
६—आनन्द रूप है सब में रमता।
लखि कोई पावै छटा तोर बालम ॥
७—आनन्द 'हनीफ' ने बहु विधि पाया।
यह भी केवल दया तोर बालम ॥

—आनन्द सुमिरनी, पृ० ८

६०. बृहदारण्यक, ४,३,२२, २६

६१. श्वेताश्वतर, ३,८

६२. श्वेताश्वतर, ३,१२
६३. बृहदारण्यक, ४,३,११
६४. बृहदारण्यक, ४,१०
६५. श्वेताश्वतर, ५,१
६६. कठ, १,२,४,५
६७. बृहदारण्यक, ५,१९
६८. श्वेताश्वतर, ४,९,१०
६९. अधिकरण १, सूत्र १
७०. अधिकरण १, सूत्र १
७१. अधिकरण ३, सूत्र ९
७२. पाँच प्रान अरु प्रकृति पचीसा।
माया सहित जीव जगदीसा॥

—विवेकसार, पृ० ११

७३. तन रूप जवानी जरा जोर॥
मेटि सबै दुस्तर उपाधि।
जन रामकिना पावै समाधि॥

—रामगीता पद २

७४. निजमन की अज्ञानता निज गुण देत छिपाय।
रामकिना प्रतिबिम्ब गृह में रवि नहीं जलाय॥

—रामगीता, पद ४

७५. आपही के ठठिबे को आपही विचार कियो,
कोउ एक जपकै पदारथ उपाधि मैं।
कंचन के भूषण ज्यों भूखन अनेक नाम,
जीवब्रह्म भेद भर्‍यो माया के समाधि मैं।
दूसरो प्रकार तासु पाये यक रूप होत,
सोह जान जाइ पर्‍यो, जौन निरुपाधि मैं।
आपही कुटुम्ब पाय, आपही में भूल रह्यो,
रामकिना नर नारि, परे हैं उपाधि मैं॥

—रामगीता, पद ६

७६. भजन रत्नमाला, पृ० २०
७७. मन दरियाव पाहुने एक अइले, पाँच पचीस संग सखिया।
पाँच पचीस मिलि बिंजन बनाइले जेवते बैठे मन रसिया॥

—भजन-रत्नमाला, पृ० १२

७८. 'देखिए' लेखक-रचित 'संत कवि दरिया', खण्ड २, परिच्छेद १
७९. जिन जिन करिहे माया के नौकरिया।
तिनहुँ के यमुराजा धरिहै बेगरिया।

—भजन-रत्नमाला, पृ० २१

८०. ब्रह्मा घर ब्रह्मान देवी, शिव घर भवन भवनिया।
तीनपुर में संर कइले, ठगनी योगनिया॥

—हस्तलिखित संग्रह, पृ० २१

८१. पारबती होइ शिवजी के मोहलू, जिन अङ्ग अङ्ग भभूति रमाव।
केकइ होके राजा दशरथ के छरलू, रामजी के देलू बनबास॥
सीता होइके रावन के छरलू, लंका गढ़ के करलू उजार।
राधिका होइके किस्न के छरलू, बिन्दावन में रचलू धमार॥
दूब खाय दुरबासा जीके मोहलू, माया के कइलू परभाव।
सिंहल दीप के पदुमनी कहवलू, तू त मोहलू मछिन्दरनाथ॥
नीम खाइ नीम रिखि के मोहलू, दुइ पुत्र लेलू अनमाथ।
गंगा होयके जगत्र के छरलू, हरि लेलू दुनिया संसार॥

—हस्तलिखित संग्रह, पृ० ८

८२. यह निरंजन माया देखि, जो जो रहत रिझाई।
ये जन सब भूलि परैले, पावे न आपन पार॥

—गोविन्दराम : हस्तलिखित संग्रह, पृ० १

८३. झिजीवत्य माया विवस, मया रहित परत्य।
कतिविधि जीव बताइये, बन्ध मुक्त दुविधत्य॥२१॥
माया का जहँ लगि जगत, विषय असत्य लराग।
ज्ञान कहो मैं कवनहं, आयों कवने लाग॥२॥

—कर्त्ताराम धवलराम-चरित्र, पृ० ५१

८४. पाँच तत्त्व का बना पींजरा,
तामें तू लपटाया रे।
माया मोह की ताली लागी,
आस कपाट लगाया रे॥

—आनन्द-मगहार, पृ० २४

८५. १—बहुते दिना मोह माया में बीतल।
अबहूँ मैं लेत्यूं अन्त संभार॥
२—बेटवा बिटिया घर और गृहस्थी।
चूल्हे में जाय नैहर ससुरार॥
३—धन दौलत कछु काम न अइहें।
झूठो जगत के सब ब्योहार॥

—आनन्द सुमिरनी, पृ० १६-१७

८६. मैं अनगुनिया औगुन की खानी। नख शिख से मैं बेकार भरी॥
भजन बन्यो ना, गृह कारज फँसि। हरिकर नाम रह्यो बिसरी॥

—आनन्द सुमिरनी, पृ० १९

८७. मैं पापिन अघ ओघ से पूरन। मोह नशा में सदा से सोइया॥
मैं मृतलोक की बासी उदासी। श्रीसतगुरु सतलोक बसइया॥

—आनन्द सुमिरनी, पृ० २१-२२

८८. अन्धहि अन्धा डगर बतावै बहिरांहि बहिरा बानी।
रामकिना सतगुरु सेवा बिनु भूलि मर्‌यो अज्ञानी॥

—किनाराम : गीतावली, पृ० ८

८९. अबला मोरे पिया के जमात सौतिनियाँ।
अबसे पिया मायापति बनलैं।
बहुतै चहल अदराय रे ठगिनियाँ॥
कटलेस ब्रह्मा विष्णु व शिव के।
डसलेस अधिन के बेसम्हाय नगिनियाँ॥
भक्तवत्सल पिया नबकै कहावत।
का फल पौलीं हम कहाय भक्तिनियाँ॥

—आनन्द जयमाल, पृ० १५

९०. दास बालखंडी इहो गवले निर्गुनवा हो।
छूटल जाला माया केरै बाजार अकेला हंसा जालेन॥

—बालखण्डीदास : हस्तलिखित संग्रह, पृ० ४

९१. निर्पक्ष वेदान्तरागसागर, पृ० ११७

९२. चित न लगाओ रे, झूठो संसार हो रामां॥
झूठी है माया झूठी रे काया।
झूठै जानो रे, सब विस्तार हो रामां॥१॥
माता पिता अरु भाई बन्धु सब।
झूठै नाता रे, झूठै परिवार हो रामां॥२॥
कोट किला घर बार गृहस्ती,
झूठै विधाता को सगरो व्योहार हो रामां॥३॥

—'आनन्द' : आनन्द-भण्डार, पृ० १०८-१०९

९३. भाइ बन्धु अरु मात पिता सब,
स्वारथ वश कहलावै।
जब उड़ि जइहैं हंस किला से,
साथ न कोई धावै।

—'आनन्द' : आनन्द-भण्डार, पृ० १६

९४. जन्म त दिहले बाप महतरिया हो सजनवा।
करम के साथी कोइ ना भइले हो सजनवा॥

—टेकमनराम : भजन-रत्नमाला, पृ० २५, पद २५

९५. सोई मास के गाँठि जो कुँच अहै मुख थूक भण्डार अशुद्ध अपारा।
तेहि में रत जो नर सो खरहै मल मन्द न जानत मूढ़ गँवारा॥

—कर्ताराम धवलराम-चरित्र, पृ० ५

९६ जन जननी अरु बन्धु जनक सुत, दारा दुख की खान।
रामकिना सिख देत सरल तोहिं, कर हरिसों पहिचान॥

—रामगीता, पृ० ३, पद ४

९७. मानि लिए तो पिता अरु मात, सखा परिवार संघात घनेरो।
मानि लिए तो सभै जग बन्धन, होत अबन्धन नेक न बेरो॥
मानि लिए तो सुता सुत नारि, कहावत मात ते बैरि औ चेरो।
रामकिना सब मानि लिए ते, कहावत हंस अनीस के फेरो॥

—रामगीता, पृ० ४, पद ७

९८. ई संसार हाट के लेखा, कोइ आवे कोइ जावे।
कोइ खरचै कोइ मोल मोलाईं, पाप पुंञ दोनों माईं॥
—टेकमनराम : भजन-रत्नमाला, पृ० ६

९९. पीपर के पतवा फुलुगिया जैसे डोले, सुन ये मनुआ वैसे डोले दुनियाँ संसार, सुन ये मनुआ॥
—टेकमनराम : भजन-रत्नमाला, पृ० १४

१००. भँवरो भवरा मर्म में भूलैल हो फूल बनको वास॥
जैसे अकासे जल बरसे, निरमल धरती में डाबर होय।
वैसे हंसा माया में लिपटले, फूल बनके वास,
मृगा नाभे कस्तूरी महको दिन रात, उनहूँ मरम न जाने ढूढ़े बन वास॥
भँवरा मर्म भूलैल हो, फूल बनके वास॥
जैसे बाजीगर बान्दर हो, नाचे दिन रात, जैसे सेमर पर सुगना सेवे दिन रात॥
मारत लोल भ्रा उड़गैले, पीछे पछताय॥
राम भिषम निगु न गाईले, सन्तन लेहु न विचार॥
—टेकमनराम : भजन-रत्नमाला, पृ० ३८

१०१. अमृत छाड़ि विषय संग माते उलटा फाँस फसानी॥
—टेकमनराम : भजन-रत्नमाला, पृ० ३६

१०२. यह जग भूल्यो रे भाई, अमिय छोड़ शठ पिवत वारुणी, केहि विधि से समुझाई॥
—किनाराम : रामगीता, पृ० १, पद १

१०३. सुत संपति तिय भवन भोग, यह नहिं थिर तिहु काल सोग॥
गवनादि करि यतन युक्ति, किए रहिबे छित कोटि युक्त॥
धोखा मन को है अनादि, है पूरन चिंतन रूप आदि॥
ज्यों-ज्यों विकर मृगजल बिलोकि, त्यों विषय आस रखि जीव रोकि॥
—किनाराम : रामगीता, पृ० २, पद ३

१०४. नाना नाहक करो अभिमान भरम में भूलता, धन माया सम देख मनेमन फूलता।
खबर नहीं तोहि लाल काल सिर पर रहै, हहो, मोती भूठे भरम सोक संसय सहै॥
—आत्म-निर्गुण-ककहरा, पृ० ३, पद २०

१०५. डा डा डंका मारे काल नहीं छूटता, पाँच-पचीस चोर यह दौलत मूसता।
—आत्म-निर्गुण-ककहरा, पृ० २, पद १३

१०६. मिथ्या अपवाद धन्धा धोखे में गँवाय देत, चिंतामणि ऐसो जन्म सुकृति सहाय कै।
लोभ को स्वरूप ह्वै छोभ करि दामन को, रह्यो है विकल मन तोहि लपटाय के॥
—किनाराम : रामगीता, पृ० १२, पद ३१

१०७. खलक सब अलख का नाम बिसरि के माया के खोजते धावता है।
कनक औ कामिनी काल का फाँस है तहाँ जाइ जीव अटकावता है॥
मानुष जीव जेहि हेतु को पाइआ काय को भगति बिसरावता है।
कहे दास बोधी नर भरम में भूलिआ सुधारस तेजि विषैरस पावता है॥
—बोधीदास : ह० लि० सं०, पृ० ३६

१०८. माया मोह में फँसि फँसि के मैं, भजन कछून न करी।
सिर धुनि पछितात हैं मैं, जात उमिरिया सरी॥
दान पुन्य कछु कीन्यो नाहीं, कोऊ को न दियौं दमरी।

सिर पर बाँधि धर्यो मैं अपने, पापन की गठरी ॥
सत्संग में ना बैठ्यो कबहूँ, आयके एको घरी।
दुर्जन संग में नाच्यो राच्यो, तुम्हरी सुधि बिसरी ॥

—आनन्द : आनन्द सुमिरनी, पृ० २८

१०९. गीतावली, पद २८, पृ० १२

११०. तत्त्वयलाते आनन्द, पृ० ४७

१११. अन्तःकरण चारि ठहराये। मन बुधि चित हंकार गनाये ॥
इन्द्री एकादश जो बखाना। ज्ञान कर्म तेहि लक्ष बखाना ॥

—किनाराम : विवेकसार, पृ० ११

११२. हृदय बसै मन परम प्रवीना। बाल वृद्ध नहि सदा नवीना ॥
इन्द्री सकल प्रकाशक सोई। तेहि हित बिनु सुख लहै न कोई ॥

—किनाराम : विवेकसार, पृ० १६

११३. मन को जीवन पवन प्रमाना।
समुझि लेहु यह चतुर सुजाना ॥
स्वाँस प्रान को जीवन जानी।
ताते कहो सत्य पहिचानी ॥
बहुरि शब्द को जीवन कहिये।
प्रान प्रतिष्ठा तेते लहिये ॥
द्वितीय प्राण का जीवन ऐसा।
ब्रह्म ब्रह्म सुमझौ तैसा ॥
ब्रह्म को जीवन सहज सरूपा।
नाम कहों तस हंस अनूपा ॥

—किनाराम : विवेकसार, पृ० १९-२०

११४. कौन ना जायगा संग साथी, देवन मन ॥ टे० ॥
जइसे मनी ओस कर बन्दे, ऊ काया जब जाँठी।
दिन चार राम के मजिल, बान्हके का ले जइब गाँठी ॥
भाइ भतीजा हिलमिल के बइठी ओही बेटा ओही नाती।
अन्तकाल कोइ काम न अइहे, समुझि समुझि फाटे छाती ॥
जम्बुराजा के पेआदा जब आये, भाइ के रोके बँट छाती।
प्रान निकल के बाहर हो गए, तन मिल गये माटी ॥
खाल पील भोग बिलसल, एही बात संघ साथी।
सिरी भिनकराम दया सतगुरु के, सतगुरु कहले साँची ॥

—भिनकराम : हस्तलिखित संग्रह, पद २

११५. मिथ्या जग में यह मोर तोर।
तन रूप जवानी जरा जोर ॥
मोहि सबै दुस्तर उपाधि।
जन रामकिना पावै समाधि ॥

—किनाराम : रामगीता, पृ० २, पद ३

११६. नेकी बदी बिसार दे, मौत के कर ध्यान।
कपटेगा तोहि काल ज्यों, झावा बरे सचान॥
—कर्त्ताराम धवलराम-चरित्र, पृ० ४३—४६

११७. कहाँ चलि गैल महबीरा, महलिया सुन भई॥
टुमुक टुमुक चलि चाल दिखावत, तोतरी बोल रही।
सुनि सुख होत स्वर्ग से ऊँचा, अधरामृत लेत रही॥ १॥
खन रूसत खनही में बोलत, गर्दन में लाग रही।
खन रूखा भोजन को खाते, खनही माँगत दही॥ २॥
धूरा धरि बदन लिपटावत, कारन सदा रही।
सो देहिया मरघट पर लेटे, कागा चून रही॥ ३॥
योगेश्वर कहत प्रेम झूठा, झूठा बात कही।
जल सो मीन बिछुरत मरिगै, मैं जिन्दा अबहीं॥ ४॥
—योगेश्वराचार्य : स्वरूप प्रकाश, पृ० २१

११८. तख्यहाते आनन्द, पृ० ४९
११९. काया की लकड़ी जुरी, त्रिशना लाई आग।
'आनन्द' नितहि शरीर में, देखो होली की लाग॥
—आनन्द-भण्डार, पृ० ११४

१२०. कच्ची मिटी का है खेलौना, याको कौन ठेकान।
ठेस लगत फुटि जइहैं तनिक में, पुछिहैं नहिं लड़िका नदान॥
—आनन्द-भण्डार, पृ० १७

१२१. जेहि तन को सब चुमैं चाटैं, ताहि को देखि घिनावै।
जेठ को धूप लगन न पाव, ताहि चिता पे जरावै॥
—आनन्द-भण्डार, पृ० १६

१२२. सुधि कर बालेपनवा के बतिआ।
दसो दिशा के गम जब नाहिं संकट रहे दिन रतिआ।
बार बार हरि से कौल कियो है, बसुधा में करब भगतिआ।
बालेपन बाले में बीते, तरुनी कड़के छतिआ।
काम क्रोध दसो इन्द्री जागे, ना सूझै जतिआ से पँतिआ।
—केशोदास : हस्तलिखित संग्रह, पद १

१२३. अनमोल बचन, पृ० ४८
१२४. मन चंचल गुरु कही दिखाई।
जाकी सकल लोक प्रभुताई।
—विवेकसार, पृ० १३

१२५. मन के हाथ सकल अधिकारा।
जो हित करै तो पावै पारा।
—किनाराम : विवेकसार, पृ० ११

१२६. तेरे अन्दर सैतान मन के बान्ह लेहु जी।
बान्ह लेहु जी हरि के आन लेहु जी॥

—अलखानन्द : निर्पक्ष वेदान्तरागसागर, पृ० ५६

१२७. मनवाँ अति सैलानी रे, केहि विधि समुझावों ॥
रोको केतनों रुकत नहिं छन भर,
जैसे घाट पै पानी रे, केहि विधि समुझावों ॥ १ ॥
पाँच तत्त्व के कोट के भीतर,
सैर करत असमानी रे, केहि विधि समुझावों ॥ २ ॥

—आनन्द : आनन्द-भण्डार, पृ० ९१

१२८. आसन असन करि दृढ़ धरत पौन लै संचरै।
जौं नहीं मन थाह जोगी मांझ भौजल परै।

—किनाराम : रामगीता, पृ० १६

१२९. बंध कवन विषया बिवस, मुक्त विषय से दूर।
तृष्णा त्यागब स्वर्ग सुख, नर्क देह निज पूर ॥ ८ ॥

—कर्त्ताराम धवलराम-चरित्र, पृ० ५०

१३०. काम कसाई क्रोध चंडाल, मोह को कहिए असल चमार।
तृष्णा तेली कुमति कलवार, दोविधा धोबी हम धरिकार।
उपरो के धोवले धोअते नैहे न बेकार।

—किनाराम : गीतावली, पृ० १०

१३१. चाह चमारी चूहरी, सब नीचन को नीच।
तूं तो पूरन ब्रह्म था, चाह न होती बीच ॥

—किनाराम : गीतावली, पृ० १६

१३२. भूल्यो धन धाम विषै लोभ के समुद्र ही में,
डोलत बिकल दिन रैन हाय हाय कै ॥
कठिन दुरास भास लोक लाज घेर पर्‌यो,
भयो दुःख रूप सुख जीवन बिहाय कै ॥
चिन्ता के समुद्र साचि अहमित तरंगतोम,
होत हों मगन यासों कहत हौं जनाय कै ॥
रामकिना दीन दिल बालक तिहारो अहै,
ऐसे ही बितैहो कि चितैहो चित लाय कै ॥

—किनाराम : गीतावली, पृ० १६

१३३. आशा चिन्ता शंकना बहु डाइन घर माहिं।
सतगुरु चरन बिचार बिनु नेकु नहीं बिलगाहिं ॥

—किनाराम : विवेकसार, पृ० १

१३४. आशा चिन्ता कल्पना काया कर्म को बन्ध।
बहु शंका में परि रह्यो क्यों मगु पावै अन्ध ॥
विषय बासना जीव तें, टारै टरै न कोई।
कामादिक अतिसै प्रबल, क्यों करि सुख रति होई ॥

—किनाराम : विवेकसार, पृ० ४

१३५. बिजुली सम चंचल है धन यौवन ताहि लिए दुख कौन उठाई।
मदिरा मद छूटत है धनको मदनाहि छुटै जगते बौराई ॥

—कर्त्ताराम धवलराम-चरित्र, पृ० ५

१३६. किनाराम : रामगीता, पृ० १२

१३७. बासना साँपिनि डसि डसि जात, अमीरस देह जिलावहू जू ॥

आनन्द : आनन्द-भण्डार, पृ० ४

१३८. कामादि खल शत्रु महाभट, पाह लिए तेहि खबरी।
शील, सन्तोष, दया अरु क्षमा; विवेक सेन संग पकरी ॥ ५ ॥

—योगेश्वराचार्य : स्वरूप-प्रकाश, पृ० १३

१३९. काम और क्रोध लोभ रोजा है फकीरों की।
शाहों से जहर यह कभी खाया न जायगा ॥

—तक्रयलाते आनन्द, पृ० २२

१४०. को दरिद्र तृष्णा बहुत धनी जाहि संतोष।
बंध कवन कामातुरा मृत्यु अपयश दोष ॥ १० ॥
निज इंद्री शत्रु कहव वशी करो तो मित्र।
जानि सकत नाहि काहिसम त्रियमन तासु चरित्र ॥ ११ ॥

—कर्त्ताराम धवलराम-चरित्र, पृ० ५०

१४१. किनाराम : गीतावली– पृ० १३

१४२. इन्द्रियेभ्यः परा ह्यर्था अर्थेभ्यश्च परं मनः ॥
मनसस्तु परा बुद्धिर्बुद्धेरात्मा महान्परः ॥ १० ॥
महतः परमव्यक्तमव्यक्तात्पुरुषः परः ॥
पुरुषान्न परं किंचित्सा काष्ठा सा परा गतिः ॥ ११ ॥

—कठोपनिषद्, ३, १०-११

१४३. सर्वद्वारेषु देहेऽस्मिन्प्रकाश उपजायते।
ज्ञानं यदा तदा विद्याद्विवृद्धं सत्त्वमित्युत ॥
लोभः प्रवृत्तिरारम्भः कर्मणामशमः स्पृहा।
रजस्येतानि जायन्ते विवृद्धे भरतर्षभ ॥
अप्रकाशोऽप्रवृत्तिश्च प्रमादो मोह एवच।
तमस्येतानि जायन्ते विवृद्धे कुरुनन्दन ॥

—पृ० ४३१-४३२

१४४. सत्यपुरुष को सत्य कहि सत्य नाम को लेखि।
रूप रेख नहिं संभवै कहिये कहा विशेषि ॥
कछुक दिवस ऐसो रह्यो अविनासी अवधूत।
तेहितें इच्छा प्रगट तब कीन्हों शब्द अभूत ॥
तामें तीनि पुरुष भये बरन चतुर एक नारि।
नभ छिति पावक पवन जल रचना जात विचारि ॥
पुनि बिहँसत एक नारि भइ सुमन कमल निर्मान।
ब्रह्मा बिष्णु महेश सुर भये सकल यह जान ॥
निज इच्छा तेहि देह करि आपु आपु महँ होइ।
रमत दिगंबर भेष में सदा निरंतर सोइ ॥
प्रथम शक्ति जो प्रनव महँ भई कहों शिव तोहि।
वेद मात ता कहँ कहिय नित इच्छा संग सोहि ॥

इच्छा क्रिया शक्ति संग शोभित भये अनन्त ।
पाँच तत्त्व गुण तीनि लै कर्‌यौ मनन्न को तंत ॥
प्रनव आदि मर्याद करि नाम रूप सब कीन्ह ।
ब्रह्मा विष्णु महेश कहँ जग पालन कहि दीन्ह ॥
कबहुँ रजहिं प्रकाश करि कबहुँ तम महँ जाइ ।
कबहुँक पाले सत्य कह नाम अनन्त कहाइ ॥
रुद्र होइ जग को करै कबहुँ कबहुँ सँहार ।
माया अलख अनन्त कहि निगम पुराण विचार ॥

—पृ० ६-७

१४५. इहैकस्थं जगत्कृत्स्नं पश्याद्य सचराचरम् ।
मम देहे गुडाकेश यच्चान्यद्द्रष्टुमिच्छसि ॥

—भगवद्‌गीता, पृ० ३४१, श्लोक ७

१४६. न तु मां शक्यसे द्रष्टुमनेनैव स्वचक्षुषा ।
दिव्यं ददामि ते चक्षुः पश्य मे योगमैश्वरम् ॥

—श्रीमद्‌भगवद्‌गीता, पृ० ३४१, श्लोक ८

१४७. जो ब्रह्मायड सो पिंड महँ सकल पदारथ जानि ।
त्रिधा शरीर भेद लै कारन कारज मानि ॥
पिंड माँह बस देव गणेशा । पिंड माँह विधि विष्णु महेशा ॥
पिंड माँह सुमेर गिरि राजै । पिंड माँह सब रचना छाजै ॥
पिंड माँह सप्त ऋषि देखै । पिंड माँह सुरज शशि लेखै ॥
पिंडहि माँह आदि अवसाना । पिंडहि माँह मध्य ठहराना ॥
पिंडहि माँह लोक सब लहिए । स्वर्ग नर्क अपवर्ग जो कहिए ॥
पिंडहि माँह गंग को धारा । अरसठ तीरथ सकल विचारा ॥
पिंडहि माँह दसौ दिगपाला । पिंडहि माँह कर्म अरु काला ॥
पिंडहि माँह समुद्र अनेका । पिंडहि माँह श्रुति चार विवेका ॥
पिंड माहिं पर्वत कै खानी । उच्चास कोटि जग कहै बखानी ॥
पिंडहि माहिं विराजत वेनी । पिंड माँह सब सुकृत की पनी ॥
सप्तलोक बस पिंडहि माहीं । पिंड माँह बैकुयठ कहाहीं ॥
पिंड माँह शोभित कलासा । पिंड माँह सब सुर मुनि बासा ॥
पिंड माँह नभ नखत प्रकासा । सप्त पाताल पिंड मो बासा ॥
शेषनाग बसु पिंडहिं माँहीं । बरुण कुबेर इन्द्र सब ताहीं ॥
अष्ट सिद्धि नव निद्धि जो कहिए । पिंडहि माहिं जान करि लहिए ॥
पिंड माँह सब दिशा देशान्तर । पिंडहिं माँह मंत्र अरु अन्तर ॥
पाँच तत्त्व गुण तीनि लै, रच्यो सकल ब्रह्मांड ।
पिंड माँह सो देखिवे, भुवन सहित नव खंड ॥
पिंड माँह रह देव अनंता । विद्या सहित अविद्या कंता ॥
अन्तःकरन चारि ठहराये । मन बुधि चित हंकार गनाये ॥
इन्द्री एकादश जो बखाना । ज्ञान कर्म तेहि लक्ष बखाना ॥
पाँच प्रान अरु प्रकृति पचीसा । माया सहित जीव जगदीसा ॥
औतारन की कथा जो कहिए । सो सब छात्र सदा हित लहिए ॥

पिंड माँह दस द्वार बनाये। यह सब वस्तु तहाँ ठहराये ॥
ज्ञान, विराग विवेक विचारा। सो सब पिंड केर निरुआरा ॥
मन के हाथ सकल अधिकारा। जो हित करै तो पावै पारा ॥
पिंड माँह बस अनहद बानी। सिव तेहि समुझि करिय पहिचानी ॥
बानी खानी समुद्रा चारी। पिंड माँह यह सकल सँवारी ॥

—किनाराम : विवेकसार, पृ० ८-११

१४८. अलि लै मयक तवति निरंजन।
जानि लेहु अध्यातम सज्जन ॥
देव निरंजन ते शिव मयऊ।
निरालंब को आसन कयऊ ॥
शिव ते भये काल अति भारी।
जो शुभ अशुभ प्रलय संहारी ॥
काल माँह ते शुन्य अनूपा।
यह अनुभव को रूप अनूपा ॥
अविनाशी सो शिव प्रगटानो।
सो सब शास्त्र वेद मत जानो ॥

—किनाराम : विवेकसार, पृ० २१

१४९. देखिए 'संत कवि दरिया एक अनुशीलन'—पृ० १५९ तथा अलखानन्दकृत निर्पक्ष वेदान्तराग-सागर की निम्नलिखित पंक्तियाँ (पृ० ७३)

योगियों से चला हवे तत्व विचार।
अस्थि मांस त्वचा नाड़ी रोम जो सर्वांग त्यरी पृथ्वी ही।
का अंस पंच कुन्ना पंच कुन्ना पंच कुन्ना कुन्ना प्यार ॥
सुक्र सोणित मंजा लार, पसेन्या जो देह से धार,
जलही का अंस, पंच छन्ना पंच छन्ना पंच छन्ना छन्ना म्यार ॥
छुआ तृषानिद्रा और आलस्य जम्हाई दौर, अग्नि ही
का अंस, पंच लन्ना पंच लुन्ना पंच लन्ना लन्ना सार ॥
संकोच पसार धाय, ग्रहण भी बल को आय, बायु ही का
अंस, पंच भृन्ना पंच भृन्ना पंच भृन्ना भृन्ना यार ॥
लज्या भव और, मोह, काम अंग अंग कोह, गगण के
अंस पंच गृन्ना पंच गृन्ना पंच गृन्ना गृन्ना द्वार ॥
पाँच पचीस पद तीन, कहैं अलखानन्द गिन,
जगत के किन्ह, इन्ह भृज्ना इन्ह भृज्ना इन्ह भृज्ना भृज्ना प्यार ॥

—पृ० ७३

१५०. लख चौरासी भ्रमे से देहिया, सुन ये मनुआ।
अजहुँ न अपना हरी के चिन्हे, सुन ये मनुआ ॥

—टेकमनराम : भजन रत्नमाला, पृ० १४

१५१. जब जमुराज प्यादा भेजले, बान्हले मुशुक चढ़ाई।
मारी मुंगरन पुछि बतिया, गुण अवगुण गइले सधिया ॥
देह से प्राण भइले, बिसर गइले सब बतिया।
ले खटिया घटिया पहुँचवले, फुँक दैले जैसे सुखि लकड़िया ॥

—टेकमनराम : भजन रत्नमाला, पृ० ३९

१५२. नर तन होइ सतगुरु के न भजले, फेर काल धइ खाय।
विस्ठा मूत्र नरक के लेधुर, तेहि में दिहे तोहि डार।
वोही में दूत मारन लागे, तब के करिहैं गोहार॥

—टेकमनराम : भजन-रत्नमाला, पृ० ३४

१५३. मोरहर देके बाँधी प्रभु, पखवत देके मारी हो,
दिन निअराइल प्रभु, महल बा तैयारी हो।

—टेकमनराम : भजन-रत्नमाला, पृ० १०

१५४. अगिला मोटा बान्हे तेकर, बाका चतुराई हो।
अगिला मोटा राम नाम हु, संपत धन पाई हो॥
जुगल अनंत तेरी खरची न खोटाई हो।
पुरबिल का कमाई से तु, संपत धन पाई हो॥

—टेकमनराम : भजन-रत्नमाला, पृ० १२

१५५. जीव सो कर्म बन्ध ही माना।
सतगुरु आतम को नहिं जाना॥
कर्म बन्ध गत शिव सत भाँती।
दिशा देश नहिं एकौ काँती॥

—किनाराम : विवेकसार, पृ० १४

१५६. तँ ह कुमार ँ सन्तं दक्षिणासु नीयमानासु श्रद्धाविवेश सोऽमन्यत ॥२॥

—कठोपनिषद्, १-२

१५७. कठोपनिषद्, २-६

१५८. भक्ति बिना सब कुछ बराबर, बन्धले जमपुर आई।
वेद किताब भागवत बाँचे, जीव दया नहिं आई।

—हस्तलिखित संग्रह, पद ४

१५९. पढ़ते काजी पढ़ते मौलाना, पढ़ते लरिकन वाले।
मैं का पढ़ों कुसुढिन जोगिन, रब के हैं मतवाले॥

—जोगीनामा, ह० लि० सं०, पृ० ३५

१६०. पंडित सुजान औ सलोनो सब भाँतिहू ते, चतुर सपूत अच्छे गुनते सराहवी।
सगुर सुबुद्धि साँचो खरो घर बाहर में, दिलको दलोन दलै नीकी कीन साहिबी।
इसको रसिक बैन बूझत न नैन सैन, रैमहू में आगर अतिआगर प्रीत काहवी।
येवो सब स्वांग खोटो जोन किनाराम बिनु जपे हरिनाम कौन सुख लाहवी।

—किनाराम : रामगीता, पृ० १६, पद ४१

१६१. शोभित ज्ञान विवेक जुत राम भक्ति के संग। राम बिना जिमि कमल जल फूल्यो कमल सुरंग॥

—किनाराम : रामगीता, पृ० १३, पद ३४

१६२. ग्यान खरग ले भवे मैं ठाढ़ी कोई नहिं आवे सन्मुख हमार।

—टेकमनराम : भजन-रत्नमाला, पृ० २९

१६३. गीतावली, पृ० १

१६४. भजन करे से बेटा हमारा, ज्ञान पढ़े से नाता।
रहनी रहे से गुरु हमारा, हम रहनी के साथी॥

—टेकमनराम, ह० लि० सं०, पद २

१६५. पहिलो शरधा दूसरी सत संगति सुखदानि।
भजन क्रिया तीजे चऊठ विषय विराग बखानि॥४॥

निष्ठा, रुचि पंचमि कहै छठय ध्यान चितलाइ ।
नाम रसिक सप्तम गनो अष्टम भाव लगाइ ॥५॥
नवम प्रेम पूरण रहे दशम दरश रघुनाथ ।
यहि विधि दरशन जो करे पावे हरि को साथ ॥६॥

—कर्ताराम धवलराम-चरित्र, पृ० ५०

१६६. प्रम दी पैंडो न्यारो सबतें ॥
मगन मस्त खुश होले प्यारे, नाम धनीदा प्यारो ।
जीवन मरण काल कामादिक, मन ते सबै बिसारो ॥
वेद किताब करनि लज्जा को, चिन्ता चपल नेवारो ।
प्रेम आचार भेकई राखै, संयत रखै लचारो ॥
भर्मै असोच सोच नहि आवै, कोउ जन आनि निहारो ।
रहत अजान जान के बूझत, सूझत नहिं उजियारो ॥
उतरत चढ़त रहत निसिबासर, अनुभै वाहि करारो ।
रामकिना यह गैल अटपटी, गुरु गम को पतियारो ॥

—किनाराम : गीतावली, पृ० ६

१६७. रामकिना जस प्रेम बिना जप, जोग विराग किया तप कैसो ।
ज्यों जुवती गुन रूप बिना पटहीन बिहीन मैं भूषण जैसो ॥

—किनाराम : रामगीता, पृ० ५

१६८. चंचल नारि बसे संग में, अरु राह पै धूम मचावत भारी ।
चाहत साज श्रृंगार मेटावन, चौल किए अंगिया धइ फारी ॥
एकादश, षोडश, पाँच सखी, सब घेर लियो मम ओर निहारी ।
राह मिटावत मैं इकला, संग खेल तुम्हार खेलावन सारी ॥
अब कटी, सब सक कटी, अरु बान्हि चहो तब फाँस में डारी ।
गुरु ज्ञान कथित सब याद परो, धइ ज्ञान गदा कर व्यूह उजारी ॥

—योगेश्वराचार्य : स्वरूप-प्रकाश, पृ० ३७

१६९. रामकिना पहेचानियाँ, सत्य सुआतम भेद ।
हाथी और घोड़े दौलत जोड़े लाख करोड़ो राँचा है ।
चढ़ना सुरत पाले मारन गाले, निरखत नालैं नाचा है ।
चेरी औ चेरो फौज घनेरो, आपन हियरो काँचा है ।
किनाराम कहंदा सुनवे बंदा नाम धनीही साँचा है ।

—गीतावली, पद ३२, पृ० १४

१७०. आनन्द सुमिरनी, पृ० ३७

१७१. श्री रामनाम मुख से, जब तक रटन न होगा ।
तब तक हरी के दर्शन, से मन मगन न होगा ॥
लेता नहीं है जब तक, आधार नाम का तू ।
तब तक, मन और स्वाँसा में, सम्मिलन न होगा ॥

—सुक्खू भगत : आनन्द सुमिरनी, पृ० १२

१७२. राम नाम सतसंग सम
साधन और न कोई ।

श्रुति सिद्धान्त विचार यह
जानै बिरला कोई

—किनाराम : विवेकसार, पृ० १

१७३. बन्दे कर खेती हरिनाम की ॥
इस खेती में नफा बहुत है। कौड़ी न लगै छदाम की ॥
तनकर बैल सुरत हलवाहा। अरई लगी गुरु ज्ञान की ॥
ऊँच खाल सब सम करि जोतो। यही रीति किसान की ॥
बगल बगल संतन की मड़ैया। बीच मड़ैया किनाराम की ॥

—किनाराम : गीतावली, पृ० ३-४

१७४. ई दुनिया हत काल चबेना, का मै बूढ़ा का जवाने अनरूपा।
द्विज भीखम एक नाम जपे बिनु, जस पानी में बुलबुला ॥

—भजन-रत्नमाला, पृ० ७

१७५. हरि गुन गालऽहो रसना से, ए जग कोई न बा अपना ॥
नहीं देखो नाव नहीं बेड़ा, ना देखो केवट कन्धारी।
बूड़ेउ अथाह थाह नहीं पावे, के मोहि पार उतारी ॥

—टेकमनराम : भजन-रत्नमाला, पृ० ७

१७६. एक राम नाम बिना परब जनु, पलखत देके मारी हो,
अइसन मार मारी जनु, मार के पछारि हो।

—टेकमनराम : भजन-रत्नमाला, पृ० १०

१७७. चार पहर निज धोखे बीते, तेरी करनी लिख जायगा।
चार पहर चौसठिया धरियो नाम के चरमा गहि रहना।
ग्यान खरग ले भये मैं ठाढ़ी, कोइ नहिं आवे सन्मुख हमार।

—टेकमनराम : भजन-रत्नमाला, पृ० २६

नाम जपि उबरे कोटि खल, गज उबरि मारो खल छन में।
नाम जपत प्रह्लाद भभीषन, तर गये गीध अजामिल अधम के।
द्रुपति सुता एक नाम पक गए, हारो बीर दुसासन रन में।
जोजन आरत त्राहि पुकारे, श्री टेकमनराम के राखु सरन में।

—टेकमनराम : भजन-रत्नमाला, पृ० ६

१७८. आनन्द सुमिरनी, पृ० ७

१७९. १—कबहूँ खोज न राम की कीन्यो। बिर्था जनम ऐसे वैसे गँवायो ॥
२—केस बढ़ायो, हलफी रँगायो। भेख के फेर में शेख भुलायो ॥

—आनन्द : आनन्द सुमिरनी, पृ० ५

१८०. जिक्र मालिक का सुबहो शाम करो। सज्दे में जाते हो तो जाओ, मगर,
देर तक वहाँ कुछ कयाम करो। उठने और बैठने से क्या हासिल,
ऐसे सज्दे को तुम सलाम करो। ... ...

—आनन्द सुमिरनी, पृ० २९

१८१. अब क्या कहैं कह्यो नहिं जाय। मन जहँ रहा सो तहहि समाय।
जैसे स्वाद गुड़ गूँगे केर। तैसे समझो तुम मन फेर।
रसना रसिक रटहु हरिनाम। जासैं मिलैं राम हरि धाम ॥

—किनाराम : रामगीता, पृ० २०, पद ५३

१८२. अब मन ले लो हरि का नाम ॥
सुख संपत यह चार दिना के। कोउ न आवत काम ॥
हित मित उत कोउ संग न जैहै। सुत बनिता धनधाम ॥
रामकिना सतगुरु सरन पा। नाम लखा विश्राम ॥
—किनाराम : रामगीता, पृ० २३, पद ३

१८३. विषय शब्द समहद्य है, अनहद धुनि जो होय।
करता कहे दुनौ तजो, रामराम रटि लोय ॥१२॥
—कर्ताराम धवलराम-चरित्र, पृ० ५३

१८४. क्या बैठा है मूरख मौन धार, श्री रामराम कहु बार-बार ॥
राम रंग में रंगु पट अपनो सतसंग जल में पखारि निखार ॥
नाम का बुक्का उड़ाव चहुँ दिश, घट पट चमकै झार-झार ॥
प्रेम गुलाल भरि सुरत कुमकुमा, गुरु चरनन बिच तकि-तकि मार ॥
गायबे चाहे कबीर तो बौरे, रामराम सियाराम पुकार ॥
मिलना होय तो मिलु सन्तन से, निज स्वरूप सब रूप निहार ॥
यह विधि 'भगवती' होरी खेलहू आनन्द मिलिहैं ह्वै है बहार ॥
—आनन्द सुमिरनी, पृ० ३०-३१

१८५. 'सुक्खू' भजन का आनन्द सो पावे खाय जो जाति के हीरा कनी रे।
—सुक्खू भगत : आनन्द सुमिरनी, पृ० ९

१८६. अनमोल वचन, पृ० ३९

१८७. भजन-रत्नमाला, पृ० ९

१८८. सो शिव तोहिं कहत हौं अबहीं। सोहम् मंत्र न संशय कबहीं।
सहज सुखाकर मंत्र कहावै। जाहि जपे तें बहुरि न आवै ॥
सहज प्रकाश निरास अमानी। रहनि कहों यह अजपा जानो।
जहाँ तहाँ यह मंत्र विचारे। काम क्रोध की गरदन मारै ॥
— विवेकसार, पृ० २४-२५

१८९. स्वासे स्वासे सो सो करते त्रिकुटी को धावता।
हं हं करते स्वासे स्वासे बाहरिको आवता ॥
सो सो सो सो शक्ति मानो हं हं महादेवता। शक्ति शिव सबको घट में बाहरि क्यों धावता।
शिव शक्ति में लम्यो सोहं कहलावता। एकइस हजार छै सौ रात्रि दिन में आवता ॥
याहि संख्या स्वाम ही को वेद बुध गावता। स्वासे स्वासे सोहं सोहं घंटे घंटे छावता।
जाहा दिन सोहं निकले मृत्यु ही को पावता। कहे अलखानन्द क्यौं सोहं बिसरावता ॥
—अलखानन्द : निर्पक्ष वेदान्तरागसागर, पृ० ३३

१९०. नहीं दूरि नहिं निकट, अति नहिं कहुँ अस्थान।
बेदो पै दृढ़ गहि करै, जपै सो अजपाजान ॥
आपु बिचारै आपु मैं, आपु आपु महँ होइ।
आपु निरन्तर रमि रहैं, यह पद पावै सोइ ॥
—किनाराम : विवेकसार, पृ० २३

१९१. कोउ कहे राम राम स्वासे स्वासे माँहि हो।
राम राम रटते रटते रामहूँ भुलाहिं हो ॥
—अलखानन्द : निर्पक्ष वेदान्तरागसागर, पृ० ३४

१९२. न करो विचार निर्गर को राखिये सहज समाधि मन या माईं।
अमत के आस से हो निरास जब मुक्ति दरबार के खबरि पाईं॥
ज्ञान औ ध्यान दोऊ थकेंगे हारके, सहज समाधि में तत्त्व महना।
चाँद औ सूरज जहाँ पहुँच ही न सकेंगे, खुशी का लोक में सोच दहना॥

—पलटूदास; ह० लि० सं०, पद ४-६

१९३. आखिर को मरेगा कूदो भटका दे, कूदने से तू क्या गम खाईं।
तुम्है का लाज है लाज है उसी को, उसीका शीष पर भार बाईं॥

—पलटूदास, ह० लि० सं०, पद ७

१९४. कामी क्रूर कुटिल कलंकी कहाय नाथ, आये हों सरन ताकि तोहि पै लजाय के।
रामकिना दीनदिल बालक विरद तेरो ऐसे ही बितैहो कि जितैहो चित लाय के॥

—किनाराम : रामगीता, पृ० १२, पद ३०

१९५. Devotion wafts the mind above
And Heaven itself descends in love.

१९६. हंस बसै मो कहियत गगना।
सदा एक रस आनंद मगना।

—किनाराम : विवेकसार, पृ० १७

१९७. काम क्रोध मद लोभ रत, ममता मत्सर सोच।
अन आत्मक सो जानिये, सब विधि संतत पोच॥
आतम सत्य विचार लहि, दया सहित आनन्द।
शुचि समता धीरज सहित, विगत सबै जग द्वन्द॥
अन आतम आतम समुझि, रहु सतसंग समाइ।
पर आतम तोसों कहिय; सुनहु शिष्य चितलाइ॥

—किनाराम : विवेकसार, पृ० ५

१९८. काया महँ बस जीभ वियोगी, इन्द्रिह सकल विषय रस भोगी॥

—किनाराम : विवेकसार, पृ० १७

१९९. तद्वा अस्यैतदतिच्छन्दा अपहतपाप्माऽभयँ रूपं तद्यथा प्रियया स्त्रिया संपरिष्वक्तो न बाह्यं किंचन वेद नान्तरमेवमेवायं पुरुषः प्राज्ञेनात्मना सपरिष्वक्तो न बाह्यं किंचन वेद नान्तरं तद्वा अस्यैतदाप्तकाममात्मकाममकामँ रूपँ शोकान्तरम्॥

—बृहदारण्यकोपनिषद्, ३, २१

२००. कब होइहैं ब्याह पिया संग,
कब जाइब ससुरार हो॥

—आनन्द : आनन्द-भण्डार, पृ० ३१

२०१. १—नाता नेह नेक नीको न लागै।
लागै घर बखरी उजाड़ नैहरवाँ॥
२—गहना और कपड़ा मने नहिं भावै।
फीको लागै सोरहो सिंगार नैहरवाँ॥
३—संग की सखी साथ छोड़न लागी।
छोड़न लागे लड़िकयाँ के यार नैहरवाँ॥
४—दिन और तिथि जब चलने की आई।
आनि पहुँचे डोलिया कहार नैहरवाँ॥

५—आयके बसब सब आनन्द नगरी।
देवे 'रुपपति' हम बिसार नैहरवाँ॥

—भक्तिन रुपपती : आनन्द सुमिरनी, पृ० २४-२५

२०२. १—जब से रामसुधारस पीवल, मोरा भूअल मनुआँ जीवल।
हाल भयल बाय बहुते बेहाल, लगनिया राम से लागी॥
२—माता, नेह, गेह सब त्यागल, लोगवा कहन लागे मोहे पागल।
बूझै मोरे मन कै कोई नाहिं हाल, लगनिया राम से लागी॥
३—रहनी देखि के अटपट मोरी, सबकर मतिया भैली भोरी।
कोई निरख न पावे मोर चाल, लगनिया राम से लागी॥
४—छबि राम सिया की जो हम लखलीं, गुप्ते अपने मन में रखलीं।
आनन्द पाय 'सुक्खू' भैली हम निहाल, लगनिया राम से लागी॥

—भक्त सुक्खू : आनन्द सुमिरनी, पृ० १३

२०३. जब से पियली प्रेम सुधारस मन अनुराग्यो ए आली।
तन मन धन गुरु अर्पन कैलीं। भवभय भाग्यो ए आली॥
काम, क्रोध, लोभ, ममता, मद, सबही त्याग्यो ए आली॥

—आनन्द : आनन्द-जयमाल, पृ० ४

२०४. भक्ति भाव के सुन्दर गहने, नख शिख से झलका री।
राम नाम का पाहुर संग लै, भरी हृदय के पेटारी॥
आनन्द साज सजाय के यहि बिधि, बनिके सुघर सुन्दर नारी।
'फूलमती' जब जैहू पिया घर, बनहू पिया की अपने प्यारी॥

—आनन्द : आनन्द-जयमाल, पृ० १८

२०५. १—मैली चुनर धोलें नैहरवाँ। नाही तो पिया सो लजाये परी रे।
२—धोय धाय जब उज्ज्वल होई। पिया के रंग में रंगाये परी रे॥
३—अवसर जो ऐसे वैसे में बीती। अन्त समय पछिताये परी रे।
४—निज रंग में जब देखि हैं रंगल। सन्ध्या के गरवाँ लगाये परी रे॥
५—सन्ध्या मिलन में जो आनन्द होई। 'सुक्खू' न कोइ से बताये परी रे॥

—सुक्खू भगत : आनन्द सुमिरनी, पृ० १०

२०६. सूतल रहलीं नींद भए, गुरु दिहिले जगाय।
गुरु का चरन रज अंजन हो, नैना लिहल लगाय।
वोही दिन से नींदो न आवेला हो, नाहीं मन अलसाय।
प्रेम के तेल चुआवहु हो, बाती देहु न जलाय।
राम चिनिगिया बारहु हो, दिन राति जलाय।
सुमति गहनवा पेन्हहु हो, कुमति धर न उतार।
सत के माँग सँवारहु हो, दुरमति बिसराय।
उचित अटारी चढ़ि बैठे हो, बाहाँ चोरवो न जाय।
रामभिखम ऐसे सतगुरु हो, देखि काल डराय।

—टेकमनराम : भजन-रत्नमाला, पृ० ११

२०७. ननदी धीमे धरु पगवाँ बचाय-बचाय।
प्रेम नगरिया की डगर बड़ बीहड़, चलो तनिक धोतिया उठाय-उठाय।
चाँद सुरज बिनु बरै यहाँ जोती, जोतिया के ओर देखु नजर लगाय।

रहत आनन्द सदा यहि देसवाँ, ताप तीनौं तनिको नाहिं झुकाव ।
'मौजी' यहि देसवाँ आय, जो कोई अपने हाथ सीस अपना देइ चढ़ाय ।

—'आनन्द' : आनन्द-जयमाल, पृ० ३५

२०८. देखो चुनरी में लागै न दाग सखी ।
ई चुनरी पिया आप बनाये । तानि करमवाँ के ताग सखी ।
पतिवर्त रंग में रंगल चुनरिया । प्रेम किनरिया लाग सखी ॥
ई चुनरी जिन जतन से ओढ़े । आनंद भये जागे भाग सखी ॥

—आनन्द : आनन्द मल्हार, पृ० ३९

दाग लगै ना नैहर में तनिको । बिगड़े ना रंग चुनरिया की ।
हाथ से अपने पिया यहि बिनलै । यह नाहीं चुनरिया बजरिया की ॥

—आनन्द : आनन्द सुमिरनी, पृ० २-

२०९. पाँच पचीस मोरे बचपन के मितवा ।
बर्जत रोकत हिलमिल डगरिया ॥
सोचत रहूँ निज द्वारे पै बैठी ।
केहि बिधि पहुचूँ पिया दरबरिया ॥
सपने में आनि मिले श्रीसतगुरु ।
सूरत की हाथ धरायो जेवरिया ॥
धरिके जेवर चढ़ि गैलूँ अटा पर ।
जैसे लकुट धरि चढ़त बँवरिया ॥
पिया मिलन में मिला जो आनंद ।
बरनै क्या 'रजपती' गँवरिया ॥

—'रजपती' : आनन्द सुमिरनी, पृ० २२-२३

२१०. तिनके भाग्य पूर्ण मैं साधो,
हेरि पिया जिन पायी ॥

—योगेश्वराचार्य : स्वरूप-प्रकाश, पृ० ९

२११. अटिका में मन मोर अटका ।
मनमोहन के प्रेम में फँसिके,
छूटल नैहरे के खटका रे साँवरियाँ ।
औसर कमल की सेवा में निसदिन,
औसर पायों राम नाम रटका रे साँवरियाँ ॥
माशूक महल की छबि क्या बरनों,
गुरु की दया से खुला फाटक रे साँवरियाँ ॥
कहै 'भक्तिन माई' बिसरै ना कबहूँ,
आनन्द तमसा के तट का रे साँवरियाँ ॥

—भक्तिन माई : आनन्द-जयमाल, पृ० १

२१२. खोजहु खसम खुलासा, सकल तजि ।
माता पिता बन्धु सुत दारा, नहिं जैहै सँग पासा ।

× ×

शून्य भवन पियवा से मिलो; मेटि जाई यम त्रासा ॥४॥
श्री हरे हरे ! सकल तजि खोजहु खसम खुलासा । सकल तजि ।

—योगेश्वराचार्य : स्वरूप प्रकाश, पृ० ११

२१३. लाज कैल कुछ काजो न होइहे, घूँघटवा खोलके ना।
नचबो पिया हुजूरवा, घूँघटवा खोलके ना।
सोरहो सिंगार कैले हाथवा में लेले कंगनवा ना।
राम समक के चढ़बो ना पिया के भवन अटरिया।
तेजलों में माई, बाप, भइया के भनवा तेजलों से सैंया सरनवा।

—टेकमनराम : भजन-रत्नमाला, पृ० २७

२१४. बड़ा सुख होत ससुरारी हो, राम होइबो में पिया की प्यारी ॥

—टेकमनराम : भजन-रत्नमाला, पृ० ३३

२१५. श्री टेकमनराम मिलन स्वामी, अब ना आइब स्वामी एहि नइहरवा।

—टेकमनराम : भजन-रत्नमाला, पृ० ३२

२१६. पिअवा मिलन कठिनाई रे सखिया। पिअवा०।
पिअवा मिलन के चलली सोहागिन,
भइले जोगनिया के भेसवा हो राम।
रहली रॉंड़ भइली पहवाती,
सेनुरा ललित सोहाई।
यह दुलहा के रूप न रेखा
दुलहिन चलत लजाई ॥

— भिनकराम : हस्तलिखित संग्रह, पद ३

२१७. हरिजी हमारी सुधि काहे न लेई।
घाव बिसाल बैद नहिं ऐसो अंग-अंग तन बेधि गई।
पतन बिरहिन के कसि कहि मैं बिरहे आगिल तन जर गई।

—भिनकराम : हस्तलिखित संग्रह, पद १६

२१८. राम सुरतिया लागल मोर।
सुरती सोहागिन बिरहे व्याकुल, पलको न लावै मोर ॥
निरखत परखत रहत गगन में निशिदिन लागत डोर।

—टेकमनराम : भजन-रत्नमाला, पृ० २४

२१९. पल-पल दुसह दुख दारुण ढरत नयन से नीरा।
योगेश्वर जरत बिना आगि सो का कैलऽहो रघुबीरा ॥

—योगेश्वराचार्य : स्वरूप-प्रकाश, पृ० २०

२२०. श्याम न आये भवनवाँ, रे सजनवाँ।
गौना ले आये घर बैठाये, अपने गइले मधुबनवाँ ॥१॥

—योगेश्वराचार्य : स्वरूप-प्रकाश, पृ० २८

२२१. नैहर छूटल जाई।
ता कुलबधू नारि सुत लछमी सुजन समुदाई।
आजुक दिन स्वप्न सम लागे, मिथ्या रहलों भुलाई ॥१॥
आपन जान नैहर लिपटैलों जस सुग्गा सिमरा लोभाई।
हाथ परले चक्के की बेरियाँ, उड़िगन महा पछिताई ॥२॥
वा जग जमुआ जाँच करत हैं, पूछत खबर पिया आई।

× × ×

जो बिरहिन पिया रहनि बतावे ताके पगु शीश नवाई ॥
रुपे के नाव सोने करुआरी; तापर लेत चढ़ाई ।
आपु ओरि कर ठाढ़ रहत हैं; केवट पार लगाई ॥६॥

× × ×

जो बिरहिन पिया बिरह भरी है, उतरि पार कब जाई ।
सत्गुरु शब्द के सुमिरन करके मिले पिया सम्मुख जाई ॥७॥
जो लालचवश लिपटि भुलाना जग रूप सीमा से भाई ।
ताको कष्ट है निशिवासर, सुख सपनों में ना पाई ॥८॥

—योगेश्वराचार्य : स्वरूप-प्रकाश, पृ० २८-२९

२२२. आगि लागि बनवा जरे परबतवा ।
मोरां लेले हो साजन जरे नइहरवा ॥

× × ×

नैना भर कजरा लिलरवा भर सेनुरा ।
हमरा लेले हो सतगुरु भइले निरमोहिया ।

—भिनकराम : हस्तलिखित संग्रह, पद १

२२३. बारहो बरिस के कुँआरी रहली, सखी का सँगवा खेले गइली हो ललना ।
खेलत-खेलत में दिन बीत गइले, हरि के नाम भूल गइले हो ललना ॥
बितले बरिस छट तीस तुहो अलकि बयेस कीने हो ललना ।
बिना पति पलंगा पर सोना धिरिक जीव के जानि ले हो ललना ॥

—छत्तर बाबा, सोहर १

२२४. कब होइहैं मोरा ब्याह पिया संग, कब जाइब ससुरार हो ॥

—आनन्द : आनन्द-मयखार, पृ० ३१

२२५. दूध से दही दही से माखन, पिउआ बन के रहिह सोहागिन ।

—टेकमंनराम : ह० लि० सं०, पद १

२२६. लाले लाली डोलिया बलमुआं केरे, जेहि में सबुजी ओहार ।
राजन बरतिया दुअरवा पर रे, ले ले डोलिया कँहार ॥
बहियाँ पकड़ि बइठाई लेलन रे, कतेनो कइनी गोहार ।
सखिया सहोदर सबके कर टूअर, देलन भेंट अँकवार ॥

—पलटूदास : ह० लि सं०, पद ८

२२७. आनन्द : तत्व्यलाते आनन्द, पृ० १६

२२८. भक्तिन मौजाई माई : आनन्द-जयमाल, पृ० ३३

२२९. रिमझिम बहेला बेआर पवन रस डोले हो राम ।
डोले नवरकिया के बगिया पिया परदेश न हो राम ।
कटबो चन्दन के गछिया पलंगिया सजाइब हो राम ।
ताहि पर सोवें पिया साहेब बेनिया डोलाइब हो राम ।
सासु मोर सुतली महलिया ननदी छात ऊपर हो राम ।
पिया मोर सुतेला पलंगिया कैसे जगाइबि हो राम ।
एकतो रइनि भयावन दूजे मिनिया मातल हो राम ।
टोलवा परोस नाहीं उनके कतहुँ केहु जागल हो राम ।

—बालखण्डीदास : ह० लि० सं०, पद ३

२३०. आनन्द-मलहार, पृ० २०

२३१. अपने हाथ मूरत को सुबै या ठठेरा से गढ़ाया हो।
तोहि के आगे गिरयो धरनि में कर जोरि विनय सुनाया हो॥
पान पुष्प नैवेद्य आदि ले, मूरति आगे परसाया हो।
मूरत तो कछु खाया न बोलैं, आप उठाय गटकाया हो॥

—अलखानन्द : निर्पक्ष वेदान्तरागसागर, पृ० ३६

२३२. नहिं मोक्ष होइहैं तेरो माला का फिरायते॥
मोक्ष नहीं पावेगा तुम प्रतिमा पुजायते॥
क्षर अक्षर के पार, जलवे नहीं आयते॥
तबले अलखानंद स्वामी, अमर न गायते॥

—अलखानन्द : निर्पक्ष वेदान्तरागसागर, पृ० ७०

२३३. बड़े सरकार से लोग कहे कोई तीरथ में चलिए महराज।
मुसुकाइ कहे हरिनाम गहे हिय सत्य धरे घर तीरथराज॥
चहुँ लूट मही बिचरे न धरे हिय सत्य कहो तोहिका अग काज।
करतार कहे गुरुतत्त्व गहे मन शुद्ध भये तन तीरथराज॥८३॥

—कर्त्ताराम धवलराम-चरित्र, पृ० १७

२३४. कर्त्ताराम धवलराम-चरित्र, पृ० २२

२३५. द्वारिका केदार बद्रीनाथ गंगासागर सो जगन्नाथ सेतबंध आदि मही लूटई।
तीरथ अनेक येक-येक शतबार करै, पूजा को अचार भोग लागन अनूठई।
जोग जप तप व्रत दान मख, सेवा बहु, प्रेमभक्ति लीन येतौ सबै जानै झूठई।
रामकिना तत्त्वसार तंदुल बिहाय मूढ़ साधन अनेक गहि कहानु है सकुटई॥

—गीतावली, पृ० ८, पद २०

२३६. कोई ढूँढ़े नेम, व्रत, पूजा, पाठ, ग्रंथ ठहराई।
कोई आचार विचार से ढूँढ़े कोई गंगा नहाई॥१॥
कोई काशी अवध मथुरा में कोई द्वारिका धाई।
रामेश्वर, कोई जगन्नाथ में, बद्री केदार के जाई॥२॥
कोई मौनी, जल सैनी भयो हैं कोई ताप तपाई।
कोई मक्का महजीद, कोराना, ढूँढ़त पैंथ पंथाई॥३॥
योगेश्वर जाको सदगुरु मिला सब मिथ्या परिगाई।
दीनदयाल विश्वास जने का, सहजे दीन्ह लखाई॥४॥

—स्वरूप-प्रकाश, पृ० ६

२३७. बसत तीर्थ सब गुरु चरणन में। काशी, मथुरा, प्रयाग री।

—आनन्द-मलहार, पृ० ५

२३८. हरिद्वार कुरुक्षेत्र, भुवनेश्वर आदि तीर्थ तेरो पासी।
काहे के नर आगि सो दहते, काहे को भये बनबासी॥

—अलखानन्द : निर्पक्ष वेदान्तरागसागर, पृ० ६५

२३९. तेरे मोक्ष होइहैं आतमा के ज्ञान पायते॥
नहीं मोक्ष होइहैं तेरो काशी गया जायते॥
नहीं मोक्ष होइहैं तेरो गंगा का अन्हायते॥

नहीं मोक्ष होइहैं तेरे जटा का बढ़ायते ॥
नहीं मोक्ष होइहैं तेरो माथ का मुड़ायते ।

—मलखानन्द : निर्पक्ष वेदान्तरागसागर, पृ० ७०

२४०. भूलि के स्वरूपा ज्ञान पूजै देवी देवता । अंदर ना तो बाहर कैसे देवता को सेवता ।
जैसे सिंह छाया देखि कूप माँहि धावता । ऐसे ही स्वल्प बुद्धि प्रतिमा सेई मरता ॥

—मलखानन्द : निर्पक्ष वेदान्तरागसागर, पृ० ५३

२४१. न वेदो कुरआँ से हमको मतलब न शरा औ' शास्त्र से ताअल्लुक ।
है इल्मे सीना से दिल मुनौवर किताब हम लेके क्या करेंगे ।
न दोजखी होने का है खता, न जन्नती होने की तमन्ना ।
अजाब से जब रहा न मतलब, सवाब हम लेके क्या करेंगे ।

—'आनन्द' : तख्यलाते आनन्द, पृ० १८

२४२. कोई अवधूत बना फिरै, संन्यासी रूप कोई धरै ।
कोई छूत अछूत सदा बैर, कोई व्रत एकादशी का करै ।
वर कैसे रीझे साइयाँ, यह भेद इन्हें न लखाइयाँ ।
रीझै न बर्न भेष से, न तो सर मुँड़ाये न केस से ।
न फकीर और दर्वेस से, न तीरथ गए न बिदेस से ।

—'आनन्द' : आनन्द-भयकार, पृ० ४०

२४३. खाहि पेट भरि नर पशु जैसा । भूखा दुख नहि जानहि कैसा ।
यही हेतु उपवास कराई । व्रत कर बाह दया उपजाई ॥
पनरह तिथि दिन सात कहाये । एक एक व्रत सब वेद बतावे ।
सब व्रत करे तो तन छुटि जाई । कब न करों छोड़ों के हिमाई ॥

—कर्ताराम धवलराम-चरित्र, पृ० ६०

दूसरा अध्याय

साधना

१. योग
२. दिव्यलोक और दिव्यदृष्टि

१. योग

संतों के साधना-पक्ष में योग का बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान है। योग की क्रियाएँ प्रारंभ से भारतीय संस्कृति और उसके अध्यात्म का एक विशिष्ट अंग रही हैं। उपनिषदों के अध्ययन से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि उस काल में योग के द्वारा चित्तवृत्ति के निरोध का व्यापक रूप से अभ्यास किया जाता था और केवल हठ-योग से ध्यान-योग को उच्चतर तथा श्रेष्ठ माना जाता था। 'श्वेताश्वतरोपनिषद्' में लिखा है कि ऋषियों ने ध्यान-योग के द्वारा आत्मशक्ति को प्रत्यक्ष किया।[1] एक दूसरे मन्त्र में 'ध्याननिर्मथनाभ्यास' जैसे संश्लिष्ट पद का प्रयोग किया गया है, जिससे यह प्रतीत होता है कि ध्यान-योग की क्रियाओं का विधिपूर्वक अभ्यास किया जाता था। 'युक्त मन' अथवा 'मनोयोग' आदि पद पद-पद पर उपनिषदों में मिलेंगे। कठोपनिषद् में बहुत ही वैज्ञानिक ढङ्ग से और स्पष्ट शब्दों में 'योग' की परिभाषा दी गई है— जब पाँचों इन्द्रियाँ और तर्क-वितर्क, ज्ञान-विज्ञान, मन-बुद्धि सभी निश्चेष्ट हो जाते हैं, तब उसीको 'परमगति' कहते हैं, उसीको 'योग' भी कहते हैं।[2]

पतंजलि के 'योग-दर्शन' में वैदिक काल से आती हुई योग-साधना की परम्परा को एक स्वतन्त्र दर्शन का गौरवान्वित स्थान प्राप्त हुआ। पातंजल दर्शन चार पादों में विभक्त है। प्रथम पाद 'समाधि' पाद कहलाता है, इसमें योग के स्वरूप, उद्देश्य और लक्षण, चित्त-वृत्ति-निरोध के उपाय तथा भिन्न-भिन्न प्रकार के योगों की विवेचना की गई है। दूसरा पाद 'साधना' पाद कहलाता है, जिनमें क्रिया-योग, क्लेश, कर्मफल, दुःख आदि विषयों का वर्णन है। तीसरा 'विभूति' पाद है, जिसमें योग की अन्तरंग अवस्थाओं तथा योगाभ्यास-जन्य सिद्धियों का वर्णन है। चौथा 'कैवल्य' पाद है, जिसमें मुख्यतः कैवल्य या मुक्ति के स्वरूप की विवेचना की गई है। पतंजलि ने योग की सामान्य परिभाषा दी है 'चित्त-वृत्ति-निरोध'। यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि—ये योग के आठ अङ्ग हैं। यम पाँच हैं—अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह; नियम भी पाँच हैं—शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय तथा ईश्वर-प्रणिधान। योग की अंतिम परिणति समाधि भी दो प्रकार की कही गई है—संप्रज्ञात तथा असंप्रज्ञात। सारांश यह कि सिद्ध-पंथ तथा निर्गुण संतमत में जिस योग की प्रक्रियाओं का विस्तृत वर्णन है और जिसको सातिशय महत्त्व दिया गया है वह मुख्यांश में उपनिषदों तथा योग-दर्शन से निःसृत है।

सामान्यतः निर्गुण संतमत, और विशेषतः सरभंग-मत में प्रचलित योग की प्रक्रियाओं का विवरण प्रस्तुत करने के पहले हम यह स्पष्ट कर देना चाहेंगे कि आसन, प्राणायाम और मुद्रा की प्रधान भित्ति पर आधारित हठ-योग, जिसका अधिक सम्बन्ध शरीर से है और कम

सम्बन्ध मन तथा आत्मा से, उनकी दृष्टि में अधिक महत्त्व नहीं रखता। कबीर, दरिया आदि ने हठ-योग को कहीं-कहीं 'पिपीलक'-योग कहा है।[3] पिपीलक चींटी को कहते हैं; वह वृक्ष पर धीरे-धीरे चढ़ती है, चढ़कर मधुर फल खाती है, किन्तु कुछ देर बाद वह नीचे जमीन पर उतर जाती है और मधुर रस के आस्वादन का तन्तु विच्छिन्न हो जाता है। निरा हठयोगी भी क्षणिक एकाग्रता प्राप्त कर योग-विरहित पूर्वावस्था में बार-बार लौट आता है और निरन्तर परमानन्द के आस्वादन से वंचित रहता है। इसके विपरीत जो ध्यान-योग है, उसे सन्तों ने 'विहंगम-योग' कहा है। जिस प्रकार विहंगम अथवा पक्षी वृक्ष की डाल पर लगे हुए मीठे फलों का रसास्वादन बार-बार करता है, उड़ता भी है तो, इसके पहले कि रसानुभूति का तार टूटने पावे, पुनः डाल पर बैठकर उस रस का आस्वादन आरम्भ कर देता है; रसास्वादानुभूति की श्रृंखला पलमात्र के लिए भी छिन्न नहीं होती, उसी प्रकार ध्यानयोगी अपने आनन्द-लोक में निरन्तर विचरता रहता है। चींटी के समान उसे वृक्ष के नीचे अर्थात् दुःख-सुखमय मर्त्य-लोक में उतरना नहीं पड़ता है। 'वह शून्य गगन में विचरण करते हुए अमृत पान करता है और अमृत पान करते हुए शून्य गगन में विचरता रहता है';[4] उसे चित्त-वृत्ति-निरोध के लिए हठ-योग की अपेक्षा नहीं होती।

किनाराम ने ध्यान-योग को अध्यात्म-योग भी कहा है,[5] किन्हीं-किन्हीं पदों में इसे 'सहज योग' भी कहा है।[6] ध्यान का ही नाम 'सुरति' है, अतः इसे सुरति-योग या सुरति-शब्द-योग भी कहते हैं। सन्त मेंहींदास ने सुरति-योग या 'सुरत-शब्द-योग' को 'नादानुसंधान'-योग की संज्ञा दी है। गोपालचन्द्र आनन्द ने इसे 'आनन्द-योग' का भी नाम दिया है। चंपारण-परंपरा के कर्ताराम ने यह लिखा है कि योग दो प्रकार के होते हैं— 'हठ-योग' और 'राजयोग'। हठ-योग से राजयोग श्रेयस्कर है। हठ-योग के 'नेती', (नेति), 'धोती' (धौति), 'बस्ती' (बस्ति), 'त्राटक', 'नौली' और 'कपालभाँति' ये छह प्रकार हैं। इसके अतिरिक्त अनेक आसन, और पूरक, कुंभक तथा रेचक प्राणायाम आदि विहित हैं। किन्तु जबतक राजयोग द्वारा चित्तवृत्ति अन्तर्मुख नहीं होती और हृदय में अमर-ज्योति नहीं चमकती, तबतक मोक्ष नहीं होता।[7]

योग-विज्ञान के विशेषज्ञ पाश्चात्य विद्वान् पॉल ब्रन्टन (Paul Brunton) ने योग के तीन क्रमिक तथा उत्तरोत्तर स्तरों का निर्देश किया है। प्रथम स्तर वह है, जिसमें साधक एकमात्र शारीरिक साधना, अर्थात् आसन, मुद्रा, प्राणायाम आदि के द्वारा हठात् चित्त-वृत्ति का नियन्त्रण करता है। इससे उच्चतर वह द्वितीय स्तर है, जिसमें उसकी साधना शरीर की सतह से ऊपर उठकर भावनाओं के क्षेत्र में पहुँचती है और वह विना आसन, प्राणायाम आदि माध्यम के भी अपने अन्तर के आनन्द और मानसिक शांति की अनुभूति करता है। ब्रन्टन के विचार से इस अनुभूति-योग से भी ऊँचा जो तीसरा स्तर है, वह 'ज्ञान-योग' का है। इस स्तर पर आसीन होकर साधक, जो हठ-योग और ध्यान-योग अथवा अनुभूति-योग के सोपान से होकर उसे पार कर चुका है, अपनी विवेक-बुद्धि के साथ अनुभूति का समन्वय करता है और आत्मतत्त्व तथा बाह्य जगत् के रहस्य में बुद्धिपूर्वक अवगाहन करता है। यह 'ज्ञान-योग' 'कर्म-योग' का विरोधी नहीं होता,

क्योंकि ज्ञानयोगी विश्व की समस्या को अपनी समस्या समझने लगता है; उसके लिए 'वसुधैव कुटुम्बकम्' हो जाता है।[८] जहाँ तक किनाराम आदि सन्तों की योग-साधना का प्रश्न है, उसे हम मुख्यतः ध्यान-योग ही कहेंगे, यद्यपि अनेकानेक संतों में लोक-कल्याण की उग्र भावना की कमी नहीं थी। ऐसा कहने का यह तात्पर्य नहीं कि इन संतों का हठ-योग से कोई भी संबंध नहीं था। उन्होंने पद-पद पर 'इडा', 'पिंगला', 'सुषुम्णा', 'त्रिकुटि', 'षट्-चक्र', 'अष्ट-दल-कमल', 'बंकनाल', 'शून्य गगन', 'सुरति-निरति', 'पिंड-ब्रह्माण्ड', 'अनहद (अनाहत) नाद' आदि योग के पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग ही नहीं किया है, उनका विस्तृत विवरण भी दिया है। उन्होंने आसन, मुद्रा और प्राणायाम का भी वर्णन किया है, जिससे यह अनिवार्य रूप से अनुमित होता है कि संत साधकों के अनुभूति-योग अथवा ज्ञान-योग की पृष्ठभूमि हठ-योग के अभ्यासों से ही सजाई जाती है।

इसके पहले कि किनाराम, टेकमनराम, भिखमराम आदि संतों की 'बानियों' के आधार पर योग के विभिन्न अंगों और प्रक्रियाओं की संक्षिप्त चर्चा की जाय, संभवतः यह उचित होगा कि संक्षेप में हठ-योग की प्रक्रियाओं की एक सरल रूप-रेखा प्रस्तुत की जाय।[९] यह रूप-रेखा वस्तुतः तंत्र-ग्रंथों के आधार पर है और वहीं से संतों को विस्तृत प्रेरणाएँ भी मिली हैं। कुण्डलिनी एक शक्ति है। जीव-रूपी शिव कुण्डलिनी के प्रभाव से ही अपने को जगत् और[१०] ब्रह्म से भिन्न समझता है। कुण्डलिनी सबसे निचले चक्र मूलाधार में सर्पिणी-सी सोई रहती है। उसका इस प्रकार सोना बंधन और अज्ञान का द्योतक है; अतः उसे जागरित करना आवश्यक है। जब वह जग उठती है, तो अन्य चक्रों का भेदन करती हुई ब्रह्माण्ड-लोक में पहुँचती है और वहाँ शिव से मिलकर अभिन्न हो जाती है। कुण्डलिनी का शिव के साथ यह मिलन दृश्य जगत् के मायामय विकारों से ऊपर उठने और जीवात्म-तत्त्व के परमात्म-तत्त्व में लीन होने का प्रतीक है। मूलाधार चक्र में एक केन्द्र है, उससे ७२००० हजार नाड़ियाँ निकलती हैं,—शाखा-उपशाखाओं को मिलाकर ये ३५०००० हैं। इनमें से सर्वप्रथम तीन हैं—'इडा (इंगला)', 'पिंगला' और 'सुषुम्णा' (सुखमना)। ये तीनों मूलाधार से निकलती हैं, 'इडा' मेरुदण्ड के वाम भाग से, पिंगला उसके दक्षिण भाग से और सुषुम्णा उसके बीच होकर। मूलाधार चक्र से निकल कर स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्ध और आज्ञा—इन चक्रों का भेदन करती हुई ये ऊपर चढ़ती हैं और 'इडा' वामनासा-रन्ध्र में, पिंगला दक्षिणनासा-रन्ध्र में और सुषुम्णा नासिका के ऊपर ब्रह्म-रन्ध्र में पहुँचती है। ब्रह्म-रन्ध्र में इडा, पिंगला और सुषुम्णा—जिन्हें दूसरे शब्दों में गंगा, यमुना और सरस्वती भी कहते हैं—का संगम होता है, इसीलिए उस संगम-बिन्दु को 'त्रिवेणी' या 'त्रिकुटि' (त्रिकुटी) कहा जाता है। ब्रह्म-रन्ध्र में ही 'शून्य गगन' है जहाँ सहस्रदलोंवाला कमल विकसित है। हठ-योग का प्रधान लक्ष्य है कुण्डलिनी शक्ति को मूलाधार से जागरित करके शून्य गगन-स्थित सहस्रदल कमल में मिला देना। कुण्डलिनी प्रकृति का प्रतीक है और सहस्र-पद्म सत्पुरुष अथवा ब्रह्म का; और इस प्रकार कुण्डलिनी के क्रमशः सहस्रकमल में विलीन हो जाने का अर्थ यह है कि आत्मा,

जो प्रकृति अथवा माया के कारण द्वैत और बंधन में आ गया है, अपनी मूलभूत दिव्य पवित्रता तथा ब्रह्माद्वैत को प्राप्त हो। प्रस्तुत अनुशीलन के पात्रीभूत संतों ने उपरिनिर्दिष्ट हठ-योगभूमिक ध्यान-योग को जिस ढंग से अपने शब्दों में व्यक्त किया है, उसका सारांश यहाँ दिया जाता है।

यद्यपि आसन, मुद्रा और प्राणायाम का अधिक महत्त्व नहीं है, फिर भी इनका सामान्य अभ्यास साधना के लिए आवश्यक हो जाता है। आसनों में सिद्धासन अपेक्षाकृत अधिक प्रचलित है। टेकमनराम कहते हैं कि सिद्धासन लगाकर मन को स्थिर करो, तब जाकर अमरपुरी के द्वार में हीरा झलकेगा।[11] सिद्धासन में दोनों एँड़ियों को अंडकोष और गुदामार्ग के बीच के स्थान में इस प्रकार रखा जाता है कि बाईं एँड़ी दाहिनी ओर और दाईं एँड़ी बाईं ओर पड़े। हाथों को घुटनों पर रखकर अँगुलियों को फैला दिया जाता है और मेरुदंड को सीधा तानकर चित्त स्थिर करके बैठा जाता है। सिद्धासन के अतिरिक्त स्वस्तिकासन, सिंहासन, शवासन, पद्मासन, मुक्तासन[12], उग्रासन भी संतमतों में अपेक्षाकृत अधिक प्रचलित हैं।[13] आसन और प्राणायाम की मिली-जुली यौगिक क्रिया को मुद्रा कहते हैं। निम्नलिखित सात मुद्राएँ अपेक्षाकृत अधिक प्रचलित हैं—मूलबन्ध, जलन्धर-बन्ध, उड्डियान-बन्ध, शांभवी-मुद्रा, खेचरी मुद्रा, अश्विनी-मुद्रा और योनि-मुद्रा। दरिया आदि संतों के पदों में प्रायः पाँच मुद्राओं का ही निर्देश मिलता है—'खेचरी', 'भोचरी', 'अगोचरी', 'चंचरी' और उन्मुनी (महामुद्रा)। संभवतः प्रथम चार घेरण्ड-संहिता-वर्णित आकाशी, पार्थिवी, आग्नेयी और आंभसी के ही विकृत रूप हैं। 'उन्मुनी' मुद्रा का सम्बन्ध आँखों की दृष्टि को स्थिर करने और उसे अन्तर्मुख करने से है। अलखानन्द ने एक पद में आसन और खेचरी-मुद्रा की चर्चा की है।[14] यह मुद्रा एक कठिन मुद्रा है और बिना गुरु के निर्देश के इसका अभ्यास करना विपज्जनक है। इस क्रिया के आरम्भ में जिह्वा को सतत अभ्यास द्वारा खींचकर इतना बड़ा बनाना पड़ता है कि वह भ्रू-मध्य तक पहुँच जाय। प्रत्येक सप्ताह थोड़ा-थोड़ा करके गुरु जीभ की बिचली स्नायु को साफ छुरी से काटते हैं और उस पर थोड़ी हल्दी की बुकनी और नमक छींट देते हैं जिससे कटी हुई स्नायु जुट न जाय—अभ्यासी जीभ में ताजा मासन रगड़कर उसे बाहर तानता है और उसी प्रकार दुहता है, जिस प्रकार ग्वाला गाय के स्तन को। जीभ के नीचे की स्नायु काटने की क्रिया प्रत्येक सप्ताह छह मास तक करनी पड़ती है। जब जीभ यथेष्ट लम्बी हो जाती है, तब उसको मुँह के भीतर ही उलटा करके तालु में सटाते हुए ले जाकर नासा-छिद्रों को जिह्वाग्र से बन्द कर दिया जाता है। स्पष्ट है कि यह मुद्रा कष्टसाध्य है और इसकी साधना सभी संतों के लिए संभव नहीं है। 'आनन्द' ने भी इस क्रिया की चर्चा की है, यद्यपि मुद्राविशेष का नाम नहीं लिया है।[15] नारायणदास कहते हैं कि जब साधक बारह बरस तक अभ्यास करता है, तब योगी कहलाने का अधिकारी होता है।[16] वे यह भी कहते हैं कि योगी तो तब कहायगा कि जब उसमें उड़ जाने की और विराट् रूप धारण करने की आश्चर्यजनक शक्ति आ जायगी।[17] सरभंग-मत के संतों के ग्रन्थों में आसनों, मुद्राओं का विशेष वर्णन नहीं है और न प्राणायाम का ही; किन्तु यह स्पष्ट है कि

कम-से-कम आसन और प्राणायाम का अभ्यास प्रारंभ में प्रत्येक साधक को करना पड़ता है। प्राणायाम के मुख्य तीन प्रकार हैं—पूरक, अर्थात् साँस अन्दर लेना; कुम्भक, अर्थात् साँस को अन्दर रोककर रखना; रेचक, अर्थात् साँस को बाहर फेंकना। प्राणायाम से योग अर्थात् चित्त-वृत्ति-निरोध में सहायता मिलती है।

जिस ध्यान-योग, अथवा किन्हीं-किन्हीं संतों के मत में विहंगम-योग, का वर्णन निर्गुण सन्त-साहित्य में सामान्यतः पाया जाता है, उसका मुख्य संबंध कंठ के ऊपर के हिस्से से है। योग की इस क्रिया में साधक की 'सुरति' या ध्यान-दृष्टि नेत्र के 'अष्ट-दल-कमल' में अवस्थित 'सूची-द्वार' होकर 'ब्रह्माण्ड' में प्रवेश करती है और इडा, पिंगला तथा सुषुम्णा की 'त्रिवेणी' में मज्जन करती हुई 'सहस्रदल' में विचरण करती है; फिर 'बंकनाल' होकर ऊपर चढ़ती है और 'भँवर गुफा' में प्रवेश करती है। इस गुफा में प्रवेश करते ही आत्मा ऐसी दिव्यदृष्टि प्राप्त करता है कि एक-से-एक अनोखी सुगन्धि और अद्भुत छवि का अनुभव तथा साक्षात्कार करता है। यहाँ अनाहत नाद गुंजायमान रहता है, जो 'शब्द-ब्रह्म' है; यहीं वह 'अमरपुरी' अथवा 'अकह लोक' है, जहाँ आत्मा परमात्मा में मिलकर अद्वैत हो जाता है, आत्मा का यही मोक्ष है।

किनाराम कहते हैं कि इडा, पिंगला और सुषुम्णा की शुद्धि करनी चाहिए तथा उन्मुनी मुद्रा का अभ्यास करना चाहिए। 'सुरति' और 'निरति' में मग्न होकर जीव परमानन्द को प्राप्त होता है।[१८] योगेश्वराचार्य कहते हैं कि इडा और पिंगला का शोधन करके सुषुम्णा की 'डगर' पकड़नी चाहिए तथा 'पाँच' को मारकर, 'पच्चीस' को वश कर, 'नौ' की नगरी को जीत लेना चाहिए। भिनकराम कहते हैं कि इडा, पिंगला नाम की दो नदियाँ बहती हैं[१९], जिनमें सुन्दर जल की धारा प्रवाहित है।[२०] टेकमनराम भी 'इंगला' और 'पिंगला' के शोधन तथा 'त्रिवेणी-संगम' के स्नान का निर्देश देते हैं।[२१] रामस्वरूप दास भी इन तीनों नाड़ियों की चर्चा करते हैं और कहते हैं कि इनके अभ्यास से मन के 'बैठने' में देरी नहीं लगती।[२२] इडादि तीनों नाड़ियों के संगम-स्थल को 'त्रिकुटी' या त्रिवेणी कहते हैं जिसकी चर्चा संतों ने बार-बार की है। दरसन राम कहते हैं कि बंकनाल की उल्टी धार बहती है, रसना 'अजपा' की माला जपती है, त्रिकुटी महल में सुग्गा बोलता है, और साधक का मन हर्षित होता है।[२३] रामटहल राम उपदेश देते हैं कि 'ऐसा ध्यान लगाना साधो, ऐसा ध्यान लगाना' कि मूल द्वार को साफ करके गगन महल में जा 'धमको' और 'त्रिकुटी-महल' में बैठकर 'अपार ज्योति' देखो।[२४]

अघोरमत के मुख्य प्रवर्त्तक किनाराम लिखते हैं कि इडा, चन्द्रमा में और पिंगला, सूर्य के ग्रह में निवास करते हैं और सुषुम्णा दोनों के मध्य में। जब चन्द्र और सूर्य का सहज और समान रूप से उदय हो जाता है तो शून्य में शब्द का प्रकाश होता है, मन में 'भजर' भरने लगता है और सुख-रूपी अमृत का आस्वादन होता है।[२५]

यहाँ एक तालिका दी जाती है जो संतों द्वारा रचित 'स्वरोदय' के आधार पर है—

१	२	३	४	५	६	७	८	९
स्वर	उपनाम	स्वरों से संबद्ध नाड़ियाँ (स्वरों के तृतीय नाम)	नासिका	अन्तदवत	संबद्ध नक्षत्र-पुञ्ज	संबद्ध पक्ष	संबद्ध दिवस	स्वरों की अनुगामिनी क्रियाओं की विशेषता
चन्द्र	गंगा	इंगला (इडा)	वाम	चंद्रमा	वृश्चिक, सिंह, वृष, कुम्भ	शुक्ल	सोम, बुध, गुरु, शुक्र,	स्थिर
भानु	यमुना	पिंगला	दक्षिण	सूर्य	कर्क, मेष, मकर, तुला	कृष्ण	रवि, मंगल, शनि	चंचल
सुषुम्णा	सरस्वती	सुखमना (सुषुम्णा)	दोनों साथ-साथ	उभय	कन्या, मीन, मिथुन, धन	—	—	—

ध्यान-योग के क्षेत्र में 'सुरति' और 'निरति' ये दो महत्त्वपूर्ण शब्द हैं। सुरति योगी की उस असाधारण दृष्टि-क्षमता को कहते हैं, जिसके द्वारा वह अन्तर्मुख होकर अपार्थिव जगत् के आश्चर्यमय दृश्यों और शब्दों की साक्षात् अनुभूति प्राप्त करता है, और निरति उस निर्विकल्प ध्यान की अवस्था है, जिसमें दृश्यावली प्रकट नहीं होती। दोनों ही ध्यान की स्थिरता की सूचक हैं। सुरति के द्वारा ही अनाहत नाद का श्रवण संभव है।[२६] 'आनन्द' ने लिखा है कि जब सुरति ठीक से स्थिर हो जाती है तब अमृत चूने लगता है और जीवात्मा उसको पीकर परितृप्त हो जाता है; गगन में बिजली चमकने लगती है और उजियाला हो जाता है; यह उजियाला त्यों-त्यों बढ़ता जाता है ज्यों-ज्यों सुरति सत्-पुरुष के द्वार की ओर बढ़ती जाती है; वहाँ अनाहत ध्वनि भी सुनाई पड़ती है।[२७] 'पिंड खण्ड' में मूलाधार आदि चक्र हैं, किन्तु 'ब्रह्माण्ड खण्ड' में आँख ही अष्टदल-कमल है और जब सुरति आँख की पुतली—जिसे पारिभाषिक शब्दों में 'अग्रनख', 'तिल', 'खिड़की' आदि कहते हैं—से होकर भीतर जाती है, तब तेज और ज्योति का संसार दीख पड़ता है। जिस प्रकार मंदिर की किवाड़ की देहली से लटका हुआ दीप मंदिर के अन्दर उजाला करता है, उसी प्रकार सुरति के द्वारा भी अन्तरंग उद्भासित होता है।[२८] ध्यान रहे कि योग की सभी प्रक्रियाओं में अनुभवी निर्देशक अथवा सद्गुरु की आवश्यकता होती है।

भिनक राम कहते हैं कि मुझे त्रिकुटी घाट का बाट नहीं सूझता है और वहाँ पहुँचना मेरे बूते की बात नहीं है जबतक कि सद्गुरु की दया न हो।[२९] वे 'सुन्दरी सोहागिन' को आमंत्रित करके उसे उस त्रिकुटी के घाट पर जाने को कहते हैं, जहाँ संत सौदागर बहुमूल्य सौदा लेकर उतरा है, जहाँ 'हंसों की कचहरी' लगी है, जहाँ सोहावन पोखरी है, जिसमें से वह अमृतरस की 'गगरी' भर सकती है; वहाँ अमरपुरी है, जहाँ वह ब्रह्म को नयन भर देख सकती है।[३०] वे एक पद में रूपक बाँधते हुए कहते हैं कि तुम पवन की उल्टी गति करके भवन में घुस जाओ, वहाँ एक ऐसा तराजू बनाओ, जिसमें प्रेम के 'पलरे' हों, 'धीरज' की डंडी हो और सुरति की 'नाथ' पहनाई हुई हो। ऐसे तराजू से दिन-रात 'सुन्न सहर' में निर्गुण नाम का सौदा तौलो। इससे अमरपद की प्राप्ति होगी।[३१] सुरति और पवन की स्वाभाविक गति बहिर्मुखी है, किन्तु योग में उनको उलटकर अन्तर्मुख किया जाता है, इसलिए कई स्थानों पर इस उलटी गति का वर्णन है। आनन्द ने लिखा है—

आँख मूँदि के उल्टा ताके,
ताड़ी रहै जमाया रे।
शून्य देश में जहाँ कोय नहीं,
पक्षी तहाँ लुकाया रे।[३२]

गोविन्दराम ने कहा है कि साधक मूल द्वार से पवन को खींचकर 'उल्टा पंथ' चलाता है और मेरुदंड की सीढ़ी से चढ़कर शून्य शिखर पर चढ़ जाता है।[३३] भिनकराम कहते हैं—मूलचक्र की शुद्धि करो, त्रिकुटी में श्वास नियंत्रित करो और द्वादश 'गुड्डियाँ' उड़ाओ।[३४] सुहागिन वही है, जिसके लिए गगन की किवाड़ उलटी खुल जाय, जिसमें कि इडा, पिंगला के संतुलन द्वारा वह 'सुरधाम' चढ़ सके, जहाँ पर उसके सद्गुरु हैं और जहाँ त्रिकुटी-मंदिर के भीतर अखंड ज्योति प्रज्वलित है।[३५]

अनेक संतों के पदों में षट्चक्र, अष्ट-दल-कमल, द्वादश दल-कमल, षोडश दल-कमल, सहस्र दल-कमल आदि के उल्लेख मिलेंगे। इन पदों में षट्चक्र-शोधन का तात्पर्य पिंडगत मूलाधार आदि चक्रों का भेदन कर सुप्त कुण्डलिनी के जगाने से है, और कमल-दल-प्रवेश से तात्पर्य सुरति का आँखों से होकर ब्रह्माण्डगत अन्तर्लोक में पहुँचकर दिव्यदृष्टि की प्राप्ति से है। कहीं-कहीं सभी चक्रों के, आँखों में ही निवास की कल्पना की गई है। रामस्वरूप राम लिखते हैं कि जीवात्मा का निवास मूलचक्र पर है, जहाँ चार दलोंवाला कमल प्रकाशित हो रहा है। जहाँ षड्दल-कमल है, वहाँ ब्रह्मा का; जहाँ अष्टदल-कमल है वहाँ शिव-शक्ति का निवास है।[३६] गोविन्दराम बताते हैं कि साधक स्नान करके पद्मासन मारे और उन्मुनी मुद्रा में ध्यान करे, गढ़ के भीतर प्रवेश कर छह चक्रों को पार करे और षोडश रस का आस्वादन करे। गढ़ में दस दरवाजे हैं और हरएक पर एक-एक थानेदार है। उन्मुनी मुद्रा के बल से इन दसों द्वार की किवाड़ियाँ खुल जायँगी और एक विमल अग्निचक्र दीख पड़ेगा।[३७] योगेश्वरदास बाह्य संसार को 'नैहर' और आभ्यंतर जगत् को ससुराल कल्पित करते हुए सुहागिन से कहते हैं कि त्रिकुटी-मध्य में दोनों नयन लगाकर पवन को उल्टी गति

चलाकर मकड़ी के तार के समान अविच्छिन्न सुरति की डोर के सहारे चढ़कर वहाँ चलो जहाँ पिया मिलेंगे।[३८] एक अन्य संत कहते हैं कि अष्टदल-कमल अधोमुख रहता है। सुरति जब-जब जिस-जिस दल पर जाती है, तब-तब उस पर एक विशेष प्रभाव पड़ता है। जब पूर्व दल पर जाती है तब जीवदया, जब अग्निकोण के दल पर जाती है तब निद्रा और आलस्य, जब दक्षिण दल पर जाती है तब मात्सर्य और क्रोध, जब नैऋ्ृत दल पर जाती है तब मोह, जब पश्चिम दल पर जाती है तब जड़ता, जब वायव्य कोण के दल पर जाती है तब त्रिदोष, जब उत्तर दल पर जाती है तब भोग और जब ईशान कोणवाले दल पर जाती है तो अभिमान की वृद्धि होती है। साधना से इन दोषों पर विजय पाई जा सकती है।[३९]

योग की प्रक्रिया की अवस्था में 'सोहं' का जप आवश्यक होता है। वस्तुतः सोहं की अन्तर्ध्वनि का एक निरन्तर तार बँध जाता है।[४०] अलखानन्द कहते हैं कि इस प्रकार की सोहं ध्वनि जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति अवस्था में नहीं, किन्तु उससे भी परे तुरीयावस्था में ही सुन पड़ती है। जबतक सोहं जप का अभ्यास न होगा, तबतक दैहिक, दैविक और भौतिक ताप नहीं मिटेंगे; सागर के तीर पर रहते हुए भी साधक को नीर नहीं मिलेगा, कल्पतरु के तले निवास करते हुए भी दारिद्र्य नहीं नष्ट होगा।[४१] ध्वनि अथवा शब्द कालान्तर में स्वतः और सहज हो जाता है, साधक स्वयं शब्दमय हो जाता है, और शब्द ही ब्रह्म है, अतः वह ब्रह्ममय हो जाता है। इसलिए शब्द का संतमत में बहुत बड़ा स्थान है।[४२] इसी शब्द अथवा अनाहत नाद की प्रधानता को ध्यान में रखते हुए योग की क्रिया को 'अनाहत योग' (अनहद योग) भी कहा गया है।[४३] ब्रह्माण्ड के जिस अनुभूति-लोक में योगी अपनी दिव्यदृष्टि द्वारा चित्त-वृत्ति की स्थिरता प्राप्त करता है और आनन्द का रसास्वादन करता है, उसे अनेक संज्ञाएँ दी गई हैं—'सुन्न महल', 'सुन्न सहर', 'गगनगुफा', 'गगन मंडल', 'गगन अटारी', 'सुन्न सिखर', 'अमरपुरी', 'गगन महल', 'ध्रुव-मंदिर' आदि। टेकमनराम की निम्नलिखित पंक्तियाँ देखिए—

सुन्ने आया सुन्ने जायगा, सुन्ने का विस्तार।
सुन्ने सुन्न सहज धुन उपजे, कर बन्दे निरवार॥[४४]

समाधि का यह शून्यलोक घट में ही है। भक्तिन भौजाई माई कहती हैं कि—'ऐ ननदी! मैंने घर में ही अपने 'पिया' को पा लिया है। मैंने बहुत तीर्थ और व्रत किया, जोगिन बनकर वन-वन ढूँढा, लेकिन मेरा समय व्यर्थ गया[४५]। स्पष्ट है कि यहाँ घर से तात्पर्य ब्रह्माण्डगत शून्यलोक से है। रामटहल राम कहते हैं कि—

सुन्न सिखर से अम्रित टभके
हंसा पिये अघाय।[४६]

किनाराम ने शून्यलोक की समाधि की अद्वैतता तथा स्थिरता का विश्लेषण करते हुए कहा है कि जिस तरह घट के भीतर का सीमित आकाश उसके फूटने से असीम आकाश में मिल जाता है, उसी प्रकार समाधि की अवस्था में श्वास प्राण में, शब्द शब्द में,

प्राण प्राण में, ब्रह्म ब्रह्म में, हंस हंस में, अविनाशी अविनाशी में, काल शून्य में, पवन पवन में, जीव शिव में, शिव निरंजन में, निरंजन निराकार में, निराकार अविगति में, अनहद अविनाशी में, और अविनाशी अपने आप में विलीन हो जाता है।[४७]

शून्य गगन में जिस दृश्यावली का अनुभव और जिस आनन्द का आस्वादन होता है, उसका संतों की 'बानियों' के आधार पर एक संक्षिप्त विवरण आगे प्रस्तुत किया जायगा। यहाँ इस योग-संबंधी चर्चा को समाप्त करने के पहले उस 'सुरत शब्द-योग' का विवरण दिया जाता है, जिसे गोपालचन्द्र 'आनन्द' ने अपने 'आनन्द-योग' में भक्तों के कल्याण और सुगमता के लिए सरल शब्दों में लिखा है। यहाँ उनके विवरण में से कुछ चुने हुए अंश उन्हीं के शब्दों में उद्धृत किये जा रहे हैं :—

"लीजिये बात ही बात में युक्ति भी बता दी गई, अर्थात् मन को वश में करने के लिये केवल सुरत-शब्द-योग का अभ्यास कीजिये।

"आँख, कान, जुबान को बाहर की ओर से बन्द करके उन्हें अन्दर की ओर खोलिये। यहाँ आन्तरिक जगत् में अपूर्व सुख और आनन्द मिलेगा। इसी प्रकार आँख अन्तर में प्रकाश देखती है। जिह्वा अन्तर का नाम जपती है। तीनों इन्द्रियों के लिये तीन काम मिल गये। अब तो मानेगा कि अब भी नहीं। इधर से हटे उधर को लगे। आन्तरिक जगत् के सुहावने दृश्य को देखकर, मनोरंजन बाजे को सुनकर अजपा जाप की मधुर वाणी में लीन होकर हृदय प्रफुल्लित हो जाता है। वहाँ के मधुर गान, मनोहर दृश्य तथा अजपा जप 'सोऽहं' 'सोऽहं' शब्द श्रवण करते ही सुरत सनसनाती हुई ऊपर की ओर उठी और आकाश में लीन हो गयी। वहाँ का अनुपम दृश्य अकथनीय है, केवल अभ्यासी लोग ही उस सत्+चित्+आनन्द का दर्शन प्राप्त कर सकते हैं।

सहजे ही धुन होत है, हरदम घट के माँह।
सुरत शब्द मेला भया, मुख की हाजित नाँह ॥

जाग्रत में स्वप्न का और स्वप्न में जाग्रत का दृश्य देखकर इस श्रेष्ठ मार्ग में जो आया वह फिर वापस नहीं जाता, और न तो उसे जन्म-मरण का खटका रहता है। अब प्रश्न केवल यह है कि जब अन्तर में तीन इन्द्रियाँ काम करने लग गयीं तो फिर उन पर बन्द कहाँ लगा? हालत तो पहले जैसी थी वैसे ही अब भी रही, केवल स्थान बदल गया। संसार में तीन प्रकार के ज्ञान अर्थात् प्रमाण, अनुमान और शब्द होते हैं। प्रमाण तो इन्द्रियों का ज्ञान है। (देखना, सुनना, चखना यह प्रमाण ज्ञान है)। अन्दाजा लगाना, नतीजे को देखकर कारण सोचना या विचारना अनुमान कहलाता है। इसका संबंध दिल से है। शब्द गुरु का वचन और आप्त पुरुष का कथन है, बाहिरी जगत् में ज्ञान इसी तरह प्राप्त होता है। आन्तरिक जगत् में इनके संस्कार दिल में रहते हुए अपना काम करते हैं परन्तु भेद केवल इतना ही है कि कान जहाँ बाहिरी जगत् के शब्दों को सुनता था अब आन्तरिक जगत् में प्रवेश कर अनहद-शब्द को सुनता है, आँख जहाँ और दृश्यों को देखती थी अब आन्तरिक जगत् में उस प्रकाशमय ज्योति को देखती है।

जुबान केवल अजपा जाप के सिवा किसी से संबंध नहीं रखती है। ये तीनों इन्द्रियाँ धीरे-धीरे इधर से चुप हो जाती हैं, वहाँ पहुँचने पर आँखों को दूर से चिराग की रोशनी दिखाई देती है। कानों में घण्टे की आवाज दूर से सुनाई देती है और जुबान तो दिल के साथ मिली हुई मन में लय हो जाती है। आपने देखा होगा संध्या समय जब मंदिरों में आरती होती है तो मंदिर में चिराग ही दिखाई देता है और घण्टे का शब्द सुनाई देता है। वह हजारों रोशनी की धारों का केन्द्र (मरकज) है क्योंकि हर स्थान पर धारों ही की रचना है। जिस प्रकार किसी कालेज में प्रवेश पाने के लिये इन्ट्रेन्स पास करना जरूरी है इसी प्रकार यहाँ भी है। इन्ट्रेन्स का अर्थ ही प्रवेश होने का फाटक है। अब आन्तरिक मंदिर में प्रवेश करें। मंदिर क्या है? यह आपका सर ही तो मंदिर है। क्या आप नहीं देखते कि शिवजी के मंदिर में अथवा मसजिद में गुम्बद है (ऊपरी गोल हिस्सा) यह बाहिरी मंदिर असली मंदिर की नकल है। सच्चा और असली मंदिर तो तुम्हारा सर है। हर मंदिर के बीच में आप एक त्रिलोनी (त्रिशूल) वस्तु देखते हैं, इसे संत मत में 'त्रिकुटी' कहते हैं। आन्तरिक जगत् में प्रवेश कर गुरु की प्रकाशमय लाल रंग की प्रतिमा का दर्शन कर जहाँ दूर से घंटे और शंख की आवाज सुन रहे थे, अब मृदंग या पखावज तथा मेघनाद के शब्द को दिल दो। यह अन्तरी शब्द है। कोई इसको 'ऊँ, ऊँ' कहते हैं, कोई-कोई 'बम', 'बम' बोलते हैं। मुसलमान फकीर इसे 'हूँ', 'हूँ' कहते हैं। गुरु नानक साहब के भक्त लोग 'वाह गुरु' कहते हैं। यह गुरु ही का स्थान है। यही ब्रह्म है, यही अनलहक है जो यहाँ आया वही सच्चा गुरुमुख या पीरमुर्शिद हुआ, और जो बाहरी जगत् के आडम्बरों में फँसा रहा वह मनमुखी होता है। इस आन्तरिक जगत् में प्रवेश करने पर ध्यान एवं ज्ञान की समाधि की अवस्था प्राप्त होती है, इस समाधि में अत्यन्त अँधेरा है। इस अवस्था का नाम 'सुन्न' और 'महासुन्न' है, यह परब्रह्म पद है। इस आन्तरिक जगत् में प्रवेश करने पर रंग-रूप का भेद दूर होकर आत्मा (रूह) और परमात्मा (खुदा) में लीन होकर 'ऊँ' या 'हू', 'हू' की आवाज को सुनकर त्रिकुटी, भँवर गुफा, आनन्द लोक तथा ब्रह्मलोक की सैर करता हुआ सत्+चित्+आनन्द हो जाता है।

जो इतने पद ऊँचे चढ़े ॥
रंग, रूप, रेखा से टरै ॥
ऊँ शान्ति! शान्ति!! शान्ति!!!"[४८]

२. दिव्यलोक और दिव्यदृष्टि

पूर्व प्रसंग के अन्त में जो पंक्तियाँ उद्धृत की गई हैं, उनमें अनाहत शब्द तथा उस सुहावने दृश्य की संक्षेप में चर्चा की गई है जिनका अनुभव तथा साक्षात्कार साधक संत को होता है। शब्द और दृश्य के इस अद्भुत लोक को अनेक नामों से सूचित किया

गया है—'सत-लोक', 'अमरपुर', 'गैब नगर', 'सुन सहर', 'आनन्द नगरी', 'नूर महल' आदि। यह लोक सबसे परे, 'निरंकार' से भी परे है।[४९] यहाँ 'अलख' 'अलेख' का दर्शन मिलता है। आत्मा का असल घर अमरपुर ही है, वह सिर्फ सौदा करने के[५०] लिए सौदागर बनकर इस माया के बाजार में आया हुआ है और सराय में डेरा डाले हुए है। उस दिव्यलोक को 'नूर महल' या 'गैब नगर' इसलिए कहा गया है कि वहाँ अद्भुत ध्वनि सुन पड़ती है और आश्चर्यजनक दृश्य दीख पड़ते हैं। 'सुन सहर', 'गगन गुफा' आदि नाम इस कारण हैं कि यह ध्वनि और ये समस्त दृश्य अपने ही 'कायागढ़' या 'कायानगर' के अन्दर विद्यमान हैं। इस दृष्टि से स्वर्ग और नरक सभी इस पिंड में ही हैं; क्योंकि पिंड में ही ब्रह्माण्ड है।

हम कह चुके हैं कि संत-साहित्य में 'शब्द' एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। एक तो वह ब्रह्म का प्रतीक है; क्योंकि राम अथवा सोहं ध्वनि सत् साधना तथा अभ्यास के अनन्तर स्वयं ब्रह्म का रूप ग्रहण कर लेती है और समाधि की अवस्था में साधक यह भूल जाता है कि उसकी सत्ता सोहं के अतिरिक्त है, अर्थात् आत्मा शब्द-ब्रह्म में मिलकर अभिन्न हो जाता है; दूसरे, शब्द सद्गुरु के मंत्र का भी प्रतीक है। सद्गुरु के महत्त्व की चर्चा हम अन्यत्र करेंगे, किन्तु यहाँ इतना कह देना पर्याप्त होगा कि संत और सद्गुरु में अन्योन्याश्रय है। ऐसा संभव नहीं कि विना सद्गुरु के कोई संत हो जाय। जब साधक सद्गुरु की सेवा और सान्निध्य से अपने को पात्र साबित कर देता है, तब सद्गुरु उसे अपनी शरण में ले लेते हैं, उसे विधिवत् दीक्षित करते हैं और एक गुप्त-मन्त्र भी देते हैं, जिसे गुरु-मन्त्र कहा जाता है। शब्द का तात्पर्य इस गुरु-मन्त्र से भी है। संतों की वाणियाँ भी 'शब्द' कही जाती हैं। हमने कबीर के शब्द, रैदास के शब्द, दरिया साहब के शब्द नामक पदों के संग्रह देखे हैं। कबीर के शब्द-संग्रह को 'बीजक' भी कहते हैं। यहाँ 'शब्द' संतों की वाणी अथवा पद के ही अर्थ में है। बीजक का प्रयोग भी साभिप्राय है। वाणिज्य-क्षेत्र में बीजक (Invoice) उस पुर्जी या सूची को कहते हैं, जिसमें क्रय-विक्रय के पदार्थों का असली मूल्य अंकित है और जिसके साथ गोपनीयता का वातावरण रहता है। संत-साहित्य के जिज्ञासुओं को यह पता होगा कि अभी तक शत-सहस्र संतों की वाणियाँ ऐसी हैं जो मुद्रित नहीं हैं। वे या तो हस्तलिखित हैं या संतों के कंठ में हैं। सामान्य धारणा यह है कि ये वाणियाँ बाजार में खुलेआम बिकनेवाले सौदे के समान नहीं हैं। उनको साधारणतः गुप्त तथा सँजोकर रखना चाहिए, और उन्हें तभी प्रदान करना चाहिए जब योग्य शिष्य अथवा पात्र मिल जाय। इस तरह हम देखते हैं कि शब्द के सभी अर्थों में रहस्यमयता की अन्तर्धारा प्रवाहित हो रही है।

प्रस्तुत प्रसंग में सरभंग-संतों द्वारा किये हुए शब्द के कुछ ऐसे विवरण दिये जाते हैं जिनका संबंध शब्द-ब्रह्मवाले पहले अर्थ से है। किनाराम कहते हैं कि शब्द में और सत्पुरुष में कोई भेद नहीं है; वह अज, अमर, अद्वितीय, व्यापक तथा पुरुष से अभिन्न है; सद्गुरु ही उसके रहस्य को बता सकता है।[५१]

एक दूसरे पद में वे कहते हैं—

शब्द में शब्द है शब्द में आपु है,
आपु में शब्द है समुझ ज्ञानी।[५२]

शब्द अखंड ज्योति है, जो शून्यलोक में प्रकाशित है और जिसके अवबोध से कठिन-से-कठिन भव-बंधन मिट जाते हैं तथा इस प्रकार की शांति मिलती है, जिसमें केवल भाव ही भाव हैं, अभाव का नाम नहीं।[५३] यह शब्द सामान्य अर्थ में प्रयुक्त शब्द से न्यारा है। यह उस विराट् शब्द का अंग है, जो समग्र ब्रह्माण्ड में व्याप्त है। इसका ज्ञान 'अनुभव' से ही संभव है, किन्तु यदि ज्ञान हो गया तो उसके सहारे हम भवसागर पार सकते हैं।[५४] इस शब्द को 'सहज' अथवा 'अनाहत' कहा गया है। सामान्य जगत् में प्रत्येक ध्वनि के लिए संघर्ष तथा आघात की आवश्यकता होती है, किन्तु समाधि की अवस्था में जो शब्द गूँजता है, वह सहज अथवा स्वतः उत्पन्न होता है और अनाहत अर्थात् विना किसी आघात अथवा संघर्ष के पैदा होता है।[५५] शब्द-विज्ञान अत्यन्त रहस्यमय है। वस्तुतः यह तर्क और बुद्धि के क्षेत्र की वस्तु नहीं है, अनुभूति की वस्तु है—

शब्द मों शब्द है शब्द सो भिन्न है, शब्द बोलै कौन शब्द जानै।
शब्द के ही हेतु उठै, शब्द के ही मो बसै शब्द की चाल गहि शब्द मानै॥
शब्द को उलटि कै शब्द पहिचानले, शब्द का रूप गहि क्यों बखानै।
किनाराम कहै शब्द की समुझि बिनु, शब्द कहै कौन शब्द टानै॥[५६]

यहाँ 'शब्द का रूप गहि क्यों बखानै' इस अंश द्वारा शब्द की अनिर्वचनीयता का द्योतन है। टेकमनराम कहते हैं कि आत्मा में गुंजित 'अनहद शब्द' की उपमा एक ऐसे सुरम्य मंदिर से दी जा सकती है, जो विना जमीन के अधार के अवस्थित है।[५७] शब्द रूपी लक्ष्य को विद्ध करना बहुत कठिन है, किन्तु नाम के प्रताप से ऐसा संभव है।[५८] साधक जब चित्त की स्थिर वृत्ति को प्राप्त करता है, तब उसके भीतर शब्द का ऐसा तार बँध जाता है कि वह कभी टूटता नहीं। शब्द एक अद्भुत अस्त्र है। और अस्त्रों के आघात से जीवित मृत हो जाता है; किन्तु शब्द के आघात से मृत, जीवित हो उठता है। वह अपनी दुर्मति खोकर और निर्भय होकर विचरने लगता है।[५९] पलटू दास कहते हैं कि हद, अनहद के पार एक मैदान है, उसी मैदान में पैर दक्षिण और सिर उत्तर करके सोना चाहिए तथा 'शब्द की चोट' को सम्हाल कर सहना चाहिए।[६०] यहाँ शब्द की अवर्णनीयता की ओर इंगित है। आनन्द ने दैनन्दिन जीवन में भी शब्द का लाभ बतलाया है। वे कहते हैं कि यदि मनुष्य क्रोध के आवेश में हो जाय तो तुरन्त शब्द के साथ सुरति मिलाकर अजपा-जप आरंभ करे; क्रोध स्वयं निवृत्त हो जायगा।[६१]

ध्यानावस्था में किस प्रकार का शब्द सुनाई देता है और किस तरह के अन्य दृश्य दीख पड़ते हैं, इसकी संक्षिप्त चर्चा आवश्यक होगी। स्पष्ट है कि शब्दों और दृश्यों

की अनुभूति भिन्न-भिन्न संतों के साथ भिन्न-भिन्न होती होगी। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से यह कहा जा सकता है कि बाह्य जगत् में जिस प्रकार के सुख-वैभव की कल्पना व्यक्ति को होती है, जिस प्रकार के ऐन्द्रिय प्रत्यक्ष उसके जाग्रत् जीवन में होते हैं, वे ही वैभव और वे ही प्रत्यक्ष उसके आन्तरिक जीवन में होते हैं; यह अन्य बात है कि वे बाह्य जगत् की देश, काल और परिस्थिति से विच्छिन्न होकर पुनर्निर्मित होते हैं। ध्यानावस्था की आन्तर-अनुभूति की तुलना बहुत-कुछ स्वप्न की अनुभूति से की जा सकती है। स्वप्न में हम एक तो अपने बाह्य जगत् के प्रत्यक्षों को दुहराते हैं और दूसरे, सभ्यता, समाज और मानापमान की भावना के कारण निरुद्ध, किन्तु अतृप्त, वासनाओं, कामनाओं अथवा सदिच्छाओं की पूर्ति करते हैं। अन्तर्जगत् के स्वप्नलोक में भी हम बाह्य प्रत्यक्ष के आधार पर अपनी अतृप्त आध्यात्मिक लालसा को तृप्त करने की चेष्टा करते हैं। परिणाम यह होता है कि सामूहिक रूप से अन्तर्जगत् की विभूतियों का चित्र लगभग वैसा ही उतरता है, जैसा बाह्य जगत् की विभूतियों का। वे ही जलाशय, वे ही सरिताएँ, वे ही खिलते हुए कमल और तैरते हुए हंस, वही अरुणकिरणरंजित क्षितिज, वही मेघाच्छन्न आकाश और अंधकार को चीरती हुई तडित् की रेखा, वही बयार, वही सुगन्धि, वे ही कलरव, वैसी ही मधुर ध्वनियाँ; जैसी और जिन्हें हमने अपने दैनंदिन साधना-विहीन जीवन में पसन्द करते हैं, वैसी ही और उन्हें ही अपनी ध्यानावस्था में, ब्रह्माण्डलोक में कल्पित करते हैं तथा अपनी कल्पनाओं को अनुभूति की तीव्रता और चित्त की एकाग्रता के सहारे साकार रूप देते हैं। योगी अपने अन्तर्जगत् में ही सुख और शांति क्यों चाहता है, यह एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न है। सुख और शांति उसीको मिल सकते हैं, जो स्वतन्त्र है; क्योंकि परतन्त्रता ही दुःख और अशांति का कारण है। स्वतन्त्रता का अर्थ हुआ आत्मावलम्बन, अर्थात् किसी भी वस्तु की प्राप्ति अथवा इच्छा की पूर्ति के लिए परनिर्भरता का परित्याग। इस परनिर्भरता के परिहार के लिए ही वह कछुए के समान बाह्य जगत् से अपनी 'सुरति' हटाकर अपने आप में विलीन कर देता है। सभी इन्द्रियाँ जो पहले बहिर्मुख होकर काम करती थीं, अब अन्तर्मुख होकर जागरूक हो जाती हैं। परिणाम होता है अलौकिक ध्वनि तथा अद्भुत दृश्य का मानस प्रत्यक्षीकरण।

भिनकराम कहते हैं कि अमरपुरी के देश में उन्हें मुरली की ध्वनि और छत्तीसो राग-रागिनियाँ सुन पड़ती हैं।[६२] बोधीदास कहते हैं कि वहाँ विना करताल, मृदंग, वेणु और बाँसुरी के मधुर बाजा बजता रहता है, विना दीपक के प्रकाश होता है; वहाँ न चन्द्रमा है न सूर्य, न गर्मी है न सर्दी।[६३] एक अन्य संत कहते हैं कि वहाँ 'कान' में अनवरत रूप से टन-टन, टन-टन शब्द सुनाई पड़ता है।[६४] वहाँ न धरती है न आकाश; किन्तु फिर भी चन्द्र और सूर्य की ज्योति प्रकाशित रहती है तथा हा-हा-हा-हाकार का शब्द गूँजता रहता है।[६५] वहाँ नित्यप्रति दरबार अथवा कचहरी लगी रहती है।[६६] सरस्वती, शारदा, लक्ष्मी आदि देवियाँ सत्पुरुष का यशोगान करती रहती हैं।[६७] ब्रह्माण्ड के गगन में प्रचंड ज्योति जलती रहती है। कोई बजानेवाला नहीं है, परन्तु फिर भी मृदंग पर ताल पड़ता रहता है और रंग-बिरंग के फूल झरते रहते हैं—इतनी सुन्दरता छाई रहती है

कि मानो कोटि कामदेव विराज रहे हों।[६८] रुनफुन-रुनफुन की मधुर ध्वनि झंकृत होती रहती है और अनेक प्रकार के वाद्य-शंख, शहनाई, झाँझ, उपंग आदि के संगीत गुंजित होते रहते हैं।[६९] उस 'सहर' में धरती नहीं है, किन्तु सर्वत्र बाग-बगीचे लगे हुए हैं और उनमें वसन्त ऋतु की छटा छाई हुई है; तालाब नहीं हैं, किन्तु उन पर 'पुरइन' के पत्ते सुशोभित हो रहे हैं और ऐसे फूल खिले हुए हैं, जिनका मूल नहीं है; कोठे के ऊपर चौमुख बंगला सजा हुआ है और उस बंगले में से अद्भुत ज्योति छिटक कर फैल रही है।[७०] अनेक फूल—बेला, केवड़ा, गुलाब, चंपा, जूही, कुसुम, गुलदाऊदी—गगन में फूले हुए हैं और बासन्ती सुषमा विराज रही है।[७१] वहाँ अति विस्तृत गंभीर समुद्र और उत्तुंग पर्वत हैं। वंशी का स्वर इतना तीव्र है कि उससे तीनों लोक ध्वनित-प्रतिध्वनित हो रहे हैं।[७२] उस बैकुंठ-लोक में केसर और कस्तूरी की खेती होती है। वहाँ केवल सुगंध ही सुगंध, रंग ही रंग, छवि ही छवि है; शीशमहल, 'दरब महल', 'रंग महल'—सब कुछ वहाँ विद्यमान है।[७३] खेती तो होती है, लेकिन न हल चलता है न कुदाल; 'अमर चीर' तो बहुत भाँति के पहने जाते हैं, किन्तु न चर्खा चलता है, न ताँती बोलती है; न बादल गरजता है, न वर्षा होती है; किन्तु फिर भी अमृतजल की कमी नहीं होती; वहाँ इतनी तृप्ति है कि भूख-प्यास सब मिट जाती है।[७४] 'संुन सिखर' पर सुन्दर मंदिर सुशोभित हो रहा है, मानसरोवर का जल विना बयार के मन्द-मन्द आंदोलित हो रहा है, विना आकाश के बादल घेरता है और फिर सूर्य और चन्द्रमा का प्रकाश छा जाता है; जब तब 'ठनका' ठनकता है और बिजली चमकती है।[७५] मोती, हीरे और लाल झर-झर-झर-झर झरते हैं। गुरु के चरण-रज के सहारे इन अद्भुत दृश्यों के बीच परमात्म-तत्त्व के दर्शन होते हैं।[७६] मानसरोवर की कल्पना को कुछ विस्तृत करते हुए बताया गया है कि वह एक अनुपम तालाब अथवा झील है, जिसके बीच में एक ऊँचा स्तंभ (थूम्ह) है जिस पर ब्रह्म प्रकट विराज रहे हैं और जिसके चारों ओर कमल फूले हुए हैं;[७७] एक सुन्दर मण्डप छाया हुआ है, जो 'सुरति' की डोरियों से तना हुआ है।[७८] वहाँ रात और दिन का क्रम नहीं है, आठो पहर चाँदनी छिटकी रहती है।[७९] योगेश्वराचार्य के निम्नलिखित पद्यों में अमरपुरी की विभूति की एक संक्षिप्त रूपरेखा दी गई है—

> पिया के देश मेरे अजब सोहावन, अचरज ख्याल पसारि।
> बिनु छिति जल दह पुरइन सोभे, बिनु मूल पत्र पसारि॥
> बिनु आकाश के घेरत बदलवा, दामिनी दमक अपारि।
> हीरा रतन जवाहिर बरसे, मोतिअन परत फुहारि॥
> बिनु बाजा के अनहद बाजे, दशो दिशा झनकारि।
> वर्णन बने न देखो सो जाने, बिनु रबि ससि उजियारि॥[८०]

योगियों का यह देवलोक सामान्य देवलोक से कहीं अधिक श्रेष्ठ है; यहाँ करोड़ों इन्द्र 'चाकर' के समान पानी भरते हैं और करोड़ों लक्ष्मियाँ 'बनिहारिन' (श्रमिका) का काम करती हैं। इस लोक में पहुँच जाने पर पुनः मर्त्यलोक में आना

तक आता है।[८१] बालखण्डी दास ने एक दूसरी दृष्टि से ध्यानस्थ संत के दिव्यलोक को 'योगी की मड़ैया' कहा है।[८२]

अन्तर की आनन्द-नगरी की रहस्यमयता तथा अलौकिकता को द्योतित करने के लिए कुछ पदों में 'नेति'-'नेति'-शैली को अपनाया गया है।—वहाँ न नक्षत्र है, न दिवस, न रात; न ज्ञान, न अज्ञान; न पाप, न पुण्य; न तीर्थ, न व्रत; न दान, न सेव्य; न सेवक, न सखा; न शुभ, न अशुभ[८३]; वहाँ चन्द्र और सूर्य की पहुँच नहीं है, पंचतत्त्व भी नहीं है, हरा, पीला, श्वेत, श्याम और लाल कुछ नहीं है। वहाँ न योग है न युक्ति, न 'सुरक्ति' न 'निरक्ति'; वहाँ एक मात्र सच्चिदानन्द है।[८४] ऐसी रहस्यमय नगरी का वर्णन करना कठिन है। इसे तो वही जानता है जो इसे 'देख आये हुए हैं'।[८५]

हद अनहद के पार टपे,
जहँ जाइबे देत यती अभिलाषे।
'आनन्द' काह कहो वहि देश की
भाषे बनै न बनै बिनु भाखे॥[८६]

टिप्पणियाँ

१. ते ध्यानयोगानुगता अपश्यन्देवात्मशक्तिं स्वगुणैर्निगूढाम्।
य: कारणानि निखिलानि तानि कालात्मयुक्तान्यधितिष्ठत्येक:॥
—श्वेताश्वतरोपनिषद् १–३

२. यदा पञ्चावतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह। बुद्धिश्च न विचेष्टते
तामाहु: परमां गतिम्॥ तां योगमिति मन्यन्ते स्थिरामिन्द्रिय-
धारणाम्। अप्रमत्तस्तदा भवति योगो हि प्रभवाप्ययौ॥
—कठोपनिषद्, ६, १०-११

३. देखिए, लेखक का 'संत कवि दरिया : एक अनुशीलन', खण्ड २, परिच्छेद ८

४. 'संत कवि दरिया : एक अनुशीलन' पृ० सं०—१०३

५. यह अध्यात्म परेम से समुझे ते सुख होत।
यह गहि सुष्क बिचार ले चित्त प्रकाश उद्योत॥
—विवेकसार, पृ० १७

६. रामकिना सहजे लख्यो, सुखी सदा यह देह॥
—गीतावली, पृ० १२

७. दुविधि योग श्रुति ग्रंथनि गावे। राजयोग हठयोग कहावे॥
श्रवन शास्त्र सत्संग विचारा। दया दान यश कीरति सारा॥
राजयोग यह सात भूमिका; सुनहु योग हठ बचन मुनी का॥
नेती धोती बस्ती त्राटक; नौलि कपालभांति षट कारन॥
आसन भेद कुम्भ बहुताई; प्राणायाम सुनहु रघुराई॥

पूरक बत्तीस उर्ध गति ; कुम्भक चौसठ रोक।
छाड़े एक टकसारे है ; करे राम नहिं शोक ॥
बाहर भीतर कितनो धोवो ; रोको पवन उताने सोवो ॥
देखै मोती हृदया मांहीं ; बिना भजन सपनेहु सुख नाहीं ॥
—कर्त्ताराम-धवलराम-चरित्र, पृ० ६०-६१

८· 'The Hidden Teaching Beyond Yoga', pp. 39-40.

९. देखिए, 'संतकवि दरिया : एक अनुशीलन', पृ० ९४ आदि।

१०. Arthur Avalon or Sir John Woodroffe के 'Serpent Power' नामक ग्रंथ में इस विषय का विस्तृत विवेचन देखिए, पृ० २४५-४६।

११. हीरा झलके द्वार में परखे कोई सूरा हो ॥
सिद्ध आसन सोधि के, भरिहउ मन धीरा हो ॥
—टेकमन : भजन-रत्नमाला, पृ० १७

१२. आसनों का चित्र-सहित विवरण स्वामी शिवानन्द कृत 'योगासन' में देखिए।

१३. सरल विवरण के लिए देखिए 'संतकवि दरिया : एक अनुशीलन', पृ० ९६-९७

१४. सब मुद्रन में खेचरी भारी ॥
जेहि मुद्रा को नित प्रति साधत, योगीजन त्रिपुरारी।
जिह्वा के सूत नीचे को काटै, पुनि जिह्वा दोहि झारी ॥
रसना लम्ब होय जब आव, तब तालु देह पैठारी।
आसन स्थिर राखै योगीजन, जिह्वा को अस्थिर धरी ॥
त्रिकुटि में ध्यान स्थिर करि राखै, विचले न पावहिं तारी।
परम प्रकास के दरसन करिये, जो उपमा से न्यारी ॥
—निर्पक्षवेदान्तराग-सागर, पृ० १०४

१५. बारह बरिस में ऊपर आवो,
तब जोगी कहलावो ॥
—जोगीनामा, हस्तलिखित संग्रह, पृ० ३४

१६. जिह्वा उलटि के भीतर ही को, तालू माँह सटावै।
गिरै अमियरस गिरा पै छक-छक, कुन्डलिनी ललचावै ॥
काम व्यापै तो उलट जिभ्या लगा ब्रह्म रन्ध्र में।
जब स्रवै अमित तो छक-छक पान करना चाहिये ॥
—आनन्द-भण्डार, पृ० ४२, ६३

१७. जब जोगी तुम बइठत नाहीं,
तब जोगी उड़ि आवो।
साठ जोजन पैर खिलावो,
तब जोगी कहलावो ॥
—जोगीनामा, हस्तलिखित संग्रह, पृ० ३४

१८. इंगल पिंगल सुषमनि सोधि के, उनमुनी रहनि गहतहीं काल बाँचा।
सुरत अरु निरत की लगन में मगन होय, रामकिना सोई रंग राँचा ॥
—गीतावली, पृ० ९, पद २१

१९. इंगला, पिंगला सोधन करिके, पकड़ा सुखमन डगरी।
पाँच के मारि, पचीस वश किन्हा जीत लिये नौ नगरी॥
[पाँच तत्त्व, पचीस प्रकृतियाँ, नव द्वार (इन्द्रियाँ)]

—स्वरूप-प्रकाश, पृ० १३

२०. इंगला, पिंगला नदिश्रा बहत हैं। बरसत मणि बल नीरा।

—मिनकराम : हस्तलिखित संग्रह, पृ० ८

२१. इंगला सोधो पिंगला सोधो, सुन भवन मन लाइश्रों।
सुंन भवन में पिया के बसगित, जगमग ज्योति दरसाइश्रों॥
गंगा जमुना त्रिवेनी संगम, जहाँ अस्नान कराइश्रों।
करि अस्नान जपो अभिअंतर, सतगुरु शब्द लखाइश्रों॥

× × ×

इंगला पिंगला दोनों बहे धारा, सुखमन सोधि गगन निजु डेरा।
श्री टेकमन महाराज भिषम प्रभु, प्राण पुरुष चरणन निजु हेरा।

—भजन-रत्नमाला, पृ० ८, १३

२२. सुखमनि भरे जो नीर अकासा, जो जन पिअहिं बिन पेआसा।
इंगला पिंगला करै विचारा, मन बैठत नहिं लागे बारा॥
यह गति जानै जोगी कोई, जाके निपुन हाथ नहिं होई॥

—भजन-रत्नमाला, पृ० ४

२३. उलटा धार बहेला बंक नाला, बिना रसना के जपे अजपा माला॥
त्रिकुटि महल में सुग्गा मेरराला, दरसन राम के मन हरखाला॥

—भजन-रत्नमाला, पृ० १०

२४. ऐसा ध्यान लगाना साधो, ऐसा ध्यान लगाना।
मूल द्वार के साफ करो तब, गगन महल में धमके॥
त्रिकुटि महल में बैठिके, देखे जोति अपारा॥

× × ×

सोहंग शब्द विचार के, वोहंग में मन लाई।
इंगला पिंगला दोनों द्वार है, सुखमन में ठहराई॥

—भजन-रत्नमाला, पृ० १९-२०

२५. बाम इंगला बसै पिंगला रवि गृह जानो।
मध्य सुखमना रहै शब्द सतगुरु सम मानो॥
नामी शब्द कियारि अमिय को गगन निवासा।
सहज चन्द्र रवि उदय, शून्य को शब्द प्रकासा॥
रामरूप गुन गन सहित मन मनसा पहिचान।
मन मोर भजरा भरै हहा सुखंमृत पान।

—किनाराम : रामगीता, पृ० १३, पद ३४

२६. सुरति निरति के देखु नयन के कोर से।
सरवन सुने अनहद बाजे जोर से॥

—आत्म-निर्गुण-ककहरा, पृ० १

२७. अनहद सुनै गुनै नहिं भाई
सुरति ठीक ठहर जब जाई॥

चुवै अमृत पिवै अघाई।
पीवत पीवत मन छकि जाई॥
सुरति साघ संग ठहराई।
तब मन थिरता सुरति पाई॥
चमकै बीजु गगन के मांही।
अबहिं उजास पास रहे छाई॥
सुरति ठहरि द्वार निज पकरा।
मन अपंग होहि मानो जकरा॥
जस जस सुरति सरकि सत द्वारा।
तस तस बढ़त जात उजियारा॥

—आनन्द-पाठ, पृ० २-३

२८. खिरकी तिल भरि सुरति समाई।
मन तन देखि रहे टकराई॥
जब उजास घट भीतर आवा।
तत्त्व तेज और जोति दिखावा॥
जैसे मंदिर दीप किवारी।
ऐसे जोति होत उजियारी॥
जोति उजास फाट पुनि गयऊ।
अन्दर चंद तेज अस भयऊ॥

—आनन्द-पाठ, पृ० ४

२९. सिरी मिनकराम दया सतगुरु के,
गुरु के चरण चित लाई।
त्रिकुटी घाट बाट ना सूझै,
मोरा बूते चढ़लो ना जाई॥

—मिनकराम : हस्तलिखित संग्रह, पद ३

३०. सुन सोहागिन सुन्दरी।
चल त्रिकुटी का घाट जहाँ सौदागर उतरी।
सुन्दरता सोहावन पोखरी अम्रित रस से भरब गगरी।
सब संतन मिलि सौदा कैले जहाँ हंसन के लगलबा कचहरी।
निर्मल चन्द्र अमरपुरी वहाँ कोई कोई संत बिरला ठहरी।
सिरी मिनकराम दया सतगुरु के परम ब्रह्म देखि नयन भरी॥

—मिनकराम : हस्तलिखित संग्रह, पद ११

३१. तोहर बिगड़ल बात बन जाई, हरिजी से लगि रहऽहो भाई।
उलटि के पवन गवन कर भवन में, निरमल रूप दरसाई॥
दरसन से सुख पावे नयनवा, निरखत रूप लोभाई।
प्रेम के पलरा धीरज कर डंडी, सुरति को नाथ पहिराई॥
निरगुन नाम तौलो दिन राति, सू न में सहर बसाई।
कहे सिरी मिनकराम गुरु मिलै हकीम, जिन मोहि अम्रित पिआई॥
मुआ से जिआ कइ डारे, हंस अमर पद पाई॥

—मिनकराम : हस्तलिखित संग्रह, पद २१

३२. आनन्द प्रकार, पृ० २४

३३. निरंजन पद कोउ साधु जानता है।
मूल द्वार बाँधि पवन को, उलटा पंथ चलाता है।
मेरुदंड के सीढ़ी बना के, सुंन सिखर चढ़ि जाता है।

—गोविन्दराम : ह० लि० सं०, पद २

३४. मूल चक्र विमल होय सोधो।
त्रिकुटी के श्वासा धर लऽ।
द्वादस गुडिया उड़ावहु हो।

—मिनकराम : हस्तलिखित संग्रह, पद १७

३५. सोही सोहामन उल्टे खुलि गेल गगन केवारा हो।
इंगला पिंगला सोधिके चढ़िहै सुखमामा हो॥
सतगुरु वहाँ आपु हैं, पुरैहैं, सतनामा हो।
त्रिकुटी मंदिर भीतरे, वहाँ ज्योति झलका हो॥

—मिनकराम : ह० लि० सं०, पद २४

३६. मूल चक्र पर तुम्हरो बासा, चार दल ताहां कमल प्रकासा।
खट दल ताहां ब्रह्म रहे समाई, जाहां कमलनाल सोहाई॥
अस्ट दल कमल विष्णु के बासा, ताहां सोहंग करै निवासा।
द्वादस सोडस सुरति समावै, शिव शक्ति के दर्शन पावै॥

—रामस्वरूप : भजन-रत्नमाला, पृ० ३

३७. उनमुनि ध्यान नासिका आगे, तब गढ़ भीतर पैसार।
छः चक्र षोडस रस खावै, दसो द्वार बानादार॥
चान्द सूरज करो उनमुनि में, तब खोलो त्रिकुटी किवार।
अग्नि विमल चक्र एक दरसे, मेरुदंड तेहि ठाम॥

—गोविन्दराम : ह० लि० सं०, पद १

३८. धरहु ध्यान अभिअन्तर उर में, सार शब्द नित नित हेरो।
त्रिकुटि मध्य दोउ नेत्र लगा के, उलटि पवन के फेरो॥
यही विधि आतमरूप निहारो, सुन्दर परम उजेरो।
मकरतार इव सुरति सोहागिन, चलु मन जहँ पिया मेरो॥
योगेश्वर दास नैहर अब बीतल, छूटल जग भट मेरो।
सद्गुरु कृपा पिया तोरे मीलल, अब क्या सोच करे हो॥

—स्वरूप-प्रकाश, पृ० १८

३९. सुनहु तात जो सज्जन कहहीं, हिय महँ कमल अधोमुख रहहीं।
कदली पुष्प समान अष्टदल, तेहि पर झूमत सदा मन चंचल॥
दस अंगुल के कमल है, नाल दण्ड पर ठीक।
आठो दल आठो दिशा, ताकी फल सुनु नीक॥
पूर्वहि दल पर जब मन आहीं, कृपा करे सब जीवन माहीं।
अग्निकोण में निद्रा आलस, दक्षिण मत्सर क्रोध बखानत॥
नैऋत दल पर मोह जनावे, पश्चिम दल जड़ता उपजावे।

वायव कोश त्रिदोष जगावे, उदर दल मह भोग बढ़ावे।
कोश, ध्यान शान मन धरई, यहि कारन मन बदलत रहई ॥
—कर्त्ताराम-धवलराम-चरित्र, पृ० ६१-६२

४०. लख हो सज्जन अन सोहंग तार, लख हो सज्जन मन सोहंग तार ॥
—छिहूराम : भजन-रत्नमाला, पृ० ३७

४१. सोहंग सोहंग जीव जौ लौ तू न जपेगा, तौ लौ दैहिक, दैविक, भौतिक तिहूँ ताप तपेगा।
सागर के तीर तुम नीर नहिं पायगा। कल्पतरु तेरो दारिद न जायगा ॥
जागृत व स्वप्न हूँ में सुख नहीं छायगा, जब ले तुम तुरिया के जाप नाहिं गायगा ॥
—निर्पक्षवेदान्तराग-सागर, पृ० २७

४२. सतगुरु सहज लखाय उर, सहज शब्द परिमान।
शब्दहि शब्द विचार के, सत्य शब्द लित मान ॥
—किनाराम : रामगीता, पृ० ७, पद ११

४३. देखिए, कर्त्ताराम-धवलराम-चरित्र, पृ० ५३

४४. भजन-रत्नमाला, पृ० १५

४५. घर में ही पिया हम पौलीं ननदिया ॥
तीरथ हम गेलीं, बरत हम कैलीं।
व्यर्थ समय्या गवौलीं ननदिया ॥
जोगिन बनिके बन बन ढुंढलीं।
जोह हम सगरो लगौलीं ननदिया ॥
—आनन्द : जयमाल, पृ० ३२

४६. भजन-रत्नमाला, पृ० २०

४७. जीवन लहि उद्भव समुझि, सत पद रहे समाइ।
अब यह परम समाधि को, अंग कहो समुझाइ ॥
घट बिनसे तें वस्तु सब, पट महँ देत दिखाइ।
घट पट उभय विनाश में, वस्तु निरन्तर पाइ ॥
स्वांस समानो प्रान मों, शब्द शब्द ठहराइ।
प्रान समानो प्रान मों, ब्रह्म ब्रह्म महँ जाइ ॥
हंस समानो हंस मों, अबिनासी अबिनास।
काल समानो सुन्न में, निर्भय सदा निरास ॥
पवन समानो पवन महँ, जीव शीव घट पाइ।
शीव निरंजन महँ सदा, सब विधि रह्यो समाइ ॥
निरंजन अब निराकार महँ, रहै समाइ विशेष।
निराकार अवगति मिल्यै, जाको मंतो अलेख ॥
अनहद अबिनासी महँ, संतत रहे अभेद।
अबिनासी तब आप महँ, समुझि समानो वेद ॥
—विवेकसार, पृ० २२-२३

४८. आनन्द-योग, पृ० ६—६

४९. निरंकार के पार ताहां सतलोक है।
ह हो, मोती को बिचार सोइ लहै ॥
—आत्म-निर्गुण-ककहरा, पृ० २, पद १०

५०. नूर महल में बैठिके, नूर महल को देख।
रामकिना निज हाल में, पायो अलख अलेख ॥
—किनाराम : रामगीता, पृ० १६, पद ५०

५१. शब्द का रूप साँचो जगत,
पुरुष शब्द का भेद कोई संत जानै।
शब्द अजर अमर अद्वितीय व्यापक पुरुष,
सतगुरु के शब्द को विचार आनै ॥
—गीतावली, पृ० ६, पद २३

५२. किनाराम : गीतावली, पृ० ६, पद २२।

५३. शब्द ज्योति जग सुन्य प्रकासा।
सद्गुरु मिटै कठिन भव फांसा ॥
मान निवृत्ति सदा तेहि जानौ।
भाव अभाव न सको मानौ ॥
—किनाराम : बिवेकसार, पृ० १४

५४. शब्द शब्द सो मिलि रहै, शब्द शब्द सों न्यार।
शब्द निरंतर सो मिलै, रामकिना कोइ यार ॥
अनुभौ सोई जानिये, जो गति लहै विचार।
रामकिना सत शब्द गहि, उतर जाय भव पार ॥
मगन मस्त निज हाल में, ख्याल ख्याल को खयाल।
रामकिना अनुभौ तिलक करयो ईश महाराज ॥
—किनाराम : रामगीता, पृ० १७, पद ४४

५५. सतगुरु, सहज लखाय उर, सहज शब्द परिमान।
शब्दहि शब्द विचार के सत्य शब्द नित मान ॥
—किनाराम : रामगीता पृ० ७, पद १६

५६. रामगीता, पृ० ८, पद २१

५७. बिना जमीन मंदिर उदबुद है, मूरत छबी अपार।
अनहद शब्द उठे दिन रसना, निस दिन रारांकार ॥
—टेकमनराम : भजन-रत्नमाला, पृ० १५

५८. सबद के निसाना मार. नाम की दोहाई हो।
कहे दर्शन जीव, लोक चलि आई हो ॥
—टेकमनराम : भजन-रत्नमाला, पृ० १२

५९. सतगुरु शब्दै मारिके, मिरतक लियो जिआय।
रामकिना निरभै कियो, दुरमति दूहि बहाय ॥
—किनाराम : गीतावली, पृ० २

६०. हद अनहद के पार मैदान है, उसी मैदान में सोय रहना।
पैर दखिन मेरे शीष उत्तर के, शब्द के चोट सम्हार सहना ॥
—पलटूदास : ह० लि० संग्रह, पद ५

६१. क्रोध आवै जब तो सुरत को मिलाकर शब्द
जाप अजपा का हर यक स्वाँसा पै करना चाहिए ॥
—गुलाबचन्द्र : आनन्द : आनन्द-सागर, पृ० ६३

६२. अमरपुरी के ऐसा अनहद मुरली बजावे,
ओ में गावत राग रागिनि छत्तिसो हो राम।

—भिनकराम : ह० लि० सं०, पद २०

६३. धाम और सोत जहाँ चंद ना सूर है तांहा पी का नीत का असल डेरा।
बिना करताल मृदंग बेन जहाँ बाजत बिना मुख बाँसुरी बेनु तेरा॥
बिना दीप जोत प्रकास जहाँ देखिये बिन बले बले जहाँ अध खेरा।
कहे दास बोधी सत केर संग है बिना पग निरत करत चेरा॥

—बोधीदास : ह० लि० सं०, पृ० ३८

६४. टा टा टंन टंन बाजे सब्द टाना टन होत है,
सब्द परी कान भरम मोर है।
चंद सूर के तार के पार बहु जोर से,
ह हो, मोती खुला केवार सब्द अजोर है।

— आत्म-निर्गुण-ककहरा, पृ० २, पद ११

६५. हा हा हाकार धुनि होय सब्द हहरात है,
चंद सूर के जोत परकास धरती नहीं आकास दिन नहीं रात है।
ह हो, मोती साहेब है वोह यक माई नहीं बाप है।

—आत्म-निर्गुण-ककहरा, पृ० ५, पद ३१

६६. गगन मंडल बिच लागे कचहरिआ।

—भिनकराम : ह० लि० सं०, पद ७

६७. निसि दिन निरखत रहिहा हो राम, लागी कचहरिया कायापुर पाटन।
सरस्वती, शारदा आदिलछमी, अगम निगम जस गहिह हो राम।

—टेकमनराम : भजन-रत्नमाला, पृ० १३

६८. महा ज्योति जोल पाट प्रचंडा, गह गह गगन होय ब्रह्मण्डा।
बिन कर बाजे ताल मृदंगा, झड़े सुमन ताहाँ असुरे रंगा।
× × ×
कोटि काम तहवाँ छवि छाई, महिमा अगम निगम जो गाई।
काया नगर सोधे जो भवना, जाते मन पंछी है पवना।

—रामस्वरूपदास : भजन-रत्नमाला, पृ० ३

६९. रुनु झुनु रुनु झुनु बाजा बाजे, गगन महल में होत है झमकार।
बेन बासुरी ताल मृदंगा, उठे शब्द तहाँ सुरति के संवा।
संख सहनाई झाम्फ उपंगा, अगनित बाजे बरनि नहिं जाई॥

—रामटहलराम : भजन-रत्नमाला, पृ० २१

७०. उलटी पवन भवन में पैठा, ताही शहर समाई।
बिना धरती के बाग चहु दिसि, रहत बसंत ऋतु छाई।
बिनु दह पुरइन पत्र पसारे, बिनु मूल फूल फुलाई।
कोठा का ऊपर चौमुख बंगला, तामें ज्योति दरसाई।
योगेश्वर जाइ धाइ के मिले, आवागमन नसाई।
श्री हरे हरे! सो बगिया देखि आई।

—योगेश्वर : स्वरूप-प्रकाश, पृ० ६

७१. देखो साधो गगन में फूले बहु बेला, ऋतु बसन्त के पाय हो राम।
कंवल गुलाब, चंपा जूही फूले, फूलें कुसुम गुलदाई हो राम॥
—अलखानंद : निर्पक्षवेदान्तराग-सागर, पृ० १११

७२. झिलमिलि जोत की झाईं तबै गति अलख दरसाई।
दरिया द्वै अतिहिं उतंग, पर्वत बूड़ै शब्द न तरंग॥
बंसी बजे सुर घोर से, गूँजै तिहूँ पुर शोर से॥
—किनाराम : रामगीता, पृ० २०

७३. अजब बनाए बैकुंठ कमरिआ बाबा।
एक कमरी में केसर उपजे, कस्तूरी अध रंग।
गेरुइ सिला पर जोती बिराजे, दरसन दिन रैना हो कमरिआ०।
अवन बिरंगी पवन बिरंगी, रंगी धरती अकासा।
चंद सूर ओ ओ भी रंगो, रंगवा में रंगवा मिलवलीं। हो०॥
रंग महल में रंग बनाए, सीस महल गढ़ सीसा।
दरब महल में दरब बनाए, सिरि टेकमनराम नाम धरवनी। हो०॥
—टेकमनराम : ह० लि० सं०, पद १०

७४. हंसा कर ना नेवास अमरपुर में।
चलै ना चरखा बोलै ना ताँती॥
अमर चीर पेन्है बहु भाँती।
हर ना परै ना परै कोदारा॥
अमृत भोजन करै सुख वासा।
गगन ना गरजै, चुपे ना पानी।
अमृत जलवा सहज भरि आनी।
भूख नहिं लगै न लगै पिआसा॥
—भिखमराम : ह० लि० सं०, पद १

७५. सुंन सिखर के चौमुख मंदिर, लौकलि ज्योति अपार।
यह अन मानो मानसरोवर, बिनु जल पवन हिंडोल॥
बिना अकास के घेरे बादल, रवि शशि के अंजोर।
ठन ठन ठन ठनका ठनके, लौकलि बिजुली उजियार॥
—गोविन्दराम : ह० लि० सं०, पद १

७६. तड़ तड़ दामिनी दमके, बिजली झनकोर के,
झर झर झर झर मोती झरे, हीरा लाल बटोर के।
गुरु के चरण रज पकड़ि सहारे पे,
छतर निज पति मिले झकझोर के।
—छतरबाबा : ह० लि० सं०, पद २

७७. मानसरोवर एक ताल अनूप है, वाही में धून्ह लगाया हो।
वाही धून्ह पर ब्रह्म प्रगट है, चहु दिशि कमल फुलाया हो॥
—टेकमनराम : भजन-रत्नमाला, पृ० १७

७८. गगन गुफा में मंडप छावो, लागे सुरत के डोरी हो राम।
—टेकमनराम : भजन-रत्नमाला, पृ० २५

७९. रैन दिवस जहाँ रातो न अंधरिया,
आठो पहर जहाँ उगलवा अंजोरिया।
—भिनकराम : ह० लि० सं०, पद १४

८०. स्वरूप-प्रकाश, पृ० २४-२५

८१. कोटिन इन्द्र लोग पानी भरतु है।
लछमी अइसन बनिहारिन॥
ऐसा भजन लगे जो कोई।
कहँवा से आई जीव हो॥
—भिनकराम : ह० लि० सं०, पद ८

८२. जोगी का मड़इया हो रामा अनहद बजवा बाजे।
जहाँ नाचे सुरति सुहागिन हो राम॥
तन मन एक करि देखले नयनवा भरि-भरि।
जगवा में खबर जनावेले हो राम॥
—बालखण्डीदास : ह० लि० सं०, पद ५

८३. नहिं नछत्र नहिं दिवस निशि नहीं काल अकाल।
पाप पुण्य एकौ नहीं तीरथ व्रत अरु दान॥
सेव्य न सेवक सखा तहँ नहिं शुभ अशुभ प्रकार।
अनल आपु त्रय गुण सहित नहिं एकौ बिस्तार॥
—किनाराम : विवेकसार, पृ० ६

८४. चन्द औ सूर्य की गम्य नहीं कछु पंच अकास तहाँ नाहि दरसै।
हरियर पीयरे स्वेत औ श्याम न रक्त रंग कछु मोती न बरसै॥
जह जोग न युक्ति न सुर्व्य घना सुवक्ति निरुक्त न घन परसै।
रामकिना गम सुगम करता धनी सच्चिदानंद यहि आँख दरसै॥
—किनाराम : रामगीता, पृ० ७

८५. बतायें हम आनन्द उस दर का किसको।
वह जानेंगे, जो देख आये हुए हैं।
— तत्त्वलाते आनन्द, पृ० ३०

८६. आनन्द-भण्डार, पृ० २१

तीसरा अध्याय

आचार-व्यवहार

१. संत और अवधूत

२. सद्गुरु

३. सत्संग

४. रहनी अथवा आचार-विचार

(क) जात-पाँत

(ख) छुआछूत

(ग) सत्य, अहिंसा, संयम और दैन्य

(घ) मादक-द्रव्य-परिहार

(ङ) अन्य गुण

५. विधि-व्यवहार

१. संत और अवधूत

अघोर-मत के प्रसिद्ध आचार्य किनाराम ने 'हरिदासों' अथवा 'संत' की 'रहनी' अर्थात् आचार-व्यवहार का वर्णन करते हुए लिखा है कि उसे सत्यव्रत होना चाहिए, उसे सद्गुरु में विश्वास होना चाहिए, उसे आध्यात्मिक प्रेम की मस्ती में विभोर हो योग और साधना के मार्ग में आगे बढ़ना चाहिए, माया और अविद्या के भ्रम को खण्डित कर कामादि खलों को दण्डित करना चाहिए। सन्तोष उसका व्रत हो, क्षमा कुटुम्ब हो, धैर्य साथी हो और कर्त्तव्य सखा।[1] वह दयालु, अघ और अवगुण से डरने वाला, वैर-रहित, सद्गुण-समन्वित, वासनाओं और तृष्णाओं से पृथक् हो। वह ज्ञान-रूपी रवि के प्रकाश से आशा-तृष्णा-रूपी अंधकार को विनष्ट करे; वह निःस्पृह तथा निर्मल स्थिरचित्त हो, सहज सन्तोषी हो, मन-वचन और कर्म से सबके कल्याण का आकांक्षी हो। ऐसा ही संत 'राम का स्नेही' होता है, उसे काल तथा कर्म के बन्धन नहीं सताते और जो कोई उसकी संगति करता है, उसके सुख और सुकृत जाग जाते हैं।[2] चम्पारण-शाखा के संतों में धवलराम और कर्ताराम दो प्रसिद्ध संत हुए हैं। 'कर्ताराम-धवलराम-चरित्र' नामक ग्रन्थ में प्रश्नोत्तरी शैली में संतों के लक्षण विस्तार से दिये गये हैं। धवलराम प्रश्न करते हैं कि इस संसार में अनेकानेक पंथ, अनेकानेक वेश, अनेकानेक मत और अनेकानेक उपदेश प्रचलित हैं; कोई तपस्वी है तो कोई पूजक और व्रती, कोई वैरागी और संन्यासी है तो कोई अलख और उदासी, कोई जटा, भभूत, तिलक, मृगछाल धारण किये हैं, तो कोई कंठी और माला;—क्या ये ही संत के लक्षण हैं?[3] धवलराम उत्तर देते हैं कि किसी वेशभूषा-विशेष के धारण करने से संत नहीं होता, और न जटा, भभूत तथा मृगछाला पहनकर 'जोगी' बन अलख जगाने से। संत के लिए पूजा और व्रत ये बाह्य कर्मकाण्ड आवश्यक नहीं हैं; आवश्यक यह है कि वह 'रामनाम का रसिया' हो।[4] वे पुनः कहते हैं कि जो तथाकथित साधु दुनियाँ से घी और शक्कर वसूल कर मौज उड़ाते हैं और विना परिश्रम मोटे होते जाते हैं, वे 'झूठे संत' हैं। सच्चा संत अथवा 'अनोखा संत' तो दीनता का व्रत धारण करता है, असत्य नहीं बोलता, तन-मन से परोपकार करता है और जो कुछ मिल गया, उसीसे सन्तोष ग्रहण करता है। उसके लिए धन धूलि-कण के समान और नारी नागिन के समान है। यदि वह संसार का खाता है तो संसार के कल्याण के लिए मेहनत भी करता है। वह निन्दा और स्तुति, आशा और तृष्णा से परे रहकर रामनाम भजन में लगा रहता है। वह अपने मन रूपी मतंग को विराग रूपी अंकुश से वश में करता है, और ज्ञान-रूपी 'पैकर' (पैर बाँधने की शृंखला)

बाँधकर उसकी गति को नियंत्रित करता है। प्रतिष्ठा उसके लिए विष्ठा है और गौरव रौरव है ; वह समर्थ होते हुए भी अपनी सामर्थ्य का दुरुपयोग नहीं करता, तत्त्वज्ञानी होते भी अपने को अनजान समझता है। कुछ साधु 'झाड़-फूँक' और 'जंतर-मंतर' के फेर में पड़े रहते हैं। वे हाथ में 'सुमिरनी' और बगल में भागवत तथा गीता की पोथी दबाये घूमते-फिरते हैं। ऐसे पाखण्डी साधु मानो जान-बूझ कर जगत् में विष बोते हैं। सच्चे संत को कामिनी को बाघिन समान और कांचन को सर्प-दंश के समान त्याज्य समझना चाहिए; उसे निरभिमान होकर राम-भजन में उन्मत्त बना रहना चाहिए।[५] कर्तारामने लिखा है, 'साधेउ ना तन साधु कहाँ ?' अर्थात् तनुम् साधयतीति साधुः। साधु वही है, जो अपने शरीर, उसकी इंद्रियों और वासनाओं को नियंत्रित करे। बहुत-से साधु क्रोधी होते हैं। उन्हें समझना चाहिए कि क्रोध और बोध परस्पर-विरोधी गुण हैं। कितने साधु मन नहीं मारकर जीव-जन्तु मारते और खाते हैं। यह दुःख की बात है।[६] किनाराम ने कहा है कि फकीरी बादशाही, है जो ऐसे ही संत के लिए संभव है, जो वीर सिपाही है; जिसने भव की तृष्णा जीत ली है।[७] बोधीराम ने संत और नृप का प्रतिबिम्ब रूपक बाँधा है। वे कहते हैं कि उसके शीश पर क्षमा का छत्र विराजता है, उसके पार्श्व में दया और सम्मान का चँवर डोलता है, उसके आगे राम की ध्वजा फहराती है; जब वह शील, संतोष और सद्गुरु-कृपा की सेना लेकर अभय का डंका बजाता हुआ धावा बोलता है, तब काम, क्रोध आदि शत्रु डरकर भाग जाते हैं।[८] दीनता और गरीबी संत के लिए गर्व की वस्तु हैं ; मड़ई उसके लिए महल है, 'तरई' (चटाई) उसके लिए तोशक है।[९] संत के लिए समभाव, अथवा गीता के शब्दों में, स्थितप्रज्ञ और स्थिरधी होना आवश्यक है। कभी कोठा और अटारी, कभी जंगल और झाड़ी; कभी पंचपदार्थ भोजन, कभी भूखे शयन; कभी ओढ़ने के लिए शाल और दुशाला, तो कभी मात्र कौपीन और मृगछाला;—टेकमनराम कहते हैं कि इसीका नाम फकीरी है।[१०] संत के लिए लाभ-हानि, शत्रु-मित्र सभी बराबर हैं। समता और शान्ति के आलोक और सद्गुरु वचन की ज्योति के बिना मानव-हृदय तमसाच्छन्न रहता है। जब प्रकाश की किरणें संत के हृदयाकाश को उद्भासित करती हैं, तब वह भव-बन्धन से मुक्त हो जाता है।[११] संत के हृदय में जब ज्ञान-रूपी कृशानु प्रज्ज्वलित होता है, तब उसमें काम, क्रोध आदि उसी प्रकार भस्म हो जाते हैं जैसे अग्नि में दिये हुए पेड़-पौधों के बीज।[१२]

त्याग, तपस्या और विराग, ये ही संतों की प्रमुख विशेषताएँ हैं। भ्रमनाशक प्रश्नोत्तरी में लिखा है—"जो विरक्त है, चाहे मुंडित हो, चाहे जटिल हो, यदि वह आत्मा का ही चिन्तन करता है और अभेदवादी है, तो वह शुद्ध संन्यासी है; क्योंकि संन्यास नाम त्याग का है, कुछ वेश-मात्र धारण करने का नहीं। ज्ञान-तत्पर का नाम संन्यासी है...जिसने सत्कार, मान, पूजा के अर्थ दण्ड-काषाय धारण किये हैं, वह संन्यासी नहीं है।"[१३] जिसे विरक्ति हुई, उसे ही सच्चा ज्ञान मिलता है। पलटूदास ने आदेश दिया है कि ज्ञान-रूपी खड्ग को हाथ में लेकर काम तथा क्रोध के दल का विनाश करना

चाहिए।[१४] ज्ञान और विराग की प्राप्ति के लिए कठिन साधन और तप-त्याग की आवश्यकता है। किनाराम के प्रमुख शिष्य 'आनन्द' ने बताया है कि संत के दिल में हिम्मत होनी चाहिए; उसका सीना सितम सहने के लिए सिपर हो, उसका सर सौदा-ए-यार और बेखुदी के लिए तैयार हो, आँख में मुरव्वत हो, कान में आश्चर्यजनक अनाहत नाद सुनने की शक्ति हो, रसना में आध्यात्मिक आनन्द-रूपी मदिरा का आस्वादन करने की ताकत हो, हाथ में दान देने की प्रवृत्ति हो और कमर में गुरुओं और संतों के प्रति झुकने की आदत हो।[१५] संत में इतनी दृढ़ता होनी चाहिए कि हजार मुसीबतें आवें, उसके पाँव साधना-पथ से नहीं डिगें।

फाका मस्ती ही, जिनका सेवा है।
यादे मौला में, सिर रगड़ते हैं॥
ठोकरें, लाख बार, खाते हैं।
पाँव लेकिन नहीं उखड़ते हैं॥

बोधीदास ने संत की दृढ़ता को व्यक्त करने के लिए उसकी उपमा 'मजीठ' रंग में रँगे हुए कपड़े से दी है। 'कुसुमी' रंग में रँगे हुए कपड़े का रंग दो-चार दिनों में उचट जायगा, किन्तु 'मजीठ' रंग ज्यों-का-त्यों बना रहेगा, चाहे कपड़ा फटकर चिथड़ा क्यों न हो जाय।[१६]

सच्चा संत जग से न्यारा होगा; जाति कुटुम्ब, परिजन-परिवार सबसे नाता तोड़कर वह केवल एक ही से नाता जोड़ता है—रामनाम से।[१७] जिस तरह कमल का पत्ता जल में रहते हुए भी जल से निर्लेप रहता है, उसी प्रकार संत संसार में रहते हुए भी उससे पृथक् रहता है। बत्तीस दाँतों के बीच जीभ रहती है किन्तु इस ढंग से रहती है कि कभी कटती नहीं। संत भी पाँच तत्त्वों और पचीस प्रकृति-विकृतियों में रहते हुए उनसे तटस्थ रहता है। जल में तेल का बिन्दु डालिए, वह मिलेगा नहीं, ऊपर ही उतराता रहेगा; वही दशा संत की भवसागर में है। संत के ज्ञान-रूपी रवि की ज्योति से मोह का अंधकार फट जाता है और क्षितिज पर स्वर्णिम प्रकाश की किरणें खेलने लगती हैं।[१८] आनन्द ने अपनी उर्दू की शैली में लिखा है—

हम न मोहिद ही रहे अब, और न मुशरिक ही रहे।
गाह हिन्दू बन गए, गाहे मुसलमाँ हो गए॥

पुनश्च—

आजाद कैदों बन्द, मजाहिब से हो गया।
हिन्दू रहा मैं अब न, मुसलमान रह गया॥
मुनकिर लकब मिला, कहीं काफिर मिला खेताब।
शोहरत का जरिया कोई, न सामान रह गया॥

ज्ञान, विराग, साधना और तप के प्रभाव से संतों में असाधारण तेज और सामर्थ्य का

विकास होता है। रामायण-महाभारत और पुराणों में शत-सहस्र ऐसे कथानक आये हैं, जिनमें प्राप्तसिद्धि ऋषि-मुनियों और संतों ने वरदान भी दिये हैं और शाप भी। 'भ्रमनाशक प्रश्नोत्तरी' में तप दो प्रकार का बताया है—एक निष्काम और दूसरा सकाम। जो सकाम तप करते हैं, उनका लक्ष्य होता है ऐसी सिद्धि प्राप्त करना, जिसके द्वारा वर और अभिशाप की क्षमता हो। किन्तु निष्काम तप का एकमात्र उद्देश्य होता है अन्तःकरण की शुद्धि द्वारा ज्ञान की प्राप्ति। सच्चा संत वही है, जो निष्काम तपस्वी है।[१९] निष्काम तपस्वी होने का यह अभिप्राय नहीं है कि वह लूला-लँगड़ा बना रहे अथवा अजगर के समान चुपचाप बैठा रहे। उसका जीवन लोक-कल्याण में रत होना चाहिए, यद्यपि उससे उसे किसी फल की आकांक्षा नहीं होगी।[२०] किन्तु ऐसे संत गाँव-गाँव और नगर-नगर में नहीं मिलते, ठीक उसी तरह जिस तरह जंगल में गीदड़ और लोमड़ियाँ तो लाखों की संख्या में होती हैं, किन्तु मृगराज समस्त वन-खण्ड में एक ही होता है। सभी शिलाओं में माणिक्य नहीं होता और न सभी गजों में गज-मुक्ता ही मिलती है, सभी सर्पों में मणि नहीं होती और न सभी सीप में मोती, सभी जंगल चंदन के नहीं होते और न सभी बाँस में वंशलोचन ही मिलता है। सच्चे संत भी जग में बिरले उपलब्ध होते हैं।[२१]

संत की विशेषताओं का प्रसंग समाप्त करने के पहले हम 'आनन्द' की कुछ पंक्तियाँ उद्धृत करेंगे, जिनमें उन्होंने यह बतलाया है कि भगवान् अपने भक्तों में आठ गुण देखना चाहते हैं। वे ये हैं—

दो गुण उनके हृदय में—

(१) नियुक्ति-नियमों के अनुसार चलना।

(२) भगवान् के बनाये हुए जीव-जन्तुओं पर दया रखना।

दो गुण उनकी जिह्वा में—

(१) उनके नाम का 'सुमिरन'।

(२) सत्य-भाषण।

दो गुण उनके नेत्रों में—

(१) आँखों को सदा अपने और गुरु के कमल-चरणों में लगाये रखना।

(२) भगवान् को प्राणिमात्र में उपस्थित देखना।

दो गुण उनके कानों में—

(१) भगवान का चरित्र या कथा सुनना।

(२) अन्तरीय शब्द सुनना।

'आनन्द' ने कुत्तों से नौ गुण सीखने के लिए साधक को प्रेरित किया है—

(१) अक्सर भूखा रह जाना।

(२) किसी खास जगह पर निवास न करना।

(३) रात में कम सोना।

(४) मरने पर कुछ छोड़ नहीं जाना।

(५) चाहे मालिक कितना ही डराये, धमकाये, उसका साथ नहीं छोड़ना।

(६) थोड़ी-सी जगह में विश्राम कर लेना।

(७) यदि कोई वह जगह दखल कर ले, तो उसकी परवाह न करना और अपने लिए दूसरी जगह बना लेना।

(८) यदि मालिक एक बार रुष्ट होकर निकाल दे और फिर कभी बुलाये, तो चला आना।

(९) जो कुछ खाने को मिले, उसी पर संतोष करना।

उन्होंने भक्तों के तीन प्रकार बताये हैं—

(१) जो भय से भक्ति करता है।

(२) जो वैकुण्ठ मिलने की आशा से भक्ति करता है।

(३) जो केवल प्रेम से भक्ति करता है।

यहाँ यह उल्लेख करना अप्रासंगिक नहीं होगा कि किनाराम और उनके अनुयायियों ने संत को 'अवधूत' भी कहा है।[२२] 'अवधूत' शब्द संस्कृत के 'धू' धातु में 'क्त' प्रत्यय लगाकर और 'अव' उपसर्ग जोड़ कर बना है। उसका शाब्दिक अर्थ हुआ 'परिकंपित' अथवा 'परित्यक्त'। परन्तु जिस अर्थ में इस शब्द का संत-जगत् में व्यवहार होता है, वह कर्मवाच्य का अर्थ न रखकर कर्तृवाच्य का अर्थ रखता है। अवधूत वह है, जिसने अपनी इन्द्रियों को परिकंपित किया, वासनाओं को नियंत्रित किया और मायामय संसार को परित्यक्त किया है। 'आनन्द' ने 'विवेकसार' की भूमिका में 'अवधूत' का परिचय निम्नलिखित पद्यों में दिया है—

> ममता अहंता से रहित जो प्राज्ञ नर निष्काम है।
> माया अविद्या से परे अवधूत उसका नाम है॥
> ज्ञानाग्नि सम्यक् बालकर सब कर्म दीन्हे हैं जला।
> निज तत्त्व को है जानता ज्यों हाथ में है आँवला॥
> कर्ता रहे है कर्म सब फिर भी न करता काम है।
> आकाश सम निर्लेप है अवधूत उसका नाम है॥[२३]

अवधूत की यह परिभाषा संभवतः एकपक्षीय है। दूसरा पक्ष शायद यह होगा कि 'अवधूत' वस्तुतः संसार के द्वारा भी परित्यक्त-सा होता है—इस अर्थ में कि उसका रहन-सहन अपने जैसा आप ही होता है; दुनियाँ उसे बुरा-भला कहती है और उसके कुटुम्ब, परिवार तथा परिजन भी उससे नाता तोड़ लेते हैं। वह माथे में तिलक, हाथ में कमण्डलु और कटि में कौपीन धारण कर 'बौराह' (बावला) बन जाता है।[२४] एक अन्य अर्थ में भी वह 'दुनियाँ से न्यारा' है; वह संसार में रहते हुए भी उसी तरह संसार से परे होता है, जिस तरह जल में कमल। जल से उत्पन्न होकर जल में तैरता हुआ भी कमल

का पत्ता उससे भींगता नहीं है। सच्चा संत, योगी, मुनिवर, ज्ञानी सबसे ऊँचा है। संत कबीर का एक पद देखिए—

जोगी गैले, जोग भी गैले, गैले मुनिवर ज्ञानी।
कहे कबीर एक संत न गैले, जाके चित ठहरानी॥[२५]

२. सद्‌गुरु

भक्ति और साधना के क्षेत्र में गुरु का अत्यन्त अधिक महत्त्व है। सगुण तथा निर्गुण दोनों धाराओं के कवियों तथा संतों ने इस महत्त्व को प्रतिपादित किया है। गोस्वामी तुलसीदास ने अपने 'रामचरितमानस' के प्रारम्भ में—'गुरु पद पदुम परागा' की वन्दना की है और यह कहा है कि गुरु की कृपा से गुप्त और प्रकट सभी भेद दीख पड़ने लगते हैं। निर्गुण संत-मत में गुरु की महत्ता और अधिक बढ़ जाती है; क्योंकि इसमें ध्यान-योग को साधना का अनिवार्य अंग माना गया है और प्रसंगतः हठयोग की भी प्रक्रियाओं को प्रश्रय मिलता है। निरे ग्रन्थों के अध्ययन से यौगिक क्रियाओं का अभ्यास संभव नहीं है; क्योंकि कई उदाहरण ऐसे देखे गये हैं, जिनमें बिना गुरु के निर्देश से उन क्रियाओं का अभ्यास करनेवालों को शारीरिक तथा मानसिक क्षति पहुँची है। कुछ तो विधिवत् प्राणायाम आदि नहीं करने के कारण उन्मत्त होते देखे गये हैं। इसके अतिरिक्त तांत्रिकों और उनसे प्रभावित मतों में बहुत-से मंत्र और साधना की विधियाँ गुप्त तथा रहस्य के आवरण में ढककर, रखी जाती हैं और महीनों तथा वर्षों गुरु की निरन्तर सेवा के पश्चात् ही साधक को उनकी प्राप्ति होती है। उदाहरणतः, तंत्र-मत तथा शाक्त मत में भैरवी-पूजा और कन्या-पूजा का विधान है। ये पूजाएँ अत्यन्त गोपनीयता के वातावरण में संपन्न होती हैं। इनमें और औघड़-मत में 'श्मशान-क्रिया' का भी विस्तृत विधान है। इसके द्वारा साधक शवों के माध्यम से अभिचार तथा साधना करते हैं और भूत, पिशाच, प्रेत, डाकिनी, शाकिनी आदि इतर लोकों की शक्तियों का आवाहन करते हैं। स्पष्ट है कि इस प्रकार की क्रियाएँ और साधनाएँ गोपनीय ढंग से ही की जा सकती हैं और इसके लिए किसी कुशल अभ्यस्त साधक अथवा गुरु की अनिवार्य अपेक्षा है। प्रत्येक साधक को गुरु से दीक्षा लेनी पड़ती है और गुप्त गुरु-मंत्र ग्रहण करना पड़ता है। आधारभूत भावना संभवतः यह है कि प्रत्येक विद्या के लिए पात्र होना चाहिए; क्योंकि अपात्र में संक्रमित विद्या न केवल वंध्य होती है, बल्कि अनिष्टकर भी हो सकती है। पात्र की पहचान के लिए आवश्यक है कि उसकी परीक्षा की जाय और परीक्षा के लिए एक परीक्षक अथवा गुरु का होना आवश्यक है। इन विचार-बिन्दुओं को ध्यान में रखते हुए हम यह सहज ही अनुमान कर सकते हैं कि संत-मत में गुरु की सर्वातिशायी महिमा क्यों गाई गई है।

किनाराम ने लिखा है कि गुरु ही चारों वेद, अग्नि, चन्द्रमा, सूर्य, पृथ्वी, आकाश, पवन, जल, त्रिभुवन, चारों युग और तीनों लोक हैं; उनकी छत्रच्छाया में हम

अभय विचरण कर सकते हैं। गुरु जीवों के जीव परमजीव शिव हैं, वे ज्ञान के भी ज्ञान और सर्वस्वमूल हैं; वे निर्मल नित्य-स्वरूप और संकटहरण हैं; वे मोक्ष-रूपी पवित्र परम पद को देनेवाले हैं।[२६] एक दूसरे संत गुरु को परम ब्रह्म मानकर उनका नमन, भजन तथा स्मरण करते हैं।[२७] गुरु नित्य, शुद्ध, निराकार, निर्मल, चिदानन्द का प्रबोध कराते हैं। वे आदि और अनादि दोनों हैं; गुरुदेव आदि हैं और परम गुरुदेव अनादि हैं। गुरु-मंत्र के समान दूसरा कोई मंत्र नहीं है, अतः 'नमो नमो गुरु श्री भगवाना'। सभी तीर्थों में स्नान करने से जो फल होता है वह गुरु-चरणोदक लेने के फल का सहस्रांश भी नहीं है; ब्रह्मा, विष्णु और महेश भी गुरु की तुलना नहीं कर सकते।[२८] गुरु-चरणामृत के पान करने से क्षण में पाप-रूपी पंक सूख जाता है और ज्ञान-रूपी दीप प्रज्वलित हो जाता है, मानव भव-वारिधि को पार कर जाता है और उसके जन्म-कर्म-जनक अज्ञान का नाश हो जाता है। जो भक्त गुरु का चरणामृत पीता है, गुरु का उच्छिष्ट भोजन करता है, गुरु-मंत्र का ध्यान करता है और गुरुनिष्ठ होकर गुरु की स्तुति करता है, वह ज्ञान और विराग की सिद्धि प्राप्त करता है।[२९] गुरुदेव को साक्षात् देव समझना चाहिए। वे विपत्ति को हरते हैं और दुःख-द्वन्द्व को नष्ट करते हैं। गुरु ही एकमात्र सत्य तत्त्व हैं। वेद, पुराण, शास्त्र, इतिहास, मंत्र, तंत्र, वैष्णव, शैव, शाक्त, सौर आदि गुरु के बिना वितंडावाद मात्र है। 'गुरु' शब्द की व्युत्पत्ति करते हुए बताया गया है कि 'गु' अज्ञान का वाचक है और 'रु' प्रकाश का। अतः गुरु वह है, जो अज्ञान-रूपी अंधकार को दूर कर ज्ञान-रूपी प्रकाश प्रदान करता है।[३०] जो भक्त बिना तीर्थों का भ्रमण किये घर में ही रहकर गुरु की सेवा करता है, उसे राम मिलते हैं।[३१] गुरु शब्द की जैसी व्युत्पत्ति ऊपर दी गई है, उसी से मिलती-जुलती व्याख्या 'गुरु-भक्त जयमाल' में संस्कृत श्लोकों में दी गई है। एक दूसरी भी व्याख्या दी गई है, जिसमें 'गकार' से सिद्धि की प्राप्ति, 'उकार' से शम्भु का ध्यान, और 'रकार' से पाप का विनाश माना गया है।[३२] अलखानन्द ने गुरु और ईश्वर को अभिन्न माना है और उसके प्रतिपादन में उन उपमाओं को प्रस्तुत किया है, जिन्हें हम अद्वैत ब्रह्म और द्वैत जगत् अथवा निर्गुण और सगुण की विवेचना में प्रस्तुत करते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि गुरु उसी प्रकार ईश्वर की अभिव्यक्ति है, जिस प्रकार तरंग, फेन और बुद्बुद जल के, अनेक-विध भाजन मिट्टी के और अंग-अंग के भूषण सोने के।[३३] मायामय शरीर से लिपटा हुआ जीवात्मा दूषित तथा मैला रहता है। गुरु ही उसे उस प्रकार परिष्कृत करते हैं। जिस प्रकार कुम्हार बर्तन गढ़ने के पहले मिट्टी को, स्वर्णकार आभूषण बनाने के पहले सोने को, लोहकार यंत्र बनाने के पहले लोहे को, बढ़ई सामान बनाने के पहले लकड़ी को तथा दर्जी पोशाक सीने के पहले कपड़े को।[३४] जिस प्रकार वैद्य रोगयुक्त नेत्र को अंजन की शलाका डालकर रोगमुक्त करता है, जिस प्रकार हकीम पीप से भरे फफोलों को चीरकर स्वर्णसदृश शरीर को स्वस्थ करता है, जिस प्रकार चिकित्सक रोगोपयुक्त औषधि देकर मरते हुए को भी बचा लेता है, और जिस प्रकार शिला-शिल्पी ऊबड़-खाबड़ पत्थर से सुडौल शिला-पट गढ़ लेता है, उसी प्रकार गुरु भ्रम को दूर कर सत्य को प्रदर्शित करते हैं।[३५]

किनाराम ने गुरु को कल्पतरु के सदृश माना है; क्योंकि उन्हींकी कृपा से उन्हें आत्मानुभव हुआ।[३६] उन्होंने समग्र संसार का व्यवहार तथा अद्वैत तत्त्व सद्गुरु की कृपा से ही जाना। जहाँ ज्ञान की पहुँच नहीं है और जहाँ कर्म की गति नहीं है, उस परम तत्त्व को गुरु ने प्रकट दिखला दिया। उससे शिष्य को सच्चा अनुभव हुआ और 'सोऽहम्' हो गया।[३७] यह संभव नहीं कि कोई अत्यंत अगाध, अतिशय अगम और व्यापक ब्रह्म को बिना गुरु-कृपा के जानकर निर्वाण प्राप्त कर सके।[३८] गुरु से 'लगन' लगाये बिना मुक्ति संभव नहीं है।[३९] गुरु सर्वस्व-सामर्थ्ययुक्त है, अतः जो गुरु की शरण में आया, उसे धन-धाम को कौन कहे, मुक्ति भी सहज ही मिल जाती है। जिसने राम-नाम की डोरी पकड़ ली, उसे कोई चिन्ता नहीं; क्योंकि उसकी रखवाली सद्गुरु स्वयं करते हैं। साधना ही नहीं, भजन के लिए भी गुरु की आवश्यकता है।[४०] सद्गुरु का शब्द उस जहाज के समान है, जिस पर चढ़कर भक्त रामनाम रूपी पतवार के सहारे भवसागर पार उतर सकता है।[४१] एक दूसरे पद में सद्गुरु को 'भँवर में पड़ी हुई नैया' का 'खेवैया' कहा गया है।[४२] अलखानन्द कहते हैं कि 'माधो गुरु बिन तरै न कोई'।[४३] बिना गुरु से ज्ञान पाये भ्रम नहीं मिटता और नित्य ब्रह्म तथा अनित्य जगत् का तात्त्विक अद्वैत समझ में नहीं आता। 'गुरु' ये दो अक्षर सभी मंत्रों के राजा हैं और इनमें ही आगम-पुराण सब निहित हैं।[४४] तृण से ब्रह्म-पर्यन्त सब गुरु में अन्तर्निष्ठ है। सच पूछिए तो 'परमात्मा श्री गुरु भगवन्ता'। जितने भी तीर्थ हैं, वे सभी गुरुचरण के अँगूठे में निवास करते हैं।[४५] एक दृष्टि से गुरु भगवान् से भी बढ़कर है। व्यापक भगवान् सूक्ष्म और अदृश्य है, किन्तु गुरु प्रकट और दृश्यमान हैं।[४६] निर्गुण अकल असंभ्रित देश का निवासी है; वहाँ तक पहुँचना केवल गुरुमुख के आदेश से ही संभव है।[४७] आत्मा में गुरु-ज्ञान का प्रकाश वैसा ही है, जैसा सघन अंधकार में सूर्य की किरणों का आलोक।[४८]

'आनन्द-सुमिरनी' में 'संत सुन्दर' लिखते हैं कि इश्क की मंजिल बहुत दुश्वार होती है; लेकिन सद्गुरु अथवा पीर की कृपा (करम) हो, तो आसान हो जाती है। वेद और कुरान हमें 'राहे वफ़ा' पर नहीं ले जा सकते। यह तो 'फ़ज़्ले मुर्शद' है कि जिससे हमें आनन्द की प्राप्ति होती है।[४९] यदि गुरु की दृष्टि हम पर तिरछी पड़ती है, तो हमारा कल्याण नहीं; जिस पर सीधी और पूर्ण दृष्टि पड़ती है, वह प्रेम-सुधारस में निमग्न हो जाता है।[५०] संत रजपत्ती लिखती हैं—गुरु ने प्रेम का प्याला पिला दिया है और नयन से नयन मिलाकर हृदय में 'प्रेम का भाला' गाड़ दिया है; मेरी सुध-बुध नष्ट हो गई और मैं मतवाली बन गई; मुझे दिन-रात कभी नींद नहीं आती, मैं बेचैन हूँ, मेरे हृदय में रह-रह कर ज्वाला उठती रहती है।[५१] क्षण भर भी गुरु की मुखाकृति नहीं भूलती, मेरे नयन उसके चरण-कमल के लोभी बने रहते हैं, मैंने अपना तन-मन-धन और 'सुरति' गुरु को ही निछावर कर दी है।[५२] गुरु के प्रति भक्ति को पूर्ण शिष्टाचार के साथ बरतना चाहिए; क्योंकि गुरु और राम में कोई अन्तर नहीं।[५३] जो गुरु की निन्दा करता है, वह रौरव नरक का भागी होता है। अन्यत्र लिखा है कि कुछ शिष्य अपनी बुद्धि-विद्या

के अहंकार में गुरु से 'हुतुज' (वाद-वितंडा) करते हैं और ब्रह्मचर्चा में गुरु को हरा देते हैं; ऐसे लोग दूसरे जन्म में निशाचर और ब्रह्म-पिशाच होते हैं।[५४] कुछ मूर्ख गुरु के समीप ही निर्लज्जता से मल-मूत्र का परित्याग करते हैं; ये महानरक के अधिकारी होते हैं।[५५] गुरु-मुख की विद्या बिना भक्ति के प्राप्त नहीं की जा सकती। चौदहों भुवन, नागलोक, देवलोक सर्वत्र घूम जाइए; किन्तु गुरु के बिना रहस्य का ज्ञान नहीं हो सकता। अतः गुरु के लिए आसन, भोजन, वसन सबकी सुन्दर व्यवस्था करनी चाहिए और जहाँ से भी उत्तम वस्तु की प्राप्ति हो सके, उसे गुरु-चरणों में समर्पित कर देना चाहिए।[५६] गुरु से बढ़कर कोई तप नहीं, गुरु से बढ़कर कोई तत्त्व नहीं और गुरु से बढ़कर कोई ज्ञान नहीं।[५७] जो पूरी निष्ठा से गुरु की भक्ति नहीं करते हैं और संत-मत में आ मिलते हैं, वे धोबी के कुत्ते के समान न घर के होते हैं और न घाट के; क्योंकि उधर जातिकुल से नाता टूट ही गया, और इधर भजन का भेद भी गुरु से नहीं पाया।[५८] भक्त का सुपात्र होना आवश्यक है। हरेक सीप में स्वाति-बिन्दु मोती नहीं हो जाता; वही गजकुम्भ में गजमुक्ता होता है, तो सर्प के शीश पर विष बन जाता है।[५९] तात्पर्य यह है कि गुरु की कृपा रहते हुए भी यदि भक्त सत्पात्र नहीं है, तो उसको कोई लाभ नहीं हो सकता। भीखमराम कहते हैं कि ऐसी परिस्थिति में—

दोष न गुरु के सरनिया साधो ! समझहु अपन करनिया !

अतः जो आत्महित चाहता है, उसे सर्वदा गुरु का यशःकीर्त्तन करना चाहिए। जो ऐसा नहीं करता, वह खल, पापी और अभागा है।[६०] 'आनन्द' कहते हैं—

'आनन्द' गुरु परताप से, को नहीं भये समर्थ।
जिन गुरु चरनन ना गह्यो, तिनको जीवन व्यर्थ ॥[६१]

हमने ऊपर इस बात की चर्चा की है कि योग के साधना-पथ पर अग्रसर होने के लिए गुरु का पद-पद पर निर्देशन आवश्यक है। अतः संतों ने जब गुरु की महिमा गाई है, तो यह भी कहा है कि उन्होंने ब्रह्मतत्त्व के भेद अथवा रहस्य को प्रकट किया और ऐसी दिव्यदृष्टि दी, जिसके सहारे वे अमरपुर में अपना स्थान पा सके और मोक्षपद प्राप्त कर सके।[६२] टेकमनराम लिखते हैं कि 'सुंन भवन' में 'पिया' की 'बसगित' (निवास) है। वहाँ पहुँचकर सद्गुरु ने जगमग ज्योति दिखाई और 'त्रिवेणी-संगम' में स्नान कराकर अभ्यन्तर जप के सहारे शब्द-ब्रह्म का साक्षात्कार कराया।[६३] रामटहलराम गाते हैं—

सतगुरु शब्द लखाई साधो, सतगुरु शब्द लखाई।

मिनकराम हमको गुरु की 'नगरिया' चलने को आमंत्रित करते हैं, जहाँ हीरे और लाल उपजते हैं।[६४] 'आनन्द-जयमाल' में एक भक्त 'श्यामसूर' माधुर्य-भक्ति के आवेश में लिखते हैं—जब मैं 'पिया की अटरिया' चढ़ने चली, तो मुझे बहुत तंग गली मिली और दसवें द्वार पर वज्र की किवाड़ लगी थी, उसमें बड़ी साँकल लगी थी और 'कठोर ताला' बन्द था; इसे देखकर मैं निरुत्साह हो गई; लेकिन ज्योंही मैं लौटने लगी, त्योंही सद्गुरु मिल

गये, उन्होंने मेरी बाँह पकड़ ली, किवाड़ खोल दी और अपने साथ भीतर 'आनन्द की कचहरी' में ले गये।[६५] भक्तिन सुरसत्ती की यह गज़ल देखिए—

कठिन रास्ता जोग और ज्ञान का है।
कदम इस पै रखना जरा डरते-डरते॥
सहज ही है आनन्द भक्ति से मिलना।
मगर देर कुछ लगती है तरते-तरते॥
सुरसत्ती गुरु का चरण छोड़ना मत।
सँवर जायगा सब सँवरते-सँवरते॥[६६]

अगमनगरी के बन्द दरवाजे की कुञ्जी केवल गुरु ही दे सकते हैं। वे अवसर आते ही दरवाजा खोल देते हैं, जिससे कि हंस के साथ हंस मिल जाता है।[६७] टेकमनराम ने कहा है कि सद्गुरु की कुञ्जी से छहो ताले (षट्चक्र) खुल जाते हैं और ढकी हुई अनमोल वस्तु सूझने लगती है। बिना गुरु के मनुष्य शास्त्रीय ज्ञान प्राप्त कर सकता है, किन्तु उसे उस 'अनुभव' की, उस दैवी शक्ति की, प्राप्ति नहीं हो सकती, जिसके सहारे वह गगन-मण्डल में डेरा डाल सके।[६८] रामटहलराम ने इसे 'ममुक्ष-विचार' कहा है।[६९] 'आनन्द-सुमिरनी, में हनीफ़ नामक भक्त ने बताया है कि जिस तरह खुदा के साथ-साथ नबी का होना आवश्यक है, उसी तरह सत्पुरुष के साथ-साथ सद्गुरु का होना आवश्यक है। यही कारण है कि मुसलमान 'ला इलाहे इलिल्ला' कहकर ही सन्तुष्ट नहीं होते, जबतक साथ-ही-साथ 'मोहम्मदे रसूलिल्ला' नहीं कह लेते।[७०] आनन्द ने सद्गुरु के चरणों में रहकर उनकी कृपा से प्राप्त दिव्यदृष्टि में जो अद्भुत दृश्य देखे, उन्हें वे ज्यों-का-त्यों सदा-सर्वदा प्रत्यक्ष करते हैं[७१] और आनन्द की मस्ती में गा उठते हैं—

पीर के क़दमों पर हम, जिस दिन से कुर्बां हो गये।
जिस क़दर थे दिल में मेरे, पूरे अरमाँ हो गये॥[७२]

३. सत्संग

गुरु की सेवा और संतों की संगति का महत्त्व सभी अध्यात्मवादियों और धार्मिक पथ-प्रदर्शकों ने प्रतिपादित किया है। गोस्वामी तुलसीदास ने भी लिखा है—

तात स्वर्ग अपवर्ग सुख, धरिय तुला इक अंग।
तुलै न ताहि सकल मिलि, जो सुख लव सत्संग॥

अर्थात्, एक तरफ स्वर्ग और अपवर्ग का सुख तथा दूसरी तरफ सत्संग का सुख। दोनों की तुलना संभव नहीं है; क्योंकि स्वर्ग और अपवर्ग का सुख सत्संग-सुख के कणमात्र को भी नहीं पा सकता। प्रत्येक मानव में 'अहम्' की भावना निसर्ग से निहित होती है। यद्यपि अहम-भावना का सर्वथा निरोध उचित नहीं है, किन्तु यदि वह औचित्य की सीमा

पार कर जाती है, तो दर्प, अभिमान और अहंकार की संज्ञा ग्रहण करती है। अभिमानी व्यक्ति कभी उन्नति नहीं कर सकता। इसका कारण यह है कि वह दूसरे में अपने से अतिशायी गुण का आधान नहीं कर पाता। इसलिए प्रत्येक व्यक्ति को अपने में अहम्-भावना के साथ-साथ आत्मनियोजित दैन्य-भावना का समावेश करना चाहिए। प्रकृति और समाज भी हमको यही शिक्षा देते हैं। एक शिशु अपने छोटे भाई के प्रति तो बड़प्पन का अनुभव करता है, किन्तु अपने बड़े भाई अथवा माता-पिता के प्रति विनय का अनुभव करता है। विनय और बड़प्पन का संतुलन ही मानव-जीवन के समुचित विकास का प्रेरक है। विनय की साधना के लिए सबसे उपयुक्त क्षेत्र है भक्ति का क्षेत्र। अन्य क्षेत्रों में बड़े और छोटे का तारतम्य सर्वदा विद्यमान रहता है। उदाहरणतः, एक-से-एक धनी इस दुनियाँ में हैं और यह कहना कठिन है कि कोई भी ऐसा धनी है, जिससे बढ़कर दूसरा धनी नहीं है। यदि वर्त्तमान में इस प्रकार का सबसे बड़ा धनी मिल भी जाय, तो उसे भय लगा रहेगा कि दूसरे ही क्षण उसका प्रतिस्पर्द्धी उससे अधिक धनी न हो जाय। किन्तु भक्ति के क्षेत्र में यह बात नहीं। भगवान् से बढ़कर और उससे बड़ा कोई नहीं है। अतः वह छोटे-से-छोटा भक्त भी, जो भगवान् की शरण में आता है, यह अनुभव करता है कि वह ऐसी सत्ता के समीप है, जो बड़ी-से-बड़ी है और जिससे बड़ी न अतीत में थी और न भविष्य में होगी। परिणाम यह होता है कि उसकी आत्मारोपित दैन्य-भावना परिष्कृत अहम्-भावना का रूप ग्रहण कर लेती है और उसे किसी प्रकार का वह मनःक्षोभ नहीं होता, जो दैन्य की परिस्थिति में हुआ करता है।

सत्संग, अर्थात् भगवद्-भक्तों की संगति, में आने से हम विश्व की बड़ी-से-बड़ी सत्ता से अधिक-से-अधिक सान्निध्य प्राप्त करते हैं और हमारे मन के सारे मैल धुल जाते हैं।[७३] सत्संग से दूसरा लाभ यह होता है कि हम थोड़ी देर के लिए विषय-वासना की दुनिया से हटकर एक ऐसी दुनिया में पहुँचते हैं, जहाँ हमें अध्यात्म-पथ के पथिक मिलते हैं। इससे हमारे हृदय में आत्मा और अनात्मा, नित्य और अनित्य, स्थायी और क्षणिक के बीच जो भेद है, वह स्पष्ट दिखाई देने लगता है और हम अनित्य से नित्य की ओर और अनात्म-तत्त्व से आत्म-तत्त्व की ओर अग्रसर होने को लालायित हो जाते हैं। इसीका नाम है विवेक, और यह बिना सत्संग के संभव नहीं है।[७४] इसके अतिरिक्त राम-नाम-बिन्दु में सिन्धु है। वह विराट् ब्रह्म का बीजमंत्र है। प्रत्येक बीजमंत्र का एक रहस्य होता है और उस रहस्य के उद्घाटन के लिए विशेष पद्धति अथवा 'गुर' (formula) की आवश्यकता है। यह पद्धति सत्संग से ही सीखी जा सकती है।[७५] साधुओं की संगति कल्पवृक्ष के समान है, जिसके सेवन से संसार के सभी दुःख और क्लेश मिट जाते हैं। यह मनुष्य-जन्म वृथा नहीं खोना चाहिए; क्योंकि जिस तरह एक पत्ता जब डाल से सूखकर गिर जाता है, तो फिर उसमें नहीं लगता, उसी तरह मानव-जीवन खोया, तो हम फिर से उसे नहीं पा सकते। पोथी-पुस्तक हम न पढ़ें, तो न पढ़ें, किन्तु सत्संग अवश्य करें। 'साहब' न स्वर्गलोक में मिलेंगे, न चारों धाम में, वे तो साधु-संग में मिलेंगे।[७६]

चाहे मनुष्य के हृदय में कितनी ही चिन्ता, कितना ही क्षोभ क्यों न हो, सत्संग में आते ही चित्त स्वस्थ हो जाता है।[७७] जिन लोगों ने जब-जब संतों से वैर किया, उन लोगों ने तब-तब अपने दुष्कर्म का फल भोगा। हिरण्यकशिपु और रावण इसके ज्वलंत उदाहरण हैं।[७८]

इसलिए जब कभी अवसर मिले, सत्संग और साधुओं की सेवा करनी चाहिए।

वह घड़ी अच्छी है सबसे, वह पहर अच्छा है।[७९]

जिस दिन और जिस घड़ी संत-'पाहुन' हमारे घर आ जाय, उस दिन और उस घड़ी को शुभ लग्न समझना चाहिए। संत के आते ही जिज्ञासुओं की भीड़ लग जायगी। उनके दर्शन कर हमारे नयन तृप्त हो जायँगे और हमारा रोम-रोम पुलकित हो उठेगा। उनसे हमें दिव्यदृष्टि भी मिलेगी।[८०] अनेक दीक्षाएँ, अनेक उपदेश तथा वेद-वेदान्तों की शिक्षाएँ हमें भव-सिन्धु के पार नहीं उतार सकतीं, किन्तु 'संत-पथ' ग्रहण करने से हम अनायास भवसागर पार कर सकते हैं।[८१] मानव-जीवन की अचिरस्थायिता को ध्यान में रखते हुए हमें समझना चाहिए कि सत्संग एक दुर्लभ वस्तु है और कोई भी अवसर सत्संग का नहीं खोना चाहिए।[८२] भक्त महादेव के शब्दों में—

सुजन जन का सत्संग करते रहो तुम।
सुधर जायगा फिर करम धीरे-धीरे ॥[८३]

४. रहनी अथवा आचार-विचार

(क) जात-पाँत

जात-पाँत भारत देश की एक चिरंतन समस्या है। वर्ण के रूप में मानवों का विभाजन तो जब से भारतीय सभ्यता अथवा आर्य सभ्यता है, तभी से प्रचलित है। ऋग्वेद के पुरुष-सूक्त में "ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः। ऊरू तदस्य यद् वैश्यः पद्भ्याम् शूद्रो अजायत"—इस मंत्र में ब्राह्मण आदि वर्णों का ऐसा उल्लेख है कि जिससे अनुमान किया जा सकता है कि हजारों वर्ष पहले के उस धुँधले अतीत में भी जात-पाँत की वर्त्तमान प्रथा का बीज सुषुप्त रूप में विद्यमान था। वर्त्तमान वैज्ञानिक युग में जब हमारा सम्पर्क पाश्चात्य देशों के साथ अत्यन्त घनिष्ठ हो गया है, हमें इस जात-पाँत की प्रथा में दोष अधिक और गुण कम नजर आते हैं। आजकल ही नहीं, सदियों से भारतवर्ष में ऐसे विचारकों की कमी नहीं रही है, जिन्होंने इस प्रथा का तीव्र विरोध किया है। सर्वप्रथम तीव्र विरोध सम्भवतः महात्मा बुद्ध और महावीर ने आज से लगभग ढाई हजार वर्ष पहले किया। तब से धार्मिक तथा सामाजिक क्षेत्र में ऐसे सुधारकों की अविच्छिन्न धारा प्रवाहित होती आ रही है, जिन्होंने आर्य जाति अथवा हिन्दू जाति की जात-पाँत की परम्परा का विरोध किया है। यह विरोध दो प्रकार का हुआ है—आत्यन्तिक तथा आंशिक। कबीर आदि संत आत्यन्तिक विरोधवादी थे; उन्होंने जात-पाँत को सर्वथा तथा सब दृष्टि से निन्दनीय प्रतिपादित किया। इसके विपरीत रामकृष्ण परमहंस, विवेकानन्द, दयानन्द,

राममोहन राय आदि ने शत-सहस्र शाखाओं तथा उपशाखाओं में बँटी हुई जात-पाँत का तो निराकरण किया, किन्तु वर्ण-धर्म को वैदिक मानकर उसका समर्थन किया। उन्होंने यह भी बताया कि वर्ण जन्म से नहीं, बल्कि गुण-कर्म से निर्धारित होता है। सूर, तुलसी आदि का स्थान मध्यस्थानीय माना जा सकता है। उन्होंने प्रचलित परम्परा का यदि समर्थन नहीं किया तो कम-से-कम अंगीकरण अवश्य किया। उन्हें हम वस्तुस्थितिवादी कह सकते हैं।

कबीर आदि सन्तों ने मानवता के उच्चतम तथा व्यापक धरातल पर अवस्थित होकर धर्म, सम्प्रदाय, वर्ण, जाति आदि के आधार पर निर्मित सभी वर्गभेदों की निर्दयतापूर्वक निन्दा की। निदर्शन के रूप में कबीर के एक-दो पद पर्याप्त होंगे—

> एक बून्द एकै मलमूतर, एक चाम एक गूदा।
> एक ज्योति थैं सब उत्पन्ना, कौन बाम्हन कौन सूदा॥
> जो तुम ब्राह्मण-ब्राह्मणी जाया, और द्वार ह्वै काहे न आया।
> तो तुम तुरक-तुरकिनी जाया, पेटहि काह न सुनत कराया॥

सरभंग-सम्प्रदाय के सन्त जात-पाँत-सम्बन्धी विचारों में कबीर से पूर्णतया सहमत हैं। उन्होंने पद-पद पर गिद्ध, अजामिल, गणिका, व्याध आदि की सर्वप्रचलित कथाओं की दुहाई देते हुए बताया है कि तथाकथित नीच जाति से उत्पन्न भी ऊँचे-से-ऊँचे महात्मा तथा विद्वान् हो गये हैं और तथाकथित ऊँची जातियों से उत्पन्न व्यक्तियों ने भी घोर-से-घोर निन्दनीय कार्य किये हैं। इस प्रकार के उदाहरण तो वर्त्तमान काल में भी यत्र-तत्र-सर्वत्र विद्यमान हैं। 'भ्रमनाशक प्रश्नोत्तरी' में इस प्रश्न पर विवेचन करते हुए लिखा है—

"स्वायंभुव मनु बंस में रिखदेव नामक बड़ा धर्मात्मा राजा होता गया। तिस के सत (सौ=१००) पुत्र हुए। तिनमें से ८१ पुत्र कर्मों कराके ब्राह्मण हो गए और सब छत्रिय रहे। देखिये, यहाँ पर भी, गुण की प्रधानता सिद्ध हुई, क्योंकि कर्मरूपी गुन करके छत्रिय से ब्राह्मण हो गये। जदि जाति प्रधान होती तब कर्मों करके ब्राह्मण न होते। और विश्वामित्र तप करके छत्रिय से ब्राह्मण हुए; और श्रींगी रिखि मृगी के उदर से उत्पन्न हुए, वह भी तप करके महत पदवी को प्राप्त हुए; और वसिस्ट वेश्या के गर्भ से उत्पन्न हो करके तप के प्रभाव से महान पदवी को प्राप्त हुए। ईसी से साबित होता है कि गुण ही मुख है, जाति आदिक केवल व्यवहार की सिद्धि के लिए है।"[८४]

पुनश्च

"जाति किसका धर्म है? अस्थूल शरीर का धर्म है व आत्मा का धर्म है व लिंग-शरीर का धर्म है व अन्तःकरन इंद्रियों का धर्म है? इनमें से अस्थूल शरीर का धर्म तो बनता नहीं। यदि अस्थूल शरीर का धर्म है तब शरीर की उत्पति-काल में ही दिजत्व-भाव तिस बालक में विदमान है; संस्कार करके दिज होता है यह श्रुति व्यर्थ हो जावैगी और संस्कार करना भी निसफल हो जावैगा, क्योंकि धर्म बिना धर्मी रह नहीं सक्ता।"[८५]

पुनश्च

"मुक्ति में और स्वर्ग की प्राप्ति में जाति आदिक कुछ उपकार नहीं कर सक्ता।... और अज्ञानी जीव है वही मिथ्या जाति आदिकों में अभिमान करके जन्म-मरन रूपी संसार-चक्र में भ्रमते हैं।"[८६]

टेकमनराम लिखते हैं कि—

राम निवाज दाया कैली सतगुरु सहजे छुटल कुल जतिया।[८७]

अथवा

एक इटिया में पाँच गो इनरवा, हो सजनवाँ।
श्री टेकमन महराज तेजे कुल जतिया, हो सजनवाँ॥[८८]

अथवा

भभूती रमा के अजब रूप धइलीं।
जतिया गँवा के साधुन संग पवलीं॥[८९]

अथवा

रहेला सकल से न्यारे साधो, रहेला सकल से न्यारे।
ना वोहि कुल-कुटुम्ब कहावे, ना वोहि कुल परिवारा॥
ना वो हिन्दू तुर्क कहावे, ना वोहि जात चमारा।
ना वो उपजे ना वो बिनसे, कर ज्ञान निरबारा॥[९०]

ऐसे और उद्धरण न देते हुए हम यह कहना चाहेंगे कि सरभंग अथवा अघोर-मत में जात-पाँत के प्रति घोर अनास्था है। हिन्दू-मुसलमान, ऊँच-नीच सभी उसमें दीक्षित होने के अधिकारी हैं।

(ख) छुआ-छूत

जात-पाँत से ही मिलती-जुलती समस्या छुआ-छूत के नाम पर शुद्धि तथा अशुद्धि की है। आज कच्ची-पक्की रसोई और चौके के नाम पर शुद्धि और पवित्रता-सम्बन्धी अनेकानेक भ्रांतियाँ फैली हुई हैं। 'भ्रमनाशक प्रश्नोत्तरी' में इनका कुछ गंभीर तत्त्वों के आधार पर निराकरण किया गया है—

"तो जगत की उत्पति में दो कारण हैं—एक चेतन आत्मा और दूसरी जड़ माया। दोनों में से आत्मा तो नित्य ही सुध है और माया सर्वदा अशुद्ध और येसे नेम है जो जिसका स्वभाव है वह अन्यथा कदापि नहीं होता। तब अशुद्ध स्वभाववाले जो माया तिसका कार्य यह जगत कैसे सुध होगा, किन्तु कदापि नहीं हो सकता। जितने जीव हैं उन्होंने अपनी-अपनी कल्पना कर रखी है। जो मांस का भक्षन करनेहारा है उन्होंने तिसका नाम सुधी रख दिये हैं, जो नहीं भक्षन करते हैं उन्होंने तिसका नाम अमृत रखा है

और दोनों अपने-अपने मत में प्रमाण भी सास्त्रों के देते हैं। इसी तरह और भी बहुत से पदार्थ हैं जिनमें सुधि असुधि की कल्पना होती है परन्तु इसका निरन्ये होना अति कठिन है। इससे यही सिद्ध होता है कि आत्मा से अतिरिक्त जितना प्रपंच है सब अनिर्वचनीय है। आतमा के अज्ञान करके ही भासता है और जगत में सुधि-असुधि भी सब कल्पना मात्र है। विचार द्रिरिट से देखिये तो आतमा से भिन्न कोई वस्तु सत्य नहीं, केवल आतमा ही सत्य है और जो लोग अति आचार करके पदार्थों में सुधि की कल्पना करते हैं उनसे हम पुछते हैं कि कारन की सुधि-असुधि कार्ज में आती है अथवा कार्ज में अपने आपसे ही सुधि असुधि उतपन होती है। जदि कहो कारन की सुधि-असुधि कार्ज में आती है अर्थात जो सुध कारन होता है उसका कार्ज भी सुध होता है जो असुध कारन होता है उसका कार्ज भी असुध होता है। येसा जदि कहो तो नहीं बनता क्योंकि मदिरा के कारन जो गुड़ आदिक उनको सब कोई सुध नहीं मानते और अति आचार करने वाले भी गुड़ को भछन करते हैं परन्तु मदिरा को नहीं ग्रहन करते और उसको असुध मानते हैं। इस जुक्ति से यह सिध होता है कि जो कारन की सुधि कार्ज में नहीं आती और यह भी नियम नहीं जो असुध कारन से असुध ही कार्ज उतपन हो क्योंकि अजा आदिकों के रोमों की धुलि पड़ने से असनान करना कहा है और कृमियों की विस्टा के स्परस होने से असनान करना कहा है उन्हीं आदिकों के अपवित्र रोमों का कार्ज जो कंबल आदिक और कृमियों के विस्टा का कार्ज जो पीताम्बर आदिक उनको सब कोई सुध मानते हैं और सास्त्रों में भी उनको सुध लिखा है। इस जुक्ति से सिध होता है जो कारन की असुधि भी कार्ज में नहीं आती। जदि प्रथम पछ को ग्रहन करोगे अर्थात जो असुध कारन होता है उसका कार्ज भी असुध होता है तब तो सब आचार बेयर्थ हुआ क्योंकि जिस बिर्ज की बिन्दु के स्पर्स हो जाने से सचैल असनान करना पड़ता है तिस बिर्ज का कार्ज जो यह अस्थूल सरीर वह कैसे सुध होगा, किन्तु कदापि नहीं होगा। जब सरीर आचार से सुध न हुआ तब तो अर्थ से आचार बेयर्थ हुआ और यक पाखंड सिध हुआ। जो पाखंड पाप का बीज है तिसका त्याग ही करना उचित है और भारत में कहा है—यह सरीर कैसा है? अपवित्र।

प्र०—कारन की सुधि कार्ज में नहीं आती किन्तु अन्य पदार्थों के साथ संबंध होने से कार्ज में सुधि-असुधि प्राप्त होती है।

उ०—संबंध करके भी सुधि असुधि नहीं हो सक्ती क्योंकि जिस काल में सुध पदार्थ का असुध पदार्थ के साथ संबंध होगा तिस काल में वह असुध पदार्थ सुध को भी असुध कर देगा जैसे अपवित्र पात्र में गंगाजल को भी अपवित्र कर देता है; फिर वह सुध कैसे होगा। जदि कहो अपने करके आपही होगा तब प्रथम ही अपने करके आपही सुध हो जावैगा। संबंध मानना बेयर्थ हुआ। जदि कहो दुसरे करके होगा तब वह दुसरा किस करके होगा? जदि कहो दुसरा प्रथम करके होगा अन्योन्याश्रय दोख आवैगा। दुसरा सुध होले तब वह प्रथम को सुध करे, जब प्रथम पहले सुध होले तब वह दुसरे को सुध करे, यह अन्योन्याश्रय दोख है। जदि तीसरे करके मानोगे तब चक्रक

चतुर्थ करके मानोगे तो अनअवस्था दोख आवैगा और वह दोख जब कि सुध का असुध के साथ संबंध होगा उसी काल में असुध को भी सुध कर लेगा, क्योंकि जैसे असुध का स्वभाव है जो सुध को असुध कर देना वैसे सुध का भी स्वभाव है जो असुध को सुध कर देना। तब अपवित्र पात्र में जो गंगाजल है वह उस पात्र को भी सुध कर लेगा जैसे बरखा रितु में सम्पुरन देसों का मल गंगाजी में बहकर जाता है और वह गंगाजल सुध कर लेता है और तिसी को आप सुध मान लेते हैं। संबंध करके अब इस पात्र के जल को भी सुध मानना पड़ेगा और इस जग में जितने पदार्थ हैं सब का परस्पर संबंध है। येसा कोई पदार्थ नहीं जिसका दुसरे किसी पदार्थ के साथ साछात या परम्परा सम्बन्ध न हो। अब तुमको संसार भर के पदार्थों को सुध ही मानना पड़ेगा या सबको असुध ही मानना पड़ेगा। जदि सबको सुध ही मानोगे तब आचार बेयर्थ हुआ, क्योंकि आचार तो असुध को सुध करने वास्ते था; सो तो है ही नहीं। जदि सब पदार्थों को असुध मानोगे तब भी आचार बेयर्थ है, क्योंकि सुध करनेवाला कोई रहा नहीं। जदि जल, अग्नि, पवन, इनके संबंध करके सुधि मानोगे सो भी नहीं बनता, क्योंकि यह सब माया का कार्ज है; इनका कारन सुध नहीं तब यह कैसे सुध होवेगा और इनमें सुधि कहाँ से आई। जदि कहो स्वरूप से ही सुध है तब अपवित्र अस्थान में जो प्राप्त है जलादि तिनको भी सुध मानो। जो उनको सम्बन्ध करके अपवित्र मानोगे तब पुर्व कहे जो दोख है वही फिर प्राप्त होवैगा। इस वास्ते यह सब तुम्हारा कथन असंगत है।"[११]

(ग) सत्य अहिंसा, संयम और दैन्य

हमने देखा है कि संतों के संसार में किताबी ज्ञान का उतना महत्त्व नहीं है, जितना कि आन्तरिक अनुभूति और संयत आचार-विचार का। आचार-विचार को प्रायः 'रहनी' शब्द से द्योतित किया गया है। रहनी के अनेकानेक नियमों में सत्य और अहिंसा का स्थान बहुत ऊँचा है। महात्मा गांधी ने भी इन दो गुणों को धर्म-कर्म का मूल माना है। वस्तुतः सत्य क्या है? अपनी आत्मा में हम जो समझें, वचन से ठीक वैसा ही प्रकट करें और कर्म में उसे ही परिणत करें—यही सत्य है। तात्पर्य यह कि सत्य जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में संगति, समन्वय तथा एकरसता लाता है। पाप क्या है? जिसे हम सत्य समझते हैं, उसका जानबूझ कर तिरस्कार। इसीलिए चाहे किसी प्रकार का पाप हो, उसका निवारण एकमात्र सत्य के सतत पालन से संभव है। किनाराम ने कहा है—

> साँचि कहिय साँचो सुनिय, साँचो करिय विचार।
> साँच समान न और कछु, साँचो संग सम्हाल॥[१२]

अहिंसा भी, सच पूछिए तो, सत्य का ही रूप है। सत्य का अर्थ ही है अविनाशी अथवा अविनश्वर। जो स्थायी है वह सत्य है, जो अस्थायी है, वह असत्य है। हिंसा के द्वारा हम भगवन्-निर्धारित किसी स्थिति का विनाश करते हैं। विनाश करने का अधिकार उसी का होता है जिसे निर्माण करने का। यदि हम ईश्वर-निर्मित स्थायित्व

को—चाहे वह अल्पकालीन भी क्यों न हो—अस्थायित्व में परिणत करते हैं, तो हम सत्य की अवहेलना करते हैं। दुनिया में देखा जाता है कि पाखण्डी जन बड़ी-बड़ी ज्ञान की बात कहते हैं; यज्ञ, व्रत और स्नान में निरत रहते हैं, किन्तु उनके हृदय में 'कपट' रहता है। वे 'हाड़', 'चाम', रक्त-मल से दूषित शरीर का मांस खाते हैं और आश्चर्य यह कि फिर भी पंडित कहलाते हैं। दूसरों को वेद, पुराण और कुरान पढ़कर समझाते हैं, किन्तु स्वयं उनका मर्म नहीं समझते। यदि समझते तो फिर जीवहत्या क्यों करते! वधिक और वध्य वस्तुतः अभिन्न हैं, किन्तु वे भूत-भवानी की पूजा के नाम पर उन्हें भिन्न मानकर पशुओं की बलि चढ़ाते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि अन्धे ही अन्धे को राह बता रहे हैं और बहरे ही बहरों को वाणी प्रदान कर रहे हैं।[९३] मनुष्य यह नहीं समझते हैं कि संसार में जितने भी प्राणी हैं, उन्हें लघु जीवन मिला है और अतः वे दया के पात्र हैं न कि हिंसा के। जो जीव-हत्या करते हैं और मांस-भक्षण करते हैं, वे मानव नहीं दानव हैं। अगर मैथिल पंडितों से पूछिए तो पर-पीड़ा के दुष्परिणाम का श्रुतिसम्मत विवेचन करेंगे, किन्तु आप बकरा काटकर खायेंगे।[९४] एक संत ने पाँच उत्तम गुणों का वर्णन करते हुए दया, दीनता, 'सत्यता', नाम-भजन और प्रेम अथवा भक्ति के नाम गिनाये हैं और उसे इस कलियुग में धन्य माना है, जिसमें ये गुण हैं।[९५] इस चल संसार में अचल क्या है?—सत्य वचन; पवित्र क्या है?—अपना अन्न; पुण्य क्या है?—उपकार; पाप क्या है?—पर-हिंसा।[९६] किनाराम ने आत्म-रक्षा के चार साधन बतलाते हुए दया, विवेक, विचार और सत्संग का उल्लेख किया है। उन्होंने कहा है कि इन गुणों से युक्त होकर राम-नाम का भजन करना चाहिए।[९७] एक अन्य पद्य में उन्होंने जितेन्द्रियता, वासना-शून्यता तथा प्रेम-प्रीति को आवश्यक बतलाया है।[९८] एक तीसरे पद्य में उन्होंने संतों की 'रहनी' का विवरण देते हुए संतोष, व्रत, क्षमा, धीरता, निज कर्त्तव्य में अनुराग और रामनाम के रस में मग्नता, इन सद्गुणों की चर्चा की है। आत्मारोपित दैन्य अथवा निर्धनता बिना संत-भावना के उदय के संभव नहीं है। इस प्रकार के त्याग से दीनता ऐश्वर्य में परिणत हो जाती है; क्योंकि दीनता वस्तुतः एक मनोवैज्ञानिक तत्त्व है। दीनता का परिहार अधिकाधिक धन-सम्पत्ति की प्राप्ति से नहीं हो सकता; क्योंकि जितनी ही अधिक धन-सम्पत्ति प्राप्त होती जायगी, उतनी उससे और अधिक पाने की तृष्णा प्रज्वलित होती जायगी। अतः सच्ची धन-प्राप्ति तृष्णा की निवृत्ति में है, सच्चा ऐश्वर्य कामनाओं के त्याग में है। संत के लिए दीनता इसलिए भी अभिप्रेत है कि वह अपनी दीनता के आधार पर अपने आराध्य के परम ऐश्वर्य की सही कल्पना कर सके और अपने को सर्वांश में उसे समर्पित कर सके। टेकमन राम कहते हैं कि उन्हें कोठा-अटारी अच्छी नहीं लगती, अतः उन्होंने झोपड़ी में अपना निवास स्थिर किया है; उन्हें शाल-दुशाला नहीं भाता, अतः उन्होंने कंबल को अपनाया है।[९९] उन्होंने अधीनता-रूपी चादर ओढ़ने, नाम-रूपी चश्मा पहनने, रूखा-सूखा भोजन करने तथा जहाँ-तहाँ अनिश्चित रूप से पड़े रहने का उपदेश दिया है; क्योंकि इसी प्रकार के जीवन से कर्मों के भ्रम जलकर भस्म हो जाते हैं।[१००]

(घ) मादक द्रव्य-परिहार

कुछ साधु मादक द्रव्यों का सेवन करते हैं, यथा सुर्ती, तमाखू, गाँजा, मद्य आदि। संत-मत में ये सभी वर्जित हैं। यदि खानी ही है तो 'सुरती'-रूपी सुर्ती खानी चाहिए। इस सुर्ती को उपजाने की एक विशिष्ट विधि है। बुद्धि-रूपी जमीन को विचार-रूपी हल से जोतकर परिष्कृत कीजिए, इसमें गुरु के शब्द-रूपी बीज बोइए, श्रद्धा और सद्भाव-रूपी अंकुर लगाइए। जब पत्ते तैयार हो जायँ, तब प्रेम की छाया में सुखाइए। उसका टुकड़ा लेकर हाथ में मलकर कुमति-रूपी धूल को उड़ाइए, अनुराग-रूपी जल से तर कीजिए, और काम, क्रोध आदि किनारे के डंठल को काटकर अलग कर दीजिए। इस प्रकार परिष्कृत करके जो सुर्ती बनाई जायगी, उसका सेवन करने से ज्ञान-रूपी मस्ती आयगी और विवेक की प्राप्ति होगी। इस प्रकार का परिष्कृत तमाखू आत्मचैतन्य के अन्वेषण तथा सत्संग से प्राप्त होगा।[१०१] यदि हुक्के पर तमाखू पीना हो, तो पाँच तत्वों को तमाखू बनाइए, चित्त को चिलम बनाइए, काया को हुक्का बनाइए, दृढ़-विश्वास को उसका आधार-दंड बनाइए, श्रद्धा और विवेक का जल उस हुक्के में भर दीजिए तथा ब्रह्मज्ञान की अग्नि से उसे प्रज्वलित कीजिए। इतनी तैयारी के बाद आप सन्तोष-रूपी दम खींचिए। उसमें से सुमति-रूपी सुगन्ध का विकास होगा और अमृतरस का आस्वादन मिलेगा।[१०२] यदि गाँजा पीना है, तो सुख-दुख रूपी द्वन्द्व को ही गाँजा बनाइए और उसमें से सुमति-रूपी धुआँ खींचकर उसका पान कीजिए। इससे ज्ञान में दृढ़ता आयगी और प्रेम में वृद्धि होगी।[१०३]

भिनकराम कहते हैं कि मन को महुआ बनाइए और तन को भट्ठी। उसमें ब्रह्म-रूपी अग्नि जलाइए। इस प्रक्रिया से जो मद्य तैयार हो, उसे दुकान में 'छान' दीजिए। संत जन अपने माता-पिता, कुल-कुटुम्ब को त्याग कर वहाँ आयेंगे और प्रेम के प्याले में भरकर उस मद्य को पीयेंगे। पीते ही समग्र भ्रम विनष्ट हो जायगा।[१०४] आनन्द ने इस रूपक को कुछ और बढ़ा करके लिखा है कि प्रेम का महुआ हो, भक्ति का 'सीरा', तन की भट्ठी और ज्ञान की अग्नि हो, मन का 'देग' (बरतन) हो और विवेक की छानन; ध्यान का भभका देकर मधु चुलाइए और 'इंगला' तथा 'पिंगला' नाम के दोनों प्यालों में भर-भर के पीजिए एवं मस्त हो जाइए। यही मद्य सच्चे आनन्द को देनेवाला है।[१०५] उनकी निम्नलिखित गजलें देखिए—

१. भर ऐसा दिया, साकी ने, पैमाना हमारा।
अलमस्त है पीकर, दिले मस्ताना हमारा॥
२. दिन रात पिया करते हैं, पर कम नहीं होता।
हरवक्त रवाँ रहता है, खुमखाना हमारा॥
३. चुपचाप से शेख आके, लगा जाते हैं चुस्की।
ईमान बिगड़ता है, न उनका न हमारा॥
४. बुत बन गये पी-पी के, हजारों की ब्रहमन।
बुतखाने से कमती नहीं है, मैखाना हमारा॥[१०६]

(क) अन्य गुण

संतों की रहनी के प्रसंग को समाप्त करने के पूर्व हम पलटूदास के 'आत्मनिर्गुण-पहाड़ा' में दिये हुए उन आचार-विचार के नियमों[१०७] का संक्षिप्त उल्लेख करेंगे, जिन्हें उन्होंने कुछ व्याख्या के साथ गिनाया है। वे ये हैं—

सन्त अथवा गुरु के आचार-विचार

१. अद्वैत में आस्था और इन्द्रियों के दमन द्वारा अनात्मा से आत्मा को भिन्न करना।
२. द्वैत भावना को नष्ट कर (क) सद्गुरु के चरणों में जाना, (ख) योग द्वारा पचीस विकारों को दबाना।
३. त्रिगुण को भुलाकर भजन में मन लगाना।
४. हिन्दू-मुसलमान, ऊँच-नीच में भेद नहीं करना।
५. मन पर विजय प्राप्त करना।
६. अपनी वासनाओं का विनाश करना, जिनके फलस्वरूप जन्म-जन्मान्तर भ्रमण करना पड़ता है।
७. सत् शब्द का सुनना या अनुभव करना।
८. नींद, आहार आदि पर नियंत्रण कर ध्यानयोग द्वारा आत्मा को परमात्मा से मिलाना।
९. नौ इन्द्रियों और बहत्तर नाड़ियों पर नियंत्रण कर सुरति लगाना।
१०. गगनमण्डल में प्रवेश और मोक्ष-प्राप्ति।
११. दिव्यदृष्टि तथा अमरपुर में निवास।
१२. नवधा भक्ति छोड़कर गूढ़ भक्ति अर्थात् योग-मार्ग को अपनाना।
१३. पंचतत्वों पर विजय प्राप्त करना।
१४. इडा-पिंगला के नियंत्रण द्वारा प्राण को वश में करना।
१५. परम गति प्राप्त करना।
१६. समाधि में दिव्यज्योति प्राप्त करना।
१७. सत् स्वरूप का दर्शन और ब्रह्म का मिलन।
१८. सन्यास-धर्म ग्रहण करना।
१९. उन्मनी द्वार के खुलने से दिव्यदृष्टि का लाभ।
२०. योग-समाधि द्वारा आप में आप का साक्षात्कार करना।
२१. इडा, पिंगला तथा सुषुम्णा के नियमन द्वारा योग की स्थिति में आना।
२२. चक्रभेदन कर समाधिस्थ होना।
२३. आध्यात्मिक मद्य का पान और सामान्य मद्य का परित्याग।
२४. योग की क्रमिक क्रियायों में प्रवृत्त होना।
२५. परमज्योति को प्राप्त करना, 'सोऽहम्' का जप।

२६. आध्यात्मिक मद्य का अपरित्याग।
२७. चक्र का वेधन और शब्द-ब्रह्म की प्राप्ति।
२८. अमरपुर का साक्षात्कार।
२९. अमरपुर के आनन्द का रसास्वादन।
३०. निरंजन के प्रभाव का निवारण।
३१. यम की यातना से रक्षा।
३२. सद्गुरु की प्रशंसा।
३३. पाखंडी यति आदि से बचना।
३४. योग द्वारा ब्रह्म-ज्ञान प्राप्त करना।
३५. 'तीन' के भेद में न पड़ना।
३६. विषय-वासना में लिप्त न होना।
३७. श्याम और अरुण त्याग कर श्वेत ग्रहण करना, अर्थात् सात्त्विक वृत्ति को अपनाना।
३८. आप में 'आप' का मिलाना।
३९. जैसी चाह, वैसा फल प्राप्त करना।

५. विधि-व्यवहार

सरभंग अथवा औघड़-मत के संबंध के अन्वेषण के विवरणों तथा सामग्रियों के विवेचन से पता चलता है कि सरभंग-मत का अधिक प्रचार उत्तरी भारत के बिहार, बंगाल, आसाम तथा उत्तरप्रदेश में है। काशी से इस मत के प्रमुख आचार्य किनाराम की शाखा का विस्तार हुआ। वहाँ इस मत के सन्त अपने को 'अघोर', 'औघड़' अथवा 'अवधूत' कहते हैं। बिहार में चम्पारन जिला इस मत का केन्द्र प्रतीत होता है। इस जिले में इस मत का प्रचलित नाम सरभंग है, यद्यपि 'औघड़' तथा समदर्शी नाम का भी पर्याप्त प्रचलन है। चम्पारन के अतिरिक्त सारन और मुजफ्फरपुर में अन्य जिलों की अपेक्षा सरभंग-मत का प्रचार अधिक है। अन्वेषण तथा अनुसंधान, जो अब भी बहुत अंशों में 'अपूर्ण' कहा जायगा, और जिसका क्रम अभी वर्षों चलना चाहिए, के फलस्वरूप जिन लगभग १३० मठों की जानकारी प्राप्त हुई है, उनमें ६१ चम्पारन में अवस्थित हैं, २२ सारन में और २० मुजफ्फरपुर तथा नैपाल की तराई में। चम्पारन में एक छोर से दूसरे छोर तक प्रवाहित होनेवाली गंडक नदी के किनारे-किनारे सरभंग संतों के अनेक मठ बसे हुए हैं। इस मत के मठ प्रायः गाँव से अलग, नदी-तट पर अथवा गाँव के श्मशान के पास होते हैं। श्मशान के निकट की अवस्थिति एकान्त साधना के लिए तो उपयुक्त है ही, 'श्मशान-क्रिया' के लिए भी उपयुक्त है, जो शाक्त तांत्रिकों और औघड़ों में व्यापक रूप से प्रचलित है तथा यत्र-तत्र सरभंग-संतों में भी विद्यमान है।

'औघड़' शब्द 'अघोर' शब्द का अपभ्रंश है। यह शब्द गोरखपंथ से होते हुए प्राचीन वैदिक युग के रुद्र की उपासना के साथ वर्त्तमान औघड़-मत का संबंध जोड़ता है।

औघड़ों में यह सामान्य धारणा है कि उनके मत के प्रवर्तक गोरखनाथ थे। इनमें से कुछ दत्तात्रेय को भी प्रवर्तक मानते हैं। श्वेताश्वतर उपनिषद् में 'या ते रुद्र शिवातनूरघोरा पापनाशिनी' के द्वारा शिव के शरीर को 'अघोर' अथवा 'सौम्य' की संज्ञा दी गई है। किनाराम की परम्परा के एक प्रमुख संत गुलाबचन्द 'आनन्द' ने 'विवेकसार' की भूमिका में अघोर अथवा अवधूत-मत का परिचय निम्नलिखित शब्दों में दिया है—

"अघोर वा अवधूत मत कोई नवीन मत नहीं है। शिवजी महाराज के पाँच मुखों में से एक मुख अघोर का भी है। यह लिंगपुराण से सिद्ध है। उपनिषद्, रुद्री और शिव-गायत्री से भी भेष का महत्त्व प्रगट है। 'अघोरान्नापरो मन्त्रः' यह हमारा कहा हुआ नहीं है। यह आदिकाल से चला आता है। कुछ महाराज किनारामजी ही ने इसको नहीं चलाया है। यह सचमुच श्रीशिवजी का चलाया हुआ है। जगद्गुरु दत्तात्रेय भगवान ने भी इसका प्रचार किया और बाद में श्री महाराज कालूरामजी और किनारामजी के शरीर से यह चला है। आजकल प्रायः अन्यमत वाले इस मत वालों को घृणा की निगाह से देखते हैं पर पहले समय में ऐसा नहीं था। देखिये, पुराणों में अवधूत-वेश की कैसी प्रतिष्ठा लिखी है। राजा परीक्षित को समीक ऋषि के बालक ने शाप दिया है कि जिसने मेरे पिता के गले में मरा सर्प डाल दिया है उसको आज के सातवें दिन तक सर्प काटे। इस घोर शाप को सुनकर सारे देश में बड़ा हाहाकार हो गया। सभी ब्रह्मर्षि, देवर्षि, राजर्षि इकट्ठे हुए।.........ये लोग विचार कर रहे थे कि राजा परीक्षित की मृत्यु वा मोक्ष के लिये क्या करना चाहिए। इतने में ही बालपन से ही अवधूत वेश धारण करनेवाले श्रीशुकदेवजी आ गए।[१०८]

"श्री शुकदेवजी के उस समाज में आने पर सभी लोग खड़े हो गये। वर्त्तमान समय में जो दशा है उसके दो कारण हैं। एक तो यह कि स्वयं इस मत वालों ने अपने को उस उच्च पद से गिरा दिया है, जिस पर ये प्राचीन काल में थे; दूसरे यह कि अन्य मत-मतान्तर वाले खुद भी अब इनकी तरह उस गंभीर विचार के नहीं हैं; जैसा पहले हुआ करते थे।

"चार वर्ण अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र, तथा चार आश्रम—ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ और संन्यास, ये सबसे प्राचीन और वेद-शास्त्र-पुराण आदि सभी ग्रन्थों में प्रतिपादित हैं। संन्यास आश्रम की सिद्ध अवस्था को वैष्णव 'परमहंस', शाक्त 'कैवल्य' और शैव 'अघोर' कहते हैं; उसी का नाम अवधूत-मत है। ये सब पन्थ नहीं, अपितु पद के नाम हैं। जब पूर्ण ब्रह्मज्ञान उदय हो जाता है और किसी भी उत्तम, मध्यम तथा नीच पदार्थों में विषय-दृष्टि नहीं होती; किन्तु सब में समान दृष्टि हो जाती है, तब उसी का नाम विज्ञान है, अवधूत है। यह अवस्था बहुत काल के पुण्य संचित होने से होती है।

"ऐसा बहुरंगी वेश क्यों रखा गया है और अब भी रखा जाता है; इसके दो कारण प्रतीत होते हैं। एक तो यह कि इस वेश वाले शिव के उपासक हैं और यह दस्तूर है कि जिसका जो इष्ट होता है उसका माननेवाला प्रायः वैसा ही हो जाता है। 'जानत तुमहिं तुमहिं होई जाई।' शिव भगवान का अपूर्व वेश ही इस मत वालों का

वेश है। दूसरी वजह यह मालूम होती है कि प्राचीन काल के योगेश्वरों ने जानबूझ कर ऐसा घृणित वेश धारण किया, जिसमें संसारी लोग उनको घेरकर उनके तप में विघ्न न डालें। 'अवज्ञया जनैस्त्यक्तः यस्तस्य वेषो यस्य सः अवधूतवेषः'।

"पुराणों और शास्त्रों द्वारा यह स्पष्ट विदित होता है कि यह अवधूत वेश सबसे प्राचीन और पूजनीय है तथा इसकी प्रतिष्ठा बड़े-बड़े महर्षि लोग सदा से करते आए हैं। परम्परा से इस वेश को राजर्षि, ब्रह्मर्षि लोग धारण करते आए हैं। राजा ऋषभदेव के, जो ईश्वर के अवतार समझे जाते हैं, सौ पुत्र थे। उन्होंने अपने लड़कों को उपदेश देकर स्वयं अवधूत-वेश धारण किया। उनके बड़े लड़के भरत ने भी राज्य करने के पश्चात् अवधूत-वेश ही धारण किया था। उन्हें लोग जड़भरत भी कहते हैं।"

कुछ लोग 'औघड़' शब्द को 'अवघट' का अपभ्रंश मानते हैं। व्रज-साहित्य में तथा प्रचलित लोक-भाषा में 'औघट घाटा' का प्रयोग मिलता है। इसका तात्पर्य होता है सीधे रास्ते को छोड़कर 'कुरास्ता' अर्थात् विपथ। औघड़ भी सामान्य जनों की राह से नहीं चलकर कुराह चलते हैं। इस प्रकार का विचार शब्द-साम्य अथवा अर्थ-व्युत्पत्ति की दृष्टि से तो बुरा नहीं है, किन्तु शिव के 'अघोर' नाम को ध्यान में रखते हुए तथा शैव मत के साथ इस मत का संबंध समझते हुए, हमें 'औघड़' शब्द का आविर्भाव 'अघोर' से ही मानना चाहिए। हाँ, एक प्रश्न है 'अघोर' का अर्थ हुआ सौम्य, अरौद्र आदि। किन्तु, औघड़ों का जो वर्त्तमान रूप है, नग्नवत्-स्थिति, हाथ में कपाल (मुर्दे की खोपड़ी) तथा अंग में 'भभूत'—वह सौम्य नहीं, बल्कि भयानक है, अरौद्र नहीं, बल्कि रौद्र है, सामान्य जन की दृष्टि में बीभत्स है। किस प्रकार 'अघोर' शब्द अपने मूल अर्थ 'सौम्य' को छोड़कर भीषण अर्थ का द्योतक हुआ, यह अनुसंधान का विषय है, एक व्याख्या यह हो सकती है कि 'रुद्र' अथवा 'शिव' के दो रूप हैं—सौम्य तथा उग्र। प्रारम्भ में अलग-अलग नाम और विशेषण अलग-अलग अर्थ के द्योतक होंगे; यथा रुद्र भीषणता का, तो शिव और शंकर कल्याणकारिता का; चण्डी विकरालता का, तो देवी अथवा अम्बिका दयालुता का। किन्तु कालान्तर में सभी शिवपरक शब्द पर्यायवाची मान लिये गये और उनका मौलिक अभिप्राय भूल-सा गया। एक दूसरी व्याख्या भी संभव है। हमारी यह सामान्य मनोवृत्ति होती है कि जिस वस्तु अथवा कार्य को समाज व्यापक रूप से अंगीकृत नहीं करता, उसे हम नामान्तर (euphemism) द्वारा प्रकट करते हैं और उसके उस अंश पर आवरण देते हैं, जो समाज की दृष्टि में गुह्य अथवा गोपनीय है। उदाहरणतः, जब हम मल-त्याग-जैसे अशौच कार्य के लिए जाते हैं, तो कहते हैं कि 'शौच जा रहे हैं' 'अथवा 'मैदान' जा रहे हैं।' इसी मनोवृत्ति के आधार पर हमने 'घोर' को 'अघोर' कहना प्रारम्भ किया होगा।[१०१]

'सरभंग' शब्द की व्युत्पत्ति और अर्थ निर्विवाद रूप से स्पष्ट नहीं है। जिन साधुओं से इस शब्द की व्याख्या करने को कहा गया, उनमें से कुछ ने यह बताया कि 'सर साधे सरभंग कहावे।' 'सर' या तो 'स्वर' से निकला है, या 'शर' से। शर का अर्थ होता है बाण; और वह काम के पाँच बाणों की दृष्टि से 'पाँच' संख्या का भी द्योतक है।

शर का तात्पर्य जीवात्मा को विद्ध करनेवाली पाँच इन्द्रियों से भी है। तंत्रशास्त्र तथा त्रिगुण-दर्शन में 'स्वर' एक पारिभाषिक शब्द है और यह 'स्वरोदय' आदि ग्रन्थों में इडा, पिंगला और सुषुम्णा, इन तीन श्वास-प्रश्वास की क्रियाओं को सूचित करता है। अतः इस व्युत्पत्ति के अनुसार 'सरभंग' का अर्थ हुआ वह साधक अथवा सन्त, जो अपनी इन्द्रियों और उनकी वासनाओं का नियन्त्रण करे तथा जो योग की प्रक्रियाओं के द्वारा प्राणायाम की साधना और तद्द्वारा चित्तवृत्ति का निरोध करे। एक ऐसी भी किंवदन्ती प्रचलित है कि 'सरभंग' का संबंध उस शरभंग ऋषि से है, जिनके आश्रम पर बनवास के समय रामचन्द्र गये थे; शरभंग ऋषि ही इस मत के प्रवर्त्तक हैं। किन्तु इस कल्पना का पुराणादि ग्रन्थों में, जहाँ तक हमें मालूम है, प्रमाण नहीं मिलता। जो हस्तलिखित ग्रंथ अनुसंधान के सिलसिले में मिले हैं, उनमें दो ऐसे हैं, जिनमें एक, अर्थात् सदानन्द के 'भजन-संग्रह' में 'सरबंगी' शब्द का प्रयोग है, यथा—'सदानंद सरबंगी नाम मेरा'; और दूसरे, अर्थात् मोतीदास के 'ज्ञानसर' अथवा 'ज्ञानस्वरोदय', में 'सरभंग' शब्द है, यथा—

'धरती जो सरभंग है, सभमें रहै समाय।
सभ रस उपजत खपत है, मोती चरन मनाय॥'

यदि इन दो उद्धरणों से कुछ निष्कर्ष निकाला जा सकता है तो यह कि 'सरबंग' और 'सरभंग', ये उच्चारण-भेद से एक ही शब्द हैं, और इनका मूल भी एक ही है। 'सरबंग' शब्द का प्रयोग हमने अन्य निगुणवादी संतों में भी पाया है। उदाहरणतः, दरिया ने 'सरबंग' शब्द का प्रयोग निगुण ब्रह्म के लिए भी किया है, और संसार से निर्लिप्त संत के लिए भी। हमारा अपना अनुमान है कि ये दोनों शब्द 'सर्वांग' से निकले हैं—'सर्वम् अंगम् अस्य', अर्थात् सब कुछ जिसका अंग हो, अथवा जो सबके लिए समान रूप से अंगीकरणीय हो। उपयुक्त 'ज्ञानसर' के पद्य में—

'सभमें रहै समाय, सभ रस उपजत खपत है',

आदि व्याख्यात्मक पद्यांश संभवतः इस मान्यता को पुष्टि देते हैं। कुछ सरभंग साधु यह पूछने पर कि 'सरभंग' का अर्थ क्या है, 'समदर्शी' कहकर समझाते हैं, और यह प्रतिपादित करना चाहते हैं कि सरभंग-मत के संत मानव-मात्र को, सभी सम्प्रदायों को, सभी पदार्थों को, समान दृष्टि से देखते हैं। उनकी नजर में शैव, वैष्णव, शाक्त, तांत्रिक, बौद्ध, जैन, निगुण-सगुण, ऊँच-नीच, अच्छा-बुरा, ग्राह्य-त्याज्य—किसी में कोई तात्त्विक अन्तर नहीं है। गंभीर रूप से विचारा जाय तो सरभंग-मत की यह व्यापक तथा उदार भावना अपना अलग एवं विशिष्ट अभिप्राय रखती है, और सिद्धान्ततः यह विचार-सरणि के बहुत ही ऊँचे स्तर पर अवस्थित है। 'सरभंग', 'औघड़ तथा 'अघोरी' इन तीनों शब्दों में परस्पर अन्तर प्रतिपादित करते हुए एक साधु ने यह कहा कि 'होशियार' लोग इस मत के साधुओं को 'सरभंग' तथा 'नासमझ' लोग उन्हें 'औघड़' कहते हैं; 'अघोरी' अथवा 'औघड़' में यह भेद है कि अघोरी शरीर में चिथड़ा लपेटकर बाजार में लोगों को थूक अथवा अन्य

बीभत्सता के नाम पर डराकर भीख माँगता है; किन्तु औघड़ ऐसा नहीं करता, वह भीख भी नहीं माँगता; भक्त लोग स्वयं आकर जो भी देते हैं, उसे वह ग्रहण कर लेता है। उस साधु ने यह भी बतलाया कि इस मत के लोग पंजाब में 'सरभंग', मद्रास में 'ब्रह्मनिष्ठ', बंगाल में 'अघोरी' तथा उत्तरप्रदेश एवं विहार में 'औघड़' कहलाते हैं। भागलपुर के सामने गंगा के उस पार एक औघड़ सारथी बाबा रहते हैं। उनकी सिद्धि के संबंध में कुछ प्रसिद्धि भी है। हमारे एक प्रोफेसर मित्र तथा हमने उनसे सत्संग किया है। सारथी बाबा गायत्री मंत्र का इस प्रकार ध्यान करने का आदेश देते हैं, जिसमें उसे एक बार सीधा सीधा जप किया जाय, और फिर उलटकर जप किया जाय। इसी प्रकार एक से सौ तक की संख्याओं का सीधा तथा उल्टा ध्यान करना भी वे बताते हैं। इस ध्यान की क्रिया को वे 'अघोर-क्रिया' कहते हैं।

जितने विवरण और जितनी सूचनाएँ अबतक प्राप्त हुई हैं, इनके आधार पर यह अनुमान किया जा सकता है कि औघड़ अथवा सरभंग-मत निम्नलिखित छह आचार्यों के द्वारा प्रवाहित धाराओं में प्रचलित हैं—

१. काशी के किनाराम।
२. चम्पारन (राजापुर भड़याही) के भिनकराम।
३. चम्पारन (माधोपुर) के भीखमराम—इनके प्रसिद्ध शिष्य झखरा के टेकमन-राम हुए।
४. चम्पारन (चनाइन बान) के सदानन्द बाबा।
५. चम्पारन (चिन्तामणि) के बालखण्डी बाबा।
६. सारन (छपरा शहर) के 'लक्ष्मीसखी'।

इनमें 'लक्ष्मीसखी' और उनके शिष्य 'कामतासखी' के साहित्य तथा साधना-पक्ष का अध्ययन एक स्वतंत्र निबंध का विषय बन सकता है। प्रस्तुत भाषणमाला में इनका अनुशीलन नहीं किया गया है। वे सामान्यतः 'औघड़' कहलाते भी नहीं हैं और इनका मत 'सखी-सम्प्रदाय' के नाम से अधिक प्रचलित है। आचार्यों के अलग-अलग नाम गिनाने का आशय यह नहीं है कि उनकी प्रत्येक की अलग-अलग शाखा है। अधिक-से-अधिक हम किनाराम की शाखा को अन्य पाँच की शाखा से भिन्न मान सकते हैं। वे औरों की अपेक्षा अधिक व्यापक रूप से विदित एवं प्रभावशाली हैं। इनकी चर्चा अन्य संत-साहित्य के जिज्ञासुओं तथा विद्वानों ने भी की है।[११०] किनाराम की लोकप्रियता तथा धार्मिक उदारता का यह एक ज्वलन्त परिचय है कि उन्होंने वैष्णव-मत-परक पद्य भी लिखे और अघोर-मत-परक भी। वैष्णव-मत-परक पद्य 'रामरसाल', 'रामचपेटा' तथा 'राममंगल' के नाम से संकलित हैं, और 'अघोर-मत-परक पद्यों को 'विवेकसार' नामक ग्रन्थ में गुंफित किया गया है। कालूराम अघोर से दीक्षित होने के पहले वे बाबा शिवाराम वैष्णव के शिष्य थे। अतः उन्होंने दोनों गुरुओं की मर्यादा निभाने के लिए चार वैष्णव मत के मठ मारूहपुर, नईडीह, परानापुर और महुअर में तथा अघोर-मत के चार मठ रामगढ़ (बनारस जिला), देवल (गाजीपुर जिला), हरिहरपुर (जौनपुर जिला)

एवं कृमिकुण्ड (काशी शहर) में स्थापित किये, जो अबतक चल रहे हैं। अन्य जो चम्पारन तथा सारन के मुख्य संत हैं, इनका जहाँ तक हमें विदित है, कहीं भी सुसंगत विवरण प्राप्त नहीं है। कुछ फुटकल लेख कभी-कभी प्रकाशित हुए हैं, पर उनकी संख्या नगण्य है।[११]

सरभंग संतों को मुख्यतः दो भागों में विभक्त किया जा सकता है—'निरबानी' (निर्वाणी) और 'घरबारी'। किनाराम तथा भिनकराम दोनों निरबानी थे। अतः चम्पारन में सामान्यतः इन दोनों के मतों को एक माना जाता है। निरबानी मत में स्त्रियों को स्थान नहीं है। साधु खेती-बारी भी नहीं करते और न भिक्षाटन करते हैं भीखमराम ने जो परम्परा चलाई, उसमें घरबारी हो सकते थे। बालखण्डी बाबा के मत में भी 'माईराम' होती है और घर-गृहस्थी भी चलाती है। एक साधु ने कहा कि यदि रुचि हो तो साधु विवाह कर सकता है। 'अगर पैसा हो तो ढोल बजा-बजाकर और बरात सजाकर ब्याह करना चाहिए।' इसके विपरीत भिनकराम की परम्परा के शिष्य अपने मठों में फूल तक नहीं लगाते हैं। प्रायः सभी साधुओं ने पूछने पर यह बताया कि वे किसी मत से घृणा नहीं करते हैं और वेद-पुराण आदि सबमें श्रद्धा रखते हैं। जिन आचार्यों का नाम ऊपर लिया गया है, उनके अतिरिक्त कुछ ऐसे संतों के नाम हैं, जो अपेक्षाकृत अधिक प्रसिद्ध हैं, यथा--ज्ञानी बाबा (लक्ष्मीसखी के गुरु), कर्त्ताराम, धवलराम आदि। सरभंग-मत के साधु तथा अनुयायी अपने नाम के पीछे राम, दास, गोसाईं, सखी आदि जोड़ते हैं। इससे ऐसा इंगित नहीं होता कि वे अलग-अलग शाखा अथवा सम्प्रदाय के हैं। राम का उपपद अपेक्षाकृत अधिक प्रचलित है।

सरभंगों की निरबानी और घरबारी शाखाओं को देखते हुए हम यह अनुमान कर सकते हैं कि निरबानियों पर वैष्णव मत का प्रभाव अधिक पड़ा और घरबारियों पर तान्त्रिक शाक्तों का। तन्त्र-साधना में शक्ति के रूप में नारी की पूजा की जाती है। अतः साधक के साथ एक नारी का होना आवश्यक हो जाता है। नारी के साथ का यह अर्थ नहीं कि यौन संबंध अवश्य हो। कन्या-पूजा में कन्या शक्ति का प्रतीक मानकर पूजी जाती है। हाँ तांत्रिकों की, जो वाममार्गी अथवा कौल-शाखा है उसमें यौन संबंध का भी समावेश है। यदि साधक और साधिका पुरुष और स्त्री के रूप में पहले से संबद्ध हैं तो तंत्र-साधना में सहायता ही मिलती है। इस संबंध में यह उल्लेख करना अनुचित न होगा कि मठों में जो 'माईराम' हैं वे अनेक ऐसी स्त्रियाँ हैं जो किन्हीं कारणों से घर से निकलकर भाग आई हैं। ऐसी स्त्रियाँ जो किसी नैतिक पतन के कारण अपने मूलभूत हिन्दू-समाज अथवा जाति में ग्राह्य नहीं होतीं, वे सरभंग-मत में आकर सम्मिलित हो जाती हैं, और किसी तरह कुछ शान्ति के साथ अपना जीवन व्यतीत करती हैं। वे जब मठों में आती हैं, तो साधुओं के सम्पर्क में आने पर वहीं बस जाती हैं, और दम्पती के रूप में किसी एक के साथ परस्पर संलग्न हो जाती हैं। हिन्दू-समाज की जात-पाँत और विधवा का अपुनर्विवाह आदि कुछ ऐसी प्रथाएँ हैं, जिनके कारण बहुसंख्य व्यक्ति हिन्दू-धर्म को छोड़कर दूसरा-दूसरा धर्म अपना लेते हैं। भारतवर्ष में क्रिस्तानों और मुसलमानों की संख्या

में वृद्धि होने के जात-पाँत तथा सामाजिक नियंत्रण भी मुख्य कारण हैं। सरभंग-मत के प्रचार में लोगों का 'जात' च्युत होना मुख्य रूप से सहायक रहा है। कहा जाता है कि रमपुरवा के महेश गोसाईं अकाल के समय सरकारी चौके में खाने के कारण निष्कासित हो गये और अशरण होकर इस मत में चले आये। सरभंग होने पर भी इस मत के लोगों को आस-पास का हिन्दू-समाज लोक-बाह्य तथा निम्नस्तर पर ही अवस्थित समझता है। जहाँ माईराम हैं, वहाँ चरित्रहीनता भी देखी जाती है, इससे भी समाज पर इसका बुरा प्रभाव पड़ता है।

सबसे बुरा प्रभाव सरभंग साधुओं तथा गृहस्थों के खान-पान के ढंग का पड़ता है। इनके लिए सामान्यतः कुछ भी अखाद्य तथा अपेय नहीं होता। ये जीवों की हिंसा स्वयं नहीं करते, किन्तु किसी मरे हुए जन्तु को खाने में इन्हें हिचक भी नहीं होती। वैसे गाय को ये माता कहकर पुकारते हैं; किन्तु मर जाने पर उसका भी मांस खाते हैं। ये आदमी के मुर्दे को भी खाते हैं। ऐसा भी देखा जाता है कि कुत्ता, बन्दर तथा बिल्ली इनकी थाली में एक साथ खाते हैं। ये मदिरा और मत्स्य का भी सेवन करते हैं। जो जितना अनियंत्रित आहार-विहार करता है, वह उतना ही बड़ा सिद्ध समझा जाता है। किंवदन्ती है कि एक बार टेकमनराम को मुर्दे की बाँह खाते देखकर किसी ने पूछा—'यह क्या है?' उन्होंने उत्तर दिया 'बालम खीरा' और वह देखते-देखते 'बालम खीरा' बन गई। एक साधु ने इस सम्बन्ध में निम्नांकित प्रचलित लोकोक्ति उद्धृत की है—

'मरल मांस पाओ तो घास लेखा खाओ।
जिन्दा के भिरी न जाओ॥'

सरभंग पानी पीने के लिए मिट्टी का एक करवा (टोंटीदार बरतन) और खाने के लिए खप्पर (एक प्रकार की कड़ाही) रखते हैं। ये आत्मारोपित निर्धनता के प्रतीक हैं। इनके कंठी तथा माला के समान विशेष चिह्न भी हैं। इनका वस्त्र सादा गेरुआ, एकरंगा या खाकी रंग का होता है। गेरुआ और सादा वस्त्र अधिक प्रचलित है। इनके पहनने तथा व्यवहार के वस्त्रों में लंगोटा, झूल (ढीला तथा लम्बा कुरता), लुंगी, चादर तथा कम्बल होते हैं। जो भिक्षाटन करते हैं, वे एकतारा, खंजरी आदि बाजे भी रखते है। कुछ हाथ में कंगन भी पहनते हैं तथा शरीर में भभूत भी लगाते हैं। हमने ऐसे अनेक सन्तों को देखा, जो केवल लंगोट पहने नग्नवत् थे।

सामान्यतः सरभंग-मत के लोग परस्पर 'बंदगी' कहकर अभिवादन करते हैं, 'राम', 'राम' भी कहते हैं। भक्ष्याभक्ष्य के अतिरिक्त अन्य दिशाओं में सरभंग संतों का जीवन प्रायः बहुत ही आदर्श होता है। वे उदार विचार के होते हैं, सदाचार का पूर्ण निर्वाह करते हैं और त्याग की तो मानो प्रतिमूर्त्ति होते हैं। वे प्रायः मन्त्र आदि तथा जड़ी-बूटियों से रोगों का उपचार करते हैं और जब कभी जनता की सेवा का अवसर मिलता है, ये उसमें प्रवृत्त हो जाते हैं। अनेक ऐसे भी संत हैं, जो भक्ष्याभक्ष्य में सामान्य नियंत्रणों का पालन करते हैं। वे समाज की दृष्टि में अधिक प्रतिष्ठा तथा सम्मान के भाजन बनते हैं। काशी के किनाराम की तो बहुत अधिक प्रसिद्धि है और उनके मठ के प्रति लोगों के हृदय में सम्मान की भावना है।

सामान्यतः गुरु के निर्वाण के दिन भण्डारा दिया जाता है, जिसमें मांस, मदिरा, अन्नादि खाये जाते हैं। इसके अतिरिक्त निश्चित स्थानों पर निश्चित तिथियों में मेला लगा करता है, जिसमें सभी सरभंगी जुटते हैं। खूब आनन्द मनाया जाता है। नाच-गान, रास-रंग होता है। काशी के किनाराम के मठ में हर वर्ष भाद्र के कृष्ण या शुक्ल पक्ष की षष्ठी तिथि को लोलार्क षष्ठी (लौलाछ) मेला लगता है। यहाँ सभी साधु इकट्ठे होते हैं। औरतें वरदान माँगने आती हैं। घर-गृहस्थीवाले चेला होते हैं। बनारस की वेश्याएँ मठ में वर्ष में दो बार जाती हैं तथा भेंट चढ़ाती हैं। उनका विश्वास है कि ऐसा नहीं करने से उनका गला खराब हो जायगा। वेश्याएँ इस सम्प्रदाय की शिष्या हैं। भण्डारा के समय 'पंगत के हरिहर' कहकर खाया जाता है। मेले में गुरु-मन्त्र भी दिया जाता है। माधोपुर (चम्पारन) में माघ तृतीया को हर वर्ष मेला लगता है। यह मेला लगभग एक मास रह जाता है। इसमें दूर-दूर से सरभंग साधु एकत्र होते हैं। खूब नाच-रंग होता है। लगातार पन्द्रह दिनों तक गाना-बजाना चलता रहता है। यह मेला बहुत ही प्रसिद्ध है। इसी प्रकार का एक मेला माघ वसन्त-पंचमी को हर वर्ष झखरा (चम्पारन) में श्रीटेकमनराम की निर्वाण-तिथि पर लगता है। इसमें सोत्साह समाधि-पूजा होती है। लोग मदिरा, मांस तथा फल जो कुछ मिल जाता है, खाते हैं। यहाँ टेकमनराम, भिनकराम, बालखण्डी बाबा, ज्ञानी बाबा तथा किनाराम आदि शाखाओं के साधु एकत्र होते हैं, जिनकी संख्या लगभग १००० होती है। चम्पारन का यह मेला सरभंगों के मेलों में सबसे बड़ा होता है। इसमें पूजा-पाठ होता है; प्रसाद तथा वस्त्र का वितरण भी होता है।

सरभंग-मत में समाधि-पूजा का विधान है। समाधि-पूजा की निम्नांकित विधियाँ प्रचलित हैं—

(१) जमीन को चौखुटा खोदकर सन्दूक-घर जैसा बनाया जाता है; चारों ओर पाये छोड़ दिये जाते हैं। शव को सन्दूक में उत्तराभिमुख बैठाया जाता है। किवाड़ बन्दकर सन्दूक-सहित गड्ढे पर पटरा रखकर ऊपर पक्का पीट दिया जाता है। उस पर कहीं-कहीं मन्दिरनुमा इमारत बना दी जाती है।

(२) जमीन को छाती भर गोलाकार खोदकर उसमें घर बनाया जाता है तथा उसमें बिछावन लगाया जाता है। उसमें शव को उत्तराभिमुख पल्थी मारकर बैठाने के बाद ऊपर से पटरा रखकर गड्ढे को मिट्टी से भर दिया जाता है। मस्तक के ऊपर गुम्बजाकार मिट्टी रखी जाती है। श्रद्धा तथा धन के अनुसार मन्दिर आदि बनाया जाता है।

(३) गोल गड्ढे में माला पहना, भभूत लगा तथा शृंगार कर, पल्थी मारकर शव को उत्तराभिमुख बैठाया जाता है। ऊपर से पटरा रखकर मिट्टी अथवा ईंटों की जुड़ाई की जाती है और पिंडी, मन्दिर या समाधि का निर्माण होता है।

समाधि के आगे समाधिस्थ की प्रिय वस्तुएँ स्मारक के रूप रख दी जाती हैं। उनकी पूजा भी होती है। प्रतिदिन समाधि पर धूप तथा दीप दिखाया जाता है। साधारण खाद्य पदार्थ तो समाधि पर चढ़ाये ही जाते हैं, किन्तु विशेष अवसरों पर दारू,

मछली, मांस आदि भी चढ़ाये जाये हैं। कहीं-कहीं जल के अर्घ्य के साथ समाधि-प्रक्रिया भी की जाती है। आदापुर में पूरनबाबा की समाधि के निकट उनकी पादुका रखी हुई है, जिसकी पूजा की जाती है। यहाँ एक खप्पर, धूनीपात्र है, जिसमें राख रहती है। समाधि पर पहले सभी पूजा की चीजें चढ़ा दी जाती हैं, फिर उन्हें 'उछरंग' कर कुछ अंश धूनी में डालकर और तब उन्हें खाया जाता है। समाधि पर भात तथा ताड़ी भी चढ़ाई जाती है। 'बरखी' (वार्षिक) के दिन बाजे-गाने के साथ गाँजा-भाँग, मेवा तथा मिष्टान्न समाधि पर चढ़ाया जाता है। इस मत में पितृ-पूजा या किसी अन्य देवी-देवता की पूजा नहीं होती है। कहीं-कहीं समाधि पर 'चिलम' भी चढ़ाया जाता है, जिसमें गाँजा रखा जाता है। समाधि-स्थल पर, समाधिस्थ की वर्षी पर, मेले भी लगते हैं। ये लोग निगु ण उपासना के समर्थक हैं।

सरभंग अपने गुरु के अतिरिक्त अन्य देवी-देवता को नहीं पूजते हैं, वे ईश्वर के स्थूल प्रतीकों, मूर्त्ति आदि में विश्वास नहीं करते हैं। प्रतिदिन स्नान के बाद वे गुरुओं की समाधि पर पुष्पमाला चढ़ाते हैं, रसोई तैयार हो जाने पर उसमें से लेकर गुरु की समाधि के निकट अग्नि में आहुति देते हैं। पूजा-सामग्री में मद्य-मांस भी रहते हैं। वे लोग आत्मानुभूति द्वारा ब्रह्म से साक्षात्कार करने में विश्वास रखते हैं। इसमें सद्‌गुरु का बड़ा महत्त्व है। ये वस्तुतः सद्‌गुरु को ही सत्पुरुष का पार्थिव प्रतीक मानते हैं। किनाराम की समाधि पर काशी की वेश्याएँ एक-एक रुपया, नारियल, 'पंचमोजरे' आदि चढ़ाती हैं। सरभंग संत किसी प्रकार की अन्य पूजा या नमाज आदि नहीं करते हैं।

चम्पारन के साधुओं में अखरा 'फाँड़ी' के लोग खेती-बारी भी करते हैं। मुजफ्फरपुर जिलांतर्गत एक-दो मठों को छोड़कर सभी जगह खेती होती है। इनकी आजीविका का मुख्य आधार खेती तथा भिक्षाटन है। कहीं-कहीं काठ की चीजें (फर्नीचर), लोहे का सामान (खुरपी, कुदाल आदि) बनाकर तथा रस्सी बाँटकर ये अपनी जीविका चलाते हैं। सारन जिले में ये लोग न तो खेती करते हैं, न भीख माँगते हैं। गाँव के लोग स्वयं इन्हें 'साली' (वार्षिक चन्दा) देते हैं, जिससे इनका काम चलता है। भिक्षा के समय ये लोग गीतों को गाकर एकतारा तथा खंजरी बजाते हैं; कभी-कभी अपने मुँह से रक्त और दूध निकालकर लोगों को प्रभावित कर पैसा प्राप्त करते हैं। कहीं-कहीं हैजा आदि छूत रोगों के फैलने पर 'भभूत' बाँटते हैं तथा मन्त्र द्वारा उस उपद्रव को शान्त करके विदाई में द्रव्य अथवा अन्न प्राप्त करते हैं।

अन्त में हम यह बताना चाहेंगे कि क्रूक (W. Crooke) ने 'एनसाइक्लोपीडिया ऑफ रिलीजन एण्ड एथिक्स' में 'अघोरी', 'अघोरपंथी' और 'औघड़' के संबंध में अनेकानेक आधारों का उपयोग करते हुए उनका वर्णन किया है और यह बताया है कि वे मरे हुए पशु तथा मनुष्य का मांस, मल-मूत्र आदि सब कुछ खाते हैं और उनका आचार-व्यवहार ऐसा होता है, जो सभ्य समाज के लिए विभीषिका बन जाता है। इन्होंने इस प्रसंग में 'किनाराम', 'किनारामी' तथा 'सरभंगी' मतों की भी चर्चा की है और यह कहा है कि ये उन अघोरियों से बहुत भिन्नता रखते हैं, जिनके भयावह दुष्कृत्यों की

चर्चा उन्होंने विस्तार से की है। अतः सरभंगों तथा 'औघड़ों' को 'अघोरियों' से अभिन्न मानना अंशतः भ्रम है। अनेक विचार-बिन्दुओं से सरभंगों के आचार-विचार केवल अघोरियों से ही नहीं, किन्तु तांत्रिक औघड़ों से अधिक सौम्य एवं श्रेष्ठ हैं। जहाँ तक सरभंग-सम्प्रदाय के सिद्धान्तों और मान्यताओं का प्रश्न है, और जिनका प्रतिपादन सिद्धान्त-खण्ड में किया गया है, वे तो संत-साहित्य की अनन्य-विभूति हैं, निःसन्देह !

टिप्पणियाँ

१. सत्य की रीत परतीत गुरु ज्ञान में मस्त निज हाल पिया प्रेम पागा।
मर्म को खंड कामादि दल खंड के मंडि अनहद अनुराग जागा॥
लिये संतोष छमा परिवार रत धीरता रहनि निज कर्म रागा।
रामकिना रहनि सहज हरिदासन के नाम रस-मगन सोइ सत्य जागा॥
—किनाराम : रामगीता, पद १२

२. कोई जन जीवै सुरत सनेही राम के। प्रेम पुलकि आनन्द रस पीवै॥
अति दयाल धीरज बड़ो अघ औगुनहारी। बैर रहित मति धीरता गुनगन अधिकारी॥
जितखण्ड गुन गन वासना सुचि सहज उदासी। ज्ञान रूप रविसम सदा आशा निसि नासी॥
निरप्रेही निरमल दसा दाता सबही के। सत्य निरन्तर यहीं है उपजै सबही के॥
सदा एक मन किये यहीं अस्थिर चित कीने। सुखी सहज सन्तोष में परमातम चीने॥
काल कर्म व्यापै नहीं नाही हानि गलानी। सब को हित सब विधि मन बच कर्म अरु बानी॥
जिनके संघत करत ही सुख सुकृत जागै। रामकिना पद परस ते अनुभौ अनुरागै॥
—किनाराम : रामगीता, पद २५

३. जग में बहुत पंथ बहु भेषा, बहु मन बहु उपाय उपदेशा।
कोइ तपसी तप करे अखण्डा, कोइ पूजा व्रत नेम प्रचण्डा।
कोइ बैराग कोई सन्यासी, कोइ पंथाई अलख उदासी।
जटा मभूति तिलक मृगछाला, छापा कंठी कपड़ा लाला।
यहि सब है संतन के लक्षण, की कछु अब ये कहिय विचक्षण।
अबरो संत रहस्य अनेका, कहिये कृपा कर होइ विवेका।
—कर्ताराम धवलराम-चरित्र, पृ० ५६

४. जग में बैठे संत न होखे पंचागिनि नहिं तापे ते।
वह 'करता' जो संत होत है रामनाम लव लावे ते॥१॥
पूजा व्रत तो करमकाण्ड है सन्तन को नहिं दुनिया को।
'करताराम' कहतु है साधो रामनाम का रसिया को॥२॥
तिलक छाप से राम मिलन नहिं नहिं कपड़ा रंगवावे ते।
'करताराम' कहत है सुनलो संत राम गुन गावे ते॥३॥
संत न करता टोपी बनगी योगी अलख जगावे के।
जटा मभूति अवर मृगछाला करता जग देखलावे के॥४॥
—कर्ताराम धवलराम-चरित्र, पृ० ५७

५. गहे गरीबी झूठ न बोले यथा लाभ संतोषा है।
तन मन से उपकार पराया करता संत अनोखा है ॥७॥
बिना परिश्रम धीव शक्कर को दुनिया से लेइ खाता है।
'करता' नाम भेद नहि जानत झूठा संत कहाता है।
पर धन धूर नारि नागिनि सम मेहनत करके खाता है।
आठो पहर नाम रस पीवे करता संत कहाता है ॥९॥
निन्दा अस्तुति नाहिं काहुके आसा तृष्णा त्यागी है।
सहज सरूप सुरति नामहि में संत सोइ बड़भागी है ॥१०॥
जो आसा से रामनाम ते नाम लहे गुरुदेवा से।
'करता' रामनाम के भेदा कोइ पावे गुरुसेवा से ॥११॥
मन मतंग मतवाला जानो अंकुश विषय विरागा है।
ज्ञान विचार पथर के पैकर बांधे संत सुभागा है ॥१२॥
शूकर विष्ठा सम परतिष्ठा गौरव नरक समाना है।
कह 'करता' करमात चलाना कहर नदी मह जाना है ॥१३॥
समरथयुत निर्बल होइ रहना जानबूझ अनजाना है।
कह 'करता' करतूत करे नहिं संत सोइ मरदाना है ॥१४॥
अमल पिये जिह्वा रस चाखे बात करे फकिराना है।
'करता' कहे संत सो कैसा नाहक जनम गवाना है ॥१५॥
बातचीत करि समय बितावे घर घर दौड़े फिरता है।
झाड़ि फूंक करि पूजा लेवे 'करता' संत अमिथ्या है। १६॥
हाथ सुमिरनी सिर तर सींधा बगल भागवत गीता है।
चिलम दगे करता भजता नहिं जानबूझ विष बोता है ॥१७॥
रामनाम सुमिरन के भेदा गुरु जेहि नाहिं लखाया है।
बाहर भीतर जो नहिं चीन्हा 'करता' जग जहड़ाया है ॥१८॥

—कर्त्ताराम धवलराम-चरित्र, पृ० ५७ तथा ५८

× × ×

मन राम भजे तन काम करे पर काज सधे तन से मन से।
कामिनि बाघिनि जानि तजो परके धन से डर सांप डसे ॥
निरपक्ष सदा मुनि संतन के सत जानि गहे अभिमान नसे।
चुनि चूनि गहे गुण संतन ते उनमत्त रहे हरि नाम नसे ॥१९॥

—कर्त्ताराम धवलराम-चरित्र, पृ० ५

× × ×

संतन को धन धूरि समान अहो धृक द्रव्य लिये तनुहारी।
आवत संग न जात संगे पुनि बीचहि बीच में जात बिलाई ॥

—कर्त्ताराम धवलराम-चरित्र, पृ० ८

६. साधेउ ना तन साधु कहाँ वह क्रोध किए पुनि बोध कहाँ है।
मन नाहिं मेरे जीव मारिके खाहु करो करमाति लहै गति नाहीं ॥
क्रोध रहे जिन्हके मन में अस बोध करौ सब पाप तहाहीं।
'करता' यह नेम कियो दृढ़ कै मनसा मुख भानु से देखे बनाहीं ॥७९॥

—कर्त्ताराम धवलराम-चरित्र, पृ० १७

७. फकीरी सहज बादशाही करैं कोइ संत सिपाही ।

—किनाराम : रामगीता, पृ० ४९

८. छेमा के छत्र है संत का सीस पर दाया सन्मान के चँवर लेता ।
राम रघुनाथ का धजा फहरात है अभय निसान सुनि सकल डरता ।
शील सन्तोष गुरु ज्ञान का फौज ले काम औ क्रोध उन सकल हरता ।

—बोधीराम : हस्तलिखित संग्रह, पृ० ४६

९. मढ़ई महल समान निज । तोसक तरई जान ॥
बस्तर मोटा अन्न निज । इहै तपस्या मान ॥४॥

—कर्ताराम धवलराम-चरित्र, पृ० ६०

१०. कियो फकीरी क्या दलगीरी, सदा मगन मन रहना मेरो राम ॥
कबहुँ के रहना कोठा अमारी, कबहुँ जंगल रमि जाना मेरो राम ॥
कबहुँ के खाना पाँचो पदारथ, कबहुँ के भूखे सहि रहना मेरो राम ॥
कबहुँ के ओढ़ शाल दुशाला, कबहुँ के धुइयाँ तापि रहना मेरो राम ॥
श्री टेकमन राम भिषम प्रभु दर्शन त्राहि पुकारी ... ... ॥

—टेकमनराम : भजन-रत्नमाला, पृ० ३४

११. कपट कोटि कह जानि नसावै । निर्भय प्रेम में रमि रमि धावै ॥
लाभ हानि नहि उर कछु धरई । अनुभव प्रगटि निरन्तर भरई ॥
समता शान्ति उदय नवनेहा । सतगुरु बचन सार सोइ गेहा ॥
शत्रु मित्र लै रहै अकेला । निज पराय परिहरि जग खेला ॥
सब भूतन पर करै अनुग्रह । संत संग यह शिष्य सुग्रह ॥
यह मत गहि जितनित ठहरावै । आवें बहुरि नाश नहिं पावै ॥

—किनाराम : विवेकसार, पृ० ३० तथा ३१

१२. बन्दहु सन्त अकाम, बेरि बेरि ।
उपर बोवै जैसे बीज ना जानै, सन्त हृदय जिमि काम ।
गगन मंडल से मेघ अमृत बरिषै, फूले फले नाहिं सत्रधाम ।
जिमि अग्नि महं बीज न जामहि, विषयी हृदय हरिनाम ।
सन्त हृदय ऐसे ज्ञान कृशानु में, जामत नहिं खल काम ।

— अलखानन्द : निर्पक्ष वेदान्तरागसागर, पृ० ५२

१३. वही, पृ० ५५ तथा ५६

१४. ज्ञान खरग ले हाथ काम क्रोध दल मारो ।

—पलटूदास : आत्म-निर्गुण-ककहरा, पृ० १

१५. जो दिल दिया है तो फिर इसमें कुछ दया देना ।
और इसके साथ ही कुछ खौफे किबरिया देना ॥
जिगर दिया है तो हिम्मत भी इसमें पैदा कर ।
सितम के सहने को सीना सिपर बना देना ॥
दिया है सर तो दो सौदा-ए-यार भी इसमें ।
खुदी को सर से मेरे सरबसर मिटा देना ॥
दिया है आँख तो दखल इसमें दो मोरोवत का ।
जो कोतह-नजरी है इसमें, उसे हटा देना ।
दिया है कान तो झनकारे गैबी सुनने दो ।
सदाय नैकमना इस कदम सुना देना ।

दिया है लब तो हो. जिक्रे इलाही इससे मोदाय।
जबाँ को लज्जते मय मार्फत चखा देना॥
दिया है हाथ तो खैरात इससे होने दो।
कमर दिया है तो दरे पीर पर झुका देना॥
तनाफ खनाए मुराशद का पाँव से हो, या।
जमा के बारगहे पीर में बिठा देना॥

—आनन्द : आनन्दसुमिरनी, पृ० ३२ तथा ३३

१६. नयी ऐसी लगन दिन चारि के करु राम के बहुरि विषै से नेह करते;
कुसुमी रंगे जो रहे नाद सन पर छुद्र के प्रीति जोड़ सोड़ करते।
रंग मजीठ सम है एक संत का फाटे ना चीटे जो टरे न टरते;
कहे दास बोधी पहिचान हरिदास को रहे बेखबर संसार भरते॥

— बोधीदास : हस्तलिखित संग्रह, पृ० ४१

१७. जग लेखवाँ हम बाउर भेलीं॥
जात कुटुम सब ताना मारैं। छाड़ि परिवार फकीर संग खेलीं॥
करवा कोपीन अरु सैन कुघरिया। मथवाँ में तिलक अजब रूप घैलीं॥
कर परतीत नाम दुइ अक्षर। तेहिं के भरोसवा तिरथ नाहिं कैलीं॥
रामकिना बौराह राम के। पावल राम नाम धन थैली॥

—किनाराम : रामगीता, पृ० ४

१८. देखो नर सन्त के रहनी; सकल दुनियां से न्यारा है॥
कमल जिमि रहता जल भीतर; किया जल में पसारा है।
पानी से पत्र ना भींजे; इमि सन्त भौ से न्यारा है॥
जिमि बत्तीस गो दातन में; जिह्वा रहे दाव से न्यारा है।
इमि सन्त पाँच पचीसो में; तीनो गुण से किनारा है॥
जिमि तेल धृत्य जल माहीं; किया जल में पसारा है।
मिले नाहिं तेल जल माहीं; इमि सन्त भौ से न्यारा है॥
जिमि रवि ज्योति तम फोरे; किया सगरे उजेरा है।
इमि सन्त ज्ञान उजिआला; अलखानन्द मोह के फेरा है॥

—अलखानन्द : निर्पक्ष वेदान्तरागसागर, पृ० ८३

१९. भ्रमनाशक प्रश्नोत्तरी, पृ० ६२

२०. बैठे लंगड़ा बैठे लूला,
बैठे अजगर अन्धा।
निरमोही फकीर क्यों बैठे,
जोगिन ऐसी जोग के धन्धा॥४॥

—नारायनदास : जोगीनामा (ह० लि० सं०), पृ० ३४

२१. कहि कहि संत सुजान, जग माहिं।
सकल सिला में जैसे माणिक्य नाहिं, सब गज में मुक्ता न॥
सकल भुजंग में मणि नहिं होते, ऐसे ही सन्त में प्रमान॥
जैसे के मोती सर्प सीपी में नाहीं, सिंह बने बने हान॥
मलयागिरि के जैसे जंगल नाहीं, दोय चारि दस नाहीं भान॥

गौरोचन सर्व बाँस में नाहीं, यह भाखि साधु श्री कहाव ॥
सकल मेढ़क अरमोहरा ना राखै, सब संत में ऐसे ज्ञान ॥
'अलखानन्द' सब संतन के सेवक, कोइ कोइ लखे विद्वान ॥

—अलखानन्द : निर्पक्ष वेदान्तरागसागर, पृ० ५१

२२. शिव न जीव लेहि कहि अवधूता ।
देव निरंजन सदा अरूता ॥

—आनन्द : विवेकसार, पृ० २०

२३. विवेकसार, पृ० ३-४

२४. देखिए पाद-टिप्पणी-संख्या १७ का पद ।

२५. सन्त कबीर के नाम से गाया गया पद—ह० लि० सं०, पद २

२६. गुरु है चारिहुं वेद अनल शशि उदै दिनेसा ।
गुरु है महि आकास पौन पानी सब भेसा ॥
गुरु है त्रिभुवन सार चार जुग कहिए तिहुंपुर ।
अभय अखंड प्रताप फिरत निस दिन तेहि के पुर ॥
गुरु दयाल दाता सकल, गुरु समान काहू नहिन ।
रामकिना गुरु पाय परि, विनय करत सब दिनन दिन ॥
गुरु जीवन के जीव शीव सुखमंडल रासी ।
गुरु ज्ञानहु के ज्ञान हृदय गुन कमल प्रकासी ॥
गुरु है सरबस मूल सूल सब हरन विधाता ।
गुरु है नित्य स्वरूप अमल पावन पद दाता ॥

—किनाराम : रामगीता, पृ० २०, पद ५४

२७. परम ब्रह्म गुरु शिरसि नमामि । परम ब्रह्म गुरु तनहि भजामि ॥
परम ब्रह्म गुरु मन सुमिरामि । परम ब्रह्म गुरु बचन वदामि ॥

— कर्ताराम धवलराम-चरित्र, पृ० ३७

२८. नित्य शुद्ध चैतन आभासा । निरंकार निरमलहि प्रकासा ॥
चिदानन्द गुरु नित्य प्रबोधा । नमो नमो गुरु ब्रह्म सुबोधा ॥
गुरु अनादि गुरु आदि कहावे । परम देव गुरुदेव बतावे ॥
मंत्र न है गुरु मंत्र समाना । नमो नमो गुरु श्री भगवाना ॥
सर्व तीरथ असनान के, करने से फल जोइ ।।
गुरु चरणोदक लीन्ह के, सहस भाग सम होइ ॥८॥
सो विधि हरिहर गुरु सम नाहीं । गुरु परतर नहिं पूजौ ताहीं ॥

– कर्ताराम धवलराम-चरित्र, पृ० ३६-३७

२९. पाप पंक सूखे छन माहीं, ज्ञान दीप तुरते बरि जाहीं ॥
भव बारिध तरता नर सोई, गुरु चरणामृत पिये जो कोई ॥
हरे भूल अज्ञानहिं जोई, जन्म कर्म नाशक है सोई ॥
ज्ञान विराग सिद्धि करि देई, गुरु के जूठन खाय जो लेई ॥
गुरु चरणामृत के पिये, भोजन गुरु उच्छिष्ठ ॥
ध्यान मंत्र गुरु के पढ़े, गुरु स्तुति गुरु निष्ठ ॥३॥

—कर्ताराम धवलराम-चरित्र, पृ० ३३

३०. देव समान आनि गुरु देवा। करिय भक्ति नहिं तनिको भेवा ॥
'गु' वाचक अज्ञान के, 'रु' प्रकाश कह जान ।
देत ज्ञान तम दूरि करि, तिन कहँ गुरु तुम मान ।'१॥
हरै विपति नासै दुख द्वन्दं। नमो देव गुरु पद मकरन्दं ॥
× × ×
सुनहु कहौ दुर्लभ जग माहीं। गुरु बिनु सत्य पदारथ नाहीं ॥
वेद पुराण सास्त्र इतिहासा। मंत्र तंत्र सब धर्म प्रकासा ॥
वैष्णव शाक्त शैव सौरादी। गुरु बिनु सकल जीव कह बादी ॥

—कर्त्ताराम धवलराम-चरित्र, पृ० ३२

३१. घर माहि रहे गुरु सेवा करे तेहि राम मिले न किये असनाना।
तदपि अस पुराइये संतन दरस करो भ्रमि तीर्थ नहाना ॥१०२॥

—कर्त्ताराम धवलराम-चरित्र, पृ० २१

३२. गुशब्दस्त्वन्धकारः स्याद्रुशब्दस्तन्निरोधकः ।
अन्धकारनिरोधित्वाद् गुरुरित्यभिधीयते ॥
गुकारः प्रथमो वर्णो मायादिगुणभासकः ।
रुकारो द्वितीयो ब्रह्म मायाभ्रान्तिविमोचकः ॥
× × ×
गकारः सिद्धिदः प्रोक्तो रेफः पापस्य दाहकः ।
उकारः शम्भुरित्युक्त स्त्रित्यात्मा गुरुः स्मृतः ॥
× × ×
गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः ।
गुरुः साक्षात् परंब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥

—'गुरुभक्त जयमाल' से उद्धृत, पृ० १ तथा ३

३३. साधो गुरु ईश्वर दोय नाहीं, यह समझे के भेद बदाहीं ॥
जैसे के तरंग फेन बुल्ला कहे बाहीं, जल से विलग फेन बुल्ला न कहाहीं ॥
जैसे के भाजन नाम के फरकाहीं, मिट्टी से विलग कोउ भाजन ना पाहीं ॥
जैसे के भूषण अंग-अंग के जुदाहीं, सोना जुदा नाहिं भूषण कहाहीं ॥
सगुण बबूला निर्गुण जल काहे बाहीं, कहें अलखानन्द गुरु ईश्वर यह ताहीं ॥

—अलखानन्द : निर्पक्ष वेदान्तरागसागर, पृ० १६

३४. साधो सतगुरु जीव सुधारे। जीव सुधारि करै भव पारे ॥
जैसे के कुलाल माटी सानि ढारे। गढ़ि-गढ़ि भाजन अनेक उतारे ॥
जैसे के सोनार ताई सोना के पीट करे, खोटा धातु के निकारे ॥
जैसे के लोहार लोहताइ के सुधाई करे। जैसे के बढ़ई काष्ठ फारे ॥
जैसे दर्जी फारि कपड़ा सिलाई करे। अलखानन्द पहनत सारे ॥

—अलखानन्द : निर्पक्ष वेदान्तरागसागर, पृ० १६

३५. जैसे के सलाक डारि वैदहू ने सुद्ध करे, नेत्र ही का दोष सर्व टारे।
जैसे के हकीम सब फफोले के फारिकर, सुवर्ण सरीर कर डारे ॥
जैसे के वैद जैसा रोग तैसा दवा देकर, मरतहू जीव को उबारे।

कहे अखण्डानन्द जैसा शिखा को सिखावट ने ऐसे गुरु जीव निस्तारे ॥
मेरे सतगुरु भ्रम छोड़ाया है जी, सत्य लखाया है जी ॥

—निर्पक्ष वेदान्तरागसागर, पृ० २०

३६. कल्पतरू के कल्पतरु गुरु दयाल जिय जानि।
शिवनाम है राम शुचि रामकिना पहिचानि ॥
सतगुरु समरथ सांचि लखि वर प्रसाद उर पाय।
आत्मा अनुभव की कथा कछु इत कहीं न जाय ॥

—किनाराम : विवेकसार, पृ० २

३७. जहाँ ज्ञान को गम नहीं कर्म जहाँ नहिं जाहिं।
सो तौ प्रगट लखा दिया रामकिना घट माहिं ॥
अनुभव होतेहि शिष्य तब बोले बचन बिचारि।
सोहं सतगुरु की कृपा संसय सोक निवारि ॥

—विवेकसार, पृ० २६

३८. अति अगाध अतिसय अगम व्यापक सर्व समान।
बिनु गुरु कृपा कोऊ लहै रामकिना निरबान ॥

—किनाराम : विवेकसार, पृ० ३२

३९. गुरु से लगन कठिन है भाई।
लगन लगे बिन मुक्ति न होइहैं, जीव परले होइ जाई।

—गोविन्दराम : हस्तलिखित संग्रह, पद ३

४०. हरिहु भजन की नाहीं मिलिहैं।
जब लौ मिलैं न गुरु पूरनधनी रे ॥

—भक्त सुक्खू : आनन्दसुमिरनी, पृ० ६

४१. सतगुरु शब्द जहाज चढ़ि, राम नाम कँढ़िहार।
रामकिना सुविवेक ते, उतरि भये भौ पार ॥

—किनाराम : रामगीता, पृ० १३

४२. नइया भँवर में मेरो परी है।
बिनु सतगुरु नहिं कोइ खेवइया ॥

—रजपती : आनन्दसुमिरनी, पृ० २२

४३. निर्पक्ष वेदान्तरागसागर, पृ० १८

४४. गुरु अक्षर जो दोय है, मंत्रराज तेहि जान।
अगम वेद पुरान के, श्री गुरु है अस्थान ॥१४॥

—कर्ताराम धवलराम-चरित्र, पृ० ४०

४५. परमतीर्थ गुरुदेवहि जानो, और निरर्थक तीरथ मानो।
जहाँ लगी सब तीरथ होई, गुरुपद अंगुठा में बस सोई ॥

—कर्ताराम धवलराम-चरित्र, पृ० ४५

४६. व्यापक हरि नहिं प्रगट है, गुरु दयाल प्रसमान ॥१४॥

—कर्ताराम धवलराम-चरित्र, पृ० ६९

४७. निरगुन गुन जहँ नाहिने, अकल असंजित देस।
रामकिना तहँ पहुँच तू, लहि गुरुमुख उपदेस ॥

—किनाराम : रामगीता, पृ० ७, पद १६

४८. सहज प्रकासक आत्मा, रामकिना गुरु ज्ञान।
उदय भये सूरज लखौ, होत सघनतम हान ॥
—रामगीता, पृ० १३, पद ३४

४९. इश्क की मंजिल बहुत दुश्वार होती है जरूर।
पर करम हो पीर का तो होती है आसान भी ॥
है नहीं जुज पीर कोई हादिरा राहे वफा।
देख डाला हमने पढ़कर वेद और कुरान भी ॥
मिल गया आनन्द 'सुन्दर' फज्ले मुरशद से हमें।
वरनः कब था हममें न्यारा इसका था इमकान भी ॥
—आनन्दसुमिरनी, पृ० ३४-३५

५०. तिरछी चितवन जेहि पर डारा।
सो झुकि झुकि परे जीते मरै ॥
पूरन दृष्टि से जेहि-जेहि ताका।
प्रेम सुधारस डूबि मरै ॥
—रजपत्ती माई : आनन्दसुमिरनी, पृ० २३

५१. गुरु ने पिलाय दीनो प्रेम का प्याला।
नैना से नैना मिलाय के छन भर। मारि गये उर में प्रेम का भाला।
अंग की सुधि गई, संग की सुधि गई। जियरा भयल मोर अब मतवाला ॥
रैन न नींद, दिवस नहिं चैना। उठत हृदय बिच रहि रहि ज्वाला।
—आनन्दसुमिरनी, पृ० २१

५२. छन भर चित से बिसरत नाहीं।
सुन्दर गुरु की मुखारी हो ॥
नैना लोभी चरण कमल के।
हर्षित होत निहारी हो ॥
तन मन धन अनमोल सुरतिया।
गुरु पर दियो सब वारी हो ॥
—आनन्दसुमिरनी, पृ० १५

५३. गुरु राम है राम नहिं दूजो,
तुझे क्या एतनो विश्वास नहीं ॥
—आनन्दसुमिरनी, पृ० १३२

५४. गुरु के कुतुंज जो कर देई, करि के बाद जीत जे लेई।
निश्चै निशिचर जन्म है सोई, ब्रह्म पिचास देहि तेहि होई ॥
—कर्त्ताराम धवलराम-चरित्र, पृ० ३९

५५. गुरु समीप मल मूत्र गिरावे। रौरौ नरक वास सोइ पावे ॥
—कर्त्ताराम धवलराम-चरित्र, पृ० ३५

५६. गुरु मुख में विद्या जो रहई। गुरु भक्ती बिनु नहिं कोइ लहई।
चौदह भुवन नाग नरदेवा। गुरु बिनु नहिं कोइ पावै भेवा ॥
गुरु के त्याग कबहुँ नहिं करना। दृढ़ करि गुरु पद हिय में धरना।
आसन भोजन वसन बनाई। कीजे गुरु जेहिते सुख पाई ॥
उत्तम वस्तु जहाँ ते पावे। गुरु पद पर तेहि आन चढ़ावे।
प्रान दिये गुरु सुख जो पावे। तांहू महं नहिं बिलम लगावे ॥
—कर्त्ताराम धवलराम-चरित्र, पृ० ३४

५७. गुरुते अधिका तप नहीं, तत्त्व न गुरु अधिकत्व ॥
गुरुते अधिका ज्ञान नहीं, नमो नमो गुरुतत्त्व ॥७॥
—कर्ताराम धवलराम-चरित्र, पृ० ३६

५८. भजन भेद पाया नहि गुरुते रहा जाति कुल टूटा है ॥
करताराम गुरुते बिगरे अंत काल यमु लूटा है ॥
—कर्ताराम धवलराम-चरित्र, पृ० ५९

५९. स्वाती जल सतगुरु वचन, थल विशेष गुन होइ ।
रामकिना गजकुंभ मनि, मांग सीप विष होइ ॥
—विवेकसार, पृ० ३३

६०. गुरु के चरन चित लागा हो । मन अति अनुरागा ॥
जो प्राणी यश गुरु को न गावै । सो खल अघ औ अभागा हो ॥
—आनन्द-मलहार, पृ० २

६१. गुरुभक्त जयमाल, पृ० ४५

६२. लागी लोइ विकल चित मेरा, कब देखिहों मैं जाई ।
सदगुरु भेदि दर्शन दिन्हा, दिये भेद बताई ॥
—योगेश्वराचार्य : स्वरूपप्रकाश, पृ० ८

६३. सुन भवन में पिया के बसगित, जगमग ज्योति दरसाइओं ।
गंगा जमुना त्रिबेनी संगम, उहां स्नान कराइओं ॥
करि स्नान जपो अभिअंतर, सतगुरु सब्द लखाइओं ।
—टेकमनराम : भजन-रत्नमाला, पृ० ८

६४. चल चल मनुआ हो गुरु का नगरिया किया हो राम जी
जहँवा उपिजल हिरवा लाल नु हो राम ।
सतगुरु किरपा करिहें हिरवा लखा दिन्हें ॥
—भिनकराम (ह० लि० सं०), पद २०

६५. पिया की अटरिया चढ़न चली मैं,
पै खोरिया बड़ी संकरी—मोरे बालमुआ ॥
दसवें पर लागल बजर केवरिया,
तामे कड़ी सिकड़ी—मोरे बालमुआ ॥
ताला कठोर लगल थक दुअरिया,
चलै ना कोइ बस री—मोरे बालमुआ ॥
लोटत रहयूं तेसे सतगुरु मिलि गए,
पट खोलि दियो कटरी—मोरे बालमुआ ॥
बहियाँ पकरि गुरु ले गए भितरा,
जहाँ आनन्द की कचहरी—मोरे बालमुआ ॥
आनन्द जयमाल, पृ० १२

६६. आनन्द जयमाल, पृ० ६

६७. गुरु से द्वार की कुंजी मिलै जो ।
झटपट देह उघारी हो ॥

पट उघरे मिले हंसा से हंसा।
सोमी अनुपम न्यारी हो॥
—आनन्द सुमिरनी, पृ० १६

६८. तब ते मगन भयो मन मेरा॥
जब ते गुरु 'अनुभौ' पद दीना गगन मंडल कियो डेरा।
× × ×
अनुभौ जग में बहुत हैं, किया कर्म विस्तार।
बिन सतगुरु नहि पाइये, रामकिना निस्तार॥
—किनाराम : रामगीता, पृ० १ तथा १०

६९. समुझ विचार एक चीज है, जो गुरु गम से पाई।
समुझ विचार हृदय में होई, तब हंसा सुख पाई॥
—रामटहलराम : भजन-रत्नमाला, पृ० २२

७०. आनन्द सुमिरनी, पृ० ३

७१. गुरु के चरनों में, सत्संग का, जो था आनन्द।
सम वह नजरों में, अब तक है हुबहू बाकी॥
—तख्यलाते आनन्द, पृ० ३०

७२. तख्यलाते आनन्द, पृ० २५

७३. सन्तों के शरण में जा, सत्संग किया कर।
तब मैल तेरे मन का, कहीं धो जाये, तो क्या जानें॥
—गुलाबचन्द 'आनन्द' : आनन्द-भण्डार, पृ० ५२

७४. चित्त विवेकी कबहुँ ना होई।
जब लों सतसंग में नाहिं सनी रे॥
—भक्त सुक्खू : आनन्द सुमिरनी, पृ० ६

७५. सतसंग के बिना नहिं, खुलता है नाम का गुर।
बिन गुरु के जाने तेरा, पूरा भजन न होगा॥
—भक्त सुक्खू : आनन्द सुमिरनी, पृ० १२

७६. कल्पवृक्ष है साधू संगत, मनमाना फल देता है,
दुःख कलेस संसार के सारे, वो छण में हर लेता है।
मनुष जन्म वृथा मत खोवो, जन्म नहीं यह बारम्बार,
पात सूखकर गिरे वृक्ष से, नहिं फिर लगे वृक्ष के डार।
पोथी पढ़ो न पुस्तक बाँचो, हित चित से कर साधू संग,
फिर देखो कैसा चढ़ता है, नित्य नया परमारथ रंग।
साहेब मिले न स्वर्गलोक में, नहिं बसता है चारो धाम,
वो रहता है साधु-संग में, साधु-संगत है सत् नाम।
—श्रीआत्माराम : परमहंस की वाणी (ह० लि० संग्रह)

७७. सत्संग के असर से तबियत बदल गई।
बिगड़ी हुई जो हालते दिल थी सँभल गई॥
—भक्त सुक्खू : आनन्द सुमिरनी, पृ० २६

७८. काम, क्रोध, अहंकार, कल्पना, दुविधा दुर्मति बढ़ाई।
जो जो बैर किये संतन से, हरि से सहा न जाई॥

हरियाकुल के उदर बिहारे, रावन भूरि चलाई।
सुरकवि, पंडित, नृपति बादशाह, ऊँचवे पदवी पाई।

—गोविन्दराम : ह० लि० सं०, पद ४

× × ×

संत से अन्तर ना हो नारद जी, संत से अन्तर नाहिं।
जिन मोरा संत के निन्दा कइले, ताहि काल होइ जाहीं।

—टेकमनराम : ह० लि० सं०, पद २

७९. साधु सेवा का, या सत्संग का जब हो 'आनन्द'।
वह घड़ी अच्छी है सबसे, वह पहर अच्छा है॥

—आनन्द : तख्यलाते आनन्द, पृ० २४

८०. नीको हो मोरा आजु के लगनवा।
जाहि दिन संत हमरा अइले पहुनवा।
बाहर भीतर महल बा अँगनवा।
दरसन से सुख पावे नयेनवा।
रोम रोम अंग भये चरनवा।
सब संतन मिलि कइले समनवा।
हरिदम प्रभु संग रहिले मंगनवा।
सिरि मिनकराम दया सतगुरुजी के,
गगनमंडल में मिल गेल पुरुस अमनवा।

—मिनकराम : ह० लि० सं०, पद ६

८१. दीक्षा उपदेश कोटिन शठ माने नहीं, पंक वेदान्त युग चार गाई।
पलटूदास कहे संत पंथ जानि ले, सोई भवसिन्धु के पार जाई।

—पलटूदास : ह० लि० सं०, पद ६

८२. अवसर बीतत नर तन दुर्लभ श्रुति सतसंग।
गहु मंत्र एक भजिबे को अंग॥

—किनाराम : रामगीता, पद ३, पृ० २

८३. आनन्द सुमिरनी, पृ० ३७
८४. वही, पृ० ४ तथा ५
८५. वही, पृ० ७
८६. वही, पृ० ३
८७. भजन-रत्नमाला, पृ० १२
८८. भजन-रत्नमाला, पृ० १५
८९. भजन-रत्नमाला, पृ० २६
९०. भजन-रत्नमाला, पृ० ३७
९१. भजन-रत्नमाला, पृ० २७ से ३२ तक
९२. विवेकसार, पृ० ८
९३. कथै ज्ञान स्नान यज्ञ व्रत उर में कपट कमानी।
निकट छाड़कर दूर बतावत, सो कैसे पहचानी॥
हाड़-चाम अरु मांस रक्त मल जाँच्यो है अभिमानी।
ताहि खाय पण्डित कहलावत, कहु कैसे हम मानी॥

पढ़े पुरान कोरान वेदमत जीवदया नहिं जानी।
औरन को कहि-कहि समुझावत आप मरम नहिं जानी॥
जीव भिन्न भाव कर मारत पूजत भूत भवानी।
वह अबहि नहि सूझै मन में बहुत रिसानी॥
अधहि अंधा डगर बतावै बहिरहिं बहिरा बानी।
रामकिना सतगुरु सेवा बिनु भूलि मर्‌यो अज्ञानी॥
—किनाराम : गीतावली, पृ० ८, पद १९

९४. जीवन है लघु जक्त विषै पर जीव सतावत जो निज लागी।
मार के जीव अहार करै न रहै नहिं राक्षस ये अग जागी॥
पूछिये मैथिल विप्रन सो परपीड़न के फल का श्रुति दागी।
का गति वेद लिखै तिन्हके जिन्ह काटतु हैं बकरा कह मागी॥
—कर्ताराम धवलराम-चरित्र, पृ० ११

९५. दया दीनता सत्यता नाम प्रेम निज अन्त।
यहि पांचो जाके मिले सो नर कलिमहँ धन्य॥
सो नर कलि महँ धन्य पड़े बानी संतन की।
लिये रहे मरजाद साथ छोटे दुष्टन की॥
—कर्ताराम धवलराम-चरित्र, पृ० ४८

९६. अचल कवन निजवचन है अब स्वकीय पवित्र।
पुन्य कहिये उपकार को पर दुख पाप चरित्र॥ १६॥
—कर्ताराम धवलराम-चरित्र, पृ० ५१

९७. सहजानन्द सुबोधमय आतम रूप निहारि।
कहत भये गुरु शिष्य सन रक्षा यत्न विचारि॥
आतम रक्षा चार विधि है शिष सहज सुबोध।
दया विवेक विचार लहि संत संग आरोध॥
दया दरद जो सहजेहि पावों।
पर पीरा को संतत पावों॥
संग कुसंग जानि ठहरावै।
सो विवेक मुनि किहि असगावै॥
संग गहै कुसंग बिसरावै।
यह विचार गहि लेइ सो पावै।
अब सतसंग जानि उर गहहू।
राम नाम रसना उच्चरहू॥
—किनाराम : विवेकसार, पृ० ३०

९८. इन्द्रिय जित गत वासना, प्रेम प्रीति परकास।
तेहि प्रिय सार विवेक यह, नित नव नेह हुलास॥
—किनाराम : विवेकसार, पृ० ३३

९९. ऐ सरकार खबर मोरा लीजे
कोठा अमारी उनके मन नाहिं भावे, झोपरिया लिन्हा ऐ सरकार॥
शाला दुशाला उनके मनहूँ न भावे, कमरिया लिन्हा ऐ सरकार॥
—टेकमनराम : भजन-रत्नमाला, पृ० २५

१००. मोहन चाहो अधीनता चादर, नाम के चश्मा गहि रहना।
रूखा सूखा भोजन करना, जहाँ तहाँ पर रहना।
श्रीटेकमनराम भिषम प्रभु, करम-भरम सब बहना॥

—टेकमनराम : भजन-रत्नमाला, पृ० २८

१०१. खाहु मन सुरती सुरति लगाय। फेरि न जन्म नर बड़ी सहाय॥
बुद्धि जमीन बिचार बनाय। गुरु के शब्द बोयो बीज सोहाय॥
अंकुर दल श्रद्धा सत भाय। बस प्रेम थामें गुन छाय॥
स्वाद सहज सुख कुमति उड़ाय। दीनो जल अनुराग जनाय॥
कनखा काम क्रोध मद तोरि। काटी काया करम बटोरि॥
सूखै काम भजन मन दौरी। सीतल दया सीत रस मौरी॥
जुरी जतन तत्व सुभ सोये। मांते ज्ञान अमल के होये॥
काया भवन भरि धर्‌यो विवेक। मन को कम कर जतन अनेक॥
चित चेतन जो खोजौ आन। तब सो देय तमाखू आन॥
ऐसी खाय तमाखू सोय। जाके धड़ पर सीस न होय॥
खोयो मन संतन तजि लाज। रामकिना मिलि संत समाज॥

—किनाराम : गीतावली, पृ० ३

१०२. चीलम चित भर पांच तमाखू, ब्रह्म अग्नि तहं राख्यौ।
खैंच अमल सन्तोष दोष तजि, नाम अमीरस चाख्यो॥

× × ×

अनुभौ अमल अनुपम चीजै, सतगुरु शब्द समुझ चित दीजै।
हुक्का कया कमल सुचि कंगुन, डन्ठा दृढ़ बिस्वासा।
सरधा जल विवेक निरमल है, सुमति सुगंध बिकासा।

—किनाराम : गीतावली, पृ० २

१०३. गाँजा पियत सदा सुख दुख दलि अमल बनाई॥
सहज सुमति रस धूम लेइकै, कुमति कटुक तजु भाई॥
हुक्का काया मधि डन्ठा धरि, चीलम सिद्धि भराई॥
गाँजा ज्ञान आनि दृढ़ता धरि, परम सुप्रेम बढ़ाई॥
नीर बिचार सार करि राखत, पाँतिह ते बिलगाई॥
अमी सार सार को लीजै, बीज बिकार बिहाई॥
तत्व तमाखू मोरि शब्द गुरु, सरस सदा सुखदाई॥
राखी चिलम अनल ब्रह्म गुन, खात मगन मन लाई॥
खैंचत बार-बार नाम मुख, अमल बिमल उर छाई॥
सुरति सरूप लगन मार्‌यो मन, तजुरस बिषै घिनाई॥
निस बासर आनन्द सती गृह, भग्न रेनु बल पाई॥
रामकिना यहि पियै साधु कोइ, जेहि-जेहि अमल जनाई॥

—किनाराम : गीतावली, पृ० ६

१०४. हरि मदिरा मोरे लागल सजनी।
मन कर महुआ तनकर भट्ठी,
ब्रह्म अगिनि में बारले सजनी॥

सब संतन मिलि छानले दोकनिया,
मात पिता कुल सब त्याग देले सजनी ॥
प्रेम पेयाला जब मुख आवे,
पियत पियत भ्रम भाग गैले सजनी ॥
सूतल सिरी मिनकराम सामी,
उठि जागले सजनी ॥

—मिनकराम : हस्तलिखित संग्रह, पद ५

१०५. मधुआ पीके रे, मनवाँ बौराने हो रामां ॥
प्रेम को महुआ भक्ति को सीरा।
ग्यान अगिनिया रे, तन भट्ठी धुधुकाने हो रामां ॥ १ ॥
मन को देग, विवेक को छननां।
ध्यान को भमकारे, मधुआ चुलाने हो रामां ॥ २ ॥
इंगला पिंगला दुइ पवित्र पियाले।
भरि-भरि पूरा रे, पी पी मस्ताने हो रामां ॥ ३ ॥
आनन्द यह मधुआ सुखदायक।
पीयत बिरले रे, कोइ संत सयाने हो रामां ॥ ४ ॥

आनन्द : आनन्द-भण्डार, पृ० १०७

१०६. तख्यलाते आनन्द, पृ० ३३

१०७. इस सूची में अव्याप्ति, अतिव्याप्ति तथा पुनरावृत्ति दोष हैं, किन्तु यह महत्त्वपूर्ण है।

१०८. भागवत, अध्याय १ और ११

१०९. औघड़-मत तथा सम्प्रदाय के संबंध में लेखक के प्रारंभिक निबंधों के लिए देखिए पटना से प्रकाशित होनेवाले 'पाटल' के मार्च, मई और अगस्त १९५४ के अंक।

११०. देखिए परशुराम चतुर्वेदी कृत-'उत्तरी भारत की संत-परम्परा', पृ० ६२८, ६३३। चतुर्वेदीजी ने बाबा किनाराम अघोरी और उनके गुरु कालूराम की चर्चा की है। जीवन-वृत्त-संबंधी परिचय के लिए देखिए प्रस्तुत ग्रंथ का परिचय-खण्ड।

१११. श्रीगणेश चौबे—'भोजपुरी साहित्य-संकलन', साप्ताहिक 'आज', काशी, वर्ष ६, अंक ४२, २२ मई, १९४४ ई०, पृ० ९-१०; तथा श्रीमलयकुमार—'संतकवि मिनकराम' : 'भोजपुरी', आरा, बरिस ४, खं० ७, भादो, सितम्बर, १९५५ ई०, पृ० ५०-५१

चौथा अध्याय

परिचय*

*यह परिचय अधूरा है; क्योंकि अनुशीलन-अनुसंधान के क्रम में जो सूचनाएँ प्राप्त हुईं, उनके आधार पर ही इस अध्याय की सामग्री प्रस्तुत की गई है। अभी ऐसे सैकड़ों मठ और सैकड़ों-हजारों संत-साधु हैं, जिनके संबंध में परिचयात्मक विवरण नहीं प्राप्त हो सके हैं। हम सभी संत-साहित्यप्रेमी साहित्यिक बन्धुओं से अनुरोध करेंगे कि वे औघड़ अथवा सरभंग-संबंधी जो भी साहित्यिक अथवा रचनात्मक सामग्री मिल सके, उसे लेखक के पास भेजने की कृपा करें। —ले०

[अ] प्रमुख संतों का परिचय

१. किनाराम[1]

अघोर-मत के आचार्य श्रीकिनाराम का जन्म बनारस जिले के चन्दौली तहसील के प्रसिद्ध गाँव रामगढ़ के एक संभ्रांत रघुवंशी परिवार में लगभग संवत् १६८४ विक्रमाब्द में हुआ था। ये तीन भाई थे। ये सबसे बड़े तथा विलक्षण गुण-युक्त थे। बचपन से ही इनकी रुचि धर्म में थी। अपने साथियों को इकट्ठा करके उनसे 'राम, राम, जै जै राम' कहलाया करते थे। माँ-बाप ने इनकी शादी १२ वर्ष की अवस्था में ही कर दी, किन्तु 'गौना' होने से पूर्व ही उनकी स्त्री दिवंगत हो गईं। कहते हैं कि ब्याह के तीन वर्ष बाद जब इनके गौने का दिन निश्चित हुआ, तो उसके एक दिन पूर्व ही इन्होंने जिद्द करके दूध-भात खाया (दूध-भात किसी के मरने पर खाया जाता है)। दूसरे ही दिन इनकी ससुराल से संवाद आया कि उनकी पत्नी का देहावसान हो गया है। यह समाचार पाकर लोग दुःखी हुए तथा आश्चर्य प्रकट किया कि किना को यह बात एक दिन पूर्व कैसे मालूम हुई? उसके कुछ दिनों के बाद ये अकस्मात् विरक्त होकर घर से चल पड़े और रमते हुए गाजीपुर पहुँचे, जहाँ रामानुजी सम्प्रदाय के महात्मा श्रीशिवारामजी रहते थे। ये उन्हीं की सेवा करने लगे तथा उनसे शिष्य बना लेने का अनुरोध किया। शिवारामजी कुछ दिनों तक तो टालमटोल करते रहे, किन्तु इनकी सेवा-भावना से प्रभावित होकर एक दिन उनसे कहा—'आज तुम हमारे साथ गंगाजी चलो, वहीं उपदेश देंगे।' यह सुनते ही प्रसन्न होकर किनाराम उनके साथ गंगा को चले। रास्ते में शिवाराम ने अपना बाघम्बर तथा पूजा-सामग्री इन्हें देकर कहा—'तुम आगे चलो, मैं शौच होकर आता हूँ।' सब सामान लेकर किनाराम गंगातट पर पहुँचे और सिर झुकाकर बड़े प्रेम से गंगाजी को प्रणाम किया। जब सिर उठाया, तो देखते हैं कि गंगा का जल बढ़कर उनका चरण चूम रहा है। शिवाराम दूर से ही सब कुछ देख रहे थे। इस घटना से इनका जन्मना महात्मा होना प्रमाणित होता है या शिवाराम का माहात्म्य भी प्रकट होता है; क्योंकि उनका बाघम्बर तथा पूजा-सामग्री इनके पास ही थी। शिवाराम ने शौच से निवृत्त होकर स्नान कर किनाराम को गुरुमंत्र दिया। अकस्मात् शिवाराम की पत्नी इस संसार से चल बसीं। इसके बाद शिवाराम ने पुनः दूसरी शादी करनी चाही। इसपर किनाराम ने आपत्ति प्रकट करते हुए कहा कि यदि आप दूसरी शादी करेंगे, तो मैं दूसरा गुरु कर लूँगा। शिवाराम ने कहा—'जा, कर ले दूसरा गुरु'। उसी समय किनाराम वहाँ से चल पड़े और

नैगडीह गाँव में गये। वहाँ एक बुढ़िया को रोते देख उन्होंने उसके रोने का कारण पूछा। बुढ़िया ने कहा—'मुझपर जमींदार का पोत चढ़ गया है, इसीलिए वह मेरे बेटे को पकड़ ले गया है। उसके छूटने का कोई उपाय न देखकर रो रही हूँ।' किनाराम उस बुढ़िया को लेकर जमींदार के पास गये और उसके बेटे को छोड़ देने के लिए कहा। इसपर जमींदार ने अपना पोत माँगा। किनाराम ने उस लड़के को जमीन से उठाकर जमींदार से वहाँ की जमीन खोदकर अपने रुपये ले लेने को कहा। जमीन खोदने पर वहाँ केवल रुपया-ही-रुपया दिखाई पड़ा। जमींदार इनके पाँव पर गिर पड़ा। इन्होंने बुढ़िया से अपने लड़के को ले जाने के लिए कहा। इसपर बुढ़िया ने कहा—'इसे आपने बचाया है, अतः अब यह लड़का आपका है। आप ही इसे ले जायँ।' यही बालक पीछे चलकर प्रसिद्ध अवधूत बिजाराम कहलाये। यह जाति के कलवार थे। किनाजी गिरनार में बिजाराम को नीचे छोड़ खुद पहाड़ पर जाकर तप करने लगे। कहा जाता है कि वहीं पर दत्तात्रेयजी महाराज से इनका सत्संग हुआ था, जिसका उल्लेख 'विवेकसार' में भी है। बिजाराम को केवल तीन घरों से ही भिक्षा माँगने का आदेश था। उससे जो कुछ मिल जाता, उसी से वे अपना काम चलाते थे। गिरनार से ये दोनों जूनागढ़ पहुँचे। यहाँ का बादशाह मुसलमान था। किनारामजी बाहर ही आसन लगाकर बैठ गये और बिजाराम को अन्दर जाकर भिक्षा माँगने को कहा। बिजाराम शहर में जैसे ही घुसे कि सिपाहियों ने उन्हें कैद कर जेल में डाल दिया। यह घटना सम्भवतः १७२४ वि० की है। इनके लौटने में देरी होते देख किनाराम ने ध्यान लगाया, तो सारी बातें मालूम हो गईं। फौरन आप शहर में आये और बिजाराम की तरह आप भी जेल में डाल दिये गये। जेल में सब को बड़ी-बड़ी चक्की चलाने को मिलती थी, इन्हें भी मिली। इन्होंने चक्की की तरफ देखकर कहा—'चल'। किन्तु चक्की नहीं चली, इसपर इन्होंने चक्की पर अपने डण्डे से प्रहार किया। सारी चक्कियाँ चलने लगीं। यह समाचार सुनकर बादशाह ने उन्हें सादर महल में बुलाया तथा बहुत-से हीरे, जवाहिरात से बड़ा सम्मान किया। किनाराम ने उनमें से दो-चार को मुँह में डाल कर थूक दिया और बोले कि 'यह न तो मीठा है न खट्टा'। इस पर बादशाह ने हाथ जोड़कर कोई आदेश देने की प्रार्थना की। इस पर उन्होंने फकीरों को ढाई पाव आटा देने को कहा। तब से यह सिलसिला वहाँ चल रहा है। वहाँ से ये सीधे काशी के एक अघोरी कालूराम (स्वयं दत्तात्रेय भगवान्) के स्थान पर (केदारनाथ श्मशान-घाट) आये। वे मुर्दा खोपड़ियों को बुलाते और चना खिलाते थे। किनाराम ने इस पर ताज्जुब किया और अपना परिचय देने के लिए उनके इस कार्य को रोक दिया। अब बुलाने पर न मुर्दा खोपड़ियाँ आती थीं और न चना खाती थीं। ध्यान लगा कर देखने पर कालूराम को मालूम हो गया कि किनाराम आये हैं। उन्होंने किनाराम से खाने को मछली माँगी। किनाराम ने गंगाजी से मछली देने को कहा। उनके ऐसा कहने पर एक बड़ी मछली किनारे आ लगी। किनाराम ने उसे निकाल कर भूना तथा तीनों ने मिलकर खाया। कुछ दिनों के बाद गंगा में एक मुर्दे को बहते हुए देखकर कालूराम ने किनाराम से कहा—'देख, एक मुर्दा आ रहा है।'

इस पर किनाराम ने कहा कि 'यह मुर्दा कहाँ, यह तो जीवित है।' तब कालूराम ने कहा कि 'अगर यह जीवित है तो बुला ले।' किनाराम ने मुर्दे को आवाज लगाई और किनारे आने को कहा। उनके बुलाने पर मुर्दा घाट पर आकर खड़ा होकर बाहर आ गया और इनके कहने पर वह अपने घर चला गया। पीछे चलकर वही इनका शिष्य बना, जो रामजियावनराम कहलाया। यह घटना १७५४ वि० की है। इतनी परीक्षा लेने के बाद कालूराम ने अपना असली रूप दिखलाया तथा क्रमिकुण्ड थाना भेलूपुर में साथ लाकर बताया कि यही गिरनार है और सब तीर्थ इसी कुण्ड में हैं। कालूराम[2] ने किनाराम को गुरुमंत्र देकर अपना शिष्य बनाया तथा लुप्त हो गये। निम्नांकित 'बानी' से यह बात प्रमाणित होती है—

कीना-कीना सब कहै, कालू कहै न कोय।
कालू कीना एक भये, राम करैं सो होय॥

कहा जाता है कि स्वयं दत्तात्रेय भगवान् ने कालूराम का रूप धारण कर किनाराम को उपदेश (गुरुमंत्र) दिया था। किनाराम विशेष कर क्रमिकुण्ड में रहते थे, यदा-कदा रामगढ़ भी जाया करते थे। कहा जाता है कि भगवान् दत्तात्रेय के बाद किनाराम ने ही 'अघोर'-मत का प्रचार तथा प्रसार किया। इनकी सिद्धियाँ अघोर-मत में प्रसिद्ध हैं। ये छन्दःशास्त्र के एक अच्छे जानकार कवि थे[3]। इनकी लिखी हुई चार पुस्तकें (विवेकसार, रामगीता, रामरसाल और गीतावली) उपलब्ध हैं। इसके अतिरिक्त और पुस्तकों की रचना भी इन्होंने की, जिसके मिलने पर इनके जीवन तथा मत पर और भी प्रकाश पड़ेगा। इन्होंने अपने प्रथम गुरु शिवाराम की स्मृति में निम्नांकित चार स्थान बनवाये—

(१) मारूफपुर, (२) नईडीह, (३) परानापुर, तथा (४) महुअर। इसके अतिरिक्त कालूराम की स्मृति में निम्नांकित स्थानों की स्थापना की—

१. क्रमिकुण्ड—मुहल्ला भदैनी, शिवाला, बनारस। गोदौलिया से दक्खिन। इसे श्रीमती जानकीमाई ने बनवाया है।[4]

२. रामगढ़—थाना बलुआ, तहसील चन्दौली, जिला बनारस में मैदागिन स्टेशन के निकट है। यहाँ हाथी-घोड़ा भी है। वर्त्तमान महन्थ बुद्धूराम बाबा हैं।

३. देवल—चौसा या गहमर स्टेशन से दक्खिन भदौरा से एक मील पर है। यहाँ आदित्यराम बाबा हैं।

४. हरिहरपुर—गोमती नदी-तट पर स्थित है। जगदेवराम बाबा यहाँ के वर्त्तमान महंथ हैं। उपर्युक्त मठों के अतिरिक्त बहुत-सी कुटियाँ हैं। बाबा कालूराम तथा इनकी समाधियाँ क्रमिकुण्ड में बनी हैं। इनका देहावसान १८२६ वि० में हुआ।

इनकी वंशावली निम्नरूपेण है—
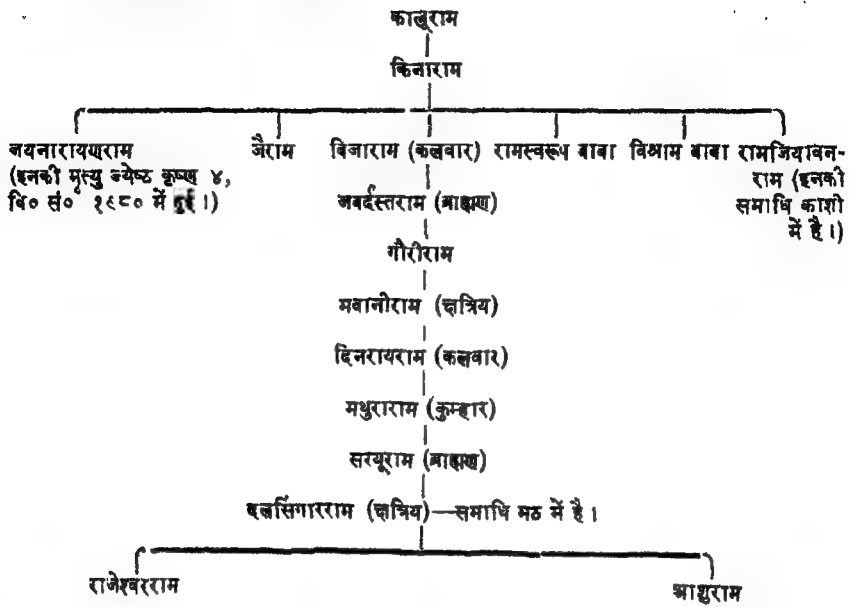
जूना अखाड़े की दूसरी ओर इनका मठ है। इनके मत में अलखपंथी, नागा संन्यासी एवं नागा अवधूतिन भी होती है। इसमें लक्ष्मीदेवी अवधूतिन तांत्रिक पहाड़ी हो चुकी हैं। पियरी पर भी औघड़ों का टीला है। मूलतः किनाराम जूना अखाड़े के ही थे। इनके मत में मदिरा आदि का प्रयोग नहीं होता है। इनके कुछ प्रसिद्ध मठ निम्नांकित हैं—

१. कबीरचौरा—किनाराम का मठ है। बा० रघुनाथ सहाय इसके संस्थापक थे।
२. चेतगंज—किनाराम का मठ है।
३. गाजीपुर—बौरहिया बाबा का मठ के नाम से है।
४. टाँडा (कैथीटाँडा)—बनारस जिले में है।
५. मनियार—गाजीपुर जिले में है।
६. माँझा—गाजीपुर जिले में है।
७. पियरी—औघड़ों का टीला है। यहाँ के हरिहरसिंहजी श्रीजयनारायणराम महाराज को कथा सुनाते थे।

२. भिनकराम[५]

कहा जाता है कि कबीर साहेब के ४८४ शिष्य थे, उन्हीं की वंशावली में भिनक बाबा हुए। वे जाति के ततवा थे। उनका जन्म एक-डेढ़ सौ वर्ष पहले राजपुर

भेड़ियाही से उत्तर सहीरवा गोनरवा (चम्पारन) में हुआ था। यह स्थान राजपुर (बैरगनियाँ के निकट) से सोलह मील के लगभग है। वहाँ भिनक की समाधि भी है। ये सिद्ध थे। एक बार वे बाघ पर चढ़कर आ रहे थे। मनसा बाबा भी सिद्ध थे। उन्होंने कहा—'धरती माता, दो पग आगे चल'। धरती चलने लगी। मनसा बाबा भिनक बाबा के शिष्य थे। वे सिमरौनगढ़ नेपाल तराई में कंकालिनमाई के स्थान पर रहते थे।

वंश-वृक्ष
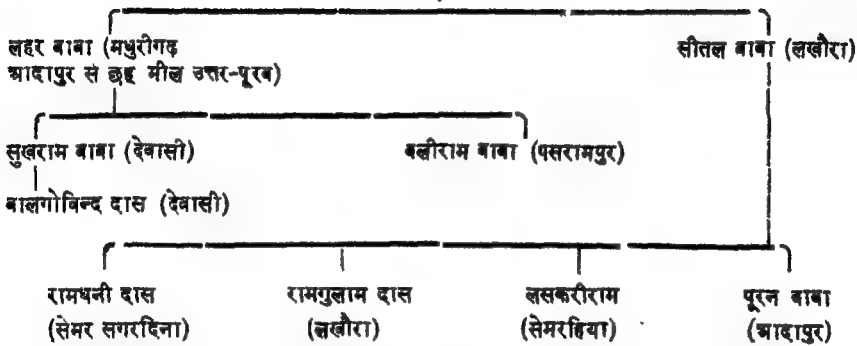
इस परम्परा के मठ अन्य जिलों में भी हैं—

पटना जिला—१. पटना सिटी में खाजेकलाँ घाट पर।

२. मनेर में भी मठ है।

शाहाबाद जिला—किसी बाजार में मठ है।

बलिया जिला—पुरानी बाजार में गंगा किनारे मठ है।

असम-राज्य—कमच्छा में भी मठ है।

पश्चिमी बंगाल—टीटागढ़ कागज मिल के पास तथा ब्रह्मसमाज के निकट।

भिनक-परम्परा के मठ कम हैं; क्योंकि इनके यहाँ साधु जन्माये नहीं जाते। जो खुशी से आकर साधु होते हैं, वे ही रहते हैं, सो भी कठिन परीक्षा के बाद।

आदापुर के श्रीरघुनन्दनदास ने भिनक-परम्परा के सरभंग-मत की उत्पत्ति के संबंध में बताते हुए कहा कि नेपाल तराई के जंगल में नुनथर पहाड़ है। वहीं से इस मत की उत्पत्ति है। 'आद्या' ने वागमती नदी में तुलसीदल बहाया। बैरागी का तुलसीदल और सरभंग का तुलसीदल अलग-अलग बहने लगा। भिनक बाबा सरभंग का तुलसीदल उत्तराभिमुख और बैरागी बाबा का तुलसीदल दक्षिणाभिमुख। आजकल नुनथर पहाड़ में संन्यासी का मठ है, जहाँ संग्रामपुर के योगानन्द के शिष्य रहते हैं।

३. भीखमराम[6]

भीखमराम बाबा माधोपुर, डा० माधोपुर, थाना मोतीहारी, जिला चम्पारन के रहनेवाले थे। ये दो भाई थे। जाति के ब्राह्मण थे। इनके पूर्वज सरयू के उस पार नवापार रम्हौली गाँव में रहते थे, जहाँ से स्थानाभाव के कारण भीखमराम के तीन-चार पुश्त पहले लोग यहाँ आये। माधोपुर पूरा जंगल था। भीखमराम बाबा गरीबी के कारण 'कोड़नी' करके जीवन गुजारते थे। बाल्यावस्था से ही इनमें वैराग्य के लक्षण थे।

एक बार किसी के खेत में ये कोड़नी कर रहे थे; उस खेत के मालिक ने सभी मजदूरों का भोजन सामने रखा और कहा कि कोई इसे खा सकता है। उसके ऐसा कहने पर भीखमराम बाबा ने सारे भोजन को खा लिया। बाद में सब को भूख लगी। इन्होंने सब को खाने के लिए कहा। जिसे-जिसे खाना था उसके सामने भोजन स्वतः आ गया। इस घटना के समय इनकी अवस्था तीस साल की थी। ये पहले वैष्णव हुए थे। इनके गुरु श्रीप्रीतम बाबा (जो पाण्डेय कहे जाते थे) सेमराहा (छपरा जिला में मशरक थाने के निकट) के थे। इनकी गुरु-परम्परा निम्नरूपेण है—

केशोराम बाबा
|
प्रीतमराम बाबा
|
भीखमराम बाबा

साधु होने से पूर्व प्रतिदिन शाम को भोजन के बाद ये केसरिया के पास नारायणी के सत्तरघाट के निकट सेमराहा में गुरु के पास चले जाते थे और प्रातःकाल लौट आते थे। साथ में भैंस भी रखते थे, उसी के सहारे वे नदी पार करते होंगे। कुछ दिन इसी प्रकार बीत जाने पर इनके गुरु प्रीतम बाबा ने इनसे कहा कि तुम रोज परेशान होते हो, चलो, हम भी उसी पार चल चलें। उसी दिन प्रीतम बाबा सेमराहा से माधोपुर चले आये। प्रीतम बाबा के माधोपुर आने पर लोग जान सके कि भीखम रोज उनके पास जाया करता था। प्रीतम बाबा के आने के बाद इनके भाई काशीमिश्र भी यहाँ घर बनाकर रहने लगे। प्रीतम बाबा की समाधि भी माधोपुर में है। भीखमराम बाबा गाँव के बाहर एक इमली के पेड़ के नीचे रहते थे, जो भूकम्प में कट गया। इनकी शिष्य-परम्परा निम्नरूपेण है—

प्रीतमराम बाबा के देहावसान के बाद भीखम बाबा ने जगन्नाथपुरी आदि तीर्थों का पर्यटन किया। अन्त में शान्ति नहीं मिलने पर वे सरभंग-मत में आये। तीर्थाटन से लौटते समय रास्ते में मुजफ्फरपुर के लालगंज मुहल्ले के किसी तेली के मृत पुत्र को चिता

पर से जीवित कर दिया। इस पर लोगों ने इन्हें रोकने की बहुत कोशिश की, किन्तु ये नहीं रुके। अन्त में वह तेली इनका पीछा करता हुआ आया और माधोपुर में मन्दिर बनवा गया। तीर्थाटन से लौटने पर वे इतने बूढ़े हो चुके थे कि उन्हें पहचानना तक मुश्किल हो गया था। एक हजाम ने उन्हें पहचाना था। उसकी वंशावली निम्नांकित है—

टेना ठाकुर (इसी ने पहचाना था)
लौखी ठाकुर (लड़का था, इसलिए कुछ नहीं जानता हो।)

तीर्थाटन से लौटने पर ये सोते नहीं थे, दिन-रात बैठे रहते थे। सबसे पहले अन्न खाना छोड़ा, फिर तो फल खाना भी छोड़ दिया। बिलकुल निराहार रहने लगे। हरिहरराम सदा इनकी सेवा में लगा रहता था। इन्हीं के शिष्य टेकमनराम सरभंग-मत के प्रवर्त्तकों में प्रमुख स्थान रखते हैं। भीखम बाबा का लिखा हुआ बीजक अति प्रसिद्ध पुस्तक है, जो टेनाराम (राजपूत), राजाभाड़ (सुगौली से गोविन्दगंज जानेवाली सड़क के निकट) के पास है।

पीछे चलकर गाँववालों ने पुत्रादि याचना करके जब उन्हें तंग करना शुरू किया, तब माघ सुदी तृतीया को इन्होंने जीवित समाधि ले ली। ये सिद्ध तथा चमत्कारी पुरुष थे। इनके शिष्य टेकमनराम बाबा की परम्परा के मठ चम्पारन, सारन तथा मुजफ्फरपुर में हैं। इनकी पत्नी तथा पुत्र की समाधि भी माधोपुर में ही है। इनके जन्म तथा मरण की निश्चित तिथि का पता नहीं चला है। वंशावली निम्नक्रमेण है—
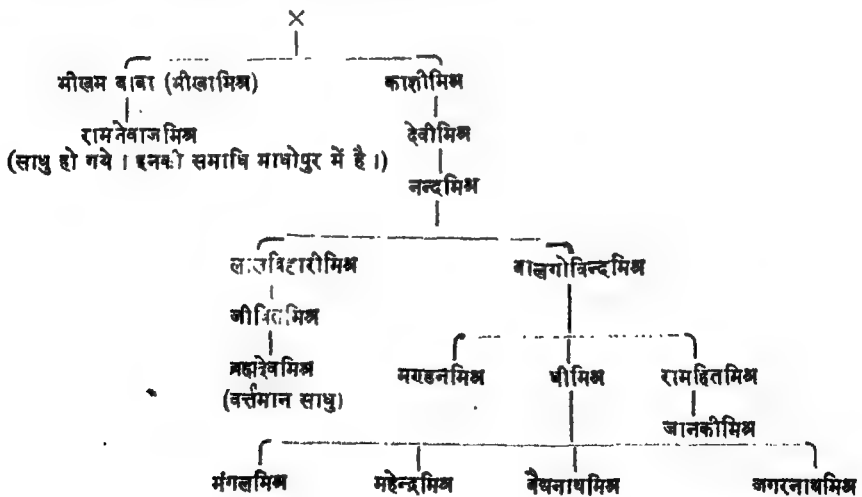
ये कर्त्ताराम, धवलराम, मनसाराम, मधुनाथ आदि के समकालीन थे। इनके शिष्य हरिहरराम का चलाया हुआ वैष्णव मठ है। हरिहरराम के मुसलमान होने के कारण वैष्णव मठ का पानी बन्द था, किन्तु ज्ञानदास, रामदास के बाद यह प्रतिबन्ध

उठ गया है। माधोपुर में भीखमराम बाबा की समाधि पर हर वर्ष माघ सुदी तृतीया को मेला लगता है; क्योंकि इसी दिन इन्होंने जीवित समाधि ली थी। इनके प्रमुख मठ निम्नांकित हैं—

१. मोतीहारी—रामगोविन्ददास महंथ हैं। साव मन्दिर के नाम से प्रख्यात है।
२. बिरछे स्थान—मोतीहारी में है। गरीबदास महंथ है।
३. तुरकौलिया कोठी—माधोपुर से दो मील पच्छिम है। रामलखनदास महंथ हैं।
४. जगिरहा—माधोपुर से दो मील पश्चिम है। जुगलदास महंथ हैं।
५. कोटवा—माधोपुर से दो मील दक्खिन है। रामलखनदास महंथ हैं।

४. टेकमनराम

टेकमनराम चम्पारन जिलान्तर्गत मोतिहारी थाना के धनौती नदी के तट पर स्थित झखरा[१] के रहनेवाले थे। ये जाति के लोहार थे। गरीबी के कारण ये राजमिस्त्री का काम करते थे। माधोपुर के मन्दिर की किवाड़ इन्हीं की बनाई हुई है। माधोपुर में मन्दिर की किवाड़ बनाते समय ही ये भीखम बाबा के सम्पर्क में आये तथा उनके शिष्य बन गये। घरवालों तथा स्त्री के तंग करने पर उन्होंने अपनी मूत्रेन्द्रिय काटकर फेंक दी। कहा जाता है कि भीखम बाबा के तीन शिष्य थे। एक दिन भीखम बाबा ने तीनों को बिठाकर उनके आगे लोटा, गिलास तथा 'करवा' रख दिया और अपनी इच्छा से एक-एक उठाने को कहा। टेकमनराम ने मिट्टी का 'करवा' उठाया तथा शेष दोनों ने लोटा, गिलास उठाया। उसी दिन से ये सरभंग-मत में आये। ये सिद्ध तथा चमत्कारी पुरुष थे। कहा जाता है कि इन्हें ब्रह्म का साक्षात्कार हो चुका था। इनकी वंशावली निम्नांकित है—
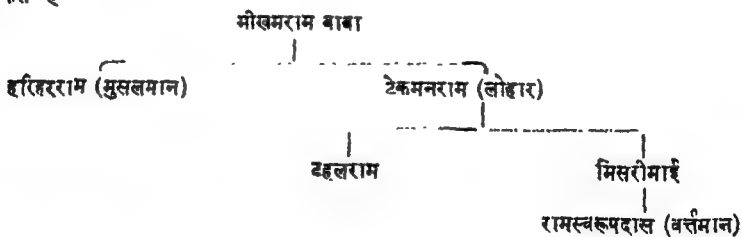
चम्पारन में इनकी परम्परा के बहुत-से मठ हैं। कहा जाता है कि एक बार भीखम बाबा अपने शिष्य का मठ देखने बाघ पर चढ़ कर आये। दूर से ही अपने गुरु को आते देख इन्होंने अगवानी करने की सोची। उस समय ये ओसारे पर बैठ कर मुँह धो रहे थे। ओसारा ही अगवानी के लिए चल पड़ा। इन्होंने माघ वसन्त-पंचमी को समाधि ली थी। इनका समाधि-स्थान झखरा में हर वर्ष माघ सुदी पंचमी को मेला लगता है, जिसमें सरभंग-मत के प्रायः सभी साधु आते हैं। इनके प्रधान शिष्यों में टहलराम, मिसरीमाई,

दर्शनराम तथा सुदिष्टराम बाबा आदि हैं। इनकी परम्परा के मठ चम्पारन, सारन, मुजफ्फरपुर आदि जिलों में फैले हुए हैं।

टेकमनराम मठरा 'फाँड़ी' (परम्परा) के प्रवर्त्तक कहे जाते हैं।

५. सदानन्द बाबा

सदानन्द बाबा (सदानन्द गोसाईं) का निवास-स्थान चम्पारन जिले के मझौलिया स्टेशन से तीन मील पश्चिमोत्तर दिशा में मिर्जापुर के निकट चनाइनबान नामक गाँव में था। ये पं० अम्बिकामिश्र (वर्त्तमान उम्र ७० वर्ष) से छह पीढ़ी पूर्व हो चुके थे। बाल्यावस्था में ये अपने गाँव के पास ही 'रतनमाला' (पाठशाला) में पढ़ते थे। एक दिन स्कूल के रास्ते में उन्होंने एक पेड़ के नीचे पत्ते में रोटी, मिट्टी के बरतन में पानी तथा एक पुस्तक पड़ी देखी। उन्होंने पुस्तक पढ़ी तथा जनेऊ उतारकर रख दिया। उसके बाद रोटी खाई, पानी पिया तथा वहीं से विरक्त होकर कहीं चले गये। इनके गुरु का नाम क्या था, इसका पता नहीं चलता है। बचपन का नाम चित्रधरमिश्र था; घर छोड़ने पर सदानन्द कहलाने लगे। इनकी गणना चम्पारन के सरभंग-मत के प्रवर्त्तकों में होती है। यत्र-तत्र इनके शिष्यों की समाधियाँ मिलती हैं; हाँ, किसी जीवित-जाग्रत् मठ का अभी तक पता नहीं चल सका है। ये एक सिद्ध पुरुष थे। प्रतिदिन ये अपनी अँतड़ी मुँह से निकालते थे और उसे साफ किया करते थे। किसी का बनाया हुआ भोजन नहीं खाते थे, बल्कि स्वयं बनाकर खाते थे। सिद्ध संत के अतिरिक्त ये बहुत अच्छे कवि भी थे। इन्होंने बहुत-सी पुस्तकों का प्रणयन किया था, किन्तु वे अग्निकाण्ड में भस्म हो गईं। जो कुछ जलने से बच रही हैं, वे चम्पारन के मुसहरवा-निवासी श्रीनरसिंह चौबे के पास हैं। इनकी सिद्धि से प्रभावित होकर तत्कालीन बादशाह ने इन्हें वृत्ति दी थी, जो इनके वंशज लगातार लेते रहे। (वृत्ति के दो परवानों की मूल प्रति बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्, पटना में सुरक्षित है।) इनके प्रमुख शिष्य परम्पतराम बहुत प्रसिद्ध महात्मा हो चुके हैं। इनकी वंशावली निम्नरूपेण उपलब्ध है—

केसोराममिश्र
|
रामदत्तमिश्र — चितमनमिश्र (चित्रधरमिश्र) (यही पीछे चलकर सदानन्द कहलाये।)

रामदत्तमिश्र
|
कोकिलामिश्र
|
मनोगमिश्र
|
अजाएबदत्तमिश्र
|
रामलगनमिश्र
|
अम्बिकामिश्र (इन्हीं से सारा वृत्तान्त मिला।)

इनकी समाधि चनाइनबान में है। समाधि पर सुन्दर मन्दिर बना है। कहा

जाता है कि इन्होंने जीवित समाधि ली थी। इनकी समाधि के पास इनकी दो क्वाँरी बहनों की समाधि है, जो इन्हीं की शिष्या थीं। इनकी समाधि की पूजा तिल-संक्रान्ति के दिन होती है। इनके जन्म-मरण की निश्चित तिथि अज्ञात है।

[आ] कुछ संतों के चमत्कार की कथाएँ

क. किनाराम

विवाह के तीन वर्ष बाद किनाराम के गौने का दिन निश्चित हुआ। जिस दिन उन्हें ससुराल जाना था, उससे एक दिन पूर्व उन्होंने दूध-भात खाने के लिए माँगा। इसपर घरवालों ने उन्हें फटकारा और कहा कि ऐसी शुभ घड़ी में ऐसा अशुभ खाना दूध-भात (दूध-भात किसी के मरने पर खाया जाता है, जिसे 'दूधमुही' कहते हैं) माँगता है। किन्तु उन्होंने जिद्द करके दूध-भात ही खाया। अगले दिन ही संवाद आया कि उनकी पत्नी का देहावसान हो चुका है। घरवाले यह सुनकर दंग रह गये कि किना को यह कैसे मालूम हो गया था।[८]

× × ×

जब वे घर से विरक्त होकर निकले, तो गाजीपुर के शिवाराम की सेवा में पहुँचे। उन्होंने शिवाराम से गुरुमंत्र देने की प्रार्थना की। एक दिन शिवाराम ने उन्हें अपना बाघम्बर तथा पूजा-सामग्री दी और कहा कि तुम गंगातट पर चलो, हम शौच से निवृत्त होकर आते हैं, वहीं तुमको गुरुमंत्र देंगे। किनाराम हर्षोत्फुल्ल गंगातट चले। तट से कुछ दूर से ही उन्होंने गंगा को सिर नवाकर प्रणाम किया। जब सिर उठाया, तो देखते हैं कि गंगा का जल बढ़कर उनका चरण स्पर्श कर रहा है।[९]

× × ×

अपने प्रथम गुरु शिवाराम से मतद्वैध होने पर जब वे चले, तब नैगडीह पहुँचे। वहाँ पर एक बूढ़ी को रोते देखकर उसके रोने का कारण पूछा। बूढ़ी ने कहा कि जमींदार का मुझ पर पोत (मालगुजारी) चढ़ गया है, इसीलिए वह मेरे पुत्र को ले गया है। उसके छूटने का कोई उपाय नहीं देखकर रो रही हूँ। किनाराम उस बूढ़ी को साथ लेकर जमींदार के यहाँ गये और उन्होंने जमींदार से बुढ़िया के बेटे को छोड़ने के लिए कहा। इसपर जमींदार ने अपना पोत माँगा। किनाराम ने बुढ़िया के बेटे को जमीन से खड़ा करके जमींदार से वहाँ की जमीन खोद कर रुपये ले लेने को कहा। जमीन खोदने पर उसमें केवल रुपये-ही-रुपये दिखलाई पड़े।[१०]

× × ×

एक बार किनाराम अपने शिष्य बिजाराम को साथ लेकर जूनागढ़ पहुँचे। खुद बाहर आसन लगाकर बिजाराम से अन्दर शहर में जाकर भीख माँग लाने के लिए कहा। बिजाराम ज्योंही शहर में घुसे कि उन्हें बादशाही सिपाहियों ने कैद करके जेल में डाल दिया। जब बिजाराम के लौटने में देर हुई, तो ध्यान लगाकर किनाराम ने देखा और

सब कुछ समझ गये। तुरत वे भी शहर में घुसे और उसी तरह जेल में डाल दिये गये। वहाँ उन्हें बड़ी चक्की चलाने को मिली। उन्होंने चक्की को देखकर कहा—'चल'। किन्तु चक्की न चली। इसपर किनाराम ने चक्की पर एक डण्डा मारा। सारी चक्कियाँ चलने लगीं। यह देखकर सभी लोग दंग रह गये।[११]

× × ×

जूनागढ़ से किनाराम सीधे काशी पहुँचे। वहाँ एक अघोरी फकीर बाबा कालूराम रहता था। वह मुर्दे सिरों को बुलाता था और उन्हें चने खिलाता था। इन्होंने अपने चमत्कार से उसका आना तथा चना खाना बन्द कर दिया।[१२]

× × ×

कुछ दिन के बाद कालूराम ने किनाराम से खाने को मछली माँगी। किनाराम ने गंगा मैया से मछली देने को कहा। उनका कहना था कि एक बड़ी मछली किनारे आ लगी। किनाराम ने उसे बाहर निकाल कर भूना तथा तीनों ने मिलकर खाया।[१३]

× × ×

एक दिन गंगा में एक मुर्दे को बहते देखकर कालूराम ने किनाराम से कहा—'देख, मुर्दा आ रहा है।' इस पर किनाराम ने कहा—'यह मुर्दा कहाँ ? यह तो जीवित है।' तब कालूराम ने कहा कि यदि जीवित है तो बुला ले। किनाराम ने मुर्दे को आवाज लगाई तथा किनारे आने को कहा। मुर्दा किनारे आ गया तथा बाहर निकलकर खड़ा हो गया। यही रामजियावनराम कहलाया।[१४]

× × ×

किनाराम प्रतिदिन एक व्यक्ति के यहाँ भीख लेने जाते थे। संयोगवश उसका लड़का मर गया। वह व्यक्ति शोक से पागल होकर चिल्ला रहा था। किनाराम जब भीख लेने उसके यहाँ गये तो उसकी दुर्दशा देखकर हँस पड़े और मृतक को देखकर बोले—'बेटा, तुम्हारे घर के लोग रो रहे हैं और तुम नखड़ा करके सोये पड़े हो। जल्दी उठो।' बस, उसका मृत पुत्र तुरत उठ बैठा। इस व्यक्ति के वंशज आज भी काशी में विद्यमान हैं।

× × ×

एक व्यक्ति ने निःसन्तान होने के कारण बाबा की सेवा में आकर अपना दुखड़ा सुनाया। इन्होंने अपने समकालीन संत तुलसीदास के यहाँ उसे भेज दिया। संत तुलसीदास ने उसकी बातें सुनकर अपने इष्टदेव हनुमान् से प्रार्थना की। स्वप्न में हनुमान्जी ने तुलसीदास से कहा कि उसके भाग्य में पुत्र लिखा ही नहीं है। यह कठोर वाक्य सुनकर वह व्यक्ति रोता हुआ पुनः बाबा की सेवा में हाजिर हुआ और सारा वृत्तान्त कह सुनाया। इस पर बाबा ने हँसते हुए उस व्यक्ति की स्त्री के पेट पर एक डण्डा मारा और कहा कि जाओ, अवश्य पुत्र होगा। पत्नी को उसी समय मालूम हुआ कि वह गर्भवती हो गई है। नौ मास बाद उसे पुत्ररत्न प्राप्त हुआ।

ख. भीखम बाबा

गरीबी के कारण भीखम बाबा पहले खेत में कोड़नी करके अपना गुजारा करते थे। एक बार किसी के खेत में काम कर रहे थे। खेत के मालिक ने सभी मजदूरों का भोजन सामने रखकर कहा कि कोई इसे अकेला खा सकता है? इस पर भीखम बाबा ने सारा खाना खा लिया। कुछ देर के बाद सब को भूख सताने लगी। इन्होंने सब से खाने के लिए कहा। जिन्हें भोजन करना था, उनके आगे भोजन आ गया।

× × ×

भीखम बाबा जगन्नाथजी की यात्रा करके अपने स्थान (माधोपुर) लौट रहे थे। बीच रास्ते में ही मुजफ्फरपुर के लालगंज मुहल्ले में एक तेली का लड़का मर गया था। सभी लोग रो रहे थे। भीखम बाबा से यह कारुणिक दृश्य देखा नहीं गया। उन्होंने चिता पर से उसके लड़के को जीवित कर दिया। जिस लड़के को जीवित किया था, उसी के बाप का बनवाया हुआ माधोपुर का मन्दिर है।

× × ×

तीर्थाटन से लौटने पर भीखम बाबा ने सोना बिलकुल छोड़ दिया था। दिन-रात हमेशा बैठे ही रहते थे। इसके कुछ दिन बाद इन्होंने पहले अन्न तथा उसके बाद फल खाना छोड़ दिया। एकदम निराहार रहने लगे।

ग. टेकमनराम

टेकमनराम के गुरु भीखम बाबा एक दिन उनके मठ को देखने के लिए बाघ पर चढ़कर आये। दूर से ही उन्हें आते देखकर उनकी अगवानी करने की सोची। उस समय वे ओसारा पर बैठकर मुह धो रहे थे। ओसारा ही उनके साथ अगवानी के लिए चल पड़ा।

× × ×

एक बार भ्रुपशाही (बेतिया राजा के राज्यकाल में) टेकमनराम 'करवा' (मिट्टी का टोंटीदार बरतन) के मुँह में प्रवेश कर उसकी टोंटी से मशक बनकर निकल आये थे।

घ. कर्ताराम धवलराम

एक बार कर्ता (करतार) राम तथा धवलराम नारायणी नदी में स्नानार्थ गये हुए थे। छोटे भाई कर्ताराम पानी में कलश धोने लगे। वह कलश अकस्मात् प्रवाह में पड़कर अथाह जल में चला गया। जब धवलराम उसे लाने गये, तब सभी जगह थाह पानी ही मिला।[१५]

× × ×

एक बार एक ग्वालिन सन्ध्या समय दूध बेचकर घर लौट रही थी। उसे घर जाने के लिए नारायणी पार करना था। घाट पर नाव नहीं देखकर वह रोने लगी। वह कहने लगी कि मेरा लड़का दूध के विना मर जायगा। लोगों के कहने पर उसने

करतार से सारी कथा कह सुनाई। उसका क्रन्दन सुनकर आगे-आगे करतार चले और पीछे-पीछे ग्वालिन को चलने कहा। ग्वालिन को पहुँचा कर करतार लौट आये। सभी जगह ठेहुने भर ही पानी मिला।[१६]

× × ×

एक बार नारायणी नदी में एक नाव डूबने लगी। मलाह ने उसे बचाने की हर कोशिश की, किन्तु बचा न सका। अन्त में सब लोगों ने कर्ताराम की दुहाई देनी शुरू की। चमत्कार देखिए कि कर्ता की दोहाई देते ही नाव किनारे आ लगी।[१७]

× × ×

एक बार बेतिया राज्य की जमीन के बारे में लड़ाई चल रही थी। मुकदमा अदालत में था। सभी वकीलों ने कह दिया कि मुकदमा में कोई जान नहीं है, हार निश्चित है। कोई चारा न देखकर महाराजा करतार की सेवा में उपस्थित हुए तथा सारी कथा कह सुनाई। महाराज ने करतार से उस मुकदमे में जीतने का वरदान चाहा। इस पर करतार ने कहा कि जब तुम यहाँ तक आये हो, तब जीत जाओगे। राजा वरदान लेकर खुशी-खुशी लौट रहा था कि रास्ते में ही नौकर ने आकर जीत की खबर सुनाई।[१८]

× × ×

यह कहानी करतार के स्थान ठेकहा की है। एक बार कुछ चोर खेत में लहलहाती फसल को काटने आये। वे लोग फसल काटकर बोझ को ज्योंही सिर पर लेते हैं कि अन्धे हो जाते हैं और रात भर खेत में ही चक्कर काटते रह जाते हैं। सुबह होने पर कर्ताराम ने उनकी आँखें ठीक की तथा उसे ऐसा न करने की हिदायत दी।[१९]

× × ×

कुछ चोर कर्ताराम की कुटिया में चोरी करने घुसे। रात-भर वे लोग चीजें खोजते रहे, किन्तु कुछ नहीं मिला। अन्त में सुबह होने पर कर्ताराम ने उन्हें खिला-पिलाकर विदा कर दिया। कुटिया की धूल लग जाने से उसके शरीर के सारे रोग जाते रहे।[२०]

× × ×

अगर कोई व्यक्ति कर्ताराम धवलराम की कुटिया में झूठ बोलता था, तो वहीं एक बालक प्रकट होकर उसकी डण्डे से खबर लेता था।[२१]

× × ×

कर्ताराम धवलराम की कहानियाँ सुनकर मनसाराम के मन में हुआ कि देखें, करतार कैसा है? यह सोच मनसाराम उन्हें देखने चले। अभी पहुँचे भी नहीं थे कि पहले से ही करतार ने सबको उनके आने की खबर सुना दी।[२२]

× × ×

दूसरी बार मनसाराम कर्ताराम की परीक्षा लेने बाघ पर चढ़कर आये। उन्हें

दूर से आते देखकर कर्ता तथा धवल हँसने लगे। मनसाराम बाघ से ज्योंही उतरे कि बाघ भाग खड़ा हुआ।[२३]

× × ×

एक बार करतार ने अपने पड़ोसी महंथ से केले की फलियाँ मँगवाईं। महंथ ने कहा—'केले की फलियाँ हैं ही नहीं, तो दूँ कहाँ से?' यह सुनकर करतार बोले कि सिद्ध की बात वृथा नहीं जाती। ठीक उसी दिन से केला फलना बन्द हो गया। पुनः अनुनय-विनय करने पर कर्ताराम की कृपा से केला फलने लगा।[२४]

× × ×

एक बार गण्डक-स्नान करने बहुत-से नर-नारी इकट्ठे हुए। शीत ऋतु थी। ठण्ढक के मारे लोग व्याकुल हो रहे थे। पास में ही विभीषण नामक केवट का खर का पुंज लगा था। धवलराम ने सब को उसे जलाकर तापने की आज्ञा दी। एक तो बेचारे केवट को पहले से ही घाटा लग रहा था, अब तो सारी पूँजी ही खतम होने को थी। बेचारा बड़ा चिन्ताकुल हो गया। उसे चिन्तित देख धवलराम ने कहा—'घबराओ नहीं, जिसने जलाया है, वही भरेगा।' उस वर्ष उस केवट को ७०० रु० का लाभ हुआ।[२५]

× × ×

पटना के एक महाजन को कुष्ठ-व्याधि थी। बहुत दवा कराई, किन्तु लाभ नहीं हुआ। अन्त में कर्ताराम की सेवा में जाकर रोग-निवृत्ति के लिए विनती की। कर्ताराम ने उसे स्नान कराके चरणोदक पीने दिया। उसे पीकर भभूत लगाते ही उसका शरीर सोने-सा सुन्दर हो गया। उसका सारा रोग जाता रहा।[२६]

× × ×

कर्ताराम के मठ के दक्षिण पाकड़ का पेड़ था। कोई महावत हाथी लेकर उससे पत्ता तोड़ने आया। लोगों के मना करने पर भी वह पत्ता तोड़ता ही रहा। यह बात जीवनराम नामक व्यक्ति ने बाबा को सुनाई। फिर क्या था? महावत पेड़ से ज्योंही उतरता है कि हाथी पागल हो जाता है। चिल्लाता-चिग्घाड़ता हुआ घर की तरफ भागा और मालिक के पास जाकर तुरत मर गया।[२७]

× × ×

एक समय 'कर्ताराम धवलराम-चरित्र' का लेखक सिरसा जा रहे थे। रास्ते में मगध का ब्राह्मण मिला और विवाद शुरू कर दिया। मना करने पर चौगुना हल्ला करने लगा। इसी समय उसके शरीर में दर्द शुरू हुआ। बहुत-सी औषधि की, किन्तु लाभ न हुआ। अन्त में कर्ताराम की सेवा में हाजिर हुआ। उस दुस्सह दुःख को देख महाराज द्रवित हो गये और उसके दुःख को दूर कर दिया।[२८]

× × ×

धवलराम के समाधिस्थ होने के बाद सेवकों के मन में उनके दर्शन की उत्कट

अभिलाषा हुई। एक दिन लोगों ने उन्हें रथ पर सवार होकर जाते हुए जनेरवा गाँव में देखा। सब लोगों ने उनका दर्शन कर आश्चर्य प्रकट किया। इस पर धवलराम ने कहा कि तुम लोगों का मनोरथ पूरा करने ही आया हूँ। इतना कहकर अन्तर्धान हो गये।[२९]

च. फुटकल

बहरौली की भिनक-परम्परा के शिष्य श्रीबालमुकुन्ददासजी ने स्वेच्छया शरीर छोड़ा था। अपने शिष्यों को पहले से ही कहकर भजन करते हुए अपने शरीर का त्याग किया था।

× × ×

प्रो० विश्वानन्द को महादेव घाट (गंगा किनारे) पर कुछ रुपयों की जरूरत थी। एक ब्राह्मण को देना था। इतने में ही एक औघड़ जहाज से उतरा तथा एक रुपये की थैली देकर चलता बना।

× × ×

सारथि बाबा एक बार भग्गू सिंह के जहाज पर यात्रा कर रहे थे। टिकट माँगने पर एक साथ पचासों टिकट निकाल कर दे दिया।

× × ×

भागलपुर के श्मशान-घाट पर एक पागल-जैसा औघड़ था। उसने एक बार श्मशान-क्रिया के लिए गंगा से ही मुर्दे माँगे। बस माँगने की देरी थी कि मुर्दा सामने आ गया। इनका नाम सारथि बाबा था।

× × ×

एक बार दस-बारह वर्ष की सुन्दर लड़की के प्रभाव से प्रो० विश्वानन्द को उनकी खोई हुई 'दुर्गा-सप्तशती' मिल गई थी।

× × ×

एक बार छेछन पहलवान ने ठा० बूरनसिंह चौहान की स्त्री पर सवार (spirit) भूत को कुट्टी-कुट्टी काट डाला था, जिससे वह स्त्री एकदम भली चंगी हो गई थी।

× × ×

एक बाबा तथा एक माई में द्वन्द्व हुआ कि कौन अधिक तेजस्वी है? अन्त में यह तय हुआ कि माई के साथ बाबा समागम करें। जो पहले स्खलित होगा, वह हार जायगा। इक्कीस दिनों तक यह सुरत-कार्य चलता रहा। न कोई हारा, न कोई जीता। अन्त में दोनों पृथक् हुए, किन्तु निर्णय नहीं हो सका कि कौन बड़ा है?

इ. मठों का परिचय[30]

इस ग्रंथ में निम्नलिखित मठों के विस्तृत अथवा संक्षिप्त परिचय या सूचनाएं दी गई हैं—

चम्पारन जिला

अहीरगाँवाँ
अर्जुनछपरा
आदापुर
कररिया
कल्याणपुर
कमालपिपरा
कथवलिया
किसनपुर
गोपालपुर नौरंगिया
चिन्तामनपुर
चटिया बरहड़वा
चकिया
जौहरी
जितौरा
जीवधारा (मलेमपुर)
भखरा
ढुनियाँ
धपहा
नीलकंठवा
नरकटिया
पट्टी जसौली मठ
परसौतिमपुर
पुनरवाजितपुर
पहाड़पुर
पण्डितपुर
पूरन छपरा
पिरोजागढ़
परसा बरहड़वा
बैंगरी
बगही
बहुआरा
बेतिया
बेलवतिया
बरभनियाँ चकिया
भवानीपुर
भोपतपुर
महाजोगिन स्थान
मँगुराहा
ममरखा
मलाही
माधोपुर
मधुवन
मिर्जापुर
महुआरा
महुआवा
रमपुरवा
रुपौली
राजपुर भेड़ियाही
लखौरा
लोकनाथपुर
संग्रामपुर
साहेबगंज
सगरदिना
सिरहा
सतगढ़ही
सेमरा
सुरहा
सेमरहिया
सिकटा
सिकराही
सिमरौनगढ़

सारन जिला

करुधरु
कोपा
गड़खा
चमनपुरा
छपरा नं० ४३ का ढाला का मठ (अमृतबाग)
टेंरुआ
डुमरसन
तेलपा
तोलिया
नचाप
नटवल सेमरिया
पँचरुखी
पँचुआ (जिरात टोला)
बहरौली
माँझी
मझनपुरा
मुसहरी
रामगढ़
रसलपुरा
रिविलगढ़ (रिविलगंज)
सहजोड़ा पकड़ी
साँढ़ा

मुजफ्फरपुर जिला

गुयाही मरघट
ढेकहा
पसरामपुर
पोखरैरा
फूलकाँटा
भकुरहर
मोहारी
रामनगरा
रेवासी
सवंगिया
साहेबगंज बाजार

नैपाल तराई

टिहुकी
नायकटोला
पिपरा
मधुरी
राजपुर
बिल्वाखोला
सहोरवा गोनरवा
सिमरौनगढ़

पटना जिला

खाजेकलाँ, पटना सिटी
मनेर

शाहाबाद जिला

किसी बाजार में

बलिया जिला

बलिया पुरानी बाजार गंगा-तट पर

दुमका (सं० प०) जिला

वैद्यनाथ धाम श्मशान

असम-राज्य

कमच्छा

पश्चिमी बंगाल

टीटागढ़ कागज मिल के निकट
टीटागढ़ ब्रह्मस्थान के निकट

उत्तरप्रदेश

गोरखपुर जिला

गोरखपुर कुटी
दरौली कुटी
पिपरा कुटी
बसियाडीह कुटी
बउलिया कुटी
महोपाकड़ कुटी
रहावे कुटी*

---

*इस परिचय-क्रम में मठों के जो पते और परिचय दिये गये हैं, वे कई स्रोतों से मिले हैं। अतः इनकी प्रामाणिकता अब भी गवेषणीय है।

अर्जुन छपरा

यह मठ बैंगरी से आठ मील दक्खिन सिमुआपुर के पास है। इसके वर्त्तमान महंथ हरिदासजी श्रीलक्ष्मी गोसाईं के पुत्र तथा शिष्य हैं। अर्जुन छपरा के एक वृद्ध शिष्य मुसलमान थे, जो नाचते और सारंगी बजाते थे। ये बाल-बच्चेवाले आदमी थे। इन्हीं की लड़की से हरिदासजी ने शादी कर ली और वहीं पृथक् मठ बनाकर रहने लगे। हरिदास की पहली 'सधुनी' (पत्नी) महुआवा मठ के एक ब्राह्मण के संसर्ग में आ गई थी। बाद में गाँववालों के मारने-पीटने पर न जाने कहाँ भाग गई। उसके बाद हरिदास अर्जुन छपरा में रहने लगे। इनका सारा परिवार सरभंग हो गया है —

वंशावली

जीहुराम
|
तपेसरराम
|
लछमन गोसाईं
|
वर्त्तमान महंथ (नाम नहीं बताया)

आदापुर

यह मठ मोतीहारी से ३० मील उत्तर नैपाल तराई में स्थित है। यह भिनकराम की परम्परा का एक प्रसिद्ध मठ है। आदापुर रेलवे स्टेशन भी है। मठ के पास बहुत बड़ा तालाब है। कहा जाता है कि आदा बाबा एक 'ब्रह्म' थे, उन्हीं के नाम पर यह पोखरा है। पोखरे के पश्चिम तट पर आदा बाबा और 'माई' का 'स्थान' भी है। मठ का मकान कच्ची ईंट और मिट्टी से बना हुआ है। इर्द-गिर्द स्वच्छ है। इसमें खेती नहीं है, खेतिहरों से जो 'साली' मिल जाती है, उससे तथा भिक्षावृत्ति से मठ का खर्च चलता है। जब अन्वेषक श्रीगणेश चौबे ता० ११-३-५५ को वहाँ गये, तो वहाँ दो सन्त थे—हिकाइतदास और रघुनन्दन दास। हिकाइतदास ही महंथ थे। इस मठ में माईराम नहीं हैं।

मठ से सम्बद्ध समाधियाँ सटे उत्तर की ओर हैं। मुख्य समाधि पूरन बाबा की है। इस पर पूर्वाभिमुख एक मन्दिर भी है। रघुनन्दनदास ने कहा कि इस मन्दिर पर त्रिशूल था और घण्ट भी टंगा था जो भूकम्प में टूट गया। निम्नांकित अन्य संतों की समाधियाँ भी हैं—नन्द बाबा, मिसरी बाबा, रामध्यान बाबा, धूरीराम बाबा, दशरथदास, सुखलदास और मोहनदास।

वंश-वृक्ष
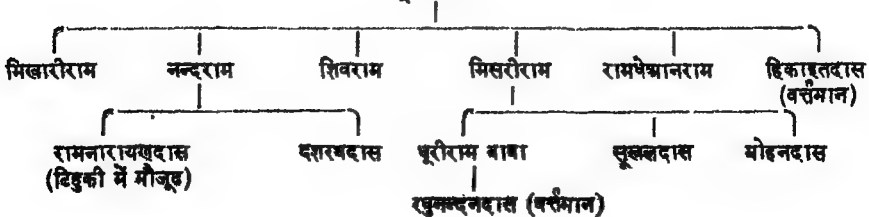
जब रघुनन्दनदास से उनकी जाति पूछी गई, तो उन्होंने बताने में आनाकानी की और कहा—सभी संत तो एक ही हो जाते हैं : गाय भैंस के दूध को बिलगाने से क्या मतलब !

कल्याणपुर

यह मठ कोरवा बरहड़वा के पास स्थित है। इसके साधु सीतारामं गोसाईं ने निम्नांकित सूचनाएँ दीं—

वंशावली

सुदिष्ट बाबा (झखरावाले)
|
टानाराम (राजपूत)
|
निर्मलदास (मलाह)
|
सीताराम गोसाईं (बेटा)

इनकी स्त्री (माईराम) भी हैं, जो मलाह कुल के संत की लड़की हैं। वे निम्न-निर्दिष्ट भरोसी बाबा के कुल की हैं। भरोसी बाबा भी इसी मठ से सम्बद्ध हैं।

भरोसी बाबा
|
रामउग्रह बाबा
|
गोपाल गोसाईं (सीताराम गोसाईं के ससुर)

झखरा[३१]

यह मठ ग्राम झखरा से एक मील दूर धनौती नदी के तट पर जीवधारा स्टेशन से दो मील पूरब मोतिहारी थाना में स्थित है। इसे श्रीकाशीराम (शैवमतालम्बी) ने श्रीटेकमनराम को दिया था। इसकी स्थापना २०० वर्ष पूर्व हुई थी। पुराने जंगल का अवशेष अब भी स्पष्ट दिखलाई पड़ता है। यहाँ ५५ बीघे जमीन हैं।

यहाँ माघ वसन्त-पंचमी को हर वर्ष मेला लगता है, जिसमें सरभंग साधु हजारों की संख्या में आते हैं। इस मेले में आनेवाले रुपये, गाँजा, भाँग लाते हैं और मन्दिर में चढ़ाकर महंथ को दे देते हैं। भंडारा के समय 'राम नाम बंदगी' तथा मन्दिर में घड़ी-

घंटे के साथ भोग लगता है। वे खप्पड़ तथा गाँजे के साथ भगवान् महावीर और टेकमनराम की जय मनाते हैं। इसमें टेकमनराम तथा भिनकराम की शाखा के प्रायः सभी अनुयायी आते हैं। यह मेला सम्भवतः टेकमनराम की पूजा के लिए लगता है; क्योंकि इसी दिन टेकमनराम समाधिस्थ हुए थे। इसमें नाच-रंग खूब होता है। वृद्ध साधुओं को नवयुवक साधु माथा टेक 'बंदगी' करते हैं। यह मठ खूब साफ-सुथरा नहीं रहता है। यहाँ श्रीटेकमनराम, दर्शनराम तथा सुदिष्टराम की समाधियाँ उत्तराभिमुख बनी हैं। मेले में भारत के प्रायः सभी स्थानों के सरभंग आ जुटते हैं। ये लोग सभी का बनाया खा सकते हैं।

पट्टी जेसौली मठ

पट्टी जेसौली के भिनकपंथी साधु श्रीसुकेसरदास से निम्नांकित सूचनाएँ मिलीं—

वंशावली

भिनकराम बाबा
|
ज्ञानी बाबा (नोनियाँ)—कथवलिया मठ
|
रंगलालदास (राजपूत)
|
जुगेसरदास (राजपूत)
|
सुकेसरदास (राजपूत)

इन्होंने बताया कि बोधीदास एक भिनकपंथी साधु थे जिन्होंने 'झूलना' बनाया। यह 'झूलना' सेमरा के श्रीरघुवीरदास के पास है।

पंडितपुर

यह मठ कथवलिया की शाखा है। यह श्रीरोशनदासजी द्वारा स्थापित है। इस मठ में श्रीखखनदासजी हैं, जो यहाँ भूकम्प के वर्ष (१९३४) में आये।

वंशावली

रामधनदास (नोनियाँ)
|
रोशनदास (कायस्थ)
|
जैपालदास (सेमरा-लोहर) जैपाल ठाकुर
|
खखनदास (मलाह) वर्तमान

श्रीखखनदासजी का घर मोतीपुर है। इनके घर पर इनका कोई नहीं है। ये मूर्त्ति न मानते हैं, न पूजते हैं। देवता-पितर की भी पूजा नहीं करते हैं। केवल 'निरंजन' की पूजा करते हैं।

भखरा मठ से इसमें अन्तर है। भखरा मठ में खेती-बारी, गृहस्थी, चेली आदि सांसारिकता का बाजार है। इसमें अकेला साधु-जीवन है। इसमें स्त्रियाँ नहीं आ सकती हैं।

इसीलिए इनका खान-पान भक्खरा से छूटा हुआ है। ये लोग भिक्षाटन करते हैं। शेष सभी बराबर हैं।

यहाँ छत्तर बाबा की समाधि है, जिसका मुख उत्तर की ओर है। भंडारा के लिए कोई दिन अथवा स्थान निर्धारित नहीं है। किसी साधु के दिवंगत होने या कोई खुशीनामा होने पर (अर्थात् किसी ग्रामीण द्वारा आमंत्रित होने पर) भंडारा होता है। सभी मतावलम्बियों से सहानुभूति है, किन्तु सब के साथ भोजन नहीं कर सकते हैं।

तिरोजागढ़ (पिरोजागढ़)

तिरोजागढ़ (केसरिया थाने के भोवनपुर के निकट) के नगीनादास ने निम्नांकित सूचनाएँ दीं—
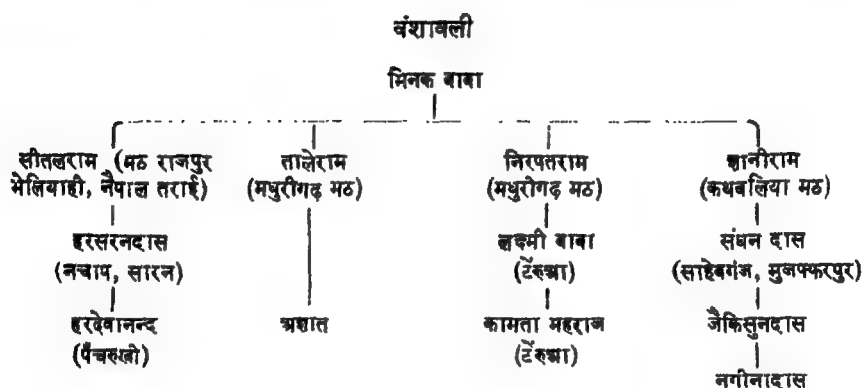
यद्यपि लक्ष्मी बाबा निरपतराम के 'चेला' थे, तथापि वे अपने को ज्ञानी बाबा का 'चेला' कहा करते थे; क्योंकि वे अधिक प्रसिद्ध हो चुके थे। इस मठ के साधु 'निरबानी' हैं। यहाँ ज्ञानी बाबा की समाधि बनी हुई है। यह मठ केसरिया थाने में भोपतपुर के निकट है।

बेलवतिया

यह मठ ग्राम बेलवतिया, डाकघर जीवधारा, थाना मोतीहारी, जिला चम्पारन में स्थित है। यहाँ पता चला कि छत्तर बाबा सरभंग थे, परन्तु उनके अनुयायी पीछे कबीरपंथी हो गये। मठ में १६ बीघे भूमि भी है। इस मठ को छत्तर बाबा के शिष्य केशवदास ने स्थापित किया।

छत्तर बाबा सूर्यपंथी थे। प्रातः सूर्योदय से सायं सूर्यास्त तक सूर्य की ओर दृष्टि किये खड़े रहते थे। लगभग १०० वर्ष पूर्व देहान्त हुआ। इनके शिष्यों की रचनाएँ प्रायः ३० वर्ष पूर्व की हैं।

मूल वंशावली

शिवसिंह

तिलकधारीसिंह — छत्तर बाबा — पुरुषोतमसिंह — पसरामसिंह — जानकीराम — सियाराम — आतमाराम

छत्तर बाबा: लड़की (भैंसही चनपटिया के पास), लड़की

पुरुषोतमसिंह: वंश है

पसरामसिंह: वंश है

जानकीराम: वंश है

सियाराम: वंश है

आतमाराम: वंश नहीं है
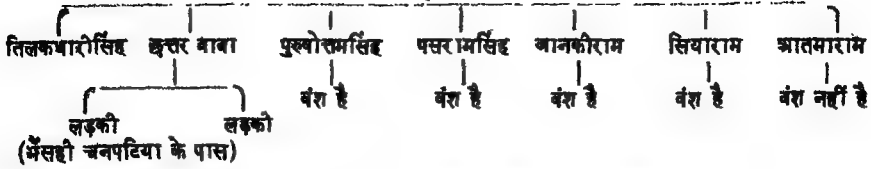
छत्तर बाबा के गुरु अरेराज से पच्छिम बनवटवा के चूड़ामनराम थे। छत्तर बाबा पहले बेतिया राज के तहसीलदार थे। ढेकहा में तहसील करने जाते थे। झखरा में बरगद के पेड़ के नीचे मनसाराम साधु रहते थे। वहाँ वे घोड़े से उतरकर जंगल में घुसे और मनसा बाबा के पास जाकर शिष्य बनाने को कहा। साधु ने कहा—तुम इस पोशाक में शिष्य नहीं बन सकते। इस पर छत्तर बाबा ने पोशाक उतारकर धुनी में फेंकना चाहा। तब मनसाराम ने उन्हें शिष्य बनाया। अपनी माता के आग्रह से वे अपने गाँव के पास ही कुटी बनाकर रहने लगे। श्रीभिनकराम से उनकी घनिष्ठता थी। वे छत्तर बाबा के यहाँ एक महीना ठहरे थे।
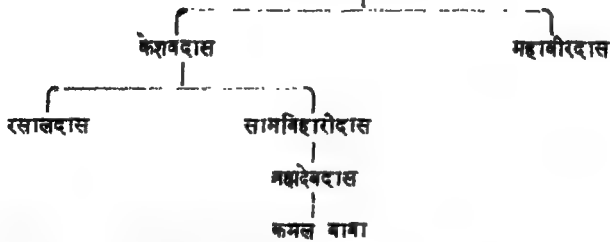
छत्तर बाबा मिट्टी की हाँड़ी रखते थे, उसी को तकिया बना कर सोते। भोजन स्वयं बनाते। फलाहारी थे।

मँगुराहा

चम्पारन के प्रसिद्ध सरभंग श्रीसदानन्दजी के शिष्य श्रीपरम्पतदासजी की समाधि मँगुराहा बस्ती से एक फर्लांग उत्तर एक विशाल पोखरे पर स्थित है। वे यहीं रहते थे, यहीं समाधिस्थ हुए। समाधि पर मकबरे की आकृति का मन्दिर निर्मित है, जिसे परम्पतदास के वंशजों ने १३२९ (फसली) में बनाया था। मन्दिर में समाधि-स्थान पर 'पिंड़िया' नहीं है, केवल एक स्थान पर जमीन दो इंच 'खाल' (गढ़ा) है। इसमें प्रतिदिन सन्ध्या समय मिट्टी का दीपक जला करता है। यहाँ अब मँगुराहा के लोग अपनी मनःकामना पूरी करने के लिए 'मनौतियाँ' मानते हैं तथा पूरी होने पर दही की 'छाली' चढ़ाते हैं। उनके वंशजों द्वारा श्रावण शुक्ला सप्तमी को ब्राह्मण-भोज कराया जाता है; क्योंकि उसी दिन उनको

निर्वाण मिला था। पोखरा पुराना है, इसीलिए यहाँ साँप रहते हैं, किन्तु किसी को काटते नहीं हैं। सम्भवतः परम्पत बाबा ने अपनी कुटी यहाँ बनवाई थी, जिसका कोई भी निशान अब नहीं मिलता है। कहा जाता है कि परम्पतदास ने दशहरा के दिन जीवित समाधि ली थी और लोगों से कहा था कि 'अगर मेरे सिर की मिट्टी धँस जाय, तो समझना कि निर्वाण प्राप्त हो गया है'। श्रावण शुक्ला सप्तमी को मिट्टी धँस गई। इसीलिए इसी दिन उनका निर्वाण होना माना जाता है। उनकी समाधि के निकट एक और व्यक्ति की समाधि है, जिसने मृत्यु से पूर्व समाधि ली थी। मँगुराहा बँगरी से २२ मील और प्रसिद्ध शिव-मन्दिर अरेराज धाम से ६ मील पश्चिम है।
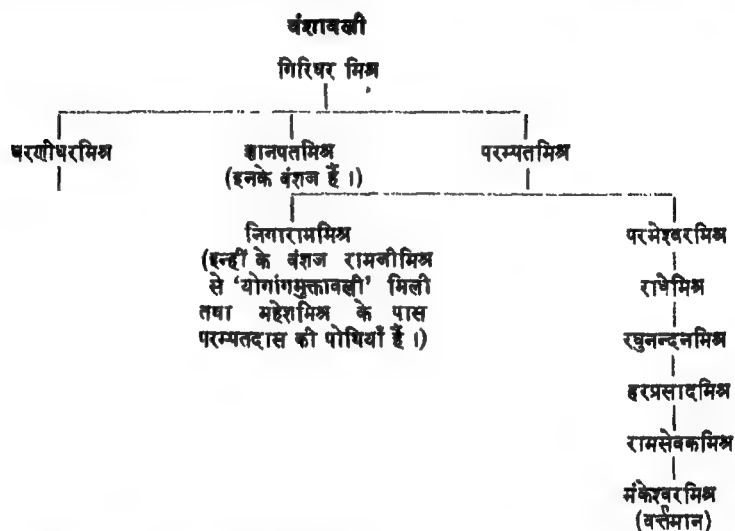
परम्पतदासजी की जीवनी निम्नरूपेण बताई गई है—

परम्पतदास के पूर्वज चम्पारन के गोविन्दगंज थाने में रहते थे। वहीं उनका जन्म हुआ था। बड़े होने पर वे मँगुराहा आये। यह गाँव उनके बड़े भाई श्रीज्ञानपतमिश्र को तत्कालीन बादशाह से रसद की कीमत के रूप में मिला था। ज्ञानपतमिश्र २०-२५ साल तक अपने परिवार के साथ रहने के बाद 'औघड़ फकीर' हो गये। परम्पतदास के बड़े लड़के निगाराममिश्र पटजा के नवाब के मुलाजिम थे। परम्पत दास की वाणी सिद्ध थी। अपने परिवारवाले को जैसा आशीर्वाद दिया था, अभी तक वैसा ही हो रहा है। उनकी मृत्यु १०० वर्ष पूर्व हो चुकी है। ये शराब नहीं पीते थे। सबका छुआ अन्न खाते थे। फल और दूध अधिक खाते थे।

माधोपुर

यह मठ थाना मोतीहारी, डाकघर तिरकोलिया, जिला चम्पारन में माधोपुर गाँव के दक्खिन-पूरब है। यहाँ पहले जंगल था, जिसका अवशेष अब भी विद्यमान है। मठ के

दक्खिन कुछ शेख (मुसलमान) लोगों का घर है। इसके वर्त्तमान महंथ श्रीतपीदास हैं, जिनकी अवस्था ८१ वर्ष की है।

वंशावली

केशोराम (ब्राह्मण)
|
प्रीतमराम (ब्राह्मण)
|
भीखमराम (ब्राह्मण), इनकी समाधि वैष्णव मठ में है।
|
टेकमलराम (लोहार)
|
दर्शनराम महाराज
|
सुदिष्टराम महाराज
|
उदाराम महाराज (राजपूत)
|
गोकुलदास (राजपूत)
|
तपीदास (कान्यकुब्ज)
|
सुखारीदास (वर्त्तमान शिष्य)

श्रीतपीदास का जन्म मटिअरवा के सरभंग-परिवार में हुआ था। इन्होंने बताया कि श्रीभीखमराम से पहले लोग वैरागी थे, किन्तु भीखम बाबा ने सरभंग-मत का प्रचार किया। १० वर्ष की अवस्था में श्रीतपीदासजी विरक्त होकर सोनबरसा मठ में दाखिल हुए थे। यह मठ अब नहीं है, किन्तु अब भी यहाँ सरभंग-शिष्य श्रीधुनी बाबा की समाधि विद्यमान है। २१ वर्ष की उम्र में ये सोनबरसा से यहाँ आये। भीखम बाबा यहाँ के जंगल में धुनी रमाकर रहते थे। इससे जब 'असली शब्द' हट गया, तब 'गजबज' (गड़बड़) हो गया। कुछ लोगों ने शादी-ब्याह कर बाल-बच्चे पैदा कर लिये। उन्हें यहाँ से हटा दिया गया। यहाँ केवल 'निर्वानी' ही रहते हैं।

वैराग्य टूट जाने या जाति-धर्म टूट जाने पर लोग इसमें आते हैं। यहाँ कुत्ता आदि के साथ भोजन नहीं किया जाता है।

गुरु-पूजा नित्य दोनों शाम होती है, जिसमें आरती, नैवेद्य चढ़ाये जाते हैं। भोग में गाँजा, दारू, ताड़ी आदि भोज्य पदार्थ दिये जाते हैं। प्रसाद वितरण नहीं किया जाता है। भिक्षा माँगने की परम्परा नहीं है। जो कुछ आ जाता है, वही खाते हैं। फल-मूल बाँटे जा सकते हैं, किन्तु 'कच्ची रसोई' नहीं बाँटी जा सकती है। यहाँ माघ सुदी तृतीया को मेला लगता है; क्योंकि इसी दिन भीखम बाबा को निर्वाण मिला था। मेले में आनेवाले लोग अपना तथा साधुओं का भोजन लाते हैं। इसमें हिन्दू-मुसलमान सभी शिष्य हो सकते हैं।

पुराने सर्वे के समय यहाँ दस कट्ठा जमीन थी। जन-गणना में केवल संख्या लिखाई गई है। जमीन की खतियान मठ में थी। वैष्णवों के साथ एक मुकदमा हुआ था, जिसका विवरण श्रीतपीदासजी नहीं दे सके। जमीन की खतियान की नकल निम्न-रूपेण है—

मालिक का नाम व खेवट नं० महारानी जानकी कुँवर।
तौजी नं० ६५१, थाना नं० ६१।
गोखुल गोसाईं—मठ या स्थान—मकान में सहन।

इस जमीन को १६ आषाढ़, १६१७ को अधिकृत किया गया। यहाँ श्रीभीखम बाबा तथा ऊधोराम की समाधि है। यह मठ झखरा की परम्परा का है। एक घरबारी साधु ने अपनी वंशावली बताई—

मगेलू गोसाईं (दुसाध)
|
बुधनदास (गोढ़ी)
|
सरजुगदास (गोढ़ी)
|
शिवनन्दनदास (मलाह), वे सिरसा मठ के वर्त्तमान महंथ हैं।

सरजुगदास एक अहीरिन के साथ रहते हैं। उन्होंने कहा, 'सऊन (मौंद) कर खाना, फिर छिपाना क्यों? हम मायावाले हैं।'

मिर्जापुर

यह मठ बेतिया थाने में स्थित है। मँगुराहा के श्रीमंकेश्वरनाथ मिश्र ने निम्नांकित वंशावली बताई—

सदानन्द बाबा (चित्रधर बाबा)
|
परम्पत बाबा (मँगुराहा) — आशाराम बाबा (पठखौला)
|
गौरीदत्त बाबा (गौनहा)

आशाराम की 'साधुनी' (स्त्री) का नाम वासन्ती था, जो एक सिद्धा थी। श्रीपरम्पत-दासजी, श्रीगणेश चौबे के वंशज हैं। इनकी समाधि मंगुराहा में है। सम्भवतः बलखण्डी बाबा सदानन्द बाबा की परम्परा के ही हैं।

बँगरी

यहाँ श्रीद्वारका ठाकुर हैं, जिनकी अवस्था ६५ वर्ष की है। उन्होंने निम्नांकित बातें लिखाईं—यहाँ पहले औघड़ों का मठ था। एक बार सारन जिले से कुछ व्यापारी धान के व्यापार के लिए चम्पारन आये। रात में चोरों ने उनका पीछा किया। वे आदापुर पोखरा औघड़-मठ पर ठहर गये। चोर भी वहीं कहीं छिप गये। औघड़ लोगों ने रात को व्यापारियों की 'जबही' (हत्या) करना शुरू किया। व्यापारियों की चिल्लाहट सुनकर

चोरों ने थाने पर खबर दी। दारोगा आये, लाशें बरामद हुईं और औघड़ चालान किये गये।

महुआवा मठ

यह मठ ग्राम रामगढ़, थाना पिपरा, डा० पिपराकोठी में स्थित है, जो बँगरी से दो मील पूरब तथा भखरा से दो मील पच्छिम है। यहाँ रामदास (माधोपुर फाँड़ी) भीखम की परम्परा के हैं। इनका पहला घर बलथी में था। १४ वर्ष की अवस्था में सरभंगों से संगत हुई। घर के लोग स्मार्त्त थे; साहेबगंज केसरिया से एक मील पूरब पढ़ते-पढ़ाते थे। वहीं के सरभंग-मठ के साधुओं का संग हुआ। लोअर पास कर वहीं पढ़ाने लगे। उस समय वहाँ उस मठ में शैव, वैष्णव, दरियादासी, उदासी, वैरागी (वैष्णव), कविरहा, औघड़ (इनके मत से सरभंग ही औघड़ हैं), गिरनारी सभी राम को भजते थे। रामदास बाबा हिन्दू-पंथी हैं तथा गेरुआ वस्त्र पहनते हैं। इनके हाथ में एक पीतल का कड़ा है, जो नैपाल-राज्य से मिला है। इनके भाई मनोहरदास दिवंगत हो गये। माता-पिता के देहान्त तथा जमीन-जायदाद छिन जाने के बाद ये सर्वप्रथम घर से निकले। पीछे से इनके दोनों भाई भी निकल गये। मनोहरदास कोइरी जाति की स्त्री रखे हुए थे, जिससे एक पुत्र (दुखादास) हुआ। दुखादास की शादी एक सरभंग स्त्री से हुई थी, जिसने इसे छोड़ दिया।

उन्होंने कहा—"औघड़-पंथ में जिसका मन होता है, 'भजन हो या गजन' (व्यभिचार-प्रक्रिया—मौखिक, लैंगिक उपभोग), वही आता है। स्त्री आदि में जाति-प्रथा नहीं है। स्त्रियाँ दुःख या ऐन्द्रिय स्वाद से घर से निकलकर यहाँ आती हैं। स्त्रियों की इच्छा होने पर दूसरी शादी हो सकती है।"

यहाँ मनोहरदास तथा 'माईराम' की समाधि है। चकियावाले इनकी पंगत के नहीं हैं। उनमें स्वयं गुरु-चेला होते हैं। इन लोगों को भखरा में जाने पर खुराक मिलेगी, किन्तु पंक्ति में खाने नहीं दिया जायगा। पिपरा-स्टेशन के करीब कुछ सरभंग-परिवार साथ रहते हैं। श्रीरामदासजी पहले भिनक राम के शिष्य हुए बाद में भखरा 'फाँड़ी' के भिनकराम के मत में आये। १६ वर्ष की अवस्था में इन्होंने टेंरुआ के लक्ष्मीसखी की सेवा दस दिन की थी। उस समय लक्ष्मीसखी ४५ वर्ष के 'अधेड़' थे। ये ज्ञानी बाबा से शिष्य बनकर टेंरुआ चले गये।

रमपुरवा

यह स्थान मँगुरहा से १० मील और अरेराज से ६ मील पूरब भोलहा के पास बाँस तथा आम के बाग में स्थित है। यहाँ मिट्टी तथा कच्ची ईंटों और फूस का मकान है। मठ अपनी जमीन में बना है।

वंशावली

प्रीतमराम (किनाराम की जमात के)
|
छत्तरराम (गोरखपुर)
|
महीपतराम महाराज (शिष्य)
|
हरखूदास (शिष्य—मठ के संस्थापक)

महेशदास (वर्त्तमान)	लड़की (दिवंगत)	लड़की (विधवा) वर्त्तमान
गरीबदास (वर्त्तमान)	(किसी मुसलमान औघड़ के साथ रहती थी। संतान है।)	(यह अर्जुन छपरा के खानदानी औघड़ से ब्याही गई थी। संतान है।
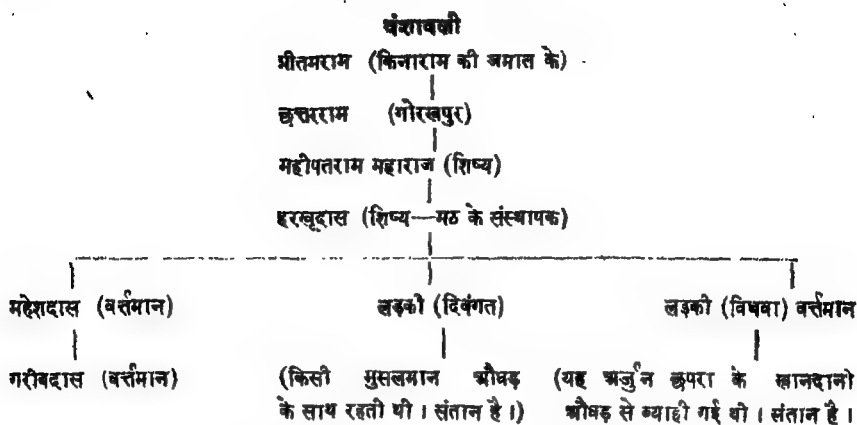
छत्तरराम पण्डितपुर के छत्तर बाबा से भिन्न माधोपुर परम्परा के प्रीतमराम के शिष्य थे। मठ के 'हाते' में तीन मठ हैं। एक हरखूदास के पुत्र का और शेष उसकी पुत्रियों का है। यहाँ 'सरभंगिनें' भी रहती हैं, जिनका गाँव वालों के साथ बुरा सम्बन्ध है। यहाँ के गरीबदास ने अन्वेषक को निम्नाङ्कित पुस्तकें दीं—(१) रामचरित-मानस, (२) हनुमानचलीसा, (३) दानलीला, (४) सगुनउती, (५) मन्त्रों की छोटी पुस्तिका, (६) जड़ी-बूटियों की छोटी पुस्तिका, (७) कबीर के 'सरौदे'। इन 'सरौदों' में दो पर कबीर की स्पष्ट छाप है, किन्तु एक का पता नहीं चलता है।

यहाँ एक पश्चिमाभिमुख मण्डपाकार समाधि है, जिसमें मिट्टी की दो ऊँची 'पीढ़ियाँ' बनी हैं। एक हरखूराम की तथा दूसरी उसकी स्त्री 'लगन गोसाईं माई' की है। इसकी दूसरी स्त्री 'कँवल माई' की समाधि मण्डप के बाहर है। इसीसे इनका वंश चला। कुछ दूरी पर महावीर-ध्वज लहरा रहा था। बाबा ने कहा—'यहाँ की स्त्रियाँ अतिथियों के स्वागत-सत्कार के लिए बगल में नहीं सोती हैं।'

सागरदिना

यह चम्पारन जिले में है। इस मठ में आजकल श्रीफागूदास महंथ हैं। वे जन्मना सरभंग हैं। इन्होंने निम्नाङ्कित सूचनाएँ दीं—

गजाधरदास (भूमिहार) बागमती के किनारे ताजपुर के निवासी
(हरिहर-मठ, थाना ढाका)
|
रामचरणदास (अगहरी बनियाँ) पट्टी बोकाने के निवासी
(सागरदिना मठ)
|
फागूदास (वर्त्तमान) जन्मना औघड़

फागूदास की 'माईराम' (घरवाली) जाति की मलाहिन है। इनके कथनानुसार फागूदास के पिता ब्राह्मण-परिवार से सरभंग में आये थे। इनके पिता श्रीबूमनदासजी झखरावाले वर्त्तमान महन्थ रामसरूपदास के शिष्य थे।

सेमरा-भगवानपुर

यह थाना पिपरा, डा० पिपरा, जिला चम्पारण में स्थित है। प्रारम्भ में यहाँ श्मशान था। मठ की जमीन के नीचे हड्डियाँ मिलती हैं। जमीन बेतिया-राज्य से ज्ञानी बाबा के समय मिली थीं। कुल जमीन ढाई बीघा है।

वंशावली

ज्ञानी बाबा (नोनियाँ) जन्मभूमि परसौनी
|
रोसन बाबा (कायस्थ) कालान्तर में पंडितपुर चले गये थे।
|
जयपालदास (लोहार)
|
रघुवीर दास (ततवाँ, जन्मभूमि बेलसंड, मुजफ्फरपुर) — रामजीवनदास (पण्डितपुर के लखनदास के पुत्र, जो कालान्तर में गृहस्थाश्रम में लौट गये)

श्रीरघुवीरदासजी के कथन का सारांश—

मेरे गुरु जयपालदास थे। प्रथम संगति गाँव पर ही हुई, जब मेरी अवस्था १२ वर्ष की थी। विवाह हो गया था, लेकिन 'गौना' नहीं हुआ था। उसी समय वैराग्य हो गया। यहाँ चला आया। उस समय श्रीजयपालदास थे। वे तुलसीकृत रामायण का पाठ किया करते थे; बीजक का भी पाठ करते थे। सभी चीजें खाते थे— गाँजा, भाँग, मांस आदि।

इसी मठ में श्रीजयपालदास की समाधि है, ज्ञानी बाबा की समाधि भोपतपुर के पास तिरोजागढ़ में है। श्रीलक्ष्मीसखी ज्ञानी बाबा के शिष्य थे। गंडक पार अपना मकान बनाकर रहने लगे। 'जड़' एक है, परन्तु सखी-सम्प्रदाय अपना अलग चला। कुछ प्रमुख संतों के नाम हैं—कर्त्ताराम, धवलराम, मनसा बाबा, भिनक बाबा, ज्ञानी बाबा।

तिरोजागढ़ में बाबा जयकिशुनदास रहते हैं। वहाँ इस मत के भजनों के शुद्ध रूप में मिलने की आशा है। रघुवीरदास के पास आठ हस्तलिखित पोथियाँ हैं, जिनमें किनाराम, भिनकराम, छत्तर बाबा, मनसाराम, टेकमनराम आदि के भजन हैं। कुछ मारण, उच्चाटन आदि तन्त्र-विधियों के भी अंश हैं।

साधु ने ग्रन्थ देना स्वीकार नहीं किया।

करुधरु

माँझी से सेमरिया-घाट जानेवाली सड़क से दक्खिन तथा सरयू नदी के उत्तरी तट पर यह मठ स्थित है। यह किनाराम के परिवार का है। जिस मकान में वर्त्तमान औघड़ बाबा रहते हैं, वह खपड़ापोश तथा स्वच्छ है। यह मठ २८ वर्ष का पुराना है।

वंशावली

कलाशराम औघड़ (कायस्थ—६० वर्ष में मरे)
|
रामधारीराम औघड़ (क्षत्रिय—उम्र ६५ वर्ष वर्तमान)
|
किशोरीराम औघड़ (तेली—उम्र ३५ वर्ष—शिष्य)

श्रीकैलाशराम बाबा ने बनारस से यहाँ आकर इस मठ की स्थापना की थी।

कोपा

यह मठ कोपा-सम्होता स्टेशन (सारन) से दो मील पश्चिम की तरफ कोपा गाँव के पश्चिम स्कूल के निकट स्थित है। मठ में एक खपड़ापोश मकान है। मठ के दक्खिन एक बड़ा पोखरा है। मठ के प्रांगण में पूरब तरफ एक समाधि है। यह समाधि श्रीस्वामी सरभंग महर्षि (?) की है। यह मठ ५० वर्ष का पुराना है। मठ में तीन कट्ठा जमीन है। भिक्षावृत्ति के द्वारा मठ का काम चलता है।

वंशावली

ज्ञानानन्द
|
अलखानन्द
|
(क्षत्रिय) हरदेवानन्द (पँचरुखीगढ़-मठ का विवरण भी देखिए)
|
(क्षत्रिय) विवेकानन्द (५० वर्ष के—वर्त्तमान महंथ)

श्रीअलखानन्दजी योगी और विद्वान् थे। यह मठ नचाप की शाखा है। मठ बड़ा साफ-सुथरा है। महंथ ने 'सरभंग' का अर्थ 'स्वर को भंग करना' बताया। 'स्वर' का अर्थ है—क्षिति, जल, पावक, गगन, समीर। ये अवतार नहीं मानते हैं। गुरु-पूजा होती है। भोज-भण्डारा होता है। समाधि पर चिराग-बत्ती जलाते एवं पुष्प अर्पित करते हैं। इस मठ का पता डा० कोपा बाजार, जि० सारन है।

छपरा ४३ नं० ढाला का मठ अमृतबाग

यह मठ छपरा-गड़खा रोड पर उसके पूरब स्थित है। आम्र-वाटिका में स्थित यह मठ बड़ा सुन्दर है। दो मकान हैं। इनमें से एक खपड़ापोश तथा दूसरा पक्का है। पक्का मकान श्रीबाबा रामदासजी परमहंस की समाधि है। वर्त्तमान औघड़ बाबा ने बताया कि चारों वेदों, छहों शास्त्रों, अठारहों पुराणों में इस सम्प्रदाय के विकास की परम्परा है। 'महानिर्वाण-तन्त्र', श्यामा-रहस्य, योगिनी-तन्त्र, धन्वन्तरि-शिक्षा, गुप्त साधक-तन्त्र, महाशिव-पुराण, मार्कण्डेयपुराण, अग्निपुराण आदि ग्रन्थों से विशेष सहायता मिल सकती है। साधुओं को खेती-बारी से कोई सम्बन्ध नहीं है, भिक्षाटन भी नहीं करते हैं। लोग आकृष्ट होकर स्वयं अन्नादि दे जाते हैं। इसी प्रकार भोजन का प्रबन्ध होता है। मठ का प्रबन्ध आकाश-वृत्ति से होता है। श्रीबली परमहंसजी की समाधि आम्र-वाटिका के मध्य में मिट्टी की बनी है।

साधु-परम्परा

श्रीरामकिशुनदास

|

श्रीरामदासजी परमहंस (क्षत्रिय)—६५ वर्ष में दिवंगत हुए।

|

श्रीसूर्यप्रकाशानन्दजी (वैश्य)—५८ वर्ष (वर्तमान औघड़)।

यह मठ बाबा भिनकरामजी के परिवार का है। इस मठ में अनुसन्धान के परिदर्शन के समय बाबा के सत्संगार्थ निम्नांकित श्रद्धालु सज्जन विद्यमान थे -

(१) श्रीयुत बाबा आत्मनरेशजी, गया (गुरु-स्थान—दरभंगा पुलिस-लाइन)।

(२) श्री डा० गयाप्रसाद गुप्त, रिटायर्ड सिविल एसिस्टेंट सर्जन, चतरा, हजारीबाग।

(३) श्रीदेवकुमार चौबे, मंत्री, नैपाल तराई-काँगरेस, बीरगंज।

(४) श्रीयुत बाबू रामअयोध्या सिंह, हवलदार, गया पुलिस-लाइन।

(५) श्रीसरयुग सिंह, गुण्डी, आरा।

(६) श्रीरामबचन सिंह, पुलिस-लाइन, छपरा।

(७) श्रीराजेन्द्र सिंह, नेवाजी टोला, छपरा।

(८) श्रीलक्ष्मीनारायणजी, गुरुकुल मेहियाँ, छपरा, सारन।

यहाँ मार्कण्डेयपुराण, क्रियोड्डीश-तन्त्र, विवेकसागर (किनाराम कृत) पुस्तकें थीं। यह मठ ४० वर्ष पुराना है। मठ में बन्दर तथा मुर्गे-मुर्गियाँ भी हैं। बाबा ने 'सरभंग' शब्द का अर्थ निम्नांकित दोहे में बताया—

शब्द हमारा आदि के, भाखे दास कबीर।
सत्त शब्द नर जीतो, तोड़ो भ्रम जंजीर॥

बाबा ने अनेक 'बानियाँ' लिखी हैं। उन्होंने कहा कि अगर स्त्री-पुरुष दोनों भक्त हों, तो शादी में कोई हर्ज नहीं है। दोनों को ब्रह्म-विद्या का जानकार होना चाहिए। उन्होंने बताया—श्रीकिनाराम के स्थान पर बनारस में इस सम्प्रदाय की पुस्तकें मिल सकती हैं। छपरा के इस मठ में सम्प्रदाय की दो छोटी-छोटी पुस्तकें (हस्तलिखित) देखीं। उन्होंने पुस्तकें देना अस्वीकार कर दिया। बाबा के पास तंत्र-पुस्तक थी—महानिर्वाण-तंत्र—श्रीवेङ्कटेश्वर (स्टीम) मुद्रणालय, बम्बई। उन्होंने कहा कि आदापुर में श्रीभिनकराम के शब्द, माँझी में श्रीधरणीधरदासजी के शब्द मिल सकते हैं। इसके अतिरिक्त क्रियोड्डीश-तन्त्र, प्राप्ति-स्थान श्रीवेङ्कटेश्वर (स्टीम) मुद्रणालय, बम्बई; अभिलाखसागर—कल्याणी, बम्बई। अभिलाखसागर की सातवीं तरंग के ३४ से ३८वें पद तक अमल, गाँजा, भाँग, सुरा, विषय (रति) एवं मछली-मांस खाने का विधान है।

डुमरसन

यह मठ डुमरसन, बँगरा, सिसई इन तीनों गाँवों की सीमा पर, छपरा कचहरी—सीवान लूप लाइन के पच्छिम में बसा है। राजापट्टी स्टेशन से डेढ़ मील की दूरी पर है।

मठ में तीन मकान हैं—एक पक्का तथा दो कच्चा खपड़ापोश। दो खपड़ापोश मकानों में स्वयं औघड़ बाबा रहते हैं। पक्के मकान में गुरुओं की समाधियाँ हैं। यह पक्का मकान १६५० में बना है (जैसा कि उसपर अंकित है)। पक्का मकान दोमंजिल का है, मन्दिरनुमा मकान के चारों ओर बरामदा है। ऊपरी गुम्बज पर सर्प तथा 'बाबा रामकिशुनदास' अंकित हैं। मठ के पास ही बगीचा है, जिसमें आम्र-वृक्ष तथा ओड़हुल के पौधे लगे हैं। मन्दिर में तहखाना है। यहाँ एक कुआँ तथा पोखरा भी है। यह १०० वर्ष का पुराना है।

साधु-परम्परा

श्रीलक्ष्मीसखी
|
श्रीछतरी बाबा
|
श्रीरामकिसुनदासजी कोइरी (१२५ वर्ष में दिवंगत हुए)
|
श्रीदेवनारायणदासजी कोइरी (उम्र ५५ वर्ष वर्त्तमान)

श्रीदेवनारायणदासजी गैरिक वस्त्र तथा जटा-जूटधारी हैं। इन्होंने कहा कि भिनकरामजी नैपाल के पहले गुरु थे। वे स्वयं भिनकराम के परिवार के हैं। घरबार से कोई मतलब नहीं है। खेती-बारी नहीं करते। रोगों का इलाज तथा सेवा करते हैं। निम्नांकित मठ के नाम लिखाये—

(१) महौली—सामकौरिया स्टेशन से दो बीघा।
(२) सतजोड़ा-पकड़ी—राजापट्टी से दो कोस पूरब।
(३) बहरौली—राजापट्टी से दो मील।
(४) महमदा—महराजगंज से तीन कोस पूरब।
(५) नचाप—एकमा से दो कोस पच्छिम।
(६) पँचुआ—एकमा से दो कोस पच्छिम-दक्खिन।
(७) टेंढ़ुआ—राजापट्टी से दो कोस उत्तर।
(८) राजापुर सीवान—सीवान से कोस भर उत्तर।
(६) पँचरुखी—पँचरुखी से १० बीघा दक्खिन।
(१०) कोपा—कोपा-सम्होता से आधा मील।
(११) छपरा—छपरा-कचहरी से आधा मील।

श्रीरामकिसुनदासजी सिद्ध एवं शक्ति-सम्पन्न थे। इसमें लोग पूजा-पाठ नहीं करते हैं। परन्तु समाधि-पूजा नित्यप्रति दोनों शाम होती है। समाधि तहखाने में है। ये लोग निराकार ईश्वर को मानते हैं। भगवान् एक है, दूसरा नहीं। संसार तथा मोक्ष से अलग होकर ईश्वर में लीन होने से मुक्ति मिलती है।

'सरभंग' का अर्थ इन्होंने 'समदर्शी' बताया। श्रीरामकिसुनदासजी ४५ दिनों की भूसमाधि में रहते थे। महीनों विना खाये-पीये रहते थे।

नचाप

यह मठ एकमा स्टेशन से ६ मील की दूरी पर नचाप गाँव (सारन) के पश्चिम दिशा में स्थित है। इसमें दो मकान हैं। मकान के पूरब तालाब तथा कुआँ है। यह मठ ७० वर्ष का पुराना है। स्वामी अलखानन्दजी की समाधि मठ के पूरब तरफ खुले मैदान में पत्थर की बनी हुई है। यह मठ सम्पन्न दीख पड़ा। यहाँ के लोग भीख नहीं माँगते हैं। जमीन ग्यारह बीघे हैं। औषधालय द्वारा औषधि-वितरण का काम भी होता है। वर्त्तमान औघड़ स्वयं आयुर्वेदिक चिकित्सा निःशुल्क करते हैं। मठ में तीन अन्य साधु थे, जो कहीं बाहर से आये थे। वे लोग त्यागी साधु थे।

वंशावली

ज्ञानानन्द
|
अलखानन्द
|
(क्षत्रिय) हरदेवानन्द (६० वर्ष—दक्खिन पँचरुखीगढ़-मठ)
|
(वैश्य) स्वामी नित्यानन्द (५५ वर्ष के वर्त्तमान औघड़)

श्रीस्वामी अलखानन्द जी सिद्ध पुरुष थे। वे विद्वान् व्यक्ति थे। इनकी लिखी 'औषधि-सागर' तथा 'निर्पक्ष वेदान्त-राग-सागर' नामक पुस्तकें उपलब्ध हुईं। इसके अलावा 'निर्पक्ष वेदान्त-राग-सागर' के शेष तीन भाग तथा वैद्यक की कुछ पुस्तकें हैं, जो बम्बई के किसी प्रेस में छपने गई हैं।

बाबा ने कहा कि 'सरभंग' का अर्थ है 'जाति-पाँति नहीं मानना।' इस मत में शादी-विवाह नहीं हो सकता है। मांस, मद्य, मैथुन वर्जित नहीं हैं।

पँचरुखीगढ़

यह मठ सारन जिले में पँचरुखी स्टेशन से दो मील दक्षिण-पश्चिम आम्र-वाटिका में स्थित है। यह पुराने जमाने का कोई गढ़-जैसा प्रतीत होता है। मठ गढ़-जैसा है भी। गढ़ को ही साफ कर इसे बनाया गया है। जमीन ऊँची है, चारों ओर आम के पेड़ लगे हैं। इसके प्रांगण में कुआँ तथा नीम का पेड़ है। तीन मकान हैं, दो में खुद औघड़ बाबा रहते हैं तथा एक में सामान रहता है। इसके संस्थापक बाबा रामलच्छन-दासजी थे। उन्होंने गढ़ को साफ कराके इसकी स्थापना की थी। उन्होंने एक झोपड़ी बनाई थी, जिसमें वे भजन करते थे। मठ का वर्त्तमान रूप इसके मौजूदा औघड़ बाबा हरदेवानन्द ने दिया। जब बाबा लच्छनदास यहाँ आये थे, लोगों ने उन्हें डाकू समझकर चारों ओर से घेर लिया था। परन्तु निकट आने पर उनकी एँड़ी को छूनेवाली जटा तथा सौम्य आकृति का प्रभाव लोगों पर ऐसा पड़ा कि लोग उनके पैरों पर गिर गये। उनकी सुख-सुविधा का प्रबन्ध लोगों ने किया। सन् १६१२ में मठ स्थापित हुआ और बाबा हरदेवानन्द इसमें १६२१ में यहाँ आये।

साधु-परम्परा

रामधनराय (शायर)
|
स्वामी ज्ञानानन्द (नोनियाँ)
|
(कोइरी) अलखानन्द (१९३८ में ७५ वर्ष की आयु में मरे।)
|
हरदेवानन्द (६८ वर्ष—क्षत्रिय)

श्रीहरदेवानन्दजी वर्त्तमान महंथ हैं। श्रीलच्छनदासजी इनसे पूर्व यहाँ के महंथ थे, किन्तु ये इनकी शिष्य-परम्परा में नहीं आते हैं।

श्रीहरदेवानन्द ने बताया कि वे श्रीभिनकराम के परिवार के हैं। वे लोग 'समदर्शी' कहलाते हैं। खान-पान में किसी प्रकार की रोक नहीं है। जाति-भेद नहीं मानते हैं। मूर्त्ति-पूजा नहीं करते, किन्तु समाधि-पूजा प्रचलित है। निराकार भगवान् की उपासना ही मोक्ष का द्वार है। किसी धर्म का ये खण्डन अथवा मण्डन नहीं करते हैं। शादी नहीं कर सकते हैं। खेती-बारी से कोई खास परहेज नहीं है। यहाँ २ बीघे, १३ कट्ठे जमीन है। बाबा ने निम्नांकित अन्य मठों को अंकित कराया—

(१) साँढ़ा—छपरा-कचहरी से उत्तर आधा मील (श्रीमती पार्वती देवी)।
(२) बँगरा—खैरा स्टेशन से डेढ़ कोस।
(३) अफौर—खैरा स्टेशन से १ मील।
(४) खुदाई बारी—खैरा स्टेशन के पास।
(५) रेपुरा—छपरा-कचहरी से छह कोस।
(६) उखई—सीवान से डेढ़ कोस उत्तर पोखरे के भिण्डे पर।

बुझावन सिंह के टोले पर श्रीकृपालानन्दजी मठाधीश हैं। उन्होंने 'सरभंग' का अर्थ 'स्वर-भंग' (अर्थात् श्वास पर अधिकार करना, यौगिक क्रिया को सिद्ध करना) बताया। ऐसा सिद्ध होने पर 'सोऽहं' का जप किया जाता है। ईश्वर, जीव एवं प्रकृति तीनों अनादि हैं। पुनर्जन्म तथा कर्मों का फलाफल ये मानते हैं। इन्होंने कहा—'चैतन्य के चार भेद हैं—कूटस्थ, जीव, ईश्वर और ब्रह्म।'

पंचुआ (जिरात टोला)

यह मठ ग्राम पँचुआ (जिरात टोला) के पूरब तालाब के 'भिण्डे' पर स्थित है। इसका डाकघर परसागढ़ तथा जिला सारन है। इसमें एक खपड़ापोश मकान है, जिसके चारों ओर बरामदा है। मठ के पूरब की ओर समाधि है। हनुमान् की पताका भी फहराती है। दक्षिण दिशा में एक मकान है, जिसमें दुर्गादेवी का स्थान प्रतीत हुआ। यह मठ चार पुश्त से है। ७० वर्ष पूर्व स्थापित हुआ था। दो समाधियाँ निर्मित हैं।

वंशावली

अनमोल बाबा (कोइरी—सिद्ध पुरुष थे)
|
रामदास बाबा (ग्वाला—२५ वर्ष में मरे।)
|
सुकदेव बाबा (ग्वाला)
|
मस्त बाबा (कायस्थ—वर्त्तमान महंथ)।

इस मठ के संस्थापक श्रीअनमोल बाबा सिद्ध पुरुष थे। उनके आशीर्वाद मात्र से ही रोग से मुक्ति मिल जाती थी। ये भीख माँगते थे। इस मठ को पाँच कट्ठे जमीन है। सारा काम आकाश-वृत्ति से ही चलता है। वर्त्तमान महंथ श्रीमस्त बाबा वैशाख त्रयोदशी को कहीं गये हैं। इनके गन्तव्य स्थान का पता नहीं है। सुना जाता है कि वे लड़के को रखते थे। जब उस लड़के को उसके घरवाले ले गये, तब वे उसी के विरह में कहीं चले गये। यह विवरण श्रीगतिलालजी, ग्राम जिरात टोला से मिला। पूरा पता—ग्राम पँचुआ (जिरातटोला), डा० परसागढ़ (सारन)।

बहरौली

यह मठ बहरौली ग्राम में मशरक स्टेशन से डेढ़ कोस पश्चिम-उत्तर की तरफ स्थित है। स्थान बड़ा साफ-सुथरा है। एक खपड़ापोश मकान है जिसमें तीन 'मूर्त्ति' का निवास है। मकान के बीच में कोठरी तथा चारों ओर बरामदा है। बगीचा भी है। साधु महाराज खेती तथा भिक्षाटन नहीं करते हैं। बहरौली के लोग भोजन का प्रबन्ध करते हैं। यह मठ चार वर्ष पूर्व बना है।

साधु-परम्परा

श्रीभिनकराम
|
श्रीलक्ष्मीदास
|
श्रीबालमुकुन्ददास (ग्वाला)
|
श्रीरामयश बाबा (६० वर्ष—राजपूत)
|
श्रीबींगूदास (४५ वर्ष—नोनियाँ वर्त्तमान)

मठ में श्रीरामदास बाबा, श्रीबींगूदास (वर्त्तमान औघड़) एवं श्रीसरलदासजी मिले। श्रीसरलदासजी का गुरु-स्थान धोंधियाँ है। ये लोग मूर्त्ति-पूजा नहीं करते हैं। दशहरे में भोज-भण्डारा होता है। वर्ष में दो बार भण्डारा होता है। शादी-ब्याह नहीं होता है। निराकार भगवान् तथा गुरु-ग्रन्थ की पूजा करते हैं। यह सम्प्रदाय त्यागियों का है। भजन से मोक्ष मिलेगा। बाबा ने कहा कि हमलोग लक्ष्मीसखी के परिवार के हैं। भिनकराम तथा लक्ष्मीसखी दोनों सिद्ध पुरुष थे। मद्य-मांस वर्जित नहीं हैं। अहिंसा का पालन करते हैं। स्त्री से परहेज है। श्रीबालमुकुन्ददासजी ने

अपनी इच्छा से पूर्व से सूचना देकर भजन करते हुए शरीर छोड़ा। वाणी सिद्ध थी। जो कहते थे वही होता था।

'सरभंग' का अर्थ इन्होंने 'समदर्शी' बताया। अन्य सम्बद्ध मठों के नाम निम्नांकित हैं—

(१) चिमनपुरा—सिरसा स्टेशन से पश्चिम-दक्खिन दो कोस; नबीगंज बाजार से एक मील पच्छिम।

मैंभनपुरा

सरयू नदी के तट पर अवस्थित यह मठ किनाराम के परिवार का है। यहाँ पक्के का बड़ा साफ-सुथरा मकान है। जिसके पश्चिम तरफ शिव का एक मन्दिर है। यहाँ श्रीछबीलादासजी की समाधि है। औघड़ बाबा (अज्ञात नामवाले) के मरने के बाद यह मठ वैष्णव महंथ के अधीन चला गया है। इसीलिए शिव की उपासना प्रधान हो गई है।

वंशावली

रतनदास
|
छबीलालदास (पनहेरी)
|
रामदास (अहीर)
|
शत्रोहनदास (क्षत्रिय)

इस मठ के अधिकारी वर्त्तमान २६ वर्षीय वैष्णव महंथ श्रीशत्रोहनदास हैं। यहाँ हस्तलिखित पोथियाँ थीं, जो औघड़ बाबा के मरने के बाद तितर-बितर हो गईं। मंत्र-तंत्र की हस्तलिखित पुस्तिका अब भी विद्यमान है। शेष पुस्तकें मतईदासजी ले गये, जिनकी मृत्यु हो चुकी है।

मुसहरी

यह मठ कोपा-सम्होता स्टेशन (सारन) से लगभग दो मील उत्तर-पश्चिम, मुसहरी ग्राम से पश्चिम, बगीचे में स्थित है। यह मठ बड़ा साफ-सुथरा है। मठ में एक मकान है जिसमें वर्त्तमान औघड़ बाबा रहते हैं। प्रांगण में बड़ा नीम का पेड़ तथा गुरु की समाधि है जो बाबा पतिराम की है। यह समाधि पूरब की ओर है, दक्खिन की ओर भी एक समाधि श्रीहरकिसुन महाराजजी की है। ये दोनों समाधियाँ मिट्टी की हैं। वंशावली निम्नांकित है—

बाबा भैरोनाथ (क्षत्रिय)
|
स्वामी मोतीरामजी
|
(वैश्य) स्वामी पतिरामजी (१०० वर्ष में शांत हुए)
|
(वैश्य) स्वामी धर्मनाथजी (७० वर्ष—वर्त्तमान)

यह मठ लगभग १०० वर्ष पुराना है। यह मठ श्रीकिनारामजी के परिवार का है। ये लोग अवतार नहीं मानते हैं। मूर्त्ति-पूजा नहीं करते, लेकिन गुरु-पूजा करते हैं। समाधि पर धूप-आरती दिखाते हैं। सम्पत्ति नहीं है। आकाश-वृत्ति से ही सारा काम चलता है। महंथ जी भिक्षाटन नहीं करते हैं। लोग खुद इनके खाने-पीने का प्रबन्ध करते हैं। जमीन सिर्फ ४ कट्ठा ११ धूर है। मठ के दक्षिण तरफ कुआँ तथा तालाब है। श्रीबाबा भैरोनाथजी योगी थे। श्रीमोतीरामजी की लिखी कुछ किताबें हैं इनमें से बहुत-सी नष्ट भी हो गई हैं। बाबा के अनुसार 'सरभंग' का अर्थ 'जाति-पाँति का विभेद नहीं मानना है'। यह बाह्य अर्थ है। आभ्यन्तरिक अर्थ है 'स्वर का सन्धान' करना। स्वर साधकों को 'सरभंगी' कहते हैं।

श्रीबाबा मोतीरामजी 'ट्रिनीडाड' गये थे। श्रीभैरोनाथजी युवावस्था में ही अपने गाँव से निकलकर पश्चिम की ओर चले गये थे। वहीं से बाबा मोतीरामजी के के साथ लौटे और मठ की स्थापना की। उन्हीं के सिद्धान्त के प्रचारार्थ मोतीरामजी 'ट्रिनीडाड' गये थे। वहाँ मठ भी स्थापित किया गया था, जिसका अस्तित्व सम्भवतः अब नहीं है।

यह सम्प्रदाय त्यागियों का है। ये लोग 'समदर्शी' कहलाते हैं। शादी वर्जित है। खान-पान पर प्रतिबन्ध नहीं है। इस मठ में लक्ष्मीसखी के गुरु ज्ञानी बाबा का चित्र है। मतभेद होने पर लक्ष्मीसखी ने पृथक् मत चलाया। इस सम्प्रदाय के लोग खेती बारी नहीं करते हैं। इन्होंने तिरपित बाबा की कहानियाँ सुनाईं। इनका मठ अमलौरी सरसर में है। यह तिरपित बाबा के मठ के नाम से विख्यात है।

रसलपुरा

यह मठ छपरा से १० मील पूरब स्थित है। मठ का मकान पक्के का बड़ा साफ-सुथरा है। बाह्य प्राचीर पर काली स्याही से भित्ति-चित्र श्रीस्वारथ मिस्त्री द्वारा अंकित है, जिसमें पल्टन की टुकड़ी, कुत्ते तथा घोड़े का युग्म (रति करते हुए)-चित्र है। प्रांगण में महावीर-ध्वज तथा कुआँ है। यह १०० वर्ष पुराना है। आर्थिक अवस्था अच्छी है। चार पक्के मकान हैं। एक मकान में श्रीस्वामी लखनजी परमहंस की समाधि है।

वंशावली

कच्चा बाबा (ब्राह्मण—८४ वर्ष में मरे)
|
स्वामी लखनजी परमहंस (क्षत्रिय—७० वर्ष में मरे)
|
स्वामी दरबारीदास (क्षत्रिय—उम्र ५५ वर्ष—वर्त्तमान)

श्रीकच्चा बाबा की दो समाधियाँ हैं—एक बनारस में वरुणा-संगम पर सरे मुहाना स्थान में, तथा दूसरा परगना जाल्हूपुर में है। ये सिद्ध योगी पुरुष थे। नामनिरूपण-वाणीसिद्धि तथा अन्त में सर्वसिद्धि मिल गई थी। यह स्थान त्यागियों (विरक्तों) का है। श्रीलखन परमहंस द्वारा लिखित 'आत्मबोध', 'विनय-पत्रिका-सार सटीक' तथा 'रामायण-सार सटीक' पुस्तकें उपलब्ध हुईं।

साँढ़ा-मठ

छपरा-कचहरी (सारन) स्टेशन से एक मील उत्तर दिशा में छपरा सत्तरघाट रोड के पश्चिम तरफ स्थित है। यह मठ घर-जैसा है, जिसके पश्चिम तरफ दरबाजा खुलता है। मठ के पूरब एक खपड़ापोश मकान है, पश्चिम तरफ ओसारा है। इसमें 'माईराम' रहती हैं। मठ के दक्खिन तरफ पक्का मकान है, जिसमें एक समाधि है। मठ के प्रांगण में श्रीदयाराम बाबा, श्रीविद्या बाबा, श्रीदत्ता बाबा तथा श्रीकक्का बाबा की समाधि है। प्रांगण की समाधियाँ मिट्टी की हैं। मकान के पश्चिम तरफ बाहर श्रीगंगाधरदास, श्रीअक्षयवटदास, श्रीचिन्तामनदास और श्रीरामसहाय की समाधियाँ हैं। इनके अतिरिक्त तीन समाधियाँ और हैं। श्रीकमल बाबा सिद्ध थे। कहा जाता है कि वे खड़ाऊँ पहनकर गंगा पार कर गये थे। लगभग १०० वर्ष का पुराना मठ है।

साधु-परम्परा :—

रामधन बाबा
|
ज्ञानीदास बाबा (नोनियाँ)
|
छत्रधारीदास बाबा (कोइरी)
|
सोहामनदास बाबा (बढ़ई)
|
श्रीमती पार्वतीदास (बढ़ई—७५ वर्ष की, वर्त्तमान)

इस मठ की शाखाओं की संख्या २२ है। बँगरा, रेपुरा, कादीपुर, बँठारा आदि इसी की शाखाएँ हैं। माईराम की शादी ५ वर्ष की अवस्था में हुई थी। शादी होते ही पति का देहावसान हो गया। तभी से ये 'सरभंग'-सम्प्रदाय में दीक्षित हो गईं। सरभंग साधुओं की सेवा करने में अपना जीवन व्यतीत कर दिया। यह उनकी गुरु-गद्दी है।

गुयाही मरघट

यह मठ पताही ग्राम के पश्चिम भटौलिया ग्राम की पूरब-उत्तरी सीमा पर स्थित है। इसके पश्चिम तरफ बागमती की पुरानी धारा बहती है। ठीक मरघट में ही यह मठ है। इसमें एक छोटी-सी झोपड़ी है, जिसके पूरब तरफ तथा दक्खिन तरफ ओसारा है, जिसमें औघड़ बाबा निवास करते हैं। मकान के दक्खिन हनुमान् की पताका तथा पताका के नीचे धूपदानी मिली। ध्वज के दक्खिन तरफ कामिनी वृक्ष के नीचे लाल कपड़े में लपेटी हुई एक पत्थर की मूर्त्ति पड़ी थी, जिसके आगे मिट्टी की धूपदानी थी। मठ के साथ फुलवारी है, जिसमें आम, केले, अनार, कटहल, अमरूद तथा बेली के पेड़-पौधे लगे हैं। मठ में धूनी जल रही थी। औघड़ बाबा किसी की चोरी का पता लगाने अज्ञात दिशा गये हुए थे। मठ बड़ा साफ-सुथरा था। लोगों ने बताया कि बाबा रोगी की चिकित्सा भस्म से करते हैं। ये अगम-निगम-सिद्ध हैं। इन्हीं गुणों पर मुग्ध होकर लोग इनके खाने-पीने का प्रबन्ध खुद

करते हैं। वे भीख नहीं माँगते हैं। इनसे पहले यहाँ एक मुसलमान औघड़ थे। वर्त्तमान औघड़ साल भर से हैं, पूरे फकीर हैं, योगी तथा सीधे स्वभाव के हैं।

अन्य मठ—(१) मोहारी—बेलसण्ड से शिवहर होकर जानेवाली मोटर से सवार होकर डेकुली धाम उतरना पड़ता है। डेकुली से वह स्थान दो मील दक्षिण है।

मकुरहर

यह मठ मुजफ्फरपुर जिले के बैरगनियाँ स्टेशन से पूर्वोत्तर दिशा में लगभग एक मील पर मकुरहर गाँव में है। मठ लगभग १०० वर्ष का पुराना है। इसमें पहले भिनकराम बाबा तथा रामधनी बाबा हुए। इनका पहला स्थान राजपुर में है। वहीं से चलकर इनके शिष्य सब जगह फैले। क्रमशः श्रीभिनकराम, श्रीरामधनी बाबा, श्रीटेकमनराम, श्रीकिनाराम और श्रीतालेराम हुए। इन्हीं के वंशज ये लोग हैं। मकुरहर मठ में अभी कोई नहीं है। श्रीरामदयालदास ने मठ को सन् १६५४ में अपने शिष्य हुसेनीदास को दे दिया। हुसेनीदासजी बैरगनियाँ बाजार में हैं। वहीं से नित्यप्रति मठ में जाकर गुरु-पूजा आदि कर्म करते हैं। बैरगनियाँ में इनका घर, स्त्री, बाल-बच्चे तथा दुकान हैं। इन्होंने 'सरभंग' शब्द का अर्थ 'जाति-निष्कासित' बताया। वंश-वृक्ष निम्नरूपेण बताया—

श्रीबालगोविन्ददास
|
श्रीरामदयालदास
|
श्रीहुसेनीदास (६० वर्ष) गृहस्थ औघड़

ऊपर की वंशावली नहीं बता सके। उन्होंने कहा—हमलोग टेकमनराम के परिवार के हैं। हम परिवारी हैं, मूर्त्ति-पूजा नहीं करते हैं। निराकार भगवान् की उपासना करते हैं। गुरु-पूजा करते हैं। गुरु-समाधि-पूजा उनकी वर्षी पर की जाती है। गुरु-समाधि पर मदिरा, मांस आदि चढ़ाये जाते हैं। मांस-भक्षण में हमलोग बन्धन नहीं मानते हैं।

इनकी स्त्री इस इलाके की 'मेठिन' हैं, किन्तु पर्दा-प्रथा होने के कारण अन्वेषक उनसे मिल नहीं सके। रामदयालजी सिद्ध पुरुष थे। पाँच कट्ठा चौदह धूर जमीन है। गुरु के मरने पर भण्डारा होता है। उन्होंने कहा—'कर्म-फल जीव भोगता है। ईश्वर, जीव, प्रकृति तीनों अनादि हैं।'

इसके अधीन निम्नांकित मठ हैं—

(१) रेवासी—रीगा से दक्खिन दो कोस परसरामपुर।

(२) जिहुली—बैरगनियाँ से तीन कोस दक्खिन।

अन्य मठ—(१) शिवहर।

मोहारी

यह मठ ग्राम मोहारी, थाना बेलसंड में दक्खिन तरफ कचहरी के पास है। एक किता मकान है, जो पूर्वाभिमुख है। मठ के पूरब तालाब है। यहाँ कोई मूर्त्ति नहीं है।

मकान तथा फुलवारी जीर्णावस्था में है। महंथजी ७-८ महीनों से कहीं चले गये हैं। कहा जाता है कि उनका संबंध किसी 'फुआ' नाम की हसीन औरत से हो गया था, जिसका मकान गोरखपुर जिले में कहीं है, उसे ही लेकर चले गये। भिक्षाटन से ही काम चलता था। उनका जीवन राजा की तरह था। ये अगम-निगम-सिद्ध थे। रोग छुड़ा देना तथा चोर का नाम बता देना उनके लिए आसान था। उनके चले जाने से लोग दुःखी थे।

औघड़ बाबा का नाम श्रीनरसिंहदासजी था। जाति के ब्राह्मण थे। इन दिनों यहाँ इनके कोई साला रहते हैं, जो यहाँ कभी दस दिनों से ज्यादा नहीं ठहरते हैं। मठ ५० वर्षों से है। मठ बड़ा साफ-सुथरा था, कोई रुण्ड-मुण्ड फेंका नहीं मिला।

रामनगरा

यह मठ बागमती के पूरब रामनगरा (पुरवारी टोला) के दक्खिन तरफ स्थित ३०० वर्ष का पुराना कहा जाता है। इस मठ में केवल एक खपड़ैल मकान (जिसके चारों ओर ओमारा है) है। इसी में वर्त्तमान औघड़ बाबा रहते हैं। यहाँ मन्दिर नहीं है, किन्तु मठ से २० कदम दक्खिन-पूरब कोण में गुरुओं की समाधियाँ हैं। समाधियाँ तीन हैं—एक पक्के मकान के अन्दर तथा दो मकान के बाहर। औघड़ बाबा ने निम्नांकित वंशावली बताई—

श्रीमिनकराम
|
श्रीगोबिन्ददास (दुसाध)—१२५ वर्ष में दिवंगत हुए।
|
श्रीरकटुराम (दुसाध)—१०० वर्ष में दिवंगत हुए।
|
श्रीसीतारामदास (कोइरी)—६० वर्ष में दिवंगत हुए।
|
श्रीबिपुनीदास (दुसाध)—४५ वर्ष के वर्त्तमान औघड़।
|
श्रीशिवदास (ततवा)—वर्त्तमान औघड़ के शिष्य।

बाबा ने कहा कि सरभंग दूसरे होते हैं। यह औघड़ी सम्प्रदाय है। हमलोग परमहंस कहे जाते हैं, निराकार भगवान् की उपासना करते हैं, अवतार नहीं मानते। फकीरी करने से मोक्ष मिल सकता है। शरीर नश्वर है। ईश्वर, जीव, प्रकृति तीनों अनादि हैं। प्रकृति की रचना निम्नरूपेण हुई—

स्वा से सोहं, सोहं से ओंकार।
ओंकार से राम भयो, साधू करो विचार ॥

जवी का रूप यों बताया—

रंग ही में रंग उपजाया, सबका रंग है एक।
कौन रंग है जीव को, ताके करो विवेक ॥
जग महँ निर्गुन 'पवन' कहावा, ताके करो विवेक ॥

पवन को ही जीव कहते हैं। अपने कर्मों का भोग भोगना पड़ता है। यह सम्प्रदाय

जोगी लोगों का है। ये भिक्षाटन नहीं करते, लोग जो देते हैं, सो खा लेते हैं। बाबा ने भिनकराम, गोविन्दराम आदि की बानियाँ लिखाईं। औघड़ों के मठ, जिन्हें उन्होंने बताया, ये हैं—

(१) आदापुर—आदापुर स्टेशन से एक कोस उत्तर थाने के निकट। दरभंगा-नरकटियागंज-लाइन पर।

(२) कथवलिया—पिपरा स्टेशन से चार कोस दक्खिन। बस जाती है। मुजफ्फरपुर-नरकटियागंज-लाइन पर।

(३) सिमरा—जीवधारा स्टेशन से डेढ़ कोस दक्खिन-पश्चिम। बस जाती है। मुजफ्फरपुर-नरकटियागंज लाइन पर।

(४) पण्डितपुर—जीवधारा स्टेशन से डेढ़ कोस दक्खिन।

(५) पुरुखाजितपुर—बाड़ा-चकिया से ढाई कोस दक्खिन।

(६) नौरंगिया गोपालपुर—बाड़ा चकिया से ढाई कोस उत्तर।

(७) जितौरा—पिपरा से ढाई कोस पूरब।

(८) पहाड़पुर—अरेराजधाम से चार कोस पश्चिम। सुगौली तथा मोतीहारी स्टेशन से बस जाती है।

(९) चैनपुर—छपरा जिले में—चैनवाँ स्टेशन से जाया जाता है।

(१०) डुमरसन—छपरा जिले में—राजापट्टी से जाया जाता है।

(११) राजपुर-भेड़ियाही—बैरगनियाँ (मुजफ्फरपुर) से चार कोस उत्तर।

फुटकर मठों का संक्षिप्त विवरण

१. मलाही (बरहवा)

यहाँ हरलाल बाबा के शिष्य बालखंडी बाबा थे। यह मठ सम्भवतः बेतिया के पास मिर्जापुर की 'फाँड़ी' का है।

२. टुनियाँ

धनौती नदी के किनारे लक्ष्मीपुर और तुरकौलिया के पास स्थित है।

३. करिया

बँगरी से छह मील पश्चिम स्थित है।

४. रामपुरवा

यह अल्हन बाजार से दो मील उत्तर स्थित है। यहाँ श्रीकौलदास माईराम हैं। इनके १२ पुरुष 'चेला' हैं।

५. परसोतिमपुर

यह स्थान मैनाटाँड़ से कोस-भर दक्खिन परसोतिमपुर के संन्यासी-मठ के समीप स्थित है। यहाँ अनेक औघड़ रहते हैं, जो शिवालय की आकृति की टोपी पहनते हैं। सम्भवतः ये लोग शैवमतावलम्बी अघोरी हैं। यह स्थान बलथर से डेढ़ मील उत्तर है।

६. पिपरामठ

यहाँ अघोरी का मठ है। यहाँ जैपालगोसाईं नामक अघोरी थे। अघोरी शब्द का

अर्थ बताते हुए उन्होंने कहा कि 'अघोरिये के जामल अघोरी होला।' यह मठ पिपराबाजार से पश्चिम ठाकुरजी के मन्दिर के सटे पश्चिम है।

७. ओकनाथपुर

गोविन्दगंज थाने में औघड़ों का मठ है, जिसमें रंगीला बाबा रहते हैं।

८. चिन्तामनपुर

गोविन्दगंज थाना के चिन्तामनपुर गाँव में स्थित है। यहाँ सुखराम बाबा रहते हैं। यह बालखंडी बाबा का मठ कहा जाता है। यह पहले औघड़ों का मठ था, किन्तु अब संन्यासी-मठ हो गया है।

९. बँगही

पतरखवा गाँव में, जो पटजिरवा के पास तथा बेतिया के पश्चिम है, कई घर औघड़ों के हैं।

१०. सिरहा

यह ढाका (अब पताही) थाना, इटवा घाट के निकट स्थित है। यहाँ श्रीशिवनन्दनदास महंथ हैं। यह टेकमनराम की परम्परा का मठ है। यहाँ माईराम नहीं हैं।

११. पूरनछपरा

यह चकिया स्टेशन से चार मील दक्खिन है। यहाँ सरभंगों की एक जाति रहती है।

१२. अहीरगाँवा

गोविन्दगंज थाने में ओलहाँबाजार के पास है। इस मठ के महंथ श्रीजंगीदास ने निम्नांकित सूचनाएँ दीं—

वंशावली

टीका बाबा (ब्राह्मण)
|
बिजनदास (बेटा)
|
जंगीदास (बेटा)

श्रीटीका बाबा भखरा के सुदिष्ट बाबा के शिष्य थे। ये और इनकी स्त्री दोनों औघड़-मत में चले आये।

१३. कथवलिया

बहुआरा के निकट स्थित है। यह औघड़-मठ है।

१४. टेंरुआ

टेंरुआवाले औघड़-मतावलम्बी हैं। ये ज्ञानी बाबा की परम्परा के हैं। औघड़ अपने को 'राम' तथा ये लोग अपने को 'सखी' कहते हैं।

१५. पोखरैरा

मुजफ्फरपुर जिलान्तर्गत जैंतपुर के निकट पोखरैरा में यह सरभंग-मठ है। यहाँ साधु नरसिंघदास हैं।

१६. महाबोधिन स्थान

यह मठ गौनाहा स्टेशन के मन्दिर के दक्खिन स्थित है। यहाँ एक औघड़ हैं। इनका नाम अज्ञात है। वे तम्बूरा बजाकर भिक्षाटन करते हैं। भिक्षा से ही इनका काम चलता है। ये सरभंगी हैं।

१७. सिक्टाही

यह मरजदवा और गोखुला स्टेशनों के बीच में स्थित है। यहाँ एक औघड़ बाबा रहते हैं।

१८. वैद्यनाथधाम श्मशान

यह वैद्यनाथधाम के श्मशान के पोखरे के निकट स्थित है। यहाँ कई औघड़ रहते हैं। इनके सम्प्रदाय का ठीक पता नहीं चला है।

१८. सिकटा

सिकटा स्टेशन से अग्निकोण में रेलवे लाइन से एक मील दक्षिण-पूरब एक औघड़ मठ है। यहाँ के औघड़ बाबा सिद्ध हैं। एक माईराम भी हैं। कोई भी वस्तु उन्हें कोई देता है, तो सर्वप्रथम उसमें से कुत्ते को खिलाते हैं। लोगों से प्राप्त भोज्य पदार्थों को कभी-कभी पास की नदी में डलवा देते हैं। कहा जाता है कि ध्यानस्थ बाबा का शरीर वर्षा में नहीं भींगता है। बाबा ने कहा कि अरेराज के महादेव उनके पास आते हैं और वे महादेव के पास जाते हैं। औघड़ बाबा के गुरु नैपाल तराई के बिल्वाखोला जंगल में हैं।

१९. संग्रामपुर

यह मठ कथवलिया स्टेशन से ६ मील दक्खिन, संग्रामपुर से थोड़ी दूर पश्चिम स्थित है। यह ज्ञानी बाबा की 'फाँड़ी' का है, जो भिनकराम से संबद्ध है।

२०. भोपतपुर

चकिया स्टेशन के निकट स्थान है। यहाँ सरभंगों की एक जाति रहती है।

२१. बरमनिया-चकिया

यह बरमनिया-चकिया के निकट स्थित है। यहाँ एक औघड़ बाबा रहते हैं। सभी का छुआ खाते हैं। ये कमाने के लिए आसाम गये थे, वहीं औघड़-मत में दाखिल हुए। प्रारम्भ में सभी के हाथ बना हुआ खाने लगे। बाद में 'सरभंग' या 'औघड़' नाम से प्रसिद्ध हुए।

२२. ढेकहा

यह नारायणी के किनारे केसरिया से ४ मील दक्खिन स्थित है। इसमें कर्त्ताराम तथा धवलराम प्रसिद्ध संत थे। वे लोग 'कौलाख' (कमलगट्टा) की माला पहनते हैं तथा पूजा करते हैं। अभी ये लोग अपने को वैष्णव कहते हैं। इस मठ से प्राप्त गीतों से पता चलता है कि सरभंग-पंथ पहले 'निरवानी' था, जिसके कर्त्ता भैंगरू तथा भुआल आदि थे। बाद में टेकमन ने सांसारिकतावाली शाखा चलाई। भिनक ने निर्वाण को ही पकड़ा।

२३. बहुआरा

यह चम्पारन में स्थित है। वंशावली निम्नरूपेण है—
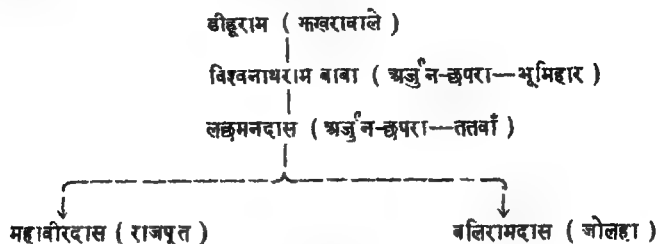
२४. कमालपिपरा

अहीरगाँवाँ के श्रीजंगीदास के कथनानुसार यह पहाड़पुर गाँव के निकट स्थित है। पहाड़पुर अरेराज के पास है। यहाँ बिसुनदास रहते हैं। ये यज्ञ करते हैं, जिसमें साधु लोग इकट्ठे होते हैं, भण्डारा होता है। ये महात्मा हैं।

२५. सलवा

गोविन्दगंज थाना में स्थित औघड़-मठ है। इसके अतिरिक्त नारायणी नदी के तट पर ममरखा (गोविन्दगंज), पटखौली (नौतन थाना) इत्यादि अनेक मठ हैं।

२६. ममरखा

गोविन्दगंज थाना में स्थित यह मठ तुलाराम बाबा की मठिया के नाम से प्रसिद्ध है।

२७. जौहरी

इस मठ में एक बाबा रहते थे, जिनकी दो स्त्रियाँ थीं, उनमें एक का नाम गंगादास तथा दूसरे का नाम प्रेमदास था। ये दोनों सिद्धा थीं। बाबा के शिष्य रामचन्द्रदास थे, जिसकी किसी ने हत्या कर दी। रामचन्द्रदास ने किताबें लिखी थीं, जिसका पता अभी नहीं चलता है।

२८. चटिया (बरहवा)

यहाँ हरलाल बाबा रहते थे। उनके चेला बालखण्डी बाबा हुए, जो पीछे 'मोरंग' चले गये। वे 'धुनितरी' में रहते थे।

२९. सिमरौनगढ़

मनसा बाबा सिमरौनगढ़ के औघड़ थे। अब यह मठ वैष्णव हो गया है। किन्तु अब भी धूनी में दारू से मनसा बाबा को पूजा दी जाती है। 'ढेरी' (समाधि) पर कण्ठी चढ़ती है। ये माधोपुर में भी प्रसिद्ध हैं।

३०. सोहरवा-गोनरवा

यह मठ नैपाल तराई के 'सरलहिया' तपा में है। बैरगनियाँ से लगभग चार कोस राजपुर है और वहाँ से लगभग सोलह मील गोनरवा है। भिनक बाबा एक-डेढ़ सौ वर्ष पहले यहीं हुए थे। यहीं इनकी समाधि भी है। इन दिनों यहाँ निर्मलदास और गोकुलदास हैं, जो आदापुर के मिसरी बाबा की शिष्य-परम्परा में हैं।

३१. नायकटोला

यह रक्सौल से उत्तर-पूरब दो मील पर स्थित है।

३२. किसुनपुरा

मोतीहारी से ५ मील और जीवधारा स्टेशन से एक फर्लांग पर स्थित है। यह मखरा 'फाँड़ी' का है। करीब ४ एकड़ जमीन है, जिसमें घर वगैरह हैं। इसमें दो मठ हैं। सड़क की दूसरी ओर दक्खिन तरफ भी मठ है। यहाँ महिला सरभंग थीं।

३३. रूपौली

यहाँ सरभंग-सम्प्रदाय के योगेश्वर का जन्म हुआ, जिनके शिष्यों में वीरभद्र, भदई, सूरज, लालबहादुर, लंगट, भगवान, रघुवीर, युगल इत्यादि थे। विशेष परिशिष्ट में।

सारन जिले के निम्नलिखित मठों का संक्षिप्त परिचय बाबा सुखदेवदास (धौरी, सारन) से मिला जो स्वयं एक उच्चकोटि के त्यागी संत हैं—

१.	अमलोरी सरसर— (दो मठ)	माईरामदास	→	तिरपितदास
२.	परसागढ़ (एकमा रेलवे स्टेशन)— (पक्का मठ)	शिवशंकरदास	→	शिवदास
३.	घोघियाँ (रेलवे-स्टेशन मशरक)—	जगन्नाथदास	→	बलरामदास
४.	छपियाँ (रेलवे-स्टेशन सामकोड़िया)—	खोभारीदास	→	छबीलादास
५.	अरवाँ (रेलवे-स्टेशन खैरा)—	चाउरदास	→	सूरदास
६.	रामपुर कोठी—	इनरदास (अतीत)	→	(इस समय वैरागी साधु हैं)
७.	आम्याँ मोहमदा (रे० स्टे० महाराजगंज) (पक्का मठ, पक्की समाधि)—	जगरूपदास	→	सुखरामदास
८.	सारीपट्टी (पो० भगवानपुर)—	जगन्नाथदास (अतीत)	→	भागीरथीदास

टिप्पणियाँ

१. श्रीकिनाराम-कृत पोथी 'विवेकसार' की भूमिका के आधार पर।
२. आनन्द-भण्डार, पृष्ठ ४
३. 'विवेकसार' किनाराम-कृत।
४. आनन्द-भण्डार, पृष्ठ ६८-६९
५. तिरोजागढ़ के श्रीनगीनादास के विवरण के आधार पर।
६. श्रीमहादेव मिश्र (मौलम बाबा के वंशज) के कथन के आधार पर। अन्वेषक श्रीराम-नारायण शास्त्री ने स्वयं जाकर उनका बयान अंकित किया है।

७. भजन-रत्नमाला, पृष्ठ २२
८. विवेकसार पोथी की भूमिका देखें।
९. विवेकसार पोथी की भूमिका देखें।
१०. विवेकसार पोथी की भूमिका देखें।
११. विवेकसार पोथी की भूमिका देखें।
१२. विवेकसार पोथी की भूमिका देखें।
१३. विवेकसार पोथी की भूमिका देखें।
१४. विवेकसार पोथी की भूमिका देखें।
१५ कर्त्ताराम-धवलराम-चरित्र, पृष्ठ ६
१६. कर्त्ताराम-धवलराम-चरित्र, पृष्ठ ७
१७. कर्त्ताराम-धवलराम-चरित्र, पृष्ठ ७
१८. कर्त्ताराम-धवलराम-चरित्र, पृष्ठ ९–१०
१९. कर्त्ताराम-धवलराम-चरित्र, पृष्ठ १२
२०. कर्त्ताराम-धवलराम-चरित्र, पृष्ठ १२
२१. कर्त्ताराम-धवलराम-चरित्र, पृष्ठ १३
२२. कर्त्ताराम-धवलराम-चरित्र, पृष्ठ १४
२३. कर्त्ताराम-धवलराम-चरित्र, पृष्ठ १५
२४. कर्त्ताराम-धवलराम-चरित्र, पृष्ठ १९
२५. कर्त्ताराम-धवलराम-चरित्र, पृष्ठ २०
२६. कर्त्ताराम-धवलराम-चरित्र, पृष्ठ २३
२७. कर्त्ताराम-धवलराम-चरित्र, पृष्ठ २५
२८. कर्त्ताराम-धवलराम-चरित्र, पृष्ठ २६–२७
२९. कर्त्ताराम-धवलराम-चरित्र, पृष्ठ २९
३०. इस खण्ड में मठों सम्बन्धी वे परिचय संकलित हैं. जो अनुसन्धान के सिलसिले में ज्ञात हुए अथवा जिनका परिदर्शन लेखक अथवा अनुसंधायकों ने किया।

परिशिष्टाध्याय

पूरक सामग्री

परिशिष्ट

[पूरक सामग्री तथा ऐसी अन्य सामग्री, जो ग्रन्थ के प्रेस में जाने के बाद मिली]

क. 'अघोरी, अघोरपंथी, औघड़'—क्रूक

ख. (१) योगेश्वराचार्य (इस सम्बन्ध की सामग्री पीछे मिली)
(२) भगतोदास ,,
(३) रघुवीरदास ,,
(४) दरसनदास ,,
(५) मनसाराम ,,
(६) शीतलराम ,,
(७) सूरतराम ,,
(८) तालेराम ,,
(९) मिसरीदास ,,
(१०) हरलाल ,,

ग. सन्तों के पदों की भाषा ,,

परिशिष्ट (क)

अघोरी, अघोरपंथी, औघड़

इन्साइक्लोपीडिया ऑफ रिलीजन एण्ड एथिक्स (Encyclopaedia of Religion and Ethics) में 'अघोरी, अघोर-पंथी, औगड़, औघड़' शीर्षक से डब्ल्यू क्रूक (W. Crooke) ने अघोर-पंथ का एक विवरणात्मक परिचय[1] दिया है। उसका सारांश निम्नलिखित है :—

अघोरी, अघोर-पंथी अथवा औघड़—ये नाम एक ऐसे सम्प्रदाय को सूचित करते हैं, जो विशेषतः नरमांस-भक्षण तथा घृणित आचारों के लिए ख्यात हैं।

(१) **अर्थ**—अघोर-पंथ का संबंध शैव मत से है; क्योंकि अघोर शिव का नाम है। मैसूर में 'इक्केरी' के सुन्दर मन्दिर में अघोरीश्वर के रूप में शिव की पूजा होती है।

(२) **विस्तार-क्षेत्र**—१६०१ ई० की जन-गणना के अनुसार भारत में अघोर-पंथियों की संख्या ५,५८० थी। इनमें ५ हजार से अधिक बिहार और पश्चिमी बंगाल में पाये जाते हैं। अजमेर, मेरवाड़ा, बरार आदि स्थानों में भी ये पाये जाते हैं। किन्तु १८६१ की जन-गणना के अनुसार युक्तप्रदेश में ६३० और बंगाल में ३,८७० अघोरियों तथा युक्तप्रदेश में ४,३७० एवं पंजाब में ४३६ औघड़ों का उल्लेख है। इस विषमता के कई कारण होंगे। एक तो यह कि ये प्रायः यत्र-तत्र घूमते रहते हैं और दूसरा यह कि इनमें से अनेक ऐसे भी होते हैं, जो खुले आम अपने को इस सम्प्रदाय का अनुयायी घोषित नहीं करते। पुराने समय में इनके प्रधान मठ अथवा केन्द्र आबू-पर्वत, गिरनार, बोधगया, बनारस और हिंगलाज में थे। किन्तु अब आबू पर्वत में इनका केन्द्र नहीं है।

(३) **पंथ का इतिहास**—ह्वेनसांग ने अघोरियों की चर्चा करते हुए लिखा है कि वे नंगे रहते हैं, भभूत लगाते हैं और हड्डियों की माला पहनते हैं। उसने निर्ग्रन्थ (नग्न) कपालधारियों का भी उल्लेख किया है। आनन्दगिरि ने 'शंकर-विजय' में कापालिक का वर्णन करते हुए लिखा है कि उसका शरीर चिता के भस्म से लिप्त रहता है, गर्दन में मुण्डमाल रहती है, ललाट पर काली रेखा और सिर पर जटा रहती है; वह व्याघ्रचर्म पहनता है और बायें हाथ में कपाल धारण करता है; उसके दायें हाथ में एक घण्टी रहती है, जिसको वह बार बार हिलाकर 'हे शम्भू! भैरव! हे कालीनाथ!' आदि उच्चारण करता रहता है। भवभूति ने 'मालती-माधव' में अघोरघण्ट के पंजे से माधव की मुक्ति की चर्चा की है; अघोरघण्ट चामुण्डा की वेदी पर उसकी

बलि चढ़ाना चाहता था। 'प्रबोधचन्द्रोदय' में कापालिक-व्रत का संकेत है। 'दबिस्ताँ' (१७ वीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध) में ऐसे योगियों की चर्चा है, जिनके लिए कुछ भी अभक्ष्य नहीं है और जो आदमी को भी मारकर खाते हैं। कुछ ऐसे हैं, जो अपने पेशाब, पाखाने को मिलाकर उसे छानकर पी जाते हैं और यह समझते हैं कि इससे सिद्धि तथा अद्‌भुत दृष्टि प्राप्त होती है। इस विधि को वे 'अतिलिया' अथवा 'अखोरी' कहते हैं। योगियों का यह सम्प्रदाय गोरखनाथ से आविर्भूत हुआ है।

(४) **पंथ का वर्तमान रूप**—टॉड ने अपनी पुस्तक (Travels in Western India) में आबू-पर्वत पर अवस्थित अघोरियों की एक टोली का वर्णन किया है। ये आदमियों को पकड़कर उनकी बलि देते हैं तथा उनके मांस को खाते हैं।

(५) **अघोरियों का अन्य हिन्दू-पंथों से सम्बन्ध**—आजकाल अघोर-पंथ, विशेषतः वह, जिसका केन्द्र बनारस है, किनाराम द्वारा प्रवर्तित माना जाता है। किनाराम गिरनार के एक साधु कालूराम के शिष्य थे। इस कारण अघोरपंथियों को किनारामी भी कहा जाता है। उनके धार्मिक विचार परमहंसों के विचार से मिलते-जुलते हैं। उनका मुख्य लक्ष्य ब्रह्म का चिन्तन तथा उसकी प्राप्ति है। साधक के लिए सुख-दुःख, शीत-उष्ण, भाव-अभाव कुछ अर्थ नहीं रखते। अतः अनेक साधक सर्वदा नंगे शरीर रहते हैं और प्रायः मौन रहा करते हैं। वे भीख नहीं माँगते और भक्तों द्वारा जो भी अन्न या खाद्य उन्हें पहुँचा दिया जाता है, उसीको वे प्रेम से ग्रहण कर लेते हैं। इसी पंथ की एक शाखा का नाम सरभंगी है। किन्तु, अघोरियों से सरभंगियों की विशेषता यह है कि इनका आचार अघोरियों के के समान घृणित नहीं है। सरभंगी और किनारामी दोनों ही मानव-मांस अथवा मल का भक्षण करते हैं, किन्तु केवल विरल अवसरों पर ही।

(६) **मानव-मांस तथा मल-भक्षण**—नर-बलि का सम्बन्ध मुख्यतः तांत्रिक-विधियों से माना जाता है, जिनमें काली, दुर्गा, चामुण्डा आदि रूपों में शक्ति की पूजा होती है। अनुमानतः तंत्राचार का आविर्भाव पूर्वी बंगाल अथवा आसाम में ५वीं शताब्दी (ईसवी) में हुआ। कालिकापुराण में नर-बलि का विधान है और उसी के स्थान में आजकल कबूतर, बकरे और कभी-कभी भैंसे बलि चढ़ाये जाते हैं। अब भी आसाम के कुछ अंचलों में विधिवत् नर-बलि की प्रथा प्रचलित है। अघोरियों द्वारा नरमांस-भक्षण उस कोटि का नहीं है, जिस कोटि का आसाम की कुछ जंगली जातियों का। प्राचीन जातियों में कहीं-कहीं यह पाया जाता है कि जो जादू-टोना करने अथवा औषधि-उपचार करनेवाले होते थे, वे स्वयं अग्राह्य तथा विषमय वस्तुओं का ग्रहण करते थे, जिसमें कि जनसामान्य उनमें अद्‌भुत शक्ति की विद्यमानता स्वीकार करे। पाश्चात्य विद्वान् Haddon ने प्राचीन टोरेस स्ट्रेट्स (Torres Straits) के जादूगर के सम्बन्ध में कहा है कि वे हर प्रकार के घृणित तथा विषैले पदार्थ खा सकते थे। वे प्रायः शव-मांस खाते थे और अपने भोजन के साथ शवों का रस मिलाते थे। इसका परिणाम यह होता था कि वे बावरे हो जाते थे और घर-परिवार से उनका सम्बन्ध टूट-सा जाता था। कॉड्रिङ्गटन (Codrington) के अनुसार मेलानीशिया (Melanesia) में नरमांस-भक्षण

द्वारा आध्यात्मिक उत्कर्ष प्राप्त किया जाता है तथा यह समझा जाता है कि जिस शव को खाया जाता है, उसका प्रेत खानेवाले के वश में हो जाता है। मैक्डोनाल्ड ने लिखा है कि यदि कोई प्रेत और डाइन के खाये हुए शव का भक्षण करे, तो वह स्वयं ही वैसी शक्ति-वाला हो जाता है। वाल्लू, निग्रो-जातियों में यह विश्वास है कि शवभक्षण से जादू-भरी शक्तियाँ प्राप्त होती हैं। उगाण्डा में इस प्रकार के शवभक्षकों को बासेजि (Basezi) कहा जाता है। आज भी मालाबार में 'ओडी' नाम के जादूगर इस उद्देश्य से शव-भक्षण करते हैं कि उनमें असाधारण शक्ति का समावेश हो।

(७) नरकपाल के पात्र—जिन नरमुण्डों के पात्रों में भोजन तथा जल का सेवन किया जाता है, उनमें असाधारण शक्ति मानी जाती है। उदाहरणतः, पूर्वी अफ्रिका की वाडो (Wadoe)-जाति में यह प्रथा है कि जब राजा का चुनाव होता है, तब किसी अपरिचित की हत्या की जाती है और निहत व्यक्ति की खोपड़ी से ही अभिषेक के समय जलपात्र का काम लिया जाता है। वागण्डा के राजा का नया पुरोहित भूतपूर्व पुरोहित की खोपड़ी से इस अभिप्राय से पान करता है कि मृत पुरोहित का प्रेत उसमें समाविष्ट हो जाय। जुलू-जाति में यह प्रथा है कि युद्ध-अभियान के अवसर पर सैनिकों पर दुश्मन की खोपड़ी को पात्र बनाकर उससे औषधि छिड़की जाती है। हिन्दुस्तान, अशण्टी (Ashanti), आस्ट्रेलिया, चीन, तिब्बत और निचले हिमालय में अनेक खोपड़ी के पात्र मिले हैं, जिनका उल्लेख बालफर (Balfour) ने किया है। कपालपात्र का उपयोग यूरोप में भी होता था। पुराने जर्मनों और केल्टों में इसका प्रचार था।

(८) दीक्षा—दीक्षा की विधि और मंत्र गोपनीय रखे जाते हैं। क्रूक (Crooke) ने जिस विधि की चर्चा की है, वह यह है कि पहले गुरु शंखध्वनि करते हैं और साथ-साथ वाद्य और गान होते हैं। उसके बाद वह एक नरकपाल में मूत्र करते हैं और उसे शिष्य के सिर पर गिराते हैं। इसके बाद दीक्षा लेनेवाले शिष्य के बाल मूड़ दिये जाते हैं। तब नव-दीक्षित शिष्य कुछ मद्यपान करता है और जहाँ-तहाँ, विशेषतः नीच जातियों से माँगी हुई भिक्षा से प्राप्त अन्न का भोजन करता है। फिर वह लाल या गेरुए रंग की लंगोट और दण्ड धारण करता है। इस दीक्षा के समय गुरु शिष्य के कान में मंत्र फूँकते हैं। कहीं-कहीं शव-भक्षण भी दीक्षा-विधि में सम्मिलित किया जाता है और दो हार—एक जंगली सूअर के दाँतों का और दूसरा अजगर की रीढ़ का—पहनाये जाते हैं। एक दूसरे वर्णन के अनुसार मांस और फूल मिले हुए मद्य के पाँच पात्र वेदी पर रखे जाते हैं। शिष्य की आँखों पर कपड़ा बाँध दिया जाता है और इस रूप में वह दो गुरुओं के सामने लाया जाता है, जो दीप जलाते हैं। इसके बाद सभी को दीक्षापात्र से पान कराया जाता है। अब शिष्य की आँखें खोल दी जाती हैं और उसे आदेश दिया जाता है कि वह दिव्य ज्योति को देखने की चेष्टा करे। गुरुमंत्र का कानों में फूँकना जारी रहता है। एक तीसरे वर्णन के अनुसार बनारस में किनाराम के समाधि-स्थल पर दीक्षा होती है। वहाँ भंग और मद्य के पात्र रखे जाते हैं। जो अपनी जाति की रक्षा चाहते हैं, वे केवल भंग पीते हैं, किन्तु जो समग्र दीक्षा के अभिलाषी हैं, वे भंग और मद्य दोनों पीते हैं। इसके बाद अग्नि में फल का होम किया

जाता है। यह पवित्र अग्नि किनाराम के समय से प्रज्वलित चलती आ रही है। एक पशु, प्रायः बकरे, की बलि भी उस समय दी जाती है। धारणा यह है कि जिसकी बलि दी जाती है, वह फिर से जी उठता है और समाधि पर रखे हुए पात्र उठकर स्वयं दीक्षणीय शिष्यों के ओठों तक पहुँच जाते हैं। अन्तिम विधि यह होती है कि शिष्य के बाल जो पहले से ही मूत्र में भिंगोये रहते हैं, मूड़े जाते हैं और तब उपस्थित साधकों और भक्तों को 'भण्डारा' दिया जाता है। कहा जाता है कि पूर्ण दीक्षा तभी सम्पन्न होती है जब शिष्य १२ वर्ष तक की परीक्ष्यमाण अवधि सफलतापूर्वक व्यतीत कर लेता है।

(६) **वस्त्र और वेश**—अघोरी की मुख्य विशेषता यह है कि वह अपने शरीर पर चिता का भस्म रमाये रहता है। वह त्रिशूल की छाप धारण करता है, जो ब्रह्मा, विष्णु और शिव के एकत्व का प्रतीक है। वह रुद्राक्ष की, सर्प की हड्डियों की और बनैले सूअर के दाँतों की माला धारण करता है और हाथ में खोपड़ी लिये रहता है।

परिशिष्ट (ख)

(१) **योगेश्वराचार्य**—श्रीयोगेश्वराचार्य एक ऐसे प्रमुख सरभंग-संत थे, जिनकी चर्चा मुख्य ग्रंथ में केवल नाम मात्र की हुई है। मुख्य ग्रंथ के प्रणयन के समय योगेश्वराचार्य के केवल एक ग्रंथ का थोड़ा सा अंश सुलभ हो सका था; क्योंकि अबतक केवल वही अंश 'श्रीस्वरूपप्रकाश' (प्रथम विश्राम) के नाम से मुद्रित हुआ है। संग्रहकर्त्ता हैं श्रीयोगेश्वराचार्य के एक शिष्य श्रीबैजूदासदेव। प्रकाशक हैं श्रीराधाशरणप्रसाद श्रीवास्तव, स्वरूप-कार्यकारिणी समिति, ग्राम—बरजी, पो० महवल (मुजफ्फरपुर)। पीछे चलकर श्रीराजेन्द्रदेव के सौजन्य से न केवल 'स्वरूपप्रकाश' के शेष अंश की हस्तलिखित प्रति प्राप्त हुई, अपितु 'स्वरूपगीता' की भी। स्वरूपगीता के प्रारंभ में बाबा बैजूदास देव ने जो परिचायात्मक पद दिये हैं, उनमें योगेश्वराचार्य की विद्वत्ता और साधना का गौरवपूर्ण उल्लेख है। उन्हें 'आजन्म ब्रह्मचारी विविध गुणनिधि-ज्ञानविज्ञानकारी' कहा गया है और श्रौत, स्मार्त तथा वेदोपनिषदों के ज्ञान से सम्पन्न बताया गया है। वे बड़े 'नेम आचार' से रहते थे' 'षट् मुद्रा' साधन करते थे। उन्हें अष्टांग योग तथा 'नेती', 'बस्ती', 'धौती', 'नेउली', 'त्राटक', 'गजकरनी' आदि सभी क्रियाओं का अभ्यास था। योगेश्वराचार्य ने अपना संक्षिप्त जीवनवृत्त श्रीबैजूदास को सुनाया। उसका सारांश यह है—चम्पारन (थाना ढाका, परगना मेहसी, डाकखाना पताही) रुपौलिया नामक गाँव है वहीं उनके पिता श्रीनकछेद पाण्डेय रहते थे। वे पाराशर गोत्र के ब्राह्मण थे। एक पुत्र के बाद और सन्तान न होने के कारण वे दुःखी रहते थे। इसी बीच श्रीभिनकराम परमहंस ने उन्हें दर्शन दिया और आशीर्वाद दिया कि उन्हें दो पुत्र होंगे। कालक्रम से सन् १२८८ फसली में, पहले जो पुत्र हुआ, उसका नाम 'साधु' पड़ा। इसके चार वर्ष बाद सन् १२६२ फसली (लगभग १८८४ई०) में जिस पुत्र का जन्म हुआ, उसीका

नाम पीछे चलकर योगेश्वराचार्य हुआ। उनका विवाह बाल्यावस्था में ही हो गया था और तेरह वर्ष की उम्र से ही वे गृहस्थ-जीवन व्यतीत करने लग गये थे। किन्तु पत्नी छह वर्ष के बाद ही गतायु हो गई। फिर दूसरा विवाह हुआ और गृहस्थ-जीवन भी चला। किन्तु 'उमगेउ हृदय विचार, वृथा जन्म हरिभजन बिनु'। बहुत दिनों तक सगुण और निर्गुण के बीच अनिश्चय की भावना रही; किन्तु अन्ततः निर्गुण-भावना की ही विजय हुई। एज दिन आधी रात को विरक्त होकर उन्होंने घर छोड़ने का निश्चय किया। इधर विरक्ति की प्रबल भावना, उधर परित्यक्त माता-पिता और पत्नी आदि के प्रति ममता।

अहि छुछुन्दर की दशा, उगिलत बनै न खात।
योगेश्वर दुख को कहि सकै, रहत बनै न जात॥

अन्तिम विजय विराग की ही हुई। उनके गुरु श्रीअलखानन्द थे। स्वामी योगेश्वराचार्य सन् १३५० फसली में गोलोकवासी हुए।

उन्होंने अपनी कविताओं में 'दादुल धुनियाँ', 'जोलहा कबीर', 'रविदास चमार', 'दरिया दर्जी', 'नाभा भंगी', 'सदन कसाई', 'गोरख मच्छिन्द', भरथरी', 'नान्हक', 'सुन्दर', 'पलटू', 'मलूक', 'धरणीदास' आदि की श्रद्धापूर्वक चर्चा की है। इनके अतिरिक्त किनाराम, भिनकराम, छत्तरबाबा, बालखण्डीदास, मनसाराम, कर्त्ताराम, धवलराम, अलखानन्द, डिहूराम आदि प्रसिद्ध सरभंग संतों के अतिरिक्त अनेकानेक ऐसे संतों के भी नाम दिये हैं जिनके संबंध में परिचयात्मक सूचनाएँ प्राप्त नहीं हुई हैं—यथा धर्मदास, सनेहीदास, मँगनीदास, माधवदास, रामदास, गिरिधरराम, मन्नूराम, चेचनराम, मंगरूराम, अवधराम, भुआलूराम, बैजलाल, हरिहर, हरनाम, रीता, सुधाकर आदि। शिष्यों में बीरभद्र, भवई, केदार ब्राह्मण, गोरख भूमिहार, सूरज, लालबहादुर, लंगट, भगवान, रघुवर, युगल, तवकल, मंगल, लालदास, विष्णुदास, नथुनी, नत्थू, बौध, रघुनन्दन, अविलाख, बेदामी आदि का उल्लेख है। श्री योगेश्वराचार्य ने अनेक कविताएँ लिखी हैं—यथा, स्वरूपगीता, स्वरूपप्रकाश, विज्ञानसार, भूकम्प-रहस्य, भवानी-संवाद, विष्णु-स्तुति आदि। ये प्रायः हस्तलिखित हैं। इन हस्तलिखित संकलनों में से चुनकर, स्थाली-पुलाकन्याय से, कुछ अंश विषयानुसार यहाँ उद्धृत किये जा रहे हैं—

अद्वैत, निर्गुण, ब्रह्म, आत्मा-जीव

उपमा राम सतीपति भाव सो, तत्त्वमसी कहि तोहि चेताई।
द्रष्टा नहिं दृष्य न दर्श तुम्हें, सोइ नित्य असी पद तोहि लखाई।
जेहि महँ भाव अभाव ना, नहीं ग्रहण नहिं त्याग।
सत्य सदा सो एक रस, क्या सोचहुँ केहि लाग॥

—स्वरूपगीता,[१] पद सं० ६० तथा बाद का दोहा

कोउ मूरति धातु बनाकर, पूजत पत्थर धूल बनाते।
आपु कहैं हम जीव अहैं, निर्जीव को पूजत भाव लगाते।

—स्वरूपगीता, पद-सं० ६८

गुरु ज्ञान दिये जिहि भाँति हमें, संक्षेपहिं सो तोहि देउ सुनाई।
आतम ब्रह्म अलेख अगोचर और अखंड अनादि चेताई।
अद्वय सो परिपूर्ण सदा, कछु रूप न रेख सदा सब ठाईं।
जीव वो ब्रह्म अभेद लखाइके तत्वमसी प्रभु मोहि लखाई।

—स्वरूपगीता, पद-सं० १२२

घटाकाश घट में रहे, माया महँ जिमि जीव।
घट मठ नशे अकाश हैं, माया नष्टे पीव।

—स्वरूपगीता, पद-सं० १३३

सुनहु तात अद्वैत विचारा, अगुण सगुण दोनों ते न्यारा।
नाम रूप दोनों जब जाने, लखे सरूप अभेद बखाने।

—स्वरूपगीता, पृ० ६६

छीलत पोट पेआज के, शेष रहे कछु नाहिं।
नेदं सूही शून्य जो, आतम तहाँ लखाहिं।

—स्वरूपगीता, पद-सं० २०८

चली पूतली लवण की, थाह समुद्र समाय।
रूप स्वाद जलधी मिले, केहि विधि आत्म बताय॥

—स्वरूपगीता, पद-सं० २१२

एक कहौं तो है नहीं, कहौं द्वैत ते न्यार।
अकथनीय सो सत्य है, काह कहौं परचार॥

—स्वरूपगीता, पद-सं० २१८

आतम ब्रह्म सनातन, अकथ अखण्ड अनूप।
ताही ते परगट भया, जीव मन दो भूप॥
मन की नारि प्रवृति भई, निवृति जीव को जान।
कामपुत्र मन को भया, विवेक जीव पहिचान॥
काम नारि की नाम रति, विवेक सुमति नारि।
अपने-अपने पति को, होति मै परम पियारि॥
मनोराज नटवर करि, रचा सृष्टि बहु भाँत।
स्वर्ग नर्क सुर असुरहीं, पुण्य पाप दिनरात॥
मेघ नक्षत्र ग्रह पल घड़ी, तिथी मास पक्ष वर्ष।
नारी पुरुष दुख-सुख रचा, कुरूप रूप शोक हर्ष॥
लक्ष चौरासी योनि रची, तीन लोक विस्तार।
जीव कमार कर्म महँ, आपन स्वरूप बिसार॥

—स्वरूपगीता, दोहा ३२२-२७

देख्यो वीर विवेक, पिता बध्य भये फन्द में।
करा करन एक टेक, बुद्धि सचिव सो कहत भये॥

—स्वरूपगीता, सोरठा ४४

मम पितु ब्रह्म को अंश है, जैसे छाया देह।
ताको स्ववस मों करि, सत्य चहे मिथ्या गेह॥

—स्वरूपगीता, दो० ३२८

जब ते जीव सृष्टि सत माना, भूले स्वरूप माया लिपटाना।
तब ते पुण्य पाप दिन राती, संसृति कष्ट भोग बहुभाँती।
कभी सुरासुर नर तनु पाई, कभी पशू पक्षी महँ जाई।
लख चौरासी योनि विस्तारा, भ्रमत कर्मवश पिता-हमारा।
पुनि पुनि स्वर्ग नर्क संसारा, पुनरावृति होत जीव बेचारा।
सदा कलेश लेश सुख नाहीं, दीन मलीन हीन नित ताहीं।
सहत दुसह दुख रहत उदासी, योनि योनि भरमत अविनाशी।
तासू दुःख दुखी चित मेरा, कीन्ही याद तभी मैं तेरा।

—स्वरूपगीता, पृ० १५१ दोहा ३२८ के बाद की चौपाइयाँ

जिनका निज बोध स्वरूप भये, तिनके भ्रम द्वैतवाद मिटाई।
आपनरूप मय जग देखत, जैसे पोर पोर ऊख मिठाई।
एक अरु दोय न भास सकै कछु, काहु से द्वेष न काहु मिताई।
योगेश्वर दास समान अकाश के, व्यापक मिल कही नहिं जाई।

—स्वरूपगीता, पद २००

व्यापक कहो तो काहु में न लिप्त है, न्यार कहो सब माँह देखावे।
रूप कहो तो अरूप हिं भासे, निरूप कहो तब विश्व लखावे।
आगे का आगे, पीछे का पीछे पुनि, नीचे का नीच ऊँचा ऊँच पावे।
योगेश्वरदास अचम्भा बड़ो मैं, आपन गौर में आपन आवे।

—स्वरूपगीता, पद २०१

जैसे एक दुई गिनी, सौ तक चली जात,
सौ का ऊपर फिर 'एक' चलि आत है।
सहस्र में एक होत, लाखहु में एक होत,
करोड़ में एक होत, अर्ब एक पात हैं।
खरब में एक होत, नीलहु में एक होत,
पद्म में एक महाशंख एक गात हैं।
योगेश्वर तैसे ही वेद, कवि बहु भाष किये,
कथत ही कथत अकथ होइ जात हैं।

—स्वरूपगीता, पृ० १-१, छन्द २४

जैसे रहा तस है, रहेगा, हुआ हुए ना होय।
योगेश्वर रवि रौद सम, वस्तु एक नाम दोय।

—स्वरूपगीता, पृ० १६५, दोहा ४१४

बनी पूतली बसन की, कल्पित रूप अनेक।
आदि मध्य रु अन्त में, रहा वसनमय एक॥
तैसे पुतली ब्रह्म की, देखौ सुनौ सो सर्व।
भूषण यथा सुवर्ण की, सतत काल रह दर्व॥

—स्वरूपगीता, पृ० १६६, दो० ४२६-२७

अलेख कहो तब लेख में आवत,
लेख कहो तो अलेख में गौना।
ताहि ते ऐसे ही सूझ पड़े मोहि,
भाषत हौं मैं लिख के तौना।
शून्य के शून्य हैं, थूल के थूल हैं,
नीर के नीर, पवन के पौना।
वह्नि के वह्नि, ग्रह के ग्रह,
अजय के अजय, लवना के हैं लौना॥
नारी के नारी, पति के पति अस
देखत हैं मैं गह मुख मौना।
रूप सबै सब रूप में ते,
योगेश्वर भाप सकै विधि कौना।

—स्वरूपगीता, पद-सं २०३

सो बन्ध निर्बन्ध हर्ष न, शोक न,
पुण्य न पाप न दूर लगै ना।
सालोक, सानीफ सायुज, सारूप
मुक्ति नहीं तेहि भ्रम के बैना।
नर्क अठाइस ताहि के गावत
आवत जात न देखत नैना।
ढूढ़त जाहि थके सब के मत
कैसे बताऊँ योगेश्वर सैना॥

—स्वरूपगीता, पद-सं० २०४

एक तो दूसर के अर्थ सोई, पंचभौतिक शरीर से होई।
तेरा स्वरूप विलक्षण अहई, दूसर अर्थ विरुद्ध हो कहई।
अथवा जड़ तम रूप शरीरा, आदित्यवर्ण स्वरूप गंभीरा।
तमसें परे स्वरूप हैं धारी, ऐसी धारणा तू परचारी।
मैं हू आतम अरु देहादिक, है अनातम कस प्रेमादिक।

तीसरी अर्थ सुनौ मन लाई, होई अभाव 'न-मैं' जग माई।
जब जानो ऐसे के लेखा, तब कहु इच्छा काको देखा।

—स्वरूपगीता, पृ० २०३ (दोहा ४८७ के बाद की चौपाइयाँ)

योग, दिव्यदृष्टि, अमरपुर

चलहु निज दरबार साधो ॥टेक॥
अस्नान निरंतर बैठा, आसन पदम सम्हार।
उनमुनि ध्यान नासिका अग्रे, तब गढ़ भीतर पसार ॥१॥
छव चक्र षोडशो खाई, दशौं द्वार थानेदार।
चान्द सरासम करि सुखमन में, तब खोलो त्रिकुटी किनार ॥२॥
गंगा यमुना सरस्वति संगम है, मजन करो होइ पार।
रंग रंग के वस्तु निरेखो, लीला अगम अपार ॥३॥
वृक्ष एक दृष्टि में आए, श्वेत चक्र फहराए।
ताहि चक्र पै नागिन दरसै, को छवि वरणौं पार ॥४॥
अग्नि बिम्ब चक्र एक दरसे, मेरु दंड तेहि ठार।
कछु अमृत वहि सर्प चाखे, कछु होत जरि छार ॥५॥
ताहि दंड के फेरि करिको, उर्द्ध के कमल उठाए।
अमृत आवत रोक जिह्वा पर, तब जीव लै लै उबार ॥६॥
तासो आगे अष्टांगी बासा, शून्य शिखर रखवार।
त्रिगुणी फाँस लिए कर डोले, विनय से खोलत किवार ॥७॥
शून्य शिखर का गुफा जोई, देख निरंजन पसार।
शून्य शहर में चौमुख मंदिर, तामें जोत अपार ॥८॥
ता जग मानसरोवर जानो, बिनु जल पवन हिलोर।
बिनु अकाश घेरत बादल, बिनु रवि शशि के अंजोर ॥९॥
ठन ठन ठन ठन ठनका ठनके, घहरि घहरि घहराये।
दम दम दम दम दामिनि दमके, लौके बिजुली उजियार ॥१०॥
हीरा रतन जवाहिर बरसे, झीन मोतियाँ फुहियाये।
चन्द्रबदन सुखमनि का ऊपर, अनहद शोर झँझकार ॥११॥
बाजे ताल मृदंग बाँसुरी, शंख बेन सहनाए।
मेरी झाँझ, कलाल, सारंगी, नरमी तान सितार ॥१२॥
सोई शोर झंकोर उठत है को कवि वर्ण निहार।
ब्रह्मा, विष्णु महेश शेष सुर वर्णत शारद हार ॥१३॥
यह निरंजन माया देखि के, जो जो रहत दम्भाये।
सो सो जन जब भूलि परले, पाए न अपनी पार ॥१४॥

या जग गुप्त कछु कै राखो, जाने सोई जन जान।
जोगेश्वर आपे आप में मिले, तब छूटे पसार ॥१५॥

—स्वरूपप्रकाश, प० सं० ६१

बड़ा यत्न से पिया के पाई रे ॥टेक॥
प्रथमें मूल बन्ध के बान्हो अण्ड गुदा मध्य सिमटाई।
मेरुदंड सीधा कै राखो, नागिन जाइ जगाई रे ॥१॥
तब उडियान बन्ध को किन्हा, नाभि पीठस्त लगाई।
पच्छिम दिशा के खिड़की खुला, बंक नाल चढ़ि धाई रे ॥२॥
बन्ध जालन्धर कस के सान्धा, कंठ लिये सिमटाई।
उलटी नयन लगे त्रिकुटी में, अगम ज्योति दर्शाई रे ॥३॥
महाखेचरी मुद्रा साधा, जिह्वातल सूत कटाई।
खैंची श्वास उलटि जिह्वा को, ब्रह्मरन्ध्र समाई रे ॥४॥
थर-थर काँप कलेजा उठे, तब पीछे सुख पाई।
अमृत स्रवी मुखमें मीठा, अनहद नाद सुनाई रे ॥५॥
सोहं सोहं अजपा जहँ उठे, अजब रूप दर्शाई।
योगेश्वर जीव मिले अभिगत में, आपे आप हो जाई रे ॥६॥

—स्वरूपप्रकाश, प० ११२

काया पुर खेती कैलो, बोअलों कुसुमिया। हे ननदिया मेरो।
गगन में फुलवा फुलाय, हे ननदिया मेरो ॥१॥
दस पाँच सखिया मिलि, फुलवा लोढ़े चलली, हे ननदिया मेरो।
नैना चंगेलिया बनाये, हे ननदिया मेरो ॥२॥
रंगलो में पिया के पोशाक, हे ननदिया मेरो।
योगेश्वर पिया पहिरी, सोअलो पलंगिया, हे ननदिया मेरो।
देखि देखि नैना जुड़ाए, हे ननदिया मेरो ॥३॥

—स्वरूपप्रकाश, प० १३८

सिद्धासन साधि निरन्तर बैठि के, योग क्रिया कतृ त्वहिं ठानैं।
योगेश्वर चित्तवृति के निरोध ते, तत्त्व विवेक लहैं पहचानैं॥

—स्वरूपगीता, पद-सं० ४१

लघु तात सिद्धासन आसन को, ऐंड़ी निज अण्ड ते नीच जनावे।
दच्छिन ऐंड़ी को इन्द्री के मूल को दाबि मेरु दंड सीधी बनावे।
दोउ हस्तन ते हैं अनेक क्रिया, दोउ नेत्रहिं नासिका अग्र लगावे।
सिद्धासन पै करि कर्म अनेक, योगेश्वर मुद्रहिं योग लगावे।

—स्वरूपगीता, पद ४२

नेती वस्ती औरु धौती करि, नेवली है त्रातक औ गजकरणी।
षट् कर्म यही योगीश करैं, पुनि सांख्य न वेद पुराणन वरणी।

—स्व० गी०, प० ४३

सिख देई मुझे मुद्रा दसहीं, जेहि भाँति दया गुरुदेव बताई।
तेहि नाम बखानि महामुद्रे बूझे, महाबन्ध बोवेध्य जनाई।
खेचरी उड़ियान जालन्धर जे मूल बन्ध कही बज्रोली चेताई।
योगेश्वर जो विफलाकरणी पुनि शक्तिहुँ चालनी देत लखाई।

—स्व० गी०, प० ४४

पल चंचल ते नित झाँपि खुले, तेहि रोक सदा टक एक लगावै।
नीर झड़ै पल थीर रहै, रंग बैंगनी ते चिनगी झड़ि आवै।
लड़ मोतिन के अनहोनी झड़े, खद्योत समान सखे चमकावे।
बिजुली चमके लखु चाहु दिशा, दमके जस दामिनि शब्द सुनावे।
ज्योति मसाल समान बरे, अरु मोर के पंख अहि एक आवै।
वामाङ्ग शशि रवि दक्षिण भाग, योगेश्वर बिम्ब उदय दरसावै।

—स्व० गी०, प० ७४

ज्योति दीपक टेम सम, भृकुटि मध्य दरसाये।
दरस निरंजन हेतु तब, खेचरी बन्ध्य लगाये ॥

—स्व० गी०, दोहा ५८

दोउ कर्ण के छिद्र अंगुष्ठ सो रोकिके, तर्जनि ते दोउ नेत्र दबावे।
मध्यमा दोउ बन्द करें निज घ्राण, अनामिका ओष्ट के उर्द्ध जतावे।
नीचली ओष्ट के कनिष्ट दबा, स्वर दक्षिण रोकि के वाम चढ़ावे।
उलटि निज नयन लखे त्रिकुटी सो, योगेश्वर कुम्भक को ठहरावे।

स्व० गी०, प० ७५

एक निर्गुण राग नवीन सुनाइ के, योग क्रिया गहि साधहुँ जाई।
तोहि जानि के नीच न शिष्य किये, तेहि जाइ सखे निज शिष्य बनाई।
बहु शिष्य करो निज ध्यान प्रकाशि के, मोरु निशा तेहिं देहुँ बताई।
योगेश्वर देश में ज्ञान विराग, योग सिखावहु शिष्य चेताई॥

—स्व० गी०, प० ८६

कर जोरि कहैं सुनिये मम नाथ, न जानत निर्गुण राग नई।
और कवि जो बखानि गये, कछु गावत ना नई शक्ति भई॥

—स्व० गी०, प० ८७

बिनु दह पुरइन पत्र पसरै, फूल मूल बिनु फूलहीं।
बिनु बारि लहर तिर्बेनी उठत, अर्द्ध उर्द्ध न सूझहीं॥
कमल बास सुगन्ध चहुँ दिशि, भवर तँहवाँ गुंजहीं।
निरखी तहाँ मान सरवर, हंस मोती चुंगहीं ॥

एक कल्प तरु सोई दृष्टि आवत, देव बहुतेहि सेवहीं।
बिनु अधार पसार सब, फहरात ध्वजा श्वेतहीं॥
बिनु जाप अजपा मन्त्र उठत, योगी जन तेहि साँचहीं।
योगेश्वर लखि दरबार प्रीतम, सुरती तहं नाचहीं॥
—स्व० गी०, छंद १

जहाँ पाप नहिं पुण्य हैं, बन्ध मोच्छ नहिं होय।
नहिं दुख-सुख आवागमन, चित्र बाट लखु सोय॥
सर्व रूप सब ते जरे, अनुपम कहौं बखान।
निज-निज मति सब कवि कहैं, कहौं सत्य प्रमान॥
—स्व० गी०, पृ० १४८

माया, मन की प्रबलता, लोभ, मोहादि

माया हिलावनहार हिंडोला झूल रहे। टेक।
शुभाशुभ कर्म के पहरी, लोभ मोह के खम्भ।
तापर माया आप चढ़ा है, शून्य भये स्थम्भ॥१॥
नव, षट, चार, अठारह, चौदह, माया शून्य न लाग।
सहस्र अठासी मुनिवर झूले, गावत विरहा राग॥२॥
हिन्दु, यहूदी, इस्लाम, ईसाई, चार धर्म के धाम।
पक्षा-पक्ष के झूला झूले, झूठा घर घर नाम॥३॥
कल्प अनन्त कोटि से झूले, थीर कभी ना भेल।
एकता रहे पुरुष योगेश्वर, देखत रहा अकेल॥४॥
—स्व० प्र०, पृ० ६०

काया गढ़ बोले कोतवाल, जागु जन ज्ञानी ए साधो॥टेक॥
सद्गुरु शब्द कोतवाल, शहर बोल बैठल ए साधो।
तीस चोर डकवाल, कायागढ़ पैठल ए साधो॥१॥
मुसिहैं थाती जब धन, रोइहैं सिर धुन कर ए साधो।
यमु को सह ना दरेर, आपन धन खोकर ए साधो॥२॥
—स्व० प्र०, पृ० ६६

नृतशाला छोड़ि दीन्ह मोसाफिर, रूस चले॥टेक॥
विषय सब सभा में बैठे, सभापति अहंकार।
बुद्धि-वेश्या नृत करत है, इन्द्रि बजावन हार॥१॥
आतम साक्षी दीप प्रकाशें, नृत्य शोभा को पाए।
आयु रात्रि व्यतीत भयो हैं, रहत उदासी छाए॥२॥
देश-देश में भर्मत फिरे, चौरासी मँह जाए।
यही नृत्य होता देखे सगरे, नैन कहीं ना पाए॥३॥

योगेश्वर दास मुसाफिर सुनो, जो सुख चाहत भाए।
जाको सदा शोभा सब पाये, उलटा जाहु समाए ॥४॥

—स्व० प्र०, पद १०६

सुनु मोरा सखिया, प्रेम दुलारी हो रामा !
आ किया हो रामा !
बढ़िया सम्हरिया अब कहुँ, पीसहुँ रे की ॥१॥
कथी के बनैबो रामा, पाला जोड़ी जंतवाँ हो रामा !
आ किया हो रामा !
कथिये के किलवा मैं निर्मायब रे की ॥२॥
ज्ञान विचार के पाला जोड़ी जँतवाँ हो रामा !
आ किया हो रामा !
किलवा धीरज धरि रोपब रे की ॥३॥
कथी के चँगोलिया में, किये धरि गेहुँआ हो रामा।
आ किया हो रामा !
कितने - कितने फिंकवा डालब रे की ॥४॥
शब्द चँगोलिया में, मर्म धरि गेहुँआ हो रामा ॥
आ किया हो रामा !
थोड़हीं - थोड़हीं फिंकवा डालहुँ रे की ॥५॥
पाँच पचीस मिलि, तासो सहेलिया हो रामा।
आ किया हो रामा !
रगरि - रगरि गेहुँआ पीसब रे की ॥६॥
हरखि निरखि के आँटवा उठायेब हो रामा।
आ किया हो रामा !
देसवा सम्हारि या साँचि राखब रे की ॥७॥
फणि का मणि सम, सम्हरि यतनवाँ हो रामा।
आ किया हो रामा !
उहवाँ न पैंचा उधारहुँ रे की ॥८॥
योगेश्वर दास रहे गवले निर्गुणिया हो रामा।
आ किया हो रामा !
अपने संगतिया संगवा साथी रे की ॥९॥

- स्व० प्र०, पद० १३२

माया से उत्पन्न होत, माया ही के भखि लेत,
आपहि स्वतन्त्र बनी, कभी न बन्हात हैं ॥
शुभाशुभ सुख - दुख करत ही करत न,
स्वप्न समपत्ति बनी कभी न नसात हैं ॥

योगेश्वर तैसहिं निज स्वरूप वास्तव लखे,
सो सो सब माया नासि आप रहि जात हैं ॥

—स्व० प्र०, मनहर छंद २७, पृ० १६६

अज्ञानी शिशु रूप है, ज्ञानी तरुण सम जान ।
डराइ बुलावत निज निकट, माया बुई समान ॥

—स्व० प्र०, दो० ४१५, पृ० १६७

जैसे गगन महि मध्य में, घटा करै रवि ओट ।
तैसे जीव रु पीव बिच, मैं करूँ माया मोह ॥

—स्व० गी०, दो० ३६४

नागिन शिशु उत्पन्न करे, राखत हैं संग माँहि ।
जे तन में स्पर्श करे, तेहि शिशु नागिन खाहिं ॥
माया नागिन एक हैं, ताते रहिये दूर ।
योगेश्वर कहत विचारि के, रहना बुरा हजूर ॥

—स्व० गी०, दो० ४०६–४०७, पृ० १६५

दस कोतवाल राह में राखे, सौदागर धे खाई ।
कपट, प्रेम, प्रीत से मोहे, सब अपनी ठहराई ।
जात समय सूद कौन बतावे, मूढ़ों देत गँवाई ।
बड़े-बड़े ज्ञानिन के मोहे, बिरले माल बचाई ।
योगेश्वर दास मन ठग को बान्हो सोऽहं स्वरूप लगाई ।

स्व० गी०, प० ४

मनहिं रचे ब्रह्माण्ड, मनहि द्विविधा ठहरावे ।
मनहिं दिलावे दण्ड, जीव कहि मनहिं नचावे ॥
मनहिं मोक्षपद देत, विषय महं नाहि सतावे ।
मनहि विष्णु पद लेत, मनहिं संग सबहिं नसावे ॥

—स्व० गी०, प० १२२, कुण्डलिया २

सृष्टि-पुनर्जन्म कर्म-मोक्ष

निज रूप न पाँच पचीस कहैं,
गुण तीनहुँ नाम न बुद्धि रहैं ।
चित्तादि नहीं हंकार तहाँ,
नहिं प्राण व कोष विचार कहे ।

—स्व० गी०, पद ५२

पंचहिं तत्त्व पचीस लिये,
गुण तीनो प्रकृति ने थूल बनाई ।

अड़तालीस ते स्थूल बने,
होइ सूक्ष्म जे सोउ देउ लखाई।

—स्व० गी०, पद ५५

अकाश के राजस भाग ते वाक्
रु पानि सो वायु के राजस माने।
तेज के राजस वायु बने, पुनि
नीर के राजस पाद बखाने।
पृथ्वि के राजस अंश उपस्थ,
सो पाँचहि कर्म इन्द्रिय पहिचाने।
योगेश्वर राजस ते इहि भाँति,
लगे नित्त कर्म सनातन जाने।
पाँच के तामस अंश ते, महाभूत फैलाव।
अहंकार ते तीन गुण, प्रकृति पंचदस पाव॥

—स्व० गी०, पद ५८

ब्रह्मते पुरुष प्रकृतिहि जायो। तेहि ते महातत्त्व कहि गायो॥
पुनि प्रवृति ते होइ हंकारा। अहंकार गुण तीन पसारा॥
तमहु ते महभूत विषय पसारे। रजहुँ ते इन्द्रि दस होइ बिखारे॥
मखादि देव सत्य ते होई। मन ते लखहु चराचर सोई॥
ये जग इन्द्रजाल सम जाने। नट कृत कपट नटहि पहिचाने॥

—स्व० गी०, दो० २२५ के बाद की चौपाइयाँ, पृ० १०६

आदि अन्त में सृष्टि नहीं, मध्य में भयउ पसार।
योगेश्वर ऐसा विचार के, सिर पग रखा उघार॥

—स्व० गी०, दो० २४६, पृ० ११४

नहीं सृष्टि तब रहा कहाँ, न तब कहाँ समाय।
यह शंका गुरु होत है, मो प्रति कहिए बुझाय॥
नहीं रहा तो ज्ञान महँ, अज्ञान माहिं दरसात।
नहीं रही पुनि जानहु, ज्ञानहि माँह समात॥

—स्व० गी०, दो० २५०-२५१, पृ० ११५

ज्ञान जाग्रती दिवस है, तासो सृष्टि न भान।
अज्ञान रूप निसि नींद में, सृष्टि स्वप्न समान॥
रवि का रात्रि न दिवस है, आत्मबन्ध नहिं मोक्ष।
वासो भिन्न कछु है नहीं, वस्तु परोक्ष अप्रोक्ष॥

—स्व० गी०, पृ० ११६

कोउ कहैं यह सृष्टि स्वभाव ते, कोउ तो कर्महिं ते दर्शाये।
कोउ कहैं यह सृष्टि सनातन, मायहिं ते कहि कोउ बताये॥
कोउ कहैं जग ईश्वर सिर्जत, कोउक ब्रह्महिं ते कहि गाये।
हीन विचार करैं सबहीं, सो योगेश्वर वास्तव रूप विहाये॥

—स्व० गी०, पद ५१

राम नाम चित लाइ भजो रे मन गै, अवसर नहिं आई।
पाके फल छूटे डाढ़िन से, लौटि डाढ़ि नहिं जाई।
तैसे तन यह बीति जात जब, फिर न मनुज तन पाई॥१॥

—स्व० प्र०, पद ३

पावहि आतम तत्त्व जे, आवागमन नसाय।
तील तेल घृत चीर तजि, पुनि नहिं सोउ कहाय॥

—स्व० गी०, दो० ८२

आतम तत्त्व जाने बिना, कर्म शुभाशुभ कोय।
करहिं ताहि फल का मिले, पाइ कवन गति सोय॥

—स्व० गी०, पद ९५

हरिते छत्तीस प्रथम हम, अब तिर्सठ मोहि जान।
सतगुरु की पाई दया, योगेश्वर ब्रह्म समान॥

—स्व० गी०, पद १११

पुण्य पाप निसिवासर करही, सुख-दुख पार कबहिं नहिं तरहीं।
जब लगि स्वरूप ज्ञान नहिं होई, जरा मरण नहिं छूटत कोई।
सो सब जानहु आपन करनी, डूब पड़े चढ़ि फूटल तरनी।
गरल सुधा दोउ हाट बिकाई, कीनै मुसाफिर जो मन भाई।
तामें दोस बनिक कह पावै, किननवाल निर्दोष कहावै।
तैसेहिं मैं सृष्टि-उपिजयऊँ, सत्यासत्य कहन नहिं कहेऊँ।
आपहिं जीव सत्य मानि के, पावहिं कष्ट अनेक।
मिथ्या मम दोष देखिके, दल लै चढ़ा विवेक।

—स्व० गी०, पृ० १५४

ज्ञान-अनुभूति-विवेक-भक्ति-माधुर्य

भक्तियोग विज्ञान जे, साधन अमित प्रकार।
ज्ञान गम्य वास्तविक जे, देहौं सत्य विचार॥

—स्व० गी०, दो० १२, पृ० १५

भावहिं ते भक्ती लखै, योग विराग रु ज्ञान।
ज्ञानान्मुक्ति सत्य है, कह संत सुजान॥

—स्व० गी०, दो० १३, पृ० १५

इहि भाँति अनेकन पंथन में, अन्याय अनेकन थापि भुलाते।
योगेश्वर अनुभव गम्य बिना, निज रूप भुलायउ अटपट बाते।

—स्व० गी०, पद-सं० १०१, पृ० ५५

डोर गाँठ माला छिगे, ग्रन्थि वासना मान।
ग्रन्थि खुले दाना भुले, सूझहिं केवल जान।।
सूझहिं केवल जान, गये दाना छितराये।
हानि लाभ ना लगे, भाँति केहिं तोहिं चेताये।।
गाठहु खोलि लखाय, वहाँ निजु आतम चिन्ता।

—स्व० गी०, कुंडलिया १, पृ० ६२

जहाँ अश मिलै तेहि तश बनावत, देखि दया गुरु की हरखाई।
योगेश्वर ब्रह्म विवेक निरंतर, दर्पण ज्यों मुखड़ा दरसाई।।

—स्व० गी०, पद-सं० १४६

सुनत सुनत सुने में आवत,
देखत देखत देखात है जोई।
भाषत भाषत भाषे जहाँ लग
भाषे में आवत है नहिं सोई।।
मन का गम में जँहवा तक आवत
बुद्धि विचार सके से न होई।
योगेश्वर दास थके चित सोचित
हैं कहते अहंकार न सोई।।

—स्व० गी० पद सं० २०२

ऐसे जे अबूझ बूझै ताहि काँहि सत्य सूझै,
अवर सकल अंध भ्रम फन्द परे हैं।
आपहिं में आप भूले, भ्रम के हिंड़ोला झूलै
कहत निर्बंध बन्धन बन्ध के करे हैं।।
बात के बनावट से काज ना सरत कछु,
अधिक अधिक रूझि दृढ़ गाँठ करे हैं।
कहत योगेश्वर विवेक धिरकार देत,
आपसो विलग जिन नैन में धरे हैं।।

—स्व० गी०, मनहर छंद १७, पृ० १८८

इन्हें भक्ति उन्हें ज्ञान चेताय के, वास्तव एक दोऊ ठहराई।
एक प्रथम द्वैतवाद अद्वैतहि, एक अद्वैत सदा रहि जाई।।

अस निर्मल बूटी पड़े जल गादल शुद्ध करी निज नीर नसाई।
योगेश्वर तैसहिं भक्ति बूटी विषय करि दूर सो ब्रह्म हो जाई॥

—स्व० गी०, पद १५० (?), पृ० १२२

मन धोबिया हो ! धोवहुँ साड़ी सम्हार॥टेक॥
सत के साड़ी मैल दिनन के, कहत कहत मैं हारि।
मोह, लोभ, तामस, मद, तृष्णा, कटिहर लगल अपार॥१॥
तन करो हाँड़ी, कर्म के लकड़ी, सुकृत चूल्हा धारि।
नाम नीर ज्ञान के आनी, सिझावहु प्रेम के डारि॥२॥
त्रिवेणी तीर सा सत घर पटहा, सुन्दर फींच सम्हारि।
साबुन सतगुरु शब्द लगावो, पहिरि जयबो ससुरारि॥३॥

—स्व० प्र०, पृ० १६१

ज्ञान कमान ध्यान धनुही, जिन कमर शब्द शरूहि लगावे।
तन तोप भरे विश्वास गोला, बुद्धि सारथि सुरत सीक चलावे॥
निश्चय दृढ़ के पैर डिगावत, कामरु क्रोध के मारि गिरावे।
योगेश्वर दास जितै मन राज, सांई कलि में शुर वीर कहावे॥

—स्व० गी०, पृ० १८६

जीव ते मन विवेक अहंकारा, क्षमा क्रोध ते युद्ध अपारा।
जो शर मन जीव पर छोड़े, सो विवेक बीचे धै तोड़े॥
कीन्ह अकेले दोउ जन घाएल, ऐसा विवेक वीर में पाएल।
धै संतोष लोभ के मारा, विद्या गहि अविद्या पछारा॥
शील तामस का भै लड़ाई, को कहि सकै युद्ध कठिनाई।
अहिंसा शर कर सम्हारा, दाया निर्दाया परहारा॥
भक्ति अभक्ति सुमति कुमती से, भये युद्ध जनु सुरसा सती से।
प्रेम नेम शर ले ललकारा, कुप्रेम का सिर ऊपर डारा॥

—स्व० गी०, दो० ३५५ के बाद चौ०, पृ० १६५

मौन ध्यान ते काढ़ि के, शान्ती रूप कृपाण।
समता ज्ञान को शान दे, लिया क्रोध सिर दान॥

—स्व० गी०, पृ० १६६

सत्य सिरोही विद्या कर दिन्हां, अविद्या शीश खण्डन किन्हां।
भक्ति भाव भाला सम्हारी, अभक्ति राक्षसी को मारी।
शुभ कर्म बरछी सुमति के, प्राण निपात किये कुमती के।
तामस तम की दिन्ह ललकारा, पाप पहाड़ शील पर मारा।
ता कहँ चोट लगी केहिं नाईं, जैसे ढोर गिरि ऊपर राई।

सो विलोकि कोपे जीव नन्दन, कहा करौं मैं सबहिं निकंदन।
तब लेहिं शील गदा परमारथ, मारि तोड़ा सिर तामस स्वारथ।
दूसर गदा हनी ब्रह्मण्डा, लागत शीश भये दो खंडा॥

—स्व० गी०, पृ० १६७

अब हो गये जगत में शोर, बालम दासी भइलीं तोर॥टेक॥
जात पाँत मर्यादा कुल के, लोक लाज गै मोर।
तुम बिन रैन चैन न आवत, ढरत नैन से लोर॥१॥
रवि सनेही कमल कहावे, चन्द्र सनेह चकोर बढ़ावे।
चातक स्वाती परम सनेही, कारि घटा के मोर॥२॥
तैसे मन मेरे तेरे सनेही, और देह से छूटा नेही,
देख निठुर तोहें तलफ रहा है, विरह अगिन का जोर॥३॥
देखी दीन द्रवत तुम नाहीं, कवन विचार करत मन माहीं,
योगेश्वर सहज टूटिहैं नाहीं, लागल प्रेम के डोर॥४॥

—स्वरूप प्रकाश, पद-सं० ५४

मोहि करत जवानी जोर बालम, बटिया हेरूँ तोर॥टेक॥
आय असाढ़ रहे मोह भारी, निस उठि कंत मैं जोहुँ अटारी।
हाथ मींज पछतात हाय अब, चितै रहूँ चहु ओर॥१॥
सावन में झिंगुर झँझकारे, तनमन बेसुध कौन सम्हारे।
दम - दम दम - दम दामिन दमके, करै पपीहा सोर॥२॥
भादौ सुधि आवै मोहि छिन - छिन, निर्भय नैनन मोर।
एक जिये आवे मोरि सखियाँ, डूब मरूँ केहि ओर॥३॥
चढ़त कुआर पिया घर आये, प्रेम सहित चुँदरी पहिराये,
कहत योगेश्वर शरण गहो री, उदय भाग्य भेल मोर॥४॥
बालम बटिया हेरूँ तोर॥

—स्व० प्र० पद-सं०, ५६

ससुरा मैं जैबों जरूर, नैहर दिन चार के॥टेक॥
चार दिन रहना नैहरवा करे गुमान अज्ञान।
मिलि व्यवहार रहु रे सजनी, छाँड़ि कपट गुमान॥१॥

स्व० प्र० पद-सं०, ६६

चलु मन देसवा अमरपुर हो, जहाँ बसे दिलदार॥टेक॥
पाँच पचिस पेन्हु चोलिया हो, साड़ी सुरति सम्हार।
नेकी काजल करु नैना हो, सेन्दुर सत्य लिलार॥१॥
चित्त चंचल के टिकुलवा हो, करि लेहु झलकार।
बुद्धि के पाँव पैजनियाँ हो, बिछिया झँझकार॥२॥
अँगे अँगे ज्ञान गहनमा हो, करु साज शृंगार।

धरि लेहु सुखमन बटिया हो, चलहु दरबार ॥३॥
ऊँची अटरिया साहबजी के हो, झिहर झिहर बहत बयार।
उगेला अँजोरिया जगमग हो, चलि करहु बहार ॥४॥
रूप पुरुष का बरनौं हो, जोति अपरम्पार।
कोटि दिवाकर सोभा हो, एक रोम उजियार ॥५॥

—स्व० प्रकाश, पद-सं० ८६

साधु-सद्गुरु, सत्संग आत्मसंयम, कुसाधु-कुभक्त

त्यागु निज मोह कोह, दयादम योग जाप,
ध्यान न्यास त्यागो, पाठ पूजा अरु ज्ञान जो।
त्यागु सब देव अरु, सेवा किसी इष्टन की,
त्यागु पित्र प्रेम नेम, और अनजान जो ॥
त्यागु सकल तीर्थ वर्त और आचार जेतिक,
त्यागु क्षेत्र मन्दिर अरु नदिया स्नान जो।
कहता योगेश्वर ब्रह्माण्ड माँहि ऊँच नीच,
त्यागु त्यागु सकल सिद्ध का निज मान जो ॥

—स्व० गीता, कवित्त १, पृ० ११०

तीरथ बरत करि पूजा पाठ ध्यान धरि,
नेम वो आचार करि शुभ मग डोलिये।
सन्तन के सेवा सतसंग नित हेरि करि,
नाम के रटन करि, सत्य बोली बोलिये ॥
करि षट क्रिया दस मुद्रा के साधन तब,
गगन कपाट को भटाक दीन खोलिये।
ज्ञान वो विराग को विचार निसिबासर,
योगेश्वर अगुण गुण तुलासम तोलिये ॥

—स्व० गीता, छंद २५, पृ० १६२

लागि सोई विकल चित्त मोरा, कब देखिहौं मैं जाई।
सद्गुरु भेदि मोहि दर्शन दीन्हा, दिये भेद लखाई ॥१॥

—स्व० प्र०, पद-सं० ५

सुनि निश्छल बैन गुरु हमरे, उठि पृष्ठ के ओट हुये तब ठारे।
बामे कर शीश पै राखि प्रभु, कर दाहिन लिखत पृष्ट हमारे।
गुरु पूछत हैं हम काह लिखा, हम जानेउ ना कहि काह उपारे।
पीछे पगु एक हटाई गुरु, निज लात योगेश्वर पृष्टहि मारे।

—स्व० गीता, पद-सं० ८८

चरण प्रहार जो कीन्ह गुरु, टूटेउ भ्रम कपाट।
उघरेउ विमल विवेक उर, लखौं असूझी बाट॥
लोह ज्यों पारस संग करे, है कंचन सो सतसंग लहाँ लौं।
संत के संग ते संत भयो, दोउ एकहि रूप स्वरूप सम्हालौं॥

—स्व० गी०, पद-सं० ३८

सदगुरु और श्रीहरि दया, सत संगति फल पाये।
काक होहिं पिक मानिये, बकहु मराल कहाये।
कीट भृंग निदध्यास ते, संगहि ते तद्रूप।
राम नाम सत संग ते, पाइये सोइ स्वरूप।
अब कहु कलि सब भक्त के, बक तन होत उजलई।
वह मीन पर पर लखहीं, वह चह नारी नई॥२०७॥
जगत में भक्त बने कछु ऐसन, वेष बनाइ के पाप कमाई।
दाढ़ी बढ़ावत कंठी फिरावत, गोपी के चन्दन शीश लगाई।
रामाश्रे कहि बात उचारत, भक्त कहै सब लोग लुगाई।
योगेश्वरदास फंसे वश इन्द्रिन, सांझहि स्वपच का घर जाई।

—स्व० गीता, पद-सं० १७०

वेष बनाइ फिरे महाभक्त, कहो बच्चा राम सदाहि कहो।
कंचन कामिनी वश पड़ी, भवसागर मांह में नाहिं बहो।
द्रव्य चुकाइ देहूँ हमको, तुम बैठ निश्चिन्त सो नाम गहो।
योगेश्वरदास विचारि कहें, अस भक्तन सों होशियार रहो।

—स्व० गीता, पद-सं० १७१

एक भक्त नवीन बने कलि में, जिन भक्ष अभक्ष दोनों कहँ खावे।
कभी बन वैष्णव यज्ञोपवीत, पुजे नित ठाकुर भोग लगावे।
कबही भट्ठी जाइ शराब पिये, सरभंग कहावत चाम चिबावे।
योगेश्वर दास जो जानत ना, फिरे ग्रामहिं ग्राम अजात बनावे।

—स्व० गी०, पद-सं० १७२

साधु बनी सब तीर्थ परीक्षत, हाथ तुमा गल तुलसी धारी।
होइ के सिद्ध वान्हे कुटिया, तब बाग बगैचा लगी फुलवारी।
खेती करि पस पोसत हैं, पुनि आइ गये एक चेलि खेलारी।
चाभी व कुंजी दिये उनके, तेहि नाम धराये उदास दुलारी।
स्नान करि करि केश सँवारत, पेन्हत हैं नितहीं श्वेत सारी।
योगेश्वरदास देखो कलि फन्द, भये दिन चेलिन रात को नारी।

—स्व० गी० पद-सं० १७३

कलियुग का समाज

सौभागिन हीन विभूषण से, विधवा रचि साज श्रृंगार बनावे।
खात खोआ पुरी पान चबै, अरु इत्तर तेल सुगन्ध लगावे।
साड़ी सोमे रेशमी उर में, चोलिया बूटेदार में तार कसावे।
योगेश्वर देखे मुख दर्पण, पर पति नैना चमकावे।

—स्व० गीता, पद-सं० १५२

कान कर्णफूल झूमके झूलत, मोतिन के मंटीका बनावे।
गल में हँसुली हैकल सोभै, नथिया नकबेसर नग जड़ावे॥
बाजू बहबूटा जोसन बिजुली, ककना पहुँची हथ शकू लगावे।
योगेश्वर छर पेन्हे झबिया, कलि के विधवा एहवाती छकावे॥

—स्व० गी०, पद-सं० १५३

लौंग कसैली इलाइची चाखत, चंचल चाल घरे घर धावे।
ताली बजावत झूमर गावत, दाँतन में मिसिया झलकावे॥
प्रेम का फन्द में बँध गये, जब लोग हँसे तब प्राण गँवावे।
योगेश्वरदास देखो कलि कौतुक, जन्मि के कुल कलंक लगावे॥

—स्व० गी०, पद-सं० १५४

अपने पति देख सोए लज्जा, जनु जूड़ी-बुखार लगे तन आई।
बात बौलें तो मानो जस कागिन, परपति सों बोलै मुसुकाई॥
अपने पति सुन्दर छाँड़ि अभागि, कुरूप पति पर जात लोभाई।
योगेश्वरदास करि व्यभिचारहिं, रौरव नर्क पड़े तब जाई॥

—स्व० गीता, पद-सं० १५५

कौड़ी बिना पति को नहिं चाहत, पारत हैं नितहीं उठि गारी।
पति का कर में नहिं एक टका, तिय मांगत हैं लहँगा अरु सारी॥
बातन बात करे रगड़ा, झगड़ा तब होत घरे घर जारी।
योगेश्वरदास सदा करे कलह, नारी कलि महँ भैल बिमारी॥

—स्व० गीता, पद-सं० १५६

जा घर पेट भरे तिय के, सोई बान्ह जुड़ा कर केश सँवारी।
इंगुर बिन्दु लिलार सोभे, नैना मँह डारत काजल कारी॥
ले गहना अंगे अंग में साजे, घरेघर शोर मचावत भारी।
हमरे पति तुल्य जहान नहीं, जिनके पाय दूध कुला मैं मारी॥
द्रव को देन व लेन करे, पति सो बोले बात दुलार दुलारी।

—स्व० गी०, पद सं० १५७

बही भये कछु काल में निर्धन होन लगे तब गारा व गारी ;
कौन कुतप किये हम पूर्विल ऐसे पति पड़े वज्र के झारी।
योगेश्वरदास विचार कहैं, कलि में सब जानहु द्रव्य के नारी।

—स्व० गी०

जिनके घर में रह सुन्दर नार, तैयार रहैं परया घर सोई।
जाइ के बात वो लात सहे, धर्म जात गये धन गाँठि के खोई॥
मात पिता कुल कर्म नसावत, झंख रहे घर मांह में जोई।
योगेश्वर माल गये गृह को, सठ पोसत पेट धरे घर रोई॥

—स्व० गीता, पद-सं० १५८

मातु पिता गृह भूख रहे, वेश्या घर जाइके पान चबावे।
साधुन विप्र के देख जरे, भड़ुआ संग रसखायन गावे॥
पितु पूछत तात तु जात कहाँ, तब डाँट के बोलत गाली सुनावे।
योगेश्वर सीस सवार भये, कलि छाड़त राह कपूत कहावे॥

—स्व० गी०, पद-सं० १५६

काढ़ि के रीन धरे सिर ऊपर, ले वेश्या पहिरावत सारी।
अपने तन वस्त्र नवीन रखे, लंगटे घर रोवत बाप मतारी॥
कुल कुटुम्ब जहाँ लगि सज्जन, सब बुझाई बुझाई के हारी।
योगेश्वर बात सत्रादत ना, कलिकाल निसा जैसे पीवत तारी॥

—स्व० गी० पद-सं० १६०

खरची नहिं एक दिनो घर कें, बावड़ी महँ तेल चुहावत हैं।
धोती सोभे रेसमी कोर के, पनहीं पग में एंड़ियावत हैं॥
जाकिट कोट पेन्हे फतुही, जेब में गमछा लटकावत हैं।
रोड़ी के बून्द लिलार करे, पिठ ऊपर छत्र डोलावत हैं॥
मुठ बान्हल बेंत गहे कर में, मुख डालिके पान चबावत हैं।
बीड़ी सिगरेट धुआँ धुधुआवत, राह में ठट्ठा मचावत हैं॥
कहिं बात सहे कहिं लात सहे, कहिं जुत्तन मार गिरावत हैं।
योगेश्वर दास धिक्कार यह चाल के, देश में गुंडा कहावत हैं॥

—स्व० गी० पद-सं० १६१

कोइ कोइ पापी होत अस, नारि नारि बदलाय।
वाको गृह महँ वह धुसैं, वा घर वह समाय॥
कोई पति संग पति फंसी, जैसे पुरुष अरु नार।
महापाप कलि होइहैं, जाको आर न पार॥

विद्या नहीं कछु कोहिं पढ़ावत, बालहि ते चरवाह करे।
मूरख होइ रहे घर ही, घर बैल की नाइ कमाइ मरे॥
चोरी करे ठगवारी करे, बटवारी करे तव बन धरे।
योगेश्वरदास विद्या करें वर्जित, ऐसे पिता घर वज्र परे॥

—स्व० गी०, पद-सं० १६२

विद्या का हीन सो लाज न आवत, गावत हैं मैं सोउ कहानी।
तरुण कन्या से घास गढ़ावत, पशु चरावे भरावत पानी॥
देकर कौड़ी बाजार में भेजत, छाड़ पड़ै उनका जिन्दगानी।
योगेश्वरदास न लाज है मूरख, ऐसे पिता अपराध के खानी॥

—स्व० गी०, पद-सं० १६३

वेद विहीन ते जानत हैं नहिं, कौनहिं पाप ते का गति पाई।
ले लड़की शठ बेचत हैं, लिंग से जन्मावत मुख से खाई॥
लड़की है पाँच पचास के दूलह, लिखत मैं नैना जल छाई।
योगेश्वरदास विवाह में राँड़, पड़े ठनका अस बाप वो भाई॥

—स्व० गी०, पद-सं० १६४

बाल विवाह में जानत न कछु, होइ गये जबहीं तरुणाई।
लोग कहे तब रोवत हैं, जिनगी अब पालन में कठिनाई॥
न विद्या नहिं दाम गेंठा में, न उनते चरखा कटवाई।
योगेश्वरदास रोये जिनगी भरि, मातपिता महा भलै कसाई॥

—स्व० गी०, पद-सं० १६५

कोइ कुकर्म करे पर पुरुष. कोइ किसी ले विदेश में जाई।
कोइ त जाइ बने वेश्या, अपने करनी करि आप नसाई॥
इज्जत जात दोनों चलि जात हैं, बेचन ते नहिं होत भलाई।
योगेश्वरदास न दाग छुटै, ऐसा कलिराज जे फन्द कसाई॥

—स्व० गी०, पद-सं० १६६

जिनका द्रव्य दान देना कन्या, तिनके कलिराज यह फाँस फसाई।
लड़की रह वर्ष सत्ताइस के, लड़का नव वर्ष के खोज के लाई॥
ब्याह हीं में जब गौन भए, पति देख तब जात भैंवाई।
योगेश्वर काम पिशाच गहे, लगे भूत खेलावन लाज गँवाई॥

—स्व० गी०, पद-सं० १६७

मनहर छन्द

खनहिं हँसत रहे, खनहिं रोवत रहे,
खनहिं में करे तकरार सबनी से।

खनहिं डूबन जाय, खनहिं जहर खाय,
खनहिं में नैहरा बहर चले घर से।
कामहिं के वश परे, लाज सब घर धरे,
अटपट करे जैसे रोगी बोले ज्वर से।
योगेश्वर कहत कभी थीर न रहत जब
पति देखत तब जर मरे क्रोध से।

—स्व० गी०, मनहर छन्द २, पृ० १३१

सार्वभौम धर्म : समन्वयवाद

जागो हिन्दू मुसलमान दौ, रटहु राम खोदाई ॥टेक॥
क्या झगड़ा आपस में ठाने, तू है दोनों भाई।
एके ब्रह्म व्याप है सब में, का सुअर का गाई ॥१॥
कहँवा तू जनेऊ ले आया, कहँवा तू सुन्नत कराई।
जन्म समान भये दोऊ का, इंहाँ भेष बनाई ॥२॥
भूख प्यास नींद है एके, रुधिर एक दिखाई।
झूठ बात के रगड़ा ठाने, दोऊ जात बोहाई ॥३॥
कहत योगेश्वर कहना मानो, जो मैं देत लखाई।
सुषोप्ति में जा के देखो, कहाँ तुरुक हिन्दु आई ॥४॥

—स्व० प्रकाश, पद सं० १७४

पाषंड-निषेध, सार्वभौम धर्म

हम अपना पिया के अलबेली रे ॥ टेक ॥
सासु ननद मोरा नीको ना लागे, सदा रहूँ मैं अकेली रे ॥१॥
नैहर सासुर दूनू त्यागी, सैंया ला योगिन भेली रे ॥२॥
जात-पाँत मर्यादो न भावे, लोकवा में सबहीं गेली रे ॥३॥
योगेश्वर विरहिन विरह व्याकुल, जग लेखे बाउर भेली रे ॥४॥

—स्व० प्र०, पद-सं० ११०

गंगा भवन हरितन त्यागे, नित्य करे अस्नान।
काशी में नित्य दिन श्वान मरत हैं, उनको न आवे विमान ॥३॥

—स्व० प्रकाश, पद-सं० १४६

हम अपने अलबेली छबेली आप पिया के।
जात-पाँत मर्य्याद वाद, न कछु हिया के ॥

—स्व० प्र०, पृ० ५६-६०

देख अपने औगुनाई हो मोलाना ॥ टेक ॥
पिता भ्रात के कन्या विवाहे, बहिनी के बीबी बनाई।
यह नाते का ठिकाना नहीं है, कैसा जात अन्याई ॥१॥

जन्मत दूध पिया बकरी के, माता लिन्ह बनाई।
सो बकरी को गला काटत हैं, तनिक दरद नहिं आई ॥२॥
जो गौआ सो पाला मैं, तेरे मात, पिता, सुत भाई।
सो गौआ कुरबान करत हैं, निपटै कर्म कसाई ॥३॥
झूठे को महजीद बनाया, देव देखन न आई।
धै मुरगा नित हलाल करत हैं, कैसे खुश खोदाई ॥४॥
झूठे हाफिज पीर और मिया, झूठा किताब बनाई।
सृष्टि तोड़न खुदा को लिखे, साफ नरक में जाई हो ॥५॥
योगेश्वरदास कहत तोहरे ला, सुनो कान लगाई।
जब खोदा लेखा तोसे मांगिहैं, मुखवा से बात न आई ॥६॥

—स्व० प्र०, पद-सं० १२६

निजातम ज्ञान को भूलि चलै, बहु पंथ अनेकन भेष बनाते।
रहि लाग ठरेसरि धारी जटा, होइ कान फटा सिर केश बढ़ाते॥
अंग विभूति रमाइ रहैं, उर्द्ध बाँह उठाइ के संत कहाते।
योगेश्वरदास करैं जल सैन, तपै बहु ताप के उष्ण सहाते॥

—स्व० गीता, पद-सं० ९६

कोउ सहैं शीतोष्ण सदा, तपते निज देह को खूब सुखाते।
कोउ बैठ एकान्त में साधु बने, गिरि कन्दर जाइ के कोउ छिपाते॥
कोउ गीदड़ मान समान रहै, बहु भेष बनाइ के लोग ठगाते।
योगेश्वर आतम ज्ञान बिना, सब व्यर्थ मरै निज भर्म भुलाते॥

—स्व० गीता, पद-सं० ९९

बहु वेष सँवारि के माल गले, बहु अंगन माँहि विभूति रमाते।
योगेश्वर आतम ज्ञान बिना, मन होइ कलन्दर खूब नचाते॥

—स्व० गीता, पद-सं० १००

होइ सुन्नत जे कहि तुर्क तिन्हें, निज औरत को कछु काह कटाई।
तूरक शीश शिखा नहिं राखत, बीबी न शीश सो झोंट बढ़ाई॥
अपने सिर चन्दन लेपत ना, तिय ईंगुर सिन्दुर भाल चढ़ाई।
योगेश्वर तूरक आप बने, निज औरत माहिं लखे हिनुआई॥

—स्व० गीता, पद-सं० १०८

भाष अनेक प्रकार किये, सबहीं सिध्यान्त एके पर आवे।
जोई कह नारद, व्यास मुल्ला कवि, सोई वेद वेदान्तहुं गावे॥
सोई हदीस कुराण कहैं पुनि, सोइ इसाई किताब चेतावे।
योगेश्वर हेर देखा सब के मत, आपहि आप सर्वत्र बतावे॥

(२) भगती दास

[प्रवर्त्तक चिलवनिया सरभंग-मठ—मोतिहारी के निकट ३ मील पश्चिम—१०० वर्ष पूर्व १२५ वर्ष की आयु में समाधिस्थ हुए।]

कुछ प्राप्त रचनाएँ—

(१)

गुरु पइयाँ पड़ों नाम के लखा दीना।
जनम जनम के सुतल मनुआ शबद बान से जगा दीना। गुरु०
मोरे उरन करोध अति बाढ़े, इमरित घड़ा पिला दीना॥ गुरु०
भगतीदास कहे कर जोरी, जमुआ का अदल छुड़ा दीना॥ गुरु०

(२)

भुला गइल मनवा जान के।
मात गरभ में भगती कबूलल, इहाँ सुतल बाड़ तान के॥
एही काया गढ़ में पाँच गो सुहागिन, पाँचो सुतल बा एको नाहीं जाग के॥
कहे भगतीदास कर जोरी, एक दिन जमुआ लेई जाइ बान्ह के॥

(३)

कर बर भगती मानव तन पाके।
दाल निरहले भात निरहले हरदी लगा के॥
चौका भीतर मुरदा निरहले खात बारे सराह के।
मात पिता से कड़आ बोले मेहरी से हरखा के॥
पड़ जइबे नरक का घेरा, मू जइबे पछता के।
कहीले भगतीदासजी बहुत तरह समझा के।
मारे लगिहें जमुइया तब रोए लगबे मुँह बा के॥

(३) रघुवीरदास

[चम्पारन-निवासी—थरुहट में रहते थे। जन्म-मृत्यु—अज्ञात]

करब का सखिया रे अइले लगनवाँ।
अवचक में बालम समाज साजि अइले, मोह लगा के छोड़त ईहे भवनवाँ।
इहाँ तो पाँच-पाँच ठो इयार रंगरसिया, मोह लगा के बाबा के छोड़त नगरवा॥
ससुरा के हाल सुन आप जिया काँपे, सुनीला कि सइयाँ मोरे बारे मसतनवाँ।
कहे रघुवीर मिलहु सब सखिया, नइहर में आवे के कवन बा ठिकनवाँ॥

(४) दरसनदास

[मोतिहारी के निकट चइलाहा ग्राम में रहते थे और वहीं १०० वर्ष पूर्व समाधिस्थ भी हुए।]

(१)

काहु का ना छूटी बा भजे के हरिनमवा।
धन्धा तोरा धावल फिरे चढ़े गरदनवा।
माया के बिसरेला भइल बा हैरनवा।
साधु देखी पीठ देके भागेले चुहानवाँ।
माया के मुँह देखी भइल बा मगनवा।
छाती तोहर कड़खी जेह दिन आई बलवनवा।
परचे-परचे लूटली मिली ना ठिकनवाँ।
धुँआ के धरोहर देखी, कइले बा गुमनवाँ।
अस मार मारी जमु मिली ना ठिकनवाँ।
छाड़ रे माया मोह लागे ना विगनवाँ।
कहे दरसन पद भजन निरबनवाँ।

(२)

औचक डाका पड़ी मन में कर होशियारी हो।
काल निरंजन बड़ा खेलल बा खेलाड़ी हो।
सुर नर मुनी देवता लोग धर के पछारी हो।
ब्रह्मा के ना छोड़ी, जिन वेद के विचारी हो।
शिव के ना छोड़ी जिन बइठल जंगल झारी हो।
नाहि छोड़े सेत रूप नाहीं जटाधारी हो।
राजा के ना छोड़ी नाहि प्रजा भिखारी हो।
मोरहर देके बान्ही जमु, पलखत देके मारी हो
बिधी तोहर बाव भइल, तू देल प्रभु के बिसारी हो।
कहे दरसन तोहे जुगे जुगे मारी हो।

(५) मनसाराम

[सिमरैनगढ़—घोड़ासाहन के निकट रहा करते थे।]

(१)

लाग गइल नजरी उलटा गगनवाँ में लाग गइल नजरी।
ना देखी मेघ माला ना देखी बदरी।
टपकत बुन्द वा भींजे मोरा चुन्दरी॥

पेन्हीले सबुज सारी बटिया चलीले झारी।
चलल चलल गइल हरि जी का नगरी ॥
एह पार गंगा मइया ओह पार जमुनी।
बिचही जसोदा माई तनले बाड़ी चदरी ॥
कहेलन मनसा राम सुनए कंकाली माई।
हमरा के छोड़ देहु ईसरजी के कगरी ॥

(६) शीतलराम

[गजपूरा छितौनी-मोतिहारी निवासी थे। जाति के तेली थे। साहेबगंज (मुजफ्फरपुर) जाकर भकुआ साधु (जो एक प्रसिद्ध सरभंग सन्त थे) से दीक्षित हुए। गजपूरा छितौनी के निकट ही मठ बनाकर रहते थे। ५० वर्ष पूर्व समाधिस्थ हुए।]

(१)

मन मौसी तेलिनिया तेल पेर लेल।
पाँच तत के कोल्हू बन गेल, तीन गुन के मढ़न ठोक देल।
गजपूरा से छितौनी गेल, अतने दूर में तेल पेर लेल।
श्रीशीतलराम साहेबगंज गेल, रामदत्त भकुआ से संग करि लेल।

(७) सूरतराम

[मलाही (चम्पारन) में रहते थे। बहुत ही कर्मनिष्ठ योगी थे। बेतिया महाराजा के दरबार में एक स्त्री सुहागिन से इनका साक्षात् हुआ था। सुहागिन सन्त के उज्ज्वल चरित्र और प्रगाढ़ भक्ति से बहुत ही प्रभावित हुई थी। आजन्म इनकी सेवा में शिष्या रूप में रहीं। १०० वर्ष पहले समाधिस्थ हुए।]

(१)

एक त बारी भोरी दोसरे पिआ का चोरी तिसरे ये रसमातल रे।
फूल लोढ़े चललु बारी तारी मोरा अंटकल डाढ़ी बिनु सइयाँ सड़िया केहुना छुड़ावल रे।
साड़ी मोरा फाटि गइले, अंगिया मसकि गइले, नयन टपकी नव रंग भींजल रे।
भींजते-भींजते बारी चढ़ली अटारी जहाँ बसे पिअवा मोर रे।
जोगी का मड़इया राम अनहद बाजा बाजे उहाँ नाचे सुरति सुहागिन रे।
गगन अटारी चढ़ी चितवेली सुरति सुहागिन इहाँ बसे पिअवा मोर रे।
कहीले सुरतराम सुनए सुहागिन गवते बजवते चलना देव रे।

(८) तालेराम

[जन्म—गोनरवा-सोहरवा; समाधि-स्थान—पोता; समाधि-काल—१२६२ फसली; लोहार-कुल के बालक थे।]

(१)

रामगुण न्यारो उ ॥टेक॥
चार - वेद - पुराण - भागवदगीता, सभनी के मैं झारो।
कितने सिद्ध साधु सब पचिगै, कोई न पावै पारो ॥रामगुण०॥१॥
काशी के जे बासी पचगै, पचगै कृष्ण ग्वारो।
ग्वाल - बाल - गोकुल के पचगै, पचगै दस अवतारो ॥रामगुण०॥२॥
बिना चुना के मंदिर चुनौटल, उसमें साहेब हमारो।
न वह हिन्दु, न वह तुरक, न वह जात चमारो ॥रामगुण०॥३॥
पाँच के मारि, पचीस के बस करि, साँच हिया ठहरावो।
कहे 'ताले' सुन 'गिरिधर' योगी, उतरि चलो भव पारो ॥रामगुण०॥४॥

(२)

खेती या मन लाई जो जन ॥टेक॥
उलट पलट के इत न जोतो, बहु विधि नेह लगाई।
शील सन्तोष के हेंगा फेरो, ढेला रहै न पाई॥
लोभ मोह के बथुआ उपिजै, जैसे छोह न जाई।
ज्ञान के खुरपी हाथ में लेओ, सोर रहै ना पाई।
काम क्रोध के उठै तड़ँगा, खेत चरन के जाई॥
ज्ञान के सटका हाथ को लेओ, खेत चरन ना पाई॥
काट खोट के घर में लायब, पुरा किसान कहाई।
कहे 'ताले' सुन 'गिरिधर' योगी, आवा गमन नसाई॥

(३)

राम भजन करु भाई, दिनवा बीतल हो जाई ॥टेक॥
साव किहाँ से दरब ले अएलो, सूद पर देली लगाई।
मूढ़वा हान मेल यहि जग में, घरहुँ के मूढ़ गँवाई ॥१॥
अएतन साहो कहब कछु काहो, रहबो मन सकुचाई।
त्राहि त्राहि कहि गिरबो चरन पर, पछु रखिहै रघुराई ॥२॥
राम भजे से सब बनि जाई, निरधनिया धन खाई।
कहे 'ताले' सुन 'गिरिधर' योगी, दिनवा बीतल हो जाई ॥३॥

(४)

लखु ए सज्जन सोऽहं तार ॥टेक॥
आगे में नाम देखो श्वासा बिचार।
त्रिकुटी उपर जोति उजियार॥

अष्ट दल कमल फुले गुलजार।
मेरे मन मधुकर, करै गुलजार॥
इंगला पिंगला के काया निरुआर।
सुखमन बटिया के खुलु न केवार॥
नाभि कुंड बहे अमृत धार, शब्द उठै जहाँ ओंकार।
तालेदास इहाँ काया निरुआर, जीति चलहुँ वहि देशवा विरान॥

(५)

दिहलन एक जड़ी हमारे गुरु ॥टेक॥
इहो जड़िया मोंही प्यार लगत है, अमृत रस से भरी।
इहो जड़िया केउ सन्त लोग जाने, लै के जपत रही॥१॥
त्रिविध तापना तन से भागे, दुर्मति दूर करी।
इहो जड़िया देखि मृत्यु डेराने, और कौन बा पुरी॥२॥
मनही भुजंग पाँचो नाड़ी सन तरंग भरी।
डाइन एक सकल जग खाये, बोली देख डरी॥३॥
निशि बासर जन ताहि न बिसरै, पल चित एको घड़ी।
कहे 'ताले' सुन 'गिरिधर' योगी सकलो व्याध हरी॥४॥

(६)

भजन में सन्तो प्यारा है॥टेक॥
बिनु सड़सी बिनु हाथ हथौड़ी, गढ़ल सजल तइयारा है।
बिनु खम्भा - असमान खड़ा है, उसमें धागा लागा है॥
बिनु चूना के मंदिल चुनौटल, उसमें साहेब हमारा है।
कहे 'ताले' सुन 'गिरिधर' योगी, सतगुरु सबसे न्यारा है॥

(७)

सोऽहं नाहि विचारी जम्हु हो॥टेक॥
नाटा बएलवा टाट नहिं अंगछे, छन छन देत गिराई।
गुरु के शबद लै नाथु बएलवा, हनि हनि मान्हु पेटारी॥१॥
ना हम लादो हीरा - मोती, ना हम लौंग सुपारी।
हमहुँ त लादब गुरु के सबदवा, पूरा खेप हमारी॥२॥
'तालेराम' पतिया लिखि भेजल, लक्ष्मी के भटभारी।
साहब कबीर के घर भरत है, अपने भइले बेपारी॥३॥

(८)

सद्गुरु बनिया पिंजड़ा पा लेना॥टेक॥
एक दमरी के मुनिया बेसहलो, नौ दमड़ी के पिंजड़ा।
आएल बिलाई झपट लेलक मुनिया, रोये सारी दुनिया॥

अलख डाढ़ पर बइठे मुनिया, खाए जहर के बूटी।
साधु संगत में परि तेरे मुनिया, खइते ज्ञान के बूटी ॥
सगरे नगर ताले घुमि फिरि अएलन, कतहुँ न रामनाम सुनिया।
कहे 'ताले' सुन 'गिरिधर' योगी, ई नगर बड़ा खुनिया ॥

(९)

हरि नाम सजीवन साँचा, खोजो गहि कै ॥टेक॥
रात के बिसरल, चकवा रे चकवा, प्रात मिलन वाके होइ।
जो जन बिसरे राम भजन में, दिवस मिलनवा के राती ॥
वोहि देसवा हंसा करु प्याना, जहाँ जाति ना पांती।
चान सुरुज दु मोसन बरिहै, कुदरत वाके बाती ॥
सुखल दह में कमल - फुलाएल, कड़ी कड़ी रहि छाती।
कहे 'ताले' सुन 'गिरिधर' योगी हुलसत सद्गुरु के छाती ॥

(१०)

राम नाम धन पाई गहना ना गढ़ब हो भाई ॥टेक॥
हाथ हथौड़ी, पवन नेहाए, कैंची प्रेम कटाई।
राम नाम बने फुकनिया, फुंकत मन चित लाई ॥
अउँठो आठ पहर रघुबरजी के, पैजनी पाँव सोहाई।
नथिया में नारायण बसतु है, हैकल हाल बताई ॥
बिसुनीदास अयोध्या वासी, तीन लोक में धाई।
कतनो बिसुनी साँच कहतु है, लोकवा ना पतआई ॥
कहे 'ताले' सुन 'गिरिधर' योगी, गहना अचल गढ़ाई।
जे एहि गहना के मरम न जाने, तिनको देहि पहिराई ॥

(६) मिसरीदास

(१)

पाँच पचिस सखिया
मिलि भइले एक समनवाँ से
खेलि लेहु हु सतगुरु का आँगनवाँ से
ऐसन खेलवा खेलइ हे मोरा साहेब से
मेटि जैहें मोरा आवागवनवाँ से
सब सन्तन मिलि करु एक मिलनवाँ से
बुझि लेहु गुरु गंम के ग्यानवाँ से
दउर धूप सखिया छाड़हु बिरानवाँ से

चेति लेहु निज अपन भवनवाँ से
खेलत खेलत चढ़ि चलवो गगनवाँ से
मेटि गइले पिया सुन भवनवा से
मिसरीदास चेले बारे
श्री पूरन रामजी के चरनवाँ से
खेलि लेहु इहो जोबनवाँ से

(२)

चार दिनन के रंगवा ए सखिया से
खेलि लेहु नैहर में ए सखिया से
जब तुहु होइबू ससुरैतिन ए सखिया से
पिया मोरा निति करले सुरतिया से
जब पिया मोहिके भेजैहें लिखि पतिया से
सुनि सुनि मोरा बिहुसले छतिया से
आरध उरध इहो लागी कहरिया से
लेइ जइहे पिया अपन नगरिया से
माई बाप भइया सम भैले बिपरितिया से
कोई नहीं मोरा संघ के संघतिया से
मिसरीदास इहो झमकि झूमर गाइले से
सबेरी चेतु हो पिया के महलिया से

(३)

अइसन लगना न करी बनी ना ए सखिया से
लागि रहु सतगुरु का चरनवाँ से
लागल लागाना सैयाँ जी का अंगनवाँ से
धीरे धीरे चढ़ि चलहु गगनवाँ से
एक दिन नइहरा होइहें सपनवाँ से
कइ लेहु दिन राति जपनवाँ से
जब पियवा तोइसे होइहे मिलनवाँ से
छुटि जइहे इहो आवागवनवाँ से
मिसरीदास इहो झमकि झूमर गाइले से
देखि लेहु तुआे उलटि नयनवाँ से

(४)

नैना के आगे पिया मोरा ठाढ़े से
देखि लेहु लोचन नयनवाँ से
देखते देखते मोरा नैना मुलकले से
बिजुली सरीखे झलके पिया के चननवाँ से
मैं तो अभागिन पिया के देखहु न पावलीं से
रोअते रोअते मोरा बितले जनमवाँ से
धीरज धरहु सखिया छाड़हु रोअनवाँ से
करि लेहु प्रभु के धेआनवाँ से
मिसरीदास झूमर खेलले गगनवाँ से
मिलि गइले पिया सुंन भवनवाँ से

(५)

गंगा जमुना बहे सुरसरि धारवा से
झिरहिर खेलि लेहु सुखमन इहे बा बेरिया से
भौजल नदिया अगम बहे सखिया से
कैसे जैबो हो बिना गुरु नैया से
कथि करु नैया कथि करुआरिया से
कौने विधि कैसे उतरु ए सखिया से
सत करु नैया सुरत करुआरिया से
ताहि चढ़ि चलि उतरु ए सखिया से
पाँच पचिस तीनि दारुण ए सखिया से
बिछोह कइले मोरा पिया के सुरतिया से
रगरते झगरते मिसरीदास झूमर खेलले गगनवाँ से
होइ गैले हो पिया से मिलनवाँ से

(६)

संझा आरती निसुदिन सुमिरो हो
सुमिरन करत छिन दिन भीन हो
हे धीरज ध्यान छिढ़ करु बाती
गुरुजी के नाम अचल कर थारी हो
ग्यान घृत सुरती घरु बीच
ब्रह्म अगिनि तन लेसहु दीप हो
दाया के थारी सारा घर जउर
प्रेम पुहुप लइ परिछहु पाउँ हो

सुकरित आरती साजि के लिन्हा
धरम पुरुष पुरातन चिन्हा हो
अनहद नाद जहाँ हंसा गाजे
श्रीपूरनराम का चरन में मिसरीराम
संभा आरती गावे हो

(१०) हरलाल

खेलैत रहलो मो
सुपली मउनिया ऐ सजनिया
औचक अइले नियार हो
गोर लागो पैयाँ परो
गाँव के बभनमा ऐ सजनिया
दिन चारि दिनमा बिलमाव हो
कैसे के फेरो धनी
तोहरो लगनिया ऐ सजनिया
दोआरे लगले बरियात ऐ
लाली लाली डोरिया के
सबुजी ओहरवा ऐ सजनिया
लागि गैले बतीसो कहार ऐ
भौजल नदिया अगम
बहे धारा ऐ सजनिया
कौने बिधि उतरब पार ऐ
सोकिया में चीरि चीरि
बेरवा बनवलो ऐ सजनिया
बहि चढ़ि उतरब पार ऐ
प्रेम के चुनरी पहिर
हम चलली ऐ सजनिया
ग्यान दीपक लेलो हाथ ऐ
लवका लवकि गैले
बिजली चमकि गैले ऐ सजनिया
बरले जगामग जोतिया अपार ऐ
जन हरलाल के
चरन परि परि ऐ सजनिया
जन चल भइले पार ऐ सजनिया ।

परिशिष्ट (ग)

सन्तों के पदों की भाषा

सरभंग सम्प्रदाय अथवा औघड़ सम्प्रदाय का जो कुछ साहित्य उपलब्ध हुआ है तथा जिसके आधार पर इस सम्प्रदाय के सिद्धान्त, साधना और आचार-व्यवहार आदि का निदर्शन किया गया है उसकी भाषा का विश्लेषण करने से उसमें मुख्यतः तीन धाराएँ प्रवाहित होती दीख पड़ती हैं—(क) अवधी तथा ब्रजभाषा का मिश्रित रूप, (ख) खड़ी बोली—शुद्ध एवं मिश्रित, (ग) भोजपुरी (शुद्ध एवं मिश्रित)। कहीं-कहीं एक ही पद में सभी धाराएँ त्रिवेणी के समान एक दूसरे से ओतप्रोत हैं। जिसे हम कबीर आदि सन्तों की 'सधुक्कड़ी भाषा' कहते हैं, उसमें भी विभिन्न भाषाओं, उपभाषाओं, बोलियों तथा शैलियों का सम्मिश्रण मिलता है। भाषा-शास्त्र के अध्ययन की दृष्टि से इस प्रकार की सम्मिश्रित भाषा एक समस्या भले ही हो, किन्तु इसकी न्याय्यता इस कारण है कि ये सन्त प्रायः देश के सभी भागों में, विभिन्न भाषाओं के क्षेत्रों में, घूमा करते थे; इनका सम्पर्क जितना सामान्य जनता से रहता था, उतना तथाकथित शिष्ट वर्ग से नहीं। अतः उनके लिए यह आवश्यक होता था कि जहाँ-जहाँ विचरण करें, वहाँ-वहाँ की क्षेत्रीय भाषा का पुट अपनी वाणियों में समाविष्ट करें। इनका मुख्य लक्ष्य था भावों का आदान-प्रदान तथा संक्रमण, न कि भाषा की विशुद्धता की रक्षा। कबीर की निम्नलिखित पंक्ति इसी महत्त्वपूर्ण दृष्टि की ओर इंगित करती है—

'का भाषा का संसकिरत, भाव चाहिए साँच।'

हमने जिन तीन धाराओं का उल्लेख किया है उनमें प्रथम का प्रतिनिधित्व औघड़ मत के प्रमुख आचार्य एवं प्रवर्तक किनाराम के पदों में है। किनाराम मुख्यतः काशी में रहा करते थे; किन्तु उनपर सूरदास और तुलसीदास जैसे सगुणवादी सन्तों की सर्वजनसुलभ कविताओं का स्पष्ट प्रभाव प्रतीत होता है। किनाराम ने अपने ग्रंथों के जो नाम दिये उनसे भी अनुमान किया जाता है कि भाषा की दिशा में तुलसीदास की रामायण उनका आदर्श थी। उनके प्रमुख ग्रंथ हैं—विवेकसार, रामगीता, गीतावली और रामरसाल। तुलसी के समान ही किनाराम ने चौपाई, दोहे तथा कवित्त आदि छन्दों का प्रयोग किया है और उनकी भाषा भी तुलसी के ढाँचे में ही ढली है। एक-दो चौपाइयों के उदाहरण—

मन चंचल गुरु कही दिखाई।
जाकी सकल लोक प्रभुताई॥

अथवा,

मनके हाथ सकल अधिकारा।
जो हित करै तौ पावै पारा॥

अथवा,

हृदय बसै मन परम प्रवीना।
बाल वृद्ध नहिं सदा नवीना॥

इन्द्री सकल प्रकाशक सोई।
तेहि हित बिनु सुख लहै न कोई॥
दोहे; यथा—
सत्य पुरुष को सत्य कहि, सत्य नाम को लेखि।
रूप रेख नहिं संभवै, कहिये करै विपेखि॥
अथवा,
निरालम्ब को अंग सुनि, गत भइ संशय द्वन्द।
मैं तैं अब एकै भई, सतगुरु परमानन्द॥

गीतावली से कवित्त का एक उदाहरण दिया जा रहा है—

भूल्यो धन धाम विषै लोभ के समुद्र ही में,
डोलत विकल दिन रैन हाय-हाय कै॥
कठिन दुरास भास लोक लाज घेर पर्यो,
भयो दुःख रूप सुख जीवन बिहाय कै॥
चिन्ता के समुद्र साचि अहमित तरंगतोम,
होत हौं मगन यासों कहत हौं जनाय कै॥
रामकिना दीन दिल बालक तिहारो अहै,
ऐसे ही बितैहो कि चितैहो चित लाय कै॥

खड़ीबोली में रचना करनेवालों में किनाराम की ही शिष्य-परम्परा में बनारस के रहनेवाले 'महात्मा आनन्द' हैं। इन्होंने आनन्द-भण्डार, तख्यलाते आनन्द, आनन्द-सुमिरनी, आनन्द जयमाल आदि ग्रन्थों की रचना की है। यद्यपि आनन्द ने ब्रजभाषा-मिश्रित अवधी में भी कविताएँ की हैं; यथा—

माया मोह में फँसि-फँसि के मैं, भजन कछू न करी।
सिर धुनि पछितात हैं मैं, जात उमिरिया सरी॥
दान पुन्य कछु कीन्यो नाहीं, कोऊ को न दियो दमरी।
सिर पर बाँधि धर्यो मैं अपने, पापन की गठरी॥
सत्संग में ना बैठ्यो कबहूँ, आयके एको घरी।
दुर्जन संग में नाच्यों राच्यो तुम्हरी सुधि बिसरी॥

तथापि उनकी भाषा और शैली के व्यक्तित्व की छाप मुख्यतः उन कविताओं पर है, जो खड़ीबोली में लिखी गई हैं और जिनकी शब्दावली में फारसी और उर्दू के भी पुट हैं। यथा—

न बेदो कुरआँ से हमको मतलब न शरा औ शास्त्र से ताअलक।
है इल्मे सीना से दिल मुनौवर किताब हम लेके क्या करेंगे॥
न दोजखी होने का है खता, न जन्नती होने की तमन्ना।
अजाब से जब रहा न मतलब, सवाब हम लेके क्या करेंगे॥

भाषा की दृष्टि से, जहाँ तक प्रस्तुत ग्रंथ का सम्बन्ध है, सर्वाधिक महत्त्व उसकी भोजपुरी धारा का है। भोजपुरी-भाषा और साहित्य के सम्बन्ध में अबतक जो उच्च कोटि के अनुशीलनात्मक ग्रंथ प्रस्तुत अथवा प्रकाशित हुए हैं, वे हैं—डॉ० उदयनारायण तिवारी का 'भोजपुरी भाषा और साहित्य', डॉ० विश्वनाथ प्रसाद का 'भोजपुरी ध्वनिशास्त्र', डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय का 'भोजपुरी लोकगीतों का अध्ययन' तथा डॉ० सत्यव्रत सिन्हा की 'भोजपुरी लोकगाथा'। इनके अतिरिक्त रामनरेश त्रिपाठी, दुर्गाशंकर सिंह, देवेन्द्र सत्यार्थी आदि ने लोकगीतों तथा ग्राम-गीतों के संकलन और सम्पादन की दिशा में प्रशंसनीय कार्य किया है। प्रस्तुत ग्रंथ में अनेकानेक ऐसे संतों की भोजपुरी-रचनाओं के उद्धरण मिलेंगे, जिनकी ओर उपरिलिखित विद्वानों, मनीषियों अथवा अनुसंधायकों का ध्यान भी नहीं गया है। इन संतों की वाणियों का भाषा-शास्त्र की दृष्टि से तो महत्त्व है ही, सांस्कृतिक तथा धार्मिक दृष्टि से भी कम महत्त्व नहीं है। अभीतक जो संत-साहित्य हमें उपलब्ध हैं, उनमें कबीर, धरमदास, धरनीदास, दरियादास, शिवनारायण आदि संतों की कुछ भोजपुरी अथवा भोजपुरी-मिश्रित कविताएँ प्राप्त हैं। किन्तु सरभंग-सम्प्रदाय के अनुशीलन-क्रम में जिन संतों की भोजपुरी रचनाएँ मिलीं, उनमें से प्रमुखों का नामोल्लेख आवश्यक है। वे हैं—भिनकराम, टेकमनराम, योगेश्वराचार्य, मोतीदास, बोधीदास, नाराएनदास, डिहूराम, गोविन्दराम, बालखण्डीदास, केशोदास, अलखानंद, रजपत्ती भक्तिन, सुक्खू भगत आदि। इनके अतिरिक्त अनेक ऐसे पद प्राप्त हुए हैं, जिनके रचयिता संतों के नाम सुलभ नहीं हो सके हैं। यदि अघोर या सरभंग-सम्प्रदाय के समस्त विशाल साहित्य का भाषा तथा शैली की दृष्टि से अध्ययन किया जाय, तो भोजपुरी-भाषा के सम्बन्ध में जो वर्तमान ज्ञान-क्षितिज है, उसका कितना अधिक विस्तार होगा, इसका अनुमान सुगमता से किया जा सकता है।

डॉ० ग्रियर्सन ने पश्चिमी मागधी बोलियों का 'बिहारी' नाम दिया है। ये तीन हैं—भोजपुरी, मैथिली और मगही। इनमें क्षेत्र की व्यापकता की दृष्टि से सर्वप्रथम स्थान भोजपुरी का ही है। इसके चार उपविभाग हैं—उत्तरी भोजपुरी (सरवरिया तथा गोरखपुरी), दक्षिणी भोजपुरी, पश्चिमी भोजपुरी तथा नगपुरिया। इनकी व्यापकता के परिचय के लिए डॉ० उदयनारायण तिवारी के 'भोजपुरी भाषा और साहित्य' से उद्धरण देना उचित होगा।

"भोजपुरी" ४३००० वर्गमील में बोली जाती है। इसकी सीमा प्रान्तों की राजनीतिक सीमा से भिन्न है। भोजपुरी के पूरब में—इसकी दो बहनों, मैथिली तथा मगही, का क्षेत्र है। इसकी सीमा गंगा नदी के साथ-साथ, पटना के पश्चिम, कुछ मील दूरी तक पहुँच जाती है, जहाँ से सोन नदी के मार्ग का अनुसरण करती हुई वह रोहतास तक पहुँच जाती है। यहाँ से वह दक्षिण-पूरब का मार्ग ग्रहण करती है तथा आगे चलकर राँची के प्लेटो के रूप में एक प्रायद्वीप का निर्माण करती है। इसकी दक्षिणी-पूर्वी सीमा राँचो के बीस मील पूरब तक जाती है तथा बोंदू के चारो ओर घूमकर वह खरसावाँ तक पहुँच जाती है। यहाँ से यह उड़िया को अपने बायें छोड़ती हुई, पश्चिम की ओर मुड़

जाती है तथा पुनः दक्षिण और फिर उत्तर की ओर मुड़कर जशपुर-राज्य को अपने अन्तर्गत कर लेती है। यहाँ छत्तीसगढ़ी तथा बघेली को वह अपने बायें छोड़ देती है। यहाँ से भंडरिया तक पहुँचकर वह पहले उत्तर-पश्चिम और पुनः उत्तर-पूरब मुड़कर सोन नदी का स्पर्श करती हुई 'नगपुरिया' भोजपुरी की सीमा पूर्ण करती है।

"सोन नदी को पारकर भोजपुरी अवधी की सीमा का स्पर्श करती है तथा सोन नदी के साथ वह ८२° देशान्तर-रेखा तक चली जाती है। इसके बाद उत्तर की ओर मुड़कर वह मिर्जापुर के १५ मील पश्चिम की ओर गंगा नदी के मार्ग से मिल जाती है। यहाँ से यह पुनः पूरब की ओर मुड़ती है, गंगा को मिर्जापुर के पास पार करती है तथा अवधी को अपने बायें छोड़ती हुई एवं सीधे उत्तर की ओर 'ग्रांड ट्रंक रोड' पर स्थित 'तमंचाबाद' का स्पर्श करती हुई जौनपुर शहर के कुछ मील पूरब तक पहुँच जाती है। इसके पश्चात् घाघरा नदी के मार्ग का अनुसरण करती हुई वह 'अकबरपुर' तथा 'टाँडा' तक चली जाती है। घाघरा नदी के उत्तरी बहाव-मार्ग के साथ-साथ पुनः यह पश्चिम में ८२° देशान्तर तक पहुँच जाती है। यहाँ से टेढ़े मेढ़े मार्ग से होते हुए बस्ती जिले के उत्तर-पश्चिम, नेपाल की तराई में स्थित, यह सीमा 'जरवा' तक चली जाती है। यहाँ पर भोजपुरी की सीमा एक ऐसी पट्टी बनाती है, जिसका कुछ भाग नेपाल-सीमा के अन्तर्गत तथा कुछ भारतीय सीमा के अन्तर्गत आता है। यह पट्टी १५ मील से अधिक चौड़ी नहीं है तथा बहराइच तक चली गई है। इसमें थारू-बोली बोली जाती है, जिसमें भोजपुरी के ही रूप मिलते हैं।

"भोजपुरी की उत्तरी सीमा, अवधी की उस पट्टी को, जो भोजपुरी तथा नैपाली के बीच है, बाईं ओर छोड़ती हुई, दक्षिण की ओर ८३° देशान्तर-रेखा तक चली गई है। यह पूरब में रुम्मनदेई (बुद्ध के जन्मस्थान, प्राचीन लुम्बिनी) तक पहुँच जाती है। यहाँ से यह पुनः उत्तर-पूरब ओर, नैपाल-राज्य में स्थित बुटवल तक चली जाती है तथा वहाँ से पूरब होती हुई नैपाल-राज्य के अमलखगंज के १५ मील पूरब तक पहुँच जाती है। यहाँ से यह फिर दक्षिण ओर मुड़ती है। इसके पूरब में मैथिली का क्षेत्र आ जाता है। मुजफ्फरपुर के १० मील इधर तक पहुँचकर यह सीमा पश्चिम की ओर मुड़ जाती है तथा गंडक नदी के साथ-साथ वह पटना के पास तक जाकर गंगा नदी से मिल जाती है।···इसके बोलनेवालों की संख्या भी, अन्य दो बिहारी बोलियों, मैथिली तथा मगही, की संयुक्त संख्या से लगभग दुगुनी है।"

डॉ॰ तिवारी ने यह आश्चर्य प्रकट किया है कि भोजपुरी की इतनी व्यापकता एवं उसके बोलनेवालों का उसके प्रति अधिक अनुराग होते हुए भी उसमें लिखित साहित्य का क्यों अभाव है। इसका एक कारण उन्होंने यह दिया है कि मिथिला तथा बंगाल के ब्राह्मणों ने प्राचीन काल में संस्कृत के साथ-साथ अपनी मातृभाषा को भी साहित्यिक रचना के लिए अपनाया; किन्तु भोजपुरी-क्षेत्र के ब्राह्मणों ने संस्कृत पर ही विशेष बल दिया। आज भी भोजपुरी बोलनेवाले भोजपुरी को उतना प्रश्रय शिक्षा के माध्यम आदि के रूप में देना नहीं चाहते, जितना मैथिली बोलनेवाले अपनी बोली को। भोजपुरी बोलनेवाले

शायद ऐसा अनुभव करते हैं कि भोजपुरी को शिक्षा का माध्यम बनाने से राष्ट्रभाषा हिन्दी को क्षति पहुँचेगी। दूसरा कारण यह है कि जो विशाल साहित्य भोजपुरी में है भी—मुख्यतः निर्गुण-परम्परा के संतों की बानियों में—उसकी ओर अबतक हमने उपेक्षा की भावना रखी है और उसे गवेषणा की परिधि से बाहर रख छोड़ा है। आवश्यकता है कि हम भारत के एक विस्तृत भूखंड की भाषा—भोजपुरी—के मौखिक तथा लिखित साहित्य का संकलन एवं अध्ययन करें। सरभंग-संतों की शत-सहस्र फुटकल रचनाएँ इस अध्ययन में चार चाँद लगायेंगी—यह हमारा दृढ़ विश्वास है।

आज 'शिष्ट' साहित्य के नाम पर हम भोजपुरी के अनेकानेक समर्थ शब्दों को 'ग्राम्य' या 'स्लैंग' (slang) कहकर टाल देते हैं, किन्तु हमें भय है कि ऐसा करके हम एकरूपता तो लाते हैं; पर जीवन्त विविधता की हत्या भी करते हैं। उदाहरणतः, भोजपुरी-क्षेत्र में थोड़े-थोड़े भाव-भेद के साथ 'डंटा', 'सोंटा', 'लाठी', 'लट्ठ', 'लउर', 'बोंग', 'लबदा', 'छड़ी', 'लकड़ी', 'गोजी', 'पैना', 'दुखहरन' आदि अनेकानेक शब्द एक ही अर्थ—प्रहरण-माध्यम—के द्योतक हैं। क्या यह दुर्भाग्य की बात नहीं होगी यदि हम शिष्ट साहित्य अथवा खड़ीबोली के साहित्यिक रूप की वेदी पर इन जीवन्त शब्दों की बलि चढ़ा दें ? योगेश्वराचार्य के 'स्वरूप-प्रकाश' के पदों से कुछ उदाहरण लें—

तूं तो बान्हल जमपुर जइबऽ हो बैमनवाँ मनवाँ मोर।
धर्मराज जब पकड़ि मँगइहें, गींजन होइहें तोर॥
एक दिनवाँ जमु करि दौरा, गतर-गतर दिहें फोर।
छल बल कल करि माया बटोरी, कइलऽ लाख करोर॥
उहवाँ हाथ मींजि पछतइबऽ सूखी आस से ठोर।

× × ×

पाँच भँवर घुमि आगी लागे, धह-धह उठी धँधोर।

× × ×

पियाजी के पहुँचल पतिया हो, संग पिअरी निआर।
सुनि-सुनि उमगत छतिया हो, कब होइहें दिदार॥
आइ गइल डोलिया कहँरिया हो, रंग सबुजी ओहार।
पियवा के उनके बछेड़वा हो, मोरे घेरले दुआर॥
मिलि लेहु सखिया सलेहरि हो, करि भेंट अंकवार।

× × ×

चित चंचल होइ गइले हो, भइले भिनुसार।

... ...

होत सबेर पौ फाटल हो, मोरे गेल अन्हिआर।
बरिअतिया अगुताइल हो, डोलि लिहले कँहार॥

× × ×

जन्तों में जैबों अमरपुर हो, इहाँ कोइ ना हमार।
बाबा के संपति अगिआ लेसतीं हो, लेतीं सम्हारे सम्हार॥

× × ×

अवचक में पिया अइलन हो, लेले डोलिया कँहार।

× × ×

सुन मन मोरे ओरहनवाँ हो, अजहु सम्हार।

× × ×

दिन नियरइले गवनवाँ हो, अइले डोलिया कँहार।

... ...

छुटि गेल धइल धरोहर हो, छुटे अपन परार।

× × ×

कवन कसूर बिसरावल हो, धनि बारी बएस।

× × ×

बेस्या भई बहुत पतिबर्ता, तूं न छोड़त लबराई।

× × ×

गोड़ हम लागीले साहेबजी के हम धरीले हो राम।
किया हो राम, नइहर लागेले उचाट ससुरा मन भावेले हो राम॥

× × ×

कथी के काजल कथी के सेन्दुरिया।
कथिए में चलली पहिरि के सरिया॥

× × ×

कुछ अन्य सन्तों की बानियों से भी स्थालीपुलाक-न्याय से उद्धरण दिये जाते हैं—

भल कइलऽ मति बउरौलऽ ए साजन भल कइलऽ

× × ×

सब संतन मिलि सौदा कइले, जहाँ हंसन के लागल बा कचहरी।

× × ×

सुंदरता सोहावन पोखरी, अम्रित रस से भरब गगरी।

× × ×

खेलइत रहनीं सखिन्ह संगे रे, औचक में भेजले नियार।
सुनते चिहुंकि मनवां बेअगर भइले रे, फूटल नैना से धार।

× × ×

बघवा के खइले रामा घर के बिलैया,
बाघ पीठे फेंकले सिआर।

उँटवा के मुँहवा में जिरवा न पइसे,
चिउँटी मुख सँसरे पहार।

× × ×

बड़ा जोगे बड़ा तपे कुइयां हो खोनवले,
डोरिया बांटैत बड़ा देरी लागल हो राम।
डोरिया बांटि-बांटि कुइयां पर धइलों,
पनिया भरेले पांचो पनिहारिन हो राम।
टुटि गइले डोरिया रामा कुइयां भसिआइ गइले,
ठुमुकि चलेले पांचो पनिहारिन हो राम।

× × ×

हम इन उद्धरणों को और अधिक न देकर इतना ही कहना चाहेंगे कि ऐसी शत-सहस्र पंक्तियाँ और पद भोजपुरी ही क्यों, किसी भी लोकभाषा, को साहित्यिकता के धरातल पर आसीन करने में समर्थ हो सकेंगे। आवश्यकता है इनके वैज्ञानिक संकलन एवं अध्ययन की तथा एक सुव्यवस्थित भाषा-सम्बन्धी नीति की।

●

परिशिष्ट (२)

घ. शव-साधना; श्मशान-साधना

ङ. मारण-मोहनादि मंत्र

परिशिष्ट (घ)

शव-साधना : श्मशान-साधना

अथ वारतन्त्रोक्तः शव-साधनप्रकारः

मूलम्

पुरश्चरणसम्पन्नो वीरसिद्धिं समाश्रयेत् ।
पुत्रदार-धनस्नेह-लोभ-मोह-विवर्जितः ॥१॥
मन्त्रं वा साधयिष्यामि देहं वा पातयाम्यहम् ।
प्रतिज्ञामीदृशीं कृत्वा बलिद्रव्याणि चिन्तयेत् ॥२॥
पूर्वोक्तमुपहारादि समादाय तु साधकः ।
साधयेत् स्वहितां सिद्धिं साधनस्थानमाश्रयेत् ॥३॥
गुरुध्यानादिकं सर्वं पूर्वोक्तमाश्रयेत् सुधीः ।
वीरार्दनान्तिके भूमौ माया मोहो न विद्यते ॥४॥
ये चात्रेत्यादिमन्त्रेण भूमौ पुष्पाञ्जलित्रयम् ।
श्मशानाधिपतीनां तु पूर्ववद्बलिमाहरेत् ॥५॥
अघोराख्येन मन्त्रेण बलिसाधनमाचरेत् ।
सुदर्शनेन वा रक्षामुभाभ्यां वा प्रकल्पयेत् ॥६॥
माया स्फुरद्वयं भूयः प्रस्फुरद्वितयं पुनः ।
घोरघोरतरेत्यन्ते तन्नो रूपपदं ततः ॥७॥
चटयुग्मान्तारान्ते च प्रचटद्वितयं पुनः ।
हेयुग्मं रमयुग्मं च ततो बन्धुयुगं ततः ॥८॥
पातयद्वितयं वर्म फडन्तः समुदाहृतः ।
एकपञ्चाशद्वर्णोऽयमघोरास्त्रमयो मनुः ॥९॥
हालाहलं समुद्धृत्य सहस्रारस्वरूपकम् ।
वर्मास्त्रान्तं महामन्त्रं सुदर्शनस्य कीर्तितम् ॥१०॥
भूतशुद्धिं ततः कृत्वा न्यासजालं प्रविन्यसेत् ।
जयदुर्गाख्यमन्त्रेण सर्षपान् दिक्षु निःक्षिपेत् ॥११॥
तिलोऽसीति च मन्त्रेण तिलानपि विनिःक्षिपेत् ।
यष्टिविद्धं शूलविद्धं खड्गविद्धं पयोमृतम् ।
रज्जुविद्धं सर्पदष्टं चाण्डालैर्वाभिभूतकम् ॥१२॥
तरुणं सुन्दरं शूरं रणे नष्टं समुज्ज्वलम् ।
पलायनविशून्यं च संमुखे रणवित्तमम् ॥१३॥

स्वेच्छामृतं द्विवर्षं च वृद्धां स्त्रीं च द्विजं तथा।
अन्नाभावमृतं कुष्ठं सप्तरात्रोर्ध्वगं तथा ॥१४॥
एवञ्चाष्टविधं त्यक्त्वा पूर्वोक्तान्यतमं शवम्।
गृहीत्वा मूलमन्त्रेण पूजास्थाने समानयेत् ॥१५॥
चाण्डालाद्यभिभूतं वा शीघ्रं सिद्धिफलप्रदम्।
प्रणवाद्यस्त्रमन्त्रेण शवस्य प्रोक्षणं चरेत् ॥१६॥
प्रणवं कूर्चबीजं च मृतकाय नमोऽस्तु फट्।
पुष्पाञ्जलित्रयं दत्वा प्रणमेत्स्पर्शपूर्वकम् ॥१७॥
रे वीर परमानन्द शिवानन्दकुलेश्वर।
आनन्दशङ्कराकार - देवीपर्यङ्कशङ्कर ॥१८॥
वीरोऽहं त्वां प्रयच्छामि उत्तिष्ठ चण्डिकार्चने।
प्रणम्यानेन मन्त्रेण स्नापयेत्तदनन्तरम् ॥१९॥
तारं शब्दं मृतकाय नमोऽन्तं मन्त्रमुच्यते।
शवस्नापनमन्त्रोऽयं सर्वतन्त्रेषु देशितः ॥२०॥
धूपेन धूपितं कृत्वा गन्धादि वा प्रलिप्य च।
रक्ताक्तो यदि देवेश भक्षयेत्कुलसाधकम् ॥२१॥
गत्वा शवस्य सान्निध्यं धारयेत् कटिदेशतः।
यद्युपद्रावयेत् तस्य दद्यान्निष्ठीवनं मुखे ॥२२॥
पुनः प्रक्षालितं कृत्वा जपस्थानं समानयेत्।
कुशशय्यां परिस्तीर्य तत्र संस्थापयेच्छवम् ॥२३॥
एलालवङ्गकर्पूरजाती - खदिरसार्द्रकैः।
ताम्बूलं तन्मुखे दत्वा शवं कुर्यादधोमुखम् ॥२४॥
स्थापयित्वा तस्य पृष्ठं चन्दनेन विलेपयेत्।
बाहुमूलादिकट्यन्तं चतुरस्रं विभावयेत् ॥२५॥
मध्ये पद्मं चतुर्द्वारं दलाष्टकसमन्वितम्।
ततश्चैणेयमर्जिनं कम्बलान्तरितं न्यसेत् ॥२६॥
द्वादशाङ्गुलमानेन यज्ञकाष्ठानि दिक्ष्वथ।
इमं बलिं गृहण युग्मं गृहणापय युगं ततः ॥२७॥
विघ्ननिवारणं कृत्वा सिद्धिं प्रयच्छेति द्वयम्।
अनेन मनुना पूर्वं बलिं दद्याच्च सामिषम् ॥२८॥
स्वस्वनामादिकं दत्वा पूर्ववद् बलिमाहरेत्।
सर्वेषां लोकपालानां ततः साधकसत्तमः ॥२९॥
शवाधिस्थानदेवेभ्यो बलिं दद्यात्सुरायुतम्।
चतुष्षष्टियोगिनीभ्यो डाकिनीभ्यो बलिं दिशेत् ॥३०॥

पूजाद्रव्यं सन्निधौ च दूरे चोत्तरसाधकम् ।
संस्थाप्यासनमभ्यर्च्य स्वमन्त्रान्ते जपो पुनः ॥३१॥
फडित्यनेन मन्त्रेण तत्राश्वारोहणं विशेत् ।
कुशान् पादतले दत्वा शवकेशान् प्रमार्ज्य च ॥३२॥
दृढं निबध्य जुटिकां कृतसङ्कल्पसाधकः ।
शवोपरि समारुह्य प्राणायामं विधाय च ॥३३॥
वीरार्दनेन मन्त्रेण दिक्षु लोष्टान् समाक्षिपेत् ।
ततो देवं समभ्यर्च्य उपचारैस्तु विस्तरैः ॥३४॥
शवास्ये विधिवद्देवि देवताप्यायनं चरेत् ।
उत्थाय सम्मुखे स्थित्वा पठेद् भक्तिपरायणः ॥३५॥
वशो मे भव देवेश ममामुकपदं ततः ।
सिद्धिं देहि महाभाग भूताश्रयपदाम्बरः ॥३६॥
मूलं समुच्चरन् मन्त्री शवपादद्वयं ततः ।
पट्टसूत्रेण बध्नीयात् तदोत्थातुं न शक्यते ॥३७॥
ओं भीरु भीम भगाभाव भव्यलोचन भावुक ।
त्राहि मां देवदेवेश शवानामधिपाधिप ॥३८॥
इति पादतले तस्य त्रिकोणं चक्रमालिखेत् ।
तदोत्थातुं न शक्नोति शवोऽपि निश्चलो भवेत् ॥३९॥
उपविश्य पुनस्तस्य बाहू निःसार्य पार्श्वयोः ।
हस्तयोः कुशमास्तीर्य पादौ तत्र निधापयेत् ॥४०॥
ओष्ठौ तु संपुटौ कृत्वा स्थिरचित्तः स्थिरेन्द्रियः ।
सदा देवीं हृदि ध्यात्वा मौनी तु जपमाचरेत् ॥४१॥
श्मशाने प्रोक्तसंख्याभिर्जपं कुर्यात् कुलेश्वरि ।
अथवारम्भकालात्तु यावच्चोदयते रविः ॥४२॥
यद्यर्धरात्रिपर्यन्तं जप्ते किञ्चिन्न लक्षयेत् ।
तदा पूर्ववदर्घ्यादि समयादागतानि च ॥४३॥
कृत्वोपविश्य तत्रैव जपं कुर्यादनन्यधीः ।
चलासनाद् भयं नास्ति भये जाते वदेत्ततः ॥४४॥
यत्प्रार्थयसि देवेशि दातव्यं कुञ्जरादिकम् ।
दिनान्तरे प्रदास्यामि स्वनाम कथयस्व मे ॥४५॥
इत्युक्त्वा संस्कृतेनैव निर्भयस्तु पुनर्जपेत् ।
ततश्चेन्मधुरं वक्ति वक्तव्यं मधुरं ततः ॥४६॥
तदा सत्यं च संस्कार्यं नरं च प्रार्थयेत्ततः ।
यदि सत्यं न कुर्याच्च वरं वा न प्रयच्छति ।
तदा पुनर्जपेद्धीमानेकाग्रं मानसं भजन् ॥४७॥

न पश्येदद्भुते जाते न भाषेत न च स्पृशेत् ।
एकचित्तो जपं कुर्याद्यावत्प्रत्यक्षतां व्रजेत् ॥४८॥
न क्षुभ्येत भये जाते न लोभे क्षुब्धतां व्रजेत् ।
यदि न क्षुभ्यते तत्र तदा किंवा न लभ्यते ॥४९॥
स्त्रीरूपधारिणी देवी द्विजरूपधरः पुमान् ।
वरं गृहाणेति शब्दं वै त्रिवारान्ते वरं लभेत् ॥५०॥
साधुनाऽसाधुना वापि योषिच्चेद्वरदायिनी ।
तदा वीरपतेस्तस्य किं न सिध्यति भूतले ॥५१॥
वदत्यागत्यचेष्टं वा देहस्फूर्त्तिं करोति च ।
एतेन जायते वीरसिद्धिर्दद्यात्ततो बलिम् ॥५२॥
देवतां च गुरुं नत्वा विसृज्य हृदयं पुनः ।
स्थापयेत्तोषयेद् विद्वान् शवं तोये विनिःक्षिपेत् ॥५३॥
सत्ये कृते वरं लब्ध्वा संत्यजेच्च जपादिकम् ।
जातं फलमितिज्ञात्वा जूटिकां मोचयेत्ततः ॥५४॥
संप्रक्षाल्य च संस्थाप्य जूटिकां मोचयेत्पदे ।
पदचक्रं मार्जयित्वा पूजाद्रव्यं जले क्षिपेत् ॥५५॥
शवं जलेऽथ गर्त्ते वा निःक्षिप्य स्नानमाचरेत् ।
ततस्तु स्वगृहं गत्वा बलिं दद्याद्दिनान्तरे ॥५६॥
अथ यैर्याचितश्चाश्व-नर-कुञ्जर-शूकरान् ।
दत्वा पिष्टमयानेव कर्त्तव्यं समुपोषणम् ॥५७॥
यवक्षोदमयं वाऽपि शालिक्षोदमयं तथा ।
चन्द्रहासेन विधिवत् तत्तन्मन्त्रेण पातयेत् ॥५८॥
परेऽह्नि नित्यमाचर्य्य पञ्चगव्यं पिबेत्ततः ।
ब्राह्मणान् भोजयेत्तत्र पञ्चविंशतिसंख्यकान् ॥५९॥
त्रिरात्रं वाऽथ षड्रात्रं गोपयेत् कुलसाधनम् ।
शय्यायां यदि वा गच्छेत्तदा व्याधिः प्रजायते ॥६०॥
गीतं श्रुत्वा तु बधिरो निश्चक्षुर्नृत्यदर्शनात् ।
यदि वक्ति दिने वाक्यं तदा स मूकतां व्रजेत् ॥६१॥
पञ्चदशदिनान्ताद्धि देहे देवस्य संस्थितिः ।
गोब्राह्मणानां देवानां निन्दां कुर्यान्न कुत्रचित् ॥६२॥
देवगोब्राह्मणादींश्च प्रत्यहं संस्पृशेच्छुचिः ।
प्रातर्नित्यक्रियान्ते तु बिल्वपत्रोदकं पिबेत् ॥६३॥
ततः स्नायात्तु तीर्थादौ प्राप्ते षोडशवासरे ।
इत्यनेन विधानेन सिद्धिमाप्नोति निश्चिताम् ॥६४॥

इह भुक्त्वा वरान् भोगानन्ते यान्ति हरेः पदम्।
शवाऽभावे श्मशाने वा कर्त्तव्या वीरसाधना ॥६५।

अथ मुण्डमालातन्त्रोक्तः शवसाधनप्रकारः

अथवाऽन्यप्रकारेण कुर्याद्वै वीरसाधनम् ।
संग्रामे पतितान् प्रेतानानीय विधिपूर्वकम् ॥१॥
अष्टदिक्षु विधायाष्टौ नवमं मध्यसंस्थकम् ।
रज्ज्वा-रज्ज्वा रज्जुनाथ रोपिते दृढकीलके ॥२॥
चन्दनादिभिरभ्यर्च्य सुगन्धिकुसुमादिभिः ।
अलङ्कृत्य प्रयत्नेन मध्यमस्यास्य मस्तकम् ॥३॥
ललाटे पूजयेद् वीमुपचारैः समुज्ज्वलैः ।
बलिं दद्यादष्टदिक्षु माषमांसैः सुराशवैः ॥४॥
पायसैर्मधुसंयुक्तैः कुसुमैरक्षतैस्तथा ।
ततो जपं प्रकुर्वीत शवस्य हृदि निर्भयः ॥५॥
उपविश्यासने शोणे व्याघ्रचर्मविनिर्मिते ।
पञ्चायुतं प्रजप्याथ पूर्ववत्कल्पयेद्बलिम् ॥६॥
व्याघ्रवानर - भल्लूक - शृगालोल्कामुखानथ ।
दृष्ट्वा नैव भयं कुर्यान्मायामेव विचिन्तयेत् ॥७॥
ततोऽनुभावं लब्ध्वाथ दद्याच्छागादिकं बलिम् ।
तथाऽक्लिष्टमना भूत्वा शवं निःक्षिप्य वारिणि ॥८॥
द्विजेभ्यो दक्षिणां दद्यात् साधकेभ्यो विशेषतः ।
सुवेशाभ्यस्तथा स्त्रीभ्यः कुमारीभ्यः प्रयत्नतः ॥९॥
वसनं भूषणं तद्वन्मधुरद्रव्यभोजनम् ।
स्वयं तथैव भुञ्जीत नराणां तु विवर्जयेत् ॥१०॥
एतेन तु महासिद्धिर्जायते भुवि दुर्लभा ।
राज्यं श्रियं परानन्दो वैरिराष्ट्रजयं तथा ॥११॥
जगन्मोहनवश्यादि कवित्वकौशलं तथा ।
संग्रामे च तमुद्दिश्य साधकं वैरिवाहिनी ॥१२॥
पलायते प्रगल्भोऽपि किम्पुनः क्षुद्रवैरिणः ।
नानाविधाष्टसिद्धीनां साधको भाजनं भवेत् ॥१३॥
इदं मयोक्तं देवेशि न प्रकाश्यं कदाचन ।
एतत्ते परमं गोप्यं विशेषात् पशुसंसदि ।
रहस्यमेतत् परममागमस्यैकजीवितम् ॥१४॥

हिन्दी-रूपान्तर[1]

अपने मन्त्र का एक पुरश्चरण कर लेने के बाद शवसाधन का अधिकारी होता है। साधक अपने पुत्र, स्त्री, धन का स्नेह, लोभ और मोह को छोड़कर साधन करे। या तो मन्त्र का साधन करूँगा या शरीर का पात करूँगा, ऐसी प्रतिज्ञा करके साधक साधन प्रारम्भ करे। शव साधन के सभी उपकरण साथ लेकर श्मशान की ओर चले। पहले गुरु का ध्यान करके साधन प्रारम्भ करे। वीर-साधन की भूमि में माया-मोह का विनाश हो जाता है। 'ये चात्रसंस्थिता देवा श्मशानालयवासिनः। साहाय्यं तेऽनुतिष्ठन्तु वीरसाधनकर्मणि॥' इस मन्त्र से तीन बार पुष्पांजलि देवे। इसके बाद श्मशान-देवता को मांस वगैरह से वलि दे। अघोर-मन्त्र से—(ह्रीं स्फुर स्फुर प्रस्फुर प्रस्फुर घोर घोरतर तन्नोरूप चट चट प्रचट प्रचट हे हे रम रम बन्ध बन्ध घातय घातय हुं फट्) अथवा सुदर्शन मन्त्र से—(हालाहल सहस्रार हुं फट्) आत्म-रक्षा करे भूतशुद्धि, अङ्गन्यास, करन्यास करके जय दुर्गा (दुर्गे दुर्गे रक्षिणि स्वाहा) मन्त्र से दसो दिशाओं में सरसों छींटे। 'तिलोऽसि सोमदेवत्यो गोसवो देवनिर्मितः प्रत्नमद्भिः पृक्तः पितॄन् लोकान् प्रीणाहि नः स्वाहा,—इस मन्त्र से दसो दिशाओं में तिल छींटे। लाठी के द्वारा, शूली के द्वारा, तलवार के द्वारा, पानी में डूबा हुआ, फाँसी के द्वारा, सर्प के द्वारा, चाण्डाल के द्वारा, या तरुण, सुन्दर, शूर, बिना पीठ दिखाये रण में मरा हुआ मृतक इस काम में श्रेष्ठ है। अपनी इच्छा से मरा हुआ, दो वर्ष का बूढ़ा, स्त्री, ब्राह्मण, अन्न के बिना मरा हुआ, कुष्ठ रोग से मरा हुआ, जिसको सात रात बीत गई हो, ऐसा मृतक शवसाधन में वर्जित है। पूर्वोक्त प्रशस्त शव को पूजा-स्थान में ले आवे। मूल मन्त्र से उसको यथास्थान रखे। चाण्डाल के द्वारा मारा गया मृतक साधन में सबसे उपयुक्त है। प्रणव (ओम्) अस्त्र (फट्) 'ओं फट्' इस मन्त्र से शव को जल से सिक्त करे। 'ओं हुम् मृतकाय नमः', इस मन्त्र से तीन बार पुष्पांजलि देकर शव को छूकर प्रणाम करे। प्रणाम करने के समय १८वाँ श्लोक पढ़े। इस मन्त्र से प्रणाम करके शव को अधोमुख सुलावे। शव के सुलाने में नीचे लिखे मन्त्र को पढ़े—'ओं मृतकाय नमः'। शव को धूप से धूपित करके चन्दन आदि सुगन्धित पदार्थ उसके शरीर में लगावे। यदि शव रक्त से लथपथ हो, तो साधक कुलद्रव्य (शराब) पीकर साधन करे। शव के नजदीक जाकर उसकी कटि (डाँड़) पकड़े। यदि शव में संचार हो, तो उसके मुँह में थूक देवे। फिर उसको धोकर पूजा के स्थान में ले आवे। कुश या कुश की चटाई पर शव को अधोमुख रखे। इलायची, लवङ्ग, कर्पूर, जावित्री, खैर (कथ) आदि के साथ पान उसके मुँह में डाले। अधोमुख रखे हुए शव की पीठ पर चन्दन लगाकर बाँह की जड़ से कटि (डाँड़) पर्यन्त एक चतुरस्र मण्डल जान कर उस पर भूपुर के साथ अष्टदल कमल सिन्दूर या रक्तचन्दन से लिखे। उस अष्टदल पर काले हरिण का चर्म, उसके ऊपर कम्बल का आसन रखे। बारह अंगुल की चार खदिर की कीलें चारों दिशाओं में गाड़े। 'इमं वलिं गृह्ण गृह्ण गृह्णापय गृह्णापय विघ्ननिवारणं कृत्वा सिद्धिं प्रयच्छ प्रयच्छ' इस मन्त्र से सामिष वलि भी लोकपालों को अपने-अपने नाम से समर्पित करे। शव की अधिष्ठात्री प्रधान देवता को सुरा (शराब) के साथ वलि समर्पित करे। योगिनी, डाकिनी आदि आठ शक्ति को वलि देकर पूजा के सभी साधनों को अपने से दूर रखकर आसन-मन्त्र से ('मणिधरिणि वज्रिणि हुं फट् स्वाहा') आसन को शुद्ध कर लज्जाबीज (ह्रीं) को जपे॥ ३१॥ 'फट्' इस मन्त्र से घोड़े के समान शव पर चढ़े। शव के पाँव के नीचे कुश डालकर शव के केश (शिखा) को सँवारकर उसकी जूटिका (जूड़ा) बाँधे। शव पर चढ़कर पूरक, कुम्भक, रेचक प्राणायाम करे। इसके बाद मूल मन्त्र से दसो दिशाओं में दस ढेला फेंके। इसके बाद शव के मुँह में प्रधान देवता की पूजा करके उसीका तर्पण करे। आसन से उठकर शव के सामने खड़ा होकर ३६वाँ श्लोक पढ़े। तब मूल मन्त्र को पढ़कर शव के दोनों पाँव को रेशम की डोरी से बाँधे, जिससे सजीव होने पर वह उठ न सके ३८वाँ श्लोक पढ़कर शव के तलवे में त्रिकोण-यन्त्र लिखे। तब मृतक उठ नहीं सकता और निश्चल हो जाता है। फिर शव के ऊपर रखे

हुए आसन पर बैठकर उसकी दोनों बाहें निकालकर दोनों हाथ कुश पर रखे। शव के दोनों हाथ पर दोनों पाँव रखकर अपने नीचे के ओठ को ऊपर के ओठ से दबाकर इन्द्रियों और चित्त को स्थिर रखकर चिता-साधन में कही गई संख्या के अनुपात से मन्त्र जपे—जैसे १ अक्षर का मन्त्र हो, तो १०००० जप। दो अक्षर का मन्त्र हो, तो ८००० । तीन अक्षर का मन्त्र हो, तो ५००० जप करे। अथवा मध्यरात्रि से शुरू करके जब तक सूर्य्य का उदय हो। आधी रात के बाद आधा समय बीत जाने पर भी यदि कुछ लक्षित न हो, तो पूजा के सामान से फिर प्रधान देवता को पूजकर निर्भय होकर फिर मन्त्र का जप शुरू करे। आसन पर बैठ जाने पर भय नहीं रहता, यदि अकस्मात् भय मालूम हो तो ४५वाँ श्लोक पढ़े। फिर, निर्भय होकर जप प्रारम्भ करे। इस प्रकार जप करने पर भी यदि वह शव सत्य न करे या देवता वर न दे, तो फिर निश्चल होकर मन्त्र का जप करे। कोई अद्भुत चीज सामने आवे, तो उसे देखने की कोशिश न करे। कुछ बोले नहीं, न किसी चीज का स्पर्श ही करे। तबतक जप करता रहे जबतक देवता प्रत्यक्ष न हो जाय। भय आने पर क्षोभ न करे, लोभ का कारण उपस्थित होने पर लोभ न करे। इस प्रकार स्त्री के रूप में या ब्राह्मण के रूप में देवता प्रत्यक्ष होकर वर माँगने की प्रार्थना करेगा। यदि स्त्री-रूप धारिणी देवता वर माँगने की प्रार्थना करे, तो साधक के लिए बहुत उत्तम है। वह देवता अभिलषित फल को देता है, शरीर में एक तरह की स्फूर्त्ति आ जाती है, इस प्रकार देवता का प्रत्यक्ष होने पर साधक बलि से देवता को सन्तुष्ट करे। देवता और गुरु को प्रणाम करके शव के ऊपर से उतर जाय, उसके बन्धन को खोलकर पीठ और दोनों पाँवों में लिखे। चक्र को मिटाकर शव को जल में प्रवाहित कर दे। अथवा सत्य करने पर, वर लाभ करने पर जप आदि को छोड़ देना चाहिए। फल प्राप्त हो गया, यह समझकर शव की जूटिका खोल देवे। पीठ और शव के पाँव का चक्र मिटाकर पूजा-द्रव्य सहित शव को गड़े या जल में डाल दे। स्नान करके अपने घर आवे। दूसरे दिन घोड़ा, नर, हाथी, शूकर में से कोई बलि दे। यव के आटे या चावल के आटे का पूर्वोक्त चार बलि-द्रव्यों में कोई एक बनाकर ४६ अंगुल के खड्ग (चन्द्रहास) से उसको काटे। दूसरे दिन नित्य पूजा करके पंचगव्य का पान करे।

इसके बाद २५ ब्राह्मणों को मधुर द्रव्य से भोजन करावे। तीन या छह रात्रि तक अपने साधन को गुप्त रखे। यदि साधक १५ दिन तक अपने पहले बिछावन पर सोवे, तो रोगी हो जाय। गीत सुने, तो बहरा हो जाय। नाच देखे, तो अंधा हो जाय। यदि दिन में बोले, तो गूँगा हो जाय। १५ दिन तक साधक के शरीर में देवता का वास रहता है, तबतक गाय, ब्राह्मण का प्रतिदिन दर्शन तथा स्पर्श करे। प्रतिदिन प्रातःकाल नित्यकर्म के बाद बिल्वपत्र का स्वरस पीवे। १६वें दिन किसी तीर्थ में जाकर स्नान करे। इस तरह साधन करने पर साधक सिद्ध हो जाता है और उसे अणिमा आदि आठ सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। इस लोक में मर्यादा के साथ भोग करके अन्त में ईश्वर-सायुज्य को प्राप्त करता है। यदि शव नहीं मिल सके, तो श्मशान ही में वीरसाधन करे।

अब मुण्डमाला-तन्त्र के अनुसार शव-साधन कहते हैं—संग्राम में मरे हुए शव को विधिपूर्वक लाकर आगे दिशाओं में आठ, तथा बीच में नवम, यज्ञीय काष्ठ का कील गाड़े। प्रत्येक कील के साथ रेशम की डोरी से शव को दृढ़ करके बाँधे। चन्दन आदि सुगन्ध द्रव्यों से, फूल वगैरह से शव को अलंकृत करके उसके मस्तक को भी अलंकृत करे। शव के ललाट पर प्रधान देवता की पूजा करे। आगे दिशाओं में श्मशान-देवता के लिए मद्य, मांस वगैरह से बलि देवे पायस में मधु मिलाकर अक्षत और फूल भी बलि में चढ़ावे। शव को उत्तान सुलाकर उसके हृदय पर निर्भय होकर व्याघ्रचर्म के ऊपर लाल वर्ण का आसन लगाकर १०००० इष्ट मन्त्र का जप करे। बाघ, बन्दर, भालू, गीदड़, उल्कामुख आदि जन्तु यदि डराने की कोशिश करे, तो उसको देखकर भय न करे। उसको माया ही समझे। इस प्रकार जप करते-करते जब देवता प्रत्यक्ष हो जाय, तब उससे वर की प्रार्थना करके छाग वगैरह पशु की बलि चढ़ावे। स्वस्थ चित्त होकर शव को जल में प्रवाहित करके साधक ब्राह्मणों को दक्षिणा देवे। सुन्दर वेशवाली स्त्री, कुमारी वगैरह को भी यथाशक्ति दान दे। वस्त्र, भूषण, मधुर द्रव्य आदि से पूर्वोक्त साधक, स्त्री, कुमारी को प्रसन्न

करे। अपने भी वही द्रव्य भोजन करे, जो उन लोगों को भोजन करावे। इस काम से संसार में दुर्लभ सिद्धि को साधक प्राप्त कर लेता है। राज्य, लक्ष्मी, परम आनन्द, शत्रु-राष्ट्र की विजय, संसार का मोहन, वशीकरण आदि सिद्ध होता है। संग्राम में शत्रु की सेना उसको देखकर भाग जाती है। बड़े-बड़े शत्रु भी भागते हैं, छोटे शत्रु का क्या ठिकाना। साधक आठों तरह की सिद्धि का भाजन बन जाता है। यह साधन अत्यन्त गोपनीय है। खासकर पशु-साधकों को यह कभी न बताना चाहिए।

परिशिष्ट (ङ)

मारण-मोहनादि मंत्र[1]

पिछले परिशिष्ट में तंत्रशास्त्रोक्त शव-साधन-विधि का उल्लेख किया गया है। यहाँ वास्तविक साधकों के सम्पर्क से जो सूचनाएँ मिलीं, उनके आधार पर न केवल श्मशान-सिद्धि का कुछ विवरण दिया जायगा, अपितु कुछ अन्य मंत्रों का भी उल्लेख होगा।

औघड़ मत की साधना मुख्यतः दो प्रकार की है—एक वैष्णवी; दूसरी श्मशानी। वैष्णवी साधना में मा दुर्गा की पूजा होती है और उसमें मदिरा, मांस इत्यादि वर्जित हैं। फल, गुड़ आदि की बलि से ही पूजा होती है। किन्तु श्मशानी साधना में शव के माध्यम से प्रेतात्मा को वश में किया जाता है। जब शरीर से आत्मा निकलती है, तब वह तेरह दिनों तक अपने घर में ही चक्कर काटती है; फिर वह अपने कर्मानुसार सीढ़ियों पर चढ़ती है; जबतक वह पाँचवीं सीढ़ी नहीं पार करती, तब तक उसे श्मशान में रहना पड़ता है। इसी बीच साधक उसको वश में करके उससे अपना काम लेता है। शनि या मंगल को, विशेषतः विजया-दशमी के अवसर पर, १० बजे रात्रि या उससे परे, साधक को श्मशान में जाना चाहिए। उसे घर से घी, दारू, मिठाई, पान, फूल, धूप, कच्ची कपटी, सिन्दूर, दूध, अरवा चावल, आक की सूखी लकड़ी, कटहल की पत्ती ले जाना चाहिए। जाते समय देह-रक्षा के लिए निम्नलिखित मंत्र को पढ़ना चाहिए—

बामन की चोली
कलिका के बान
—के मारौं समोखी के बान।
सौर-बान शक्ति-बान
सिंह चढ़े जीव
तुरत कर दे पानी॥

गंगा या किसी अन्य नदी से मुर्दे को बाहर कीजिए—अच्छा हो कि वह किसी तेली का एक-डेढ़ साल का मृत शिशु हो। फिर उसे स्नान कराइए; सारे अङ्ग में घी लगाइए; घी से दीया जलाइए और उसके नजदीक बैठ जाइए। मिट्टी का चूल्हा बनाकर उस पर श्मशान के खप्पर में दूध और चावल डालकर खीर बनाइए। तैयार होने पर निम्नलिखित मंत्र का इक्कीस बार पाठ कर देवी का आवाहन कीजिए—

या देवी सर्वभूतेषु सर्वमङ्गलमङ्गले।
शिवे सर्वार्थसाधिके शरण्यतमे बके (?)
गौरि नारायणि नमोस्तु ते।
सर्वे अठर अनंग हलाहल पानीयम् ददामि करिष्यामि इति कामाक्षीदेव्यै नमः।
—दोहाई नोनिया चमारिन के।

ऐसा करने से मा की ज्योति का दर्शन होगा ; साधक के दोनों हाथ में, जो चिता पर बनी हुई खीर रहेगी, उसे कालभैरव उठा लेंगे। मुर्दा जबड़ा खोलेगा और बन्द करेगा ; तब आप खीर देते जाइए। अब दूसरा मंत्र पढ़िए—

कालीं कराल वदनां घोराम्
मुक्तकेशीं चतुर्भुजाम्
देवीं कामाक्षीं रुद्राम्
देहि मे अविष्ठानां (?) प्रेतपिशाचानाम्

—इति कामाख्यादेव्यै नमः।

तब दस-बीस शव वहाँ आवेंगे। आप रेखा के उसी पार रहिए और वहीं से कटहल के पत्ते पर दारू और खीर देते जाइए। उसे वे प्रेतयोनि के लोग लेते जायेंगे। श्मशान के सरदार सबसे पीछे आयगा। वे दारू की बोतल ले लेगा और पीकर लौट जायगा। अगर उसने दारू पीकर बोतल लाश पर फेंक दी, तो, मानिए, श्मशान-सिद्धि हो गई ; अगर इधर-उधर फेंक दी, तो आपकी सिद्धि अधूरी रही। सिद्धि की सूचना पाकर आप मृत शिशु को घृत से लिप्त करके फिर स्नान कराइए। अब छुरी से पहले नीबू काट लीजिए और फिर छुरी को धोइए। इसके बाद निम्नलिखित मंत्र से छुरी को बाँधिए—

माटी माटी माटी महादेव गले कंठी
डांड बन्द करे दो लिलार बन्द करे दो
बाघ ओ भाल चोर चोट्टा
भूत प्रेत डायन जोगिन शाकिन

—दोहाई नरसिंह गुरु के बन्दी पाट !

इस मंत्र से छुरी को पाँच बार बाँधिए। इसके बाद जो अङ्ग चाहे, मुख्यतः कलाई या खोपड़ी की हड्डी, काट कर रख लीजिए। इस हड्डी में सिन्दूर और घी का लेप कीजिए। अन्त में एक बार धूप देकर उसे लेते हुए घर चले आइए। आप को वह प्रेत (श्मशान या 'मसान') सिद्ध हो गया, अर्थात् वह आप के वश में हो गया। अब तो वह आपके असंभव संकल्पों को भी संभव कर दिखायगा।

यदि मा को ज्योति के दर्शन में देर हुई, अर्थात्, सिद्धि नहीं मिल सकी, तो जलती हुई चिता के मुर्दे की छाती पर बैठकर (?) चिता की आग में ही आँटे के साथ छाती के वामांग के नीचे का मांस मिलाकर रोटी पकाइए और उसे खाइए। यह क्रिया साल में कम-से-कम एक बार, अर्थात् आश्विन शुक्ल अष्टमी (दुर्गा-पूजा) को अवश्य करनी चाहिए।

यह नहीं समझ लेना चाहिए कि साधक को उसका गुरु उपर्युक्त श्मशान-क्रिया के लिए तुरत आज्ञा दे देगा। कई महीनों तक, कभी-कभी वर्षों तक, गुरु की सेवा करनी

होगी और उससे मंत्र सीखने होंगे। उसे पहले 'देह ठीक करने' का मंत्र सीखना होगा ;

यथा—

सीक धगा बाँध बाँधो
बीन गाँठी बाँध बाँधो बाँधो संसार
हाथ चबूका मारा पड़े
भूता धूप धुपाय।

—दोहाई नरसिंह गुरु के बन्दी पाट !

एक दूसरा मन्त्र दिया जाता है जिसके द्वारा इष्ट पुरुष या रोगी के चारों तरफ का 'सीवाना' (सीमा) बाँधा जाता है—

ओढ़उल कली रक्त की माला
तापर डायन करे सिंगार
काला कौआ काँव-काँव करे
रे कागा···
काढ़ कलेजा ला दे तोहिं मोरे हाथ।
ना लावे तो छह महीना झुलावे खाट

—दोहाई नोनिया चमारिन के !

जिस साधक ने इन कुछ मंत्रों से लेखक को परिचित कराया, उनका कहना था कि उन्हें इस प्रकार के लगभग डेढ़-दो सौ मंत्र याद हैं। जिस 'मंत्र का बटुआ' शीर्षक ग्रन्थ की चर्चा इस परिशिष्ट की प्रथम पादटिप्पणी में की गई है, उसमें सैकड़ों प्रयोजनों के विभिन्न मंत्र दिये गये हैं। केवल कुछ नमूने के तौर पर यहाँ अविकल उद्धृत किये जाते हैं।

देह-बन्धन-मंत्र—

नीचे बांधू धरती ऊपर बांधू अकाश कामनी बांधो पताल के डाकनी बांधो ऊत बांधो भूत बांधो चारो दिसा डाइन के गुण बांधो ओझा का खिसा नजर बांधो गुजर बांधो ठहरानी पेसल पोसल सर्प बांधो मलयागिरि लपटानी बायमेत के नजर बांधो फेर ना मांगे पानी तीर बांधो तरकस बांधो बांधो तब होवे कल्याणी। दोहाई गुरु गोरखनाथ मछंदर जोगी के, दोहाई ईश्वर महादेव गौरा पारवती, दोहाई नैना जोगिन जिरिया तमोलिन हिरिया धोबिन कमख्या बासिन के॥

शत्रु-नाशन-मंत्र—

ओं ऐं ह्रीं महा महाविकराल भैरव उदल काय मम शत्रुं दह दह हन हन हन पच पच उन्मूलय उन्मूलय ओं ह्रां ह्रीं ह्रूं फट्॥

(श्मशान में भैंसे के चर्म पर बैठकर ऊन की माला लेकर इस मंत्र को जपे ; पश्चात् सवा सेर सरसों का हवन करे ; सात रात ऐसा करने से निश्चय शत्रु का नाश हो।)

शत्रु-विद्वेषण-मंत्र—

ओं गां गीं गुं हासति मज्जोल ह्रां ह्रां ह्रां घ्वां घ्वां घ्वाँ आहि आहि कों ह्रीं ह्रीं ॥

(साही के चर्म पर बैठकर एतवार मंगल की रात में इस मंत्र को पढ़-पढ़ उड़द और साही के रोम मिलाकर अग्नि में आहुति दे। तत्पश्चात् साही का काढ़ा अभिमंत्रित कर शत्रु की देहली के नीचे गाड़ देने से परस्पर विग्रह हो।)

सर्वजन-वशीकरण-मंत्र—

ओं ताल तुवरी दह दह दरै माल माल आं आं हुं हुं हुं हें हें काल कमानी कोट कारिया ओं ठः ठः ॥

(राजहंस का पंख और कोचनी के फूल, सुबह गौ के दूध में खीर पकाकर मंत्र पढ़कर अग्नि में आहुति करे, चित्त में वश करनेवाले का ध्यान करे, तत्काल सिद्धि होय ॥

प्रेत-वशीकरण-मंत्र—

ओं साल सलीता सोसल बाई काग पढंता धाई आई ओं लं लं लं ठ· ठः ॥

(शनैश्चर की अर्द्धरात्रि में नग्न हो बबूल के वृक्ष के नीचे आक की लकड़ी जलाकर मंत्र पढ़-पढ़ काले तिल उड़द की आहुति दे। जब प्रेत सम्मुख आ बातें करे, उस समय दृढ़ हो अपना हाथ काटकर सात बूँद रक्त को पृथ्वी पर टपकावे, प्रेत सदा वश में रहे। जब बुलाना हो, रात्रि में मल-त्याग कर, आबदस्त ले शेष पानी बबूल पर चढ़ाता जाय, मंत्र पढ़ता जाय, तुरत आ जाय।)

टिप्पणियाँ

परिशिष्ट (क)—दे० पृ० १८७

१. इस परिचय में क्रूक ने निम्नलिखित आधारभूत साहित्य का उल्लेख किया है—

(१) Beal, Si-yu-ki, Buddhist Records of the W. World,i, 55.
(२) Watters, Yuan Chuang's Travels in India, i, 123.
(३) आनन्दगिरि : शंकरविजय।
(४) H. H. Wilson, Essays, 1. 264.
(५) भवभूति : मालतीमाधव।
(६) Wilson, Theatre of the Hindus, ii, 55.
(७) Frazer, Lit. History of India, 239 ff.
(८) प्रबोधचन्द्रोदय (J. Taylor द्वारा अँगरेजी-अनुवाद; ३८ पृष्ठ)
(९) दबिस्तॉ (Shea Troyer द्वारा अँगरेजी-अनुवाद, ii, 129).
(१०) Havell; Benares, The Sacred City, पृ० ११६ आ).
(११) M. Thevenot; Travels.
(१२) Ward, View of the Hindoos (1815) ii, 373.
(१३) Tod, Travels in W. India. (1839) पृ० ८३ आ०

(१४) Buchanan, E. India, ii, 492 पृ०

(१५) The Revelations of an Orderly.

(१६) Monier-Willians, Hinduism and Brahmanism, पृ० ५६.

(१७) Barth, Religious of India, पृ० ५६.

(१८) Wilson, Essays, i, 21,264.

(१९) Panjab Notes and Queries, iv. 142; ii, 75.

(२०) H. Balfore (JAI [1897] xxvi, 340 ff.)

(२१) Colebrooke, Essays, ed, 1858, 36.

(२२) Crooke. Pop. Religion ii, 204ff.

(२३) Pliny, HN xxviii, 9.

(२४) Crooke, Tribes and Castes, i, 26; T. and Castes of N.W. Provinces (1896), i, 26ff.

(२५) कालिका पुराण ।

(२६) Hopkins, Rel. of India, 490, 533.

(२७) Gait, Census Rep. Bengal, 1901, i, 181 F.; Assam, 1891, i,80; Pop. Rel. ii, 169 ff.

(२८) Hartland, Legend of Perseus, ii, 278 ff.

(२९) Hadden, Report Cambridge Exped. v. 321.

(३०) JAI x. 305; Halenesians, 222; xxxii, 45; xxvi, 347 ff., xxvi,357, ile., xix, 285.

(३१) Johnston, Uganda, ii, 578, 692, f.

(३२) कथा सरित्सागर (Tawney) i, 158, ii, 450,594.

(३३) Temple-steel, Wideawake Stories, 418.

(३४) Fawcett, Bulletin of the Madras Museum, iii, 311.

(३५) Man, ii, 61.

(३६) Waddell, Among the Himalayas,401.

(३७) Lhasa and its Mysteries, 220, 221, 243, 370.

(३८) Paulus Diaconus, Hist. Langot, ii, 28 in Gummere Germ. Orig., 120.

(३९) Folk-lore, vii, 276; xiv, 370.

(४०) Mitchell, The Past in the Present, 154.

(४१) Rogers, Social Life in Scotland, iii, 225.

(४२) Black, Folk Medicine, 96.

(४३) Buchman, Hamillon, Account of the Kingdom of Nepal,35.

(४४) PASB, iii, 209, f. 300 ff.; iii, 241, f; iii, 348 ff.; iii (1893) 197ff. (E. T. Leith)

(४५) North Indian Notes and Queries, ii, 31.

परिशिष्ट (ग)—देखिए पृ० १६१

१. यह ग्रंथ अभी हस्तलिखित ही है। इसका मुद्रण अभी नहीं हुआ है। इसके संग्रहकर्त्ता हैं बरजी (मुजफ्फरपुर) के स्वरूपसंग के बाबा बैजूदास। उसी स्वरूपसंग के श्रीराजेन्द्रदेव के सौजन्य से यह उपलब्ध हुआ है। पद्यों की संख्या हस्तलिखित प्रति में दी हुई संख्याओं के आधार पर उद्धृत की गई है।

परिशिष्ट (घ)—देखिए पृ० २५६

१. देखिए तारामक्तिसुधार्णव, आर्थर एवेलो द्वारा सम्पादित। हिन्दी रूपान्तरकार हैं श्रीजगदीश शर्मा ठक्कुर।

परिशिष्ट (ङ)—देखिए पृ० २६६

१. इस सम्बन्ध में मुझे भागलपुर (मुहल्ला जोगसर)—निवासी श्रीसीताराम वर्मा से सूचनाएँ प्राप्त हुईं। मैंने बाबा सुखदेवदास के पास 'मंत्र का बटुआ' शीर्षक ग्रंथ भी देखा, जो आर० पी० कन्धवे बुकसेलर, गया द्वारा प्रकाशित हुआ है। किंतु इसकी प्रतियाँ दुर्लभ हैं।
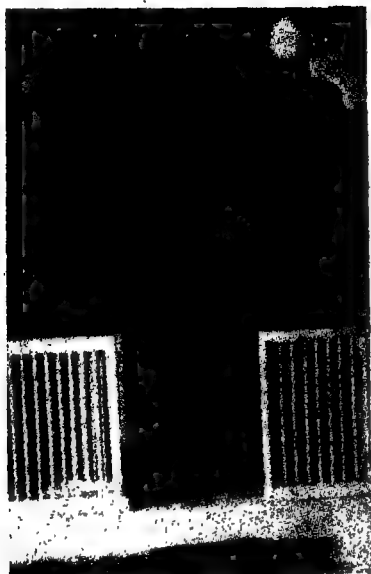
गोसाईं बाबा जैनारायनरामजी महाराज की समाधि

पं० गणेश चौबे
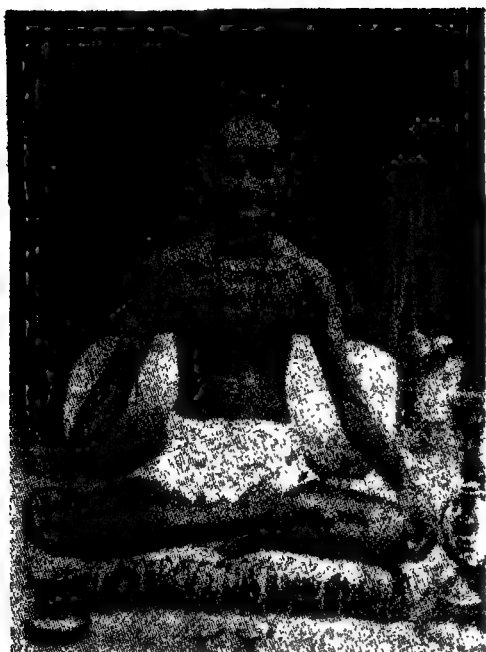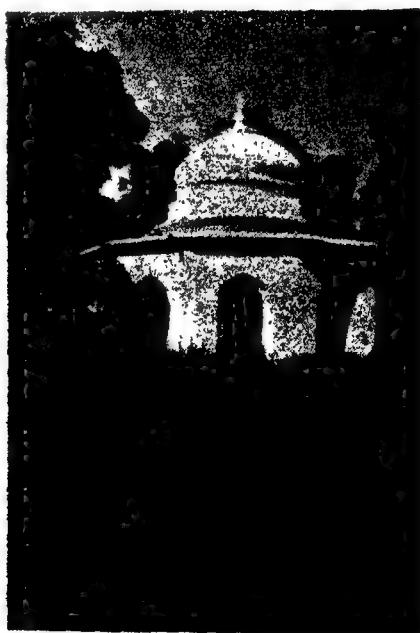
बाबा गुलाबचन्द 'आनन्द'

माधोपुर का सरभंग-सम्प्रदाय का मठ

झखरा-मठ के वर्त्तमान महंथ और उनके शिष्य

औघड़-मठ का तख्त (वाराणसी)

हरपुर मठ के सरभंगी साधु—दाहिनी ओर
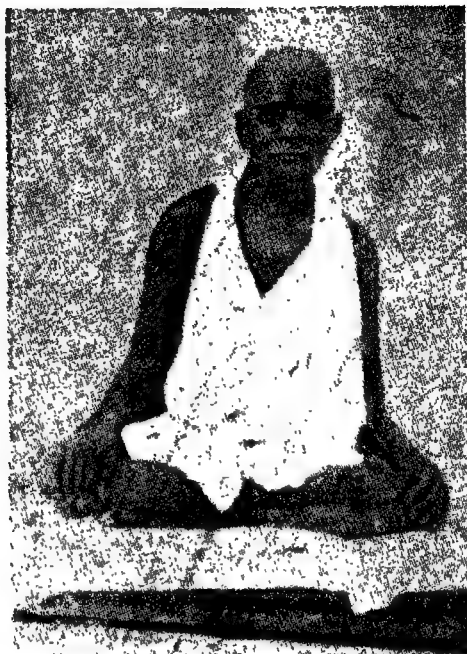
गोसाईं बाबा जैनारायनरामजी महाराज

मझरा-मठ में लेखक—बाईं ओर से दूसरा

वाराणसी के औघड़-मठ की समाधियाँ

हरपुर ग्रामस्थ एक दूसरे मठ की माईराम

वाराणसी के औघड़-मठ के महंथ

झखरा-मठ का मुख्य स्थान : यहाँ टेकमनराम की समाधि है।

धबरी—मानोपाली (सारन) मठ के औघड़ साधु
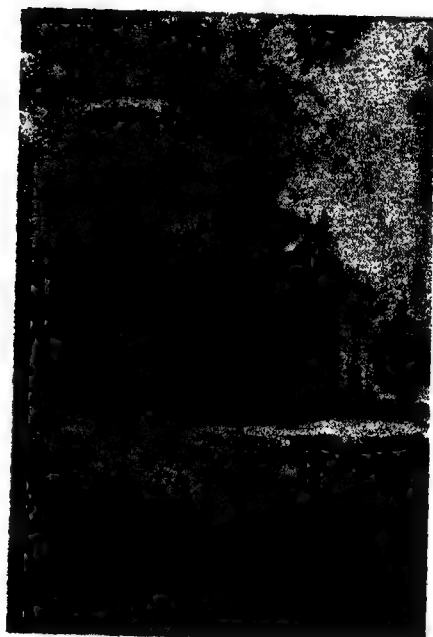
गोसाईं बाबा किनाराम

मखरा-मठ में अनुसन्धान के सिलसिले में लेखक के साथ पं० गणेश चौबे तथा श्रीरामनारायण शास्त्री

कामाख्या का मन्दिर (आसाम)

उमालिंगम् मूर्ति (देवाक, नौगाँव, आसाम)

शब्दानुक्रमणी

शब्दानुक्रमणी

[पीठिकाध्याय]

[मूल-ग्रन्थ]

इ

ई

उ

ऊ

ऋ

ए

ओ

औ

क

घ

फ

ब

भ

म

[परिशिष्ट]

ह